सङ्गीतसूर्योदयः

श्रीलक्ष्मीनारायणविरचितः

सम्पादकः

श्री कामता प्रसाद त्रिपाठी

खैरागढस्थितेन

इन्दिरा-कला-सङ्गीत-विश्वविद्यालयेन

प्रकाशितः

मूल्य : एक सौ तीस रुपये

प्रकाशक : इन्दिरा कला संगीत विश्वविद्यालय,
खैरागढ़ (म० प्र०) ४९१८८१.

प्रथम संस्करण : १९८६

मुद्रक : बाबूलाल जैन, महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी–१०

आमुख

संगीतसूर्योदय का नाम आज के संगीत विद्यार्थियों के परिचय में लाने का श्रेय आचार्य बृहस्पति को है। स्व० रामकृष्ण कवि ने भरत-कोष की भूमिका में संगीत-सूर्योदय के लिये जो संक्षिप्त उल्लेख श्री लक्ष्मीनारायण और उनके ग्रन्थ सूर्योदय के विषय में किया है। उसके आधार पर आचार्य बृहस्पति ने "गज़ल" और "कौल" का वर्णन इस ग्रन्थ में पाये जाने का ऐतिहासिक महत्त्व उभारा है।* उनके लेखन से संगीत के इतिहास और शास्त्र के गंभीर विद्यार्थियों के चित्त में इस ग्रन्थ के प्रति सहज जिज्ञासा और कौतूहल वर्षों से बना रहा है। अतः इस ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये उचित भूमिका भली-भाँति बन चुकी है।

अब समग्र ग्रन्थ सामने आने पर इसकी अन्य कई विशेषतायें भी प्रकट होंगी और कुछ महत्त्वपूर्ण प्रश्न भी उभर कर सामने आयेंगे, यथा—

(१) संगीतरत्नाकर द्वारा पूर्ण रूप से प्रभावित होने पर भी इस ग्रंथ का आरंभ स्वरगताध्याय से न होकर ताला-ध्याय से होता है।

(२) स्वरगताध्याय में संक्षेप में ग्राम-मूर्च्छना पद्धति का उल्लेख है, किन्तु मेल-पद्धति और उसकी सहवर्ती वैकल्पिक स्वर-संज्ञायें देने की पद्धति का इसमें सर्वथा अभाव है। यह बात अधिक आश्चर्यजनक इसलिये है कि विजयनगर में १५वीं शताब्दी में विद्यारण्य मेल-पद्धति की स्थापना कर चुके थे।

(३) रागाध्याय का सर्वथा अभाव भी कम आश्चर्यजनक नहीं है।

(४) संगीतरत्नाकर की 'सप्ताध्यायी' पद्धति को अमान्य करके ग्रन्थकार ने केवल ताल, नृत्त, स्वर (अत्यन्त संक्षेप में), जाति और प्रबन्ध इन पाँचों विषयों को लेकर

---

* द्रष्टव्य संगीत चिन्तामणि, प्रथम संस्करण—पृष्ठ-५०। ऐसा उल्लेख आचार्य बृहस्पति के लेखन में अन्यत्र भी मिलता है।

पाँच अध्याय बनाये हैं। यहाँ राग, प्रकीर्णक और वाद्य का सर्वथा परित्याग है। तालाध्याय में मार्गतालों के संक्षिप्त वर्णन के पश्चात् देशी तालों की ही चर्चा है। एक उल्लेखनीय बात यह भी है कि मार्गतालों का निरूपण भी ताल के दस प्राणों के प्रसंग में ही किया गया है। संगीत के विद्यार्थी जानते हैं कि ताल के दस प्राण कहने की रीति प्राचीनकाल की नहीं है, जबकि मार्गतालों का निरूपण विशेष रूप से होता था। संगीत-रत्नाकर के उत्तरकाल में ताल के दस प्राण कहने की रीति सामने आती है और उस प्रसंग में प्रस्तुत ग्रंथ अब विशेष रूप से उल्लेखनीय रहेगा।

(५) संगीतरत्नाकर के प्रकीर्णकाध्याय के कुछ विषय स्वराध्याय में अवश्य दे दिये गये हैं। संगीतरत्नाकर के स्वराध्याय के दो खण्ड बनाकर स्वर और जाति के नाम से दो पृथक् अध्याय यहाँ रखे गये हैं।

(६) तालाध्याय में प्रकरण-गीत अथवा गीतक का सर्वथा परित्याग और प्रबंधाध्याय में तत्कालीन तुरुष्क-प्रबंधों का समावेश इस निष्कर्ष की पुष्टि करते हैं कि ग्रन्थकार को 'देशी' अर्थात् तत्कालीन लक्ष्य के प्रति अधिक रुचि या अभिनिवेश है। इस निष्कर्ष के विरोध में एक ही प्रश्न उठता है कि ग्रन्थकार ने तत्कालीन मेल-पद्धति और तदनुसारी रागवर्गीकरण को छोड़कर जाति का निरूपण किस प्रयोजन से किया है। यह तो निर्विवाद है कि उसके काल तक आते-आते जाति का लक्ष्य में सर्वथा लोप हो चुका था।

सन् १९८४ में सितम्बर-अक्टूबर माह में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की योजना के अंतर्गत विज़िटिंग फ़ेलो के रूप में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से मैं दो सप्ताह के लिये इस विश्वविद्यालय में आयी तब पता चला था कि पंडित कामता प्रसाद त्रिपाठी 'संगीत-सूर्योदय' का सम्पादन आरम्भ कर चुके हैं। केवल एक पाण्डुलिपि और वह भी मूल रूप में नहीं केवल लिप्यन्तरित (transcript) के रूप में प्राप्त हो और उसके आधार पर संपादन किया जाय। यह सर्वथा शोचनीय स्थिति थी। किन्तु

इसके निराकरण का कोई उपाय मेरे पास नहीं था। पुनः दिसम्बर १९८४, जनवरी १९८५ में उसी प्रकार मुझे इस विश्वविद्यालय में आना पड़ा था और तब त्रिपाठी जी के दुष्कर कार्य के निरीक्षण और प्रत्यक्ष सहयोग देने की स्थिति बनी थी। पुनः फरवरी १९८५ से जून १९८५ तक, कुछ दिनों के व्यवधान को छोड़कर त्रिपाठी जी को इस विश्वविद्यालय द्वारा काशी में भेजा गया था ताकि वे मेरे प्रत्यक्ष निरीक्षण में संपादन कार्य कर सकें। इस प्रकार पाठ-संशोधन की जटिल समस्याओं को सुलझाने में प्रत्यक्ष सहयोग देने का आदि से अन्त तक मुझे अवसर मिला है। आशा है भविष्य में त्रिपाठी जी स्वतंत्र रूप से संगीत के ग्रंथों का सम्पादन कर सकेंगे।

त्रिपाठोजो का परिश्रम और अध्यवसाय साधुवाद का पात्र है। आशा है उनके माध्यम से यह विश्वविद्यालय भविष्य में अनेकानेक संपादित ग्रन्थों का प्रकाशन कर सकेगा। त्रिपाठी जी के कार्य की सफलता और इस विश्वविद्यालय के सुयश के लिये मेरी हार्दिक शुभकामनायें हैं।

संगीत-जगत् इस ग्रन्थ के प्रकाशन का भरपूर स्वागत करेगा, ऐसी मेरी श्रद्धा है।

खैरागढ़ :
श्रावणी पूर्णिमा,
वि० सं० २०४३,
मंगलवार १९ अगस्त, १९८६

प्रेमलता शर्मा
उप-कुलपति
इंदिरा-कला-संगीत-विश्वविद्यालय

सम्पादकीय

सङ्गीत के द्वारा मानववाञ्छित आनन्द सहज सम्प्राप्य है। इस तथ्य का प्राचीन मनीषियों ने प्रत्यक्ष अनुभव किया था। यही कारण है कि संस्कृति के उषःकाल में ही इस देश का साङ्गीतिक विकास अपनी पराकाष्ठा को पहुँच चुका था। यह मन्तव्य स्वरशास्त्रीय-ग्रंथों के प्राचुर्य से स्वतः प्रमाणित है। सङ्गीत पर भरत के पूर्व भी बहुत कुछ लिखा जा चुका था किन्तु आज वह सब उपलब्ध नहीं है। नाट्यशास्त्र में नाट्य के अंगरूप में ही सङ्गीत आदि ललित कलाओं का विश्वकोष प्रथमतः विशद-रूपेण निरूपित है। स्वरशास्त्र पर स्वतन्त्र-रूप से लिखे गये परवर्त्ती सभी ग्रंथों में भरतमुनि-द्वारा सञ्चित, समुद्भावित एवं व्यवस्थापित आर्ष-ज्योत्स्ना का न्यूनाधिक प्रसार परिलक्षित होता है।

सङ्गीत की स्वतन्त्र-धारा को १३वीं शती में सङ्गीतरत्नाकर के रूप में एक सुदृढ़ एवं अपेक्षाकृत मौलिक आयाम मिला। इस ग्रन्थ के रचयिता निःशङ्क शार्ङ्गदेव अपने उत्तरवर्त्ती स्वरशास्त्रियों के लिए प्रेरणा-केन्द्र बन गये। वस्तुतः नाट्यशास्त्र का आलोक किसी न किसी रूप में सङ्गीत-रत्नाकर को आलोकित करता हुआ बाद के समस्त सङ्गीत-ग्रन्थों में परिलक्षित होता है। इससे स्पष्ट है कि भरत के पूर्व से भातखण्डे के पश्चात् अधुनावधि अगणित तरंगों के उत्थान-पतन को अपने गम्भीर अन्तराल में समेटे हुए सङ्गीत की अक्षरमयी धारा अविच्छिन्न-गति से प्रवाहित होती आ रही है।

प्रायः सङ्गीतरत्नाकर के आधार पर ही सन्दर्भित ग्रन्थ सङ्गीत-सूर्योदय की रचना हुई है। इसके स्रष्टा श्री लक्ष्मीनारायण को विजयनगर के महाराज (१५०९–१५२९ ई०) श्री कृष्णदेवराय का राज्याश्रय प्राप्त था[1]।

सङ्गीतसूर्योदय की एकमात्र सम्पूर्ण प्रतिलिपि मद्रास के 'Madras Government Oriental Manuscripts' Library' में सुरक्षित है। इसमें तालाध्याय, नृत्ताध्याय, स्वरगताध्याय, जात्यध्याय और प्रबन्धाध्याय के रूप में कुल पाँच अध्याय हैं।

अध्याय-क्रम में तालाध्याय का प्रथम स्थान, ताल के दस प्राणों की स्वीकृति; ध्रुव, चित्र, वार्तिक और दक्षिण इन चार मार्गों के साथ क्षिप्र को भी पाँचवें मार्ग के रूप में ग्रहण करना; अङ्गों के अन्तर्गत अनुद्रुत का समावेश करके पाँच अंगों का अंगीकरण और तदनुसार विभिन्न मेरुओं का

१. भरतकोष (पृ० २१), सङ्गीतसूर्योदय (१।१२)

निर्माण; विराम-मेरुओं का विस्तृत विवेचन, नृत्ताध्याय में वर्णित हस्त, करण एवं अंगहार आदि के प्रसंगों में यत्र-तत्र नये विनियोगों का संकलन; ६ नये तुरुष्क प्रबन्धों का विशद निरूपण आदि कतिपय मौलिक विशेषताओं के कारण सङ्गीतसूर्योदय की उपादेयता निर्विवाद है।

संगीतसूर्योदय की उपर्युक्त प्रति के सन्दर्भ में स्व० विद्वान् डॉ० वी० राघवन् का कथन है 'The Madras Manuscript is incomplete as there is a gap in the most important chapter on Ragas'[१]. "मद्रास की पाण्डुलिपि अपूर्ण है क्योंकि इसमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रागाध्याय नहीं है"।

लक्ष्मीनारायण लक्ष्य के प्रबल पक्षधर थे अत: सम्भव है उनके द्वारा रागाध्याय की रचना की गयी हो और बाद में किसी कारण से उतना अंश लुप्त हो गया हो। वैसे उक्त पाण्डुपुस्तक की जो प्रतिलिपि मुझे प्राप्त हुई है उससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि ग्रन्थकार ने रागाध्याय और वाद्याध्याय की रचना ही नहीं की थी। क्योंकि तालाध्याय के प्रारम्भ में सभी अध्यायों के वर्ण्य-विषय उद्दिष्ट हैं। वहाँ रागाध्याय और वाद्याध्याय की चर्चा नहीं की गयी है। ग्रंथ के अन्त में भी 'सम्पूर्णः संगीतसूर्योदयः' ऐसा उल्लेख है।

संगीतसूर्योदय के नृत्ताध्याय के माङ्गलिक श्लोक 'अश्ववक्त्रपदपङ्कजयुग्मम्' से लेकर 'षोडशाकाशिकी इमा' तक का भाग 'मतंगभरतम्' नामक पाण्डुलिपि में मिलता है। यह ग्रन्थ 'सरस्वतीग्रन्थमहल तंजौर' में उपलब्ध है। इसमें ताडपत्र के कुल एकसठ पृष्ठ हैं[२]।

संगीतसूर्योदय की चर्चा 'भरतकोष' की भूमिका में की गयी है[3]। यहाँ ग्रन्थ में ६ प्रकार के तुरुष्क-प्रबन्धों का निरूपण किया जाना रेखाङ्कित है। तालाध्याय में एक सौ नये तालों का उल्लेख है। वस्तुतः नवीन तालों की संख्या एक सौ इक्कीस है।

प्रसिद्ध विद्वान् एम० कृष्णमाचारी ने अपने ग्रन्थ The History of Classical Sanskrit Literature में संगीतसूर्योदय के कतिपय महत्त्वपूर्ण

---

१. Sangeet Natak Akademi Bulletin, No-17, July 1960, p. 13.

२. भरतकोष भूमिका, पृ० २१।

३. भरतकोष-भूमिका, पृ० २१।

बिन्दुओं का उल्लेख किया है[१]। प्रो० एच० के० शेरवानी द्वारा सम्पादित पुस्तक 'History of Medieval Deccan' में इस ग्रंथ के कुछ महत्त्वपूर्ण विषयों का स्मरण किया गया है[२]। डॉ० वी० राघवन् ने १९६१ ई० में एक लेख प्रकाशित करके संगीतसूर्योदय की ओर मनीषियों का ध्यान आकृष्ट किया है[३]।

उपर्युक्त समस्त विद्वानों ने विवेच्य-ग्रन्थ के सन्दर्भ में प्रायः समान विचारों को व्यक्त किया है। पाँच अध्यायों का उल्लेख करते हुए तृतीय अध्याय को सभी ने 'स्वरगीत्यध्याय' अंकित किया है। मेरे विचार से इस अध्याय का नाम 'स्वरगताध्याय' है जो कि भ्रान्तिवश पाण्डुलिपि में स्वरगीत्यध्याय लिख उठा है। क्योंकि इस अध्याय में 'गीति' की विवेचना नहीं की गयी है और 'संगीतरत्नाकर' में भी इस (अध्याय) का नाम 'स्वरगताध्याय' ही स्वीकृत है।

समय-समय पर संगीत में किन-किन नये विचारों का समावेश होता रहा है, इस जिज्ञासा की सार्थकता के लिए नष्ट होने से बँची हुई अमुद्रित पाण्डुलिपियों का प्रकाशन नितान्त आवश्यक है। संगीत के अनेक ग्रन्थ-रत्न आज भी विभिन्न ग्रंथालयों के ध्वान्त बहुल प्रकोष्ठों में प्रकाश के लिए तरस रहे हैं। उन्हें अन्धकार से मुक्ति प्रदान करके ही ऋषियों के ऋण से मुक्त होना सम्भव है।

सौभाग्य से इंदिराकलासंगीतविश्वविद्यालय, खैरागढ़ का ध्यान बहुत पहले ही इस ओर गया। फलतः शोधविभाग की स्वतन्त्र स्थापना हुई। कतिपय ग्रंथ प्रकाशित हुए। जिनमें स्व० चैतन्य देसाई द्वारा सम्पादित 'भरतभाष्यम्' के दो भागों का प्रकाशन संगीतजगत् के लिए गौरवास्पद है।

पाण्डुलिपियों के संशोधन एवं प्रकाशन की शृङ्खला में सङ्गीत सूर्योदय के सम्पादन का दायित्व मुझे सौंपा गया। संस्कृत की अन्य पाण्डुलिपियों की तरह इसमें भी अशुद्धियों का विपुल विस्तार है। अनेकत्र वर्णों, पदों एवं श्लोकों तक का लोप दिखाई पड़ता है। ग्रन्थ पर कोई टीका भी उपलब्ध नहीं है। मुझे सम्पाद्य-पाण्डुपुस्तक की केवल प्रतिलिपि प्राप्त हो

---

१. M. Krishnamachariar, History of Classical Sanskrit Literature (1937) p. 865.

२. History of Medieval Deccon (1974), Vol. II. p. 134.

३. Sangeet Natak Akademi Bulletin No. 17, July 1960, pp. 12-13.

पायी थी। इन सब कारणों से सम्पादन की जटिलता स्पष्ट प्रमाणित है, तथापि मैं सम्प्राप्त-दायित्व के निर्वाह में यथाशक्ति तत्पर रहा। अन्ततोगत्वा दो-तीन वर्षों के पूर्ण मनोयोग से इस ग्रन्थ का सम्पादन सम्भव हुआ।

अधुना अनेक कठिनाइयों की घोर-निशा के उपरान्त सङ्गीत सूर्योदय का यह प्रकाश अत्यन्त सुहावना एवं सुखद प्रतीत हो रहा है। इस अवसर पर मैं अकारण अनुग्रहशील मान्य-मनीषियों के स्वस्तिवाद की आकांक्षा करता हूँ।

सङ्गीत-जगत् की सर्वमान्य विदुषी आदरणीया बहिन डॉ० कु० प्रेमलता शर्मा के प्रति मैं हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सहयोग के अभाव में 'सङ्गीतसूर्योदय' को यह आकार दे पाना मेरे लिए कथमपि सम्भव नहीं था। आपने Vice-Chancellor के गुरुतर दायित्व का निर्वाह करते हुए भी ग्रन्थ के परिष्कार से लेकर अन्तिम रूप में प्रूफ देखने तक का जो अनुग्रह किया है वह एकमात्र अनुभवगम्य है शब्दबोध्य नहीं। सम्माननीया बहिनजी के द्वारा इस पुस्तक के लिए लिखे गये आमुख को मैं अपने लिए आशीर्वचन के रूप में शिरोधार्य करता हूँ। पाण्डुलिपि के संशोधन एवं सम्पादन के क्षेत्र में सम्मान्या बहिन जी से जो मार्गदर्शन मुझे प्राप्त हुआ है उसका सम्बल लेकर भविष्य में भी अन्य ग्रन्थों का परिष्करण कर सकूँगा, ऐसा विश्वास है।

विश्वविद्यालय के कुल सचिव श्री एम० के० गङ्गाजलीवाले ने ग्रन्थ के प्रकाशन में जो प्रशासनिक सहयोग प्रदान किया, उसके लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। ग्रन्थालयाध्यक्ष श्रीयुत् के० बी० सुन्दरेशन् ने यथा-समय अभीष्ट पुस्तकों को उपलब्ध कराया एतदर्थ मैं उनका ऋणी हूँ। चित्रकलासङ्काय के अधिष्ठाता डॉ० उमेश मिश्र के प्रति कृतज्ञता अर्पित करता हूँ, जिनके सहयोग से ग्रन्थ के आवरण-पृष्ठ को आकर्षक स्वरूप प्राप्त हुआ। सम्पादित प्रति के टङ्कण-हेतु श्री भूपेन्द्र सिंह को बहुशः साधुवाद। 'महावीर प्रेस' भेलूपुर, वाराणसी के व्यवस्थापक श्री बाबूलाल जैन ने जिस आत्मीयता के साथ मुद्रण-कार्य सम्पन्न किया उसके लिए हृदय से अपने-आप आभार व्यक्त हो उठता है।

भारत शासन के 'संस्कृति-विभाग'–द्वारा प्राप्त अनुदान राशि के बल पर ही ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो पाया एतदर्थ इस विभाग को शतशः साधुवाद समर्पित है। 'Madras Government Oriental Manuscripts

Library' को अनेकशः धन्यवाद अर्पित है, जहाँ से सङ्गीतसूर्योदय की मूल पाण्डुलिपि की प्रतिलिपि प्राप्त हुई थी।

अन्त में ग्रन्थ के प्रकाशन-हेतु 'इन्दिराकलासङ्गीतविश्वविद्यालय' के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ।

विदुषामाश्रवः—
कामताप्रसाद त्रिपाठी

सङ्गीतसूर्योदयकार का परिचय

ग्रन्थ के प्रारम्भ में मङ्गलाचरण एवं महाराज कृष्णदेवराय की प्रशस्ति के उपरान्त ग्रन्थकार श्री लक्ष्मीनारायण का परिचय उल्लिखित है।

भारद्वाज गोत्र में समुत्पन्न केशवामात्य एक बहुश्रुत विद्वान् थे[1]। उनकी पत्नी का नाम गौरवाम्बा था, जिनसे भण्डारु विट्ठलेश्वर का जन्म हुआ था। इन्हीं विट्ठलेश्वर की भार्या रुक्मिणी श्री लक्ष्मीनारायण की जननी थी[2]।

लक्ष्मीनारायण को विजयनगर के महाराज (१५०९–१५२९) श्री कृष्णदेवराय का राज्याश्रय प्राप्त रहा है[3]। विविध विद्याओं और कलाओं में नृपश्रेष्ठ कृष्णदेवराय का अतिशय अनुराग प्रसिद्ध था।

सङ्गीत के प्रयोग एवं शास्त्र में समान दक्षता रखने वाले श्री विष्णु भट्टारक से दत्तिल, कोहल, भरत एवं मतङ्ग आदि के ग्रन्थों और तत्सम्बद्ध टीकाओं का सम्यग् अनुशीलन करके लक्ष्मीनारायण ने पर्याप्त योग्यता अर्जित की थी[4]।

महाराज कृष्णदेवराय ने स्वर्णमण्डित पालकी, सुसज्जित गज, मुक्तागुच्छ-मण्डित छत्र-युग्म से लक्ष्मीनारायण का सम्मान किया था[5]। सङ्गीतसूर्योदयकार को अपनी विद्या और कला पर अत्यन्त दर्प था। उनका कथन है कि जिस प्रकार नारद की साङ्गीतिक प्रतिभा से स्वर्ग में किन्नर आदि देवताओं का शिरःकम्पन हो उठता है उसी प्रकार मेरी साङ्गीतिक कला की रसानुभूति करके स्वरमर्मज्ञों के सिर हिल जाते हैं[6]।

१. सङ्गीतसूर्योदय १।११
२. ,, १।९
३. ,, १।१२
४. ,, ,,
५. ,, १।१५
६. ,, १।१२

लक्ष्मीनारायण ने अपने को कृष्णदेवराय के कृपासागर का चन्द्रमा कहा है[१]। सङ्गीतसूर्योदय के प्रारम्भ में गुणग्राही नरेश कृष्णदेवराय की विजय-यात्रा का वर्णन है। नृत्ताध्याय के करण-प्रसङ्ग में अन्तिम करण का नाम कृष्णावतरणम् देकर भी महाराज के प्रति सम्मान व्यक्त किया गया है[२]।

ग्रन्थकार ने अपने लिए अभिनवभरताचार्य, वाग्गेयकार, सूक्ष्मभरताचार्य, करणाग्रणो, विद्वान्, लक्ष्मणाचार्य, लक्ष्मणार्य, विट्ठलसूनु, विट्ठलनन्दन आदि विशेषणों का प्रयोग किया है। ग्रन्थ के मङ्गलाचरणों एवं 'रामानुजाय नमः' आदि उल्लेखों से ग्रन्थकार का वैष्णव होना सिद्ध होता है।

भरतकोष की भूमिका में उल्लेख है कि लक्ष्मीनारायण के पिता श्री भण्डारु विट्ठलेश्वर ने सङ्गीतरत्नाकर पर तेलगू में एक भाष्य लिखा था। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित होकर उन्हें गुजरात में स्थित माण्डवा के सुलतान जियासुद्दीन ने तीन हजार तोलों से परिमित सुवर्ण-दान दिया था।[3]

डॉ० वी० राघवन् ने श्री लक्ष्मीनारायण के परिचय का उल्लेख इस रूप में किया है[४]—

भारद्वाज-गोत्र

केशवामात्य — गौरमाम्बा

↓

भण्डारु विट्ठल - रुक्मिणी

↓

लक्ष्मीनारायण (लक्ष्मण)

गुरु–विष्णुभट्टारक

और नीचे इस श्लोक को उद्धृत किया है[५]—

यो भारद्वाजगोत्रे समजनि श्रुत (बहु) वित् केशवामात्यवर्यः,
तद्देवी गौरमाम्बा तदमलजठरे विट्ठलाख्यो वरेण्यः।

१. सङ्गीतसूर्योदय १।१०
२. ,, २।६३७
३. भरतकोष भूमिका, पृ० २१।
४. Sangeet Natak Akademi Bulletin, No. 17, July 1960, P. 13.
५. मुद्रित सङ्गीवसूर्योदय के अन्तर्गत तालाध्याय का यह ११वाँ श्लोक

तद्भार्या रुक्मिणीति प्रचुरतरगुणा तत्सुधापूरगर्भे,
लक्ष्मीनारायणोऽयं जयति भुवि यतः स्यादपत्यं सुलक्ष्म ॥

मूलतः सङ्गीतसूर्योदय के आधार पर ही ग्रन्थकार श्री लक्ष्मीनारायण का यह संक्षिप्त परिचय निरूपित किया गया।

सङ्गीतसूर्योदय का वैशिष्ट्य

'सङ्गीतरत्नाकर' से प्रभावित होने पर भी 'सङ्गीतसूर्योदय' की कतिपय मौलिक विशेषताएँ महत्त्वपूर्ण हैं।

सङ्गीतसूर्योदय के पाँच अध्यायों में पहला तालाध्याय है। इस अध्याय के प्रारम्भ में पाँचों अध्यायों की वर्ण्यवस्तुएँ क्रमशः उद्दिष्ट हैं। ताल के दस प्राणों को स्वीकार किया गया है। ध्रुव, चित्र, वार्तिक और दक्षिण के साथ पञ्चम मार्ग के रूप में 'क्षिप्र' को भी स्थान दिया गया है जिससे मार्गों की सङ्ख्या पाँच हो गयी है। द्रुत, लघु, गुरु और प्लुत के पूर्व अनुद्रुत को भी सम्मिलित करके 'सङ्गीतसूर्योदय' में कुल पाँच अङ्ग माने गये हैं। इन पाँच अङ्गों के आधार पर प्रस्तार-क्रम में विभिन्न मेरुओं की वर्णना से ग्रन्थ में नवीनता एवं मौलिकता के स्वरूप दृष्टिलभ्य हैं। विराममेरुओं का संक्षिप्त उल्लेख भले-ही अन्यत्र हो किन्तु इतना विशद विवेचन प्रथमतः सङ्गीतसूर्योदय में ही उपलब्ध है।

इस ग्रन्थ के अन्तर्गत 'सङ्गीतरत्नाकर' में वर्णित १२० देशी तालों के अतिरिक्त १२१ नवीन देशीतालों की परिकल्पना की गयी है। इन तालों के अनुप्रासबद्ध नामों का वाचन करते समय किसी काव्यात्मक सौन्दर्य का अनुभव हो उठता है।[1] उक्त तालों के लक्षण भी अनुप्रास के साथ ही यत्र-तत्र समासोक्ति और मुद्रालङ्कारों से ओतप्रोत हो उठे हैं।[2]

द्वितीय नृत्ताध्याय के अन्तर्गत हस्त, करण एवं अङ्गहार आदि के विनियोगों में कहीं-कहीं नवीनता का पुट देखने को मिलता है। भारती

है, किन्तु ग्रन्थ की प्राप्त प्रतिलिपि के अनुसार इसकी अन्तिम दो पङ्क्तियाँ ९वें श्लोक के मध्य में मुद्रित हैं और उन (दो पङ्क्तियों) के लिए स्थान छोड़ दिया गया है। ऐसा इसलिए हुआ कि उस भाग के मुद्रित होने तक डॉ० वी० राघवन् का यह महत्त्वपूर्ण लेख मुझे नहीं प्राप्त हुआ था।

१. सङ्गीतसूर्योदय (१।५०३-११८)
२. ,, (१।५२४।५२५), (१।५३६)

आदि वृत्तियों के वर्णन-प्रसङ्ग में नाट्यशास्त्र से सामग्री का सञ्चयन किया गया है।

तृतीय स्वराध्याय में ६६ श्रुतियों की नामावली 'सङ्गीतसमयसार' से संगृहीत है।

चतुर्थ जात्यध्याय में जातियों एवं तत्सम्बद्ध त्रयोदश लक्षणों की पारस्परिक वर्णना है।

पञ्चम प्रबन्धाध्याय के अन्त में गजलु (गजल) कौलु (कव्वाली) आदि ६ तुरुष्क प्रबन्धों की विस्तृत-विवेचना से ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्त्व प्रमाणित है। ग्रन्थ में इन नये प्रबन्धों की वणना को श्री रामकृष्ण कवि[१] डॉ. एम. कृष्णमाचारी[२], प्रो. एच. के. शेरवानी[3], तथा वी. राघवन्[४] आदि विद्वानों ने रेखाङ्कित किया है। आचार्य बृहस्पति[५] ने ६ तुरुष्क-प्रबन्धों की प्रथम-विवेचना के लिए 'सङ्गीतसूर्योदय' का स्मरण किया है। डॉ. सुभद्रा चौधरी ने भी अपने ग्रन्थ 'भारतीय-सङ्गीत में ताल और रूप-विधान' में उक्त नवीन प्रबन्धों के लिए इस ग्रन्थ का उल्लेख किया है।[६]

सङ्गीतरत्नाकर के सूत्ररूप में कथित दुरूह-भावों को सङ्गीतसूर्योदय में विस्तारपूर्वक स्पष्ट करने का प्रयास परिलक्षित होता है। कभी-कभी इस कार्य के लिए सङ्गीतकलानिधि और सङ्गीतसुधाकर इन दो टीकाओं का भरपूर उपयोग किया गया है।

लक्ष्मीनारायण कहीं-कहीं पारिभाषिक अपभ्रंश शब्दों को परिष्कृत करने में प्रयासरत दिखाई पड़ते हैं। यथा—'पद्धडी' और 'खल्लोत्तार' प्रबन्धों को 'पद्धति' और 'कल्पोत्तर' संज्ञाएँ दी गयी हैं।

सङ्गीतसूर्योदय में, भरत, दत्तिल, कोहल, मतङ्ग, नारद, उमापति, कात्यायनी, अर्जुन, कीर्तिधर, सोमेश्वर, शार्ङ्गदेव और टीकाकार के रूप में (कल्लिनाथ तथा सिंहभूपाल) आदि सङ्गीतमर्मज्ञों का स्मरण स्थान-स्थान पर किया गया है।

---

१. भरतकोष, पृ० २१।

२. History of Classical Sanskrit Literature (1937), p.865.

३. History of Medieval Deccan (1974), Vol. II, p. 134.

४. Sangeet Natak Akademi Bulletin No. 17 (July 1960), p. 13.

५. 'सङ्गीतचिन्तामणि' प्रथम-संस्करण, पृ० ५०।

६. 'भारतीय सङ्गीत में ताल और रूप-विधान', पृ० २५४।

ग्रन्थ के प्रारम्भ में महाराज कृष्णदेव राय की विजययात्रा का वर्णन भी इतिहास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

सङ्गीतसूर्योदय में यत्र-तत्र सङ्गीतरत्नाकर से ज्यों के त्यों श्लोक ग्रहण कर लिए गये हैं किन्तु अधिकांश स्थलों पर ग्रन्थकार ने अपनी मौलिक भाषा का प्रयोग किया है। सङ्गीतरत्नाकर पर आधृत ग्रन्थ में रागाध्याय और वाद्याध्याय का समावेश न होना भी एक वैशिष्ट्य है।

परम्परा के निर्वाह के साथ इन्हीं कतिपय मूलभूत विशेषताओं के कारण विद्वानों के द्वारा 'सङ्गीतसूर्योदय' की महत्ता स्वीकार की जाती रहेगी, मेरी ऐसी दृढ़ धारणा है।

सम्पादन की रूपरेखा

सङ्गीतसूर्योदय की प्राप्त पाण्डुलिपि पर्याप्त अशुद्ध है। इसमें कहीं-कहीं कतिपय वर्ण, शब्द अथवा पूरे के पूरे श्लोक ही लुप्त हैं। ऐसी स्थिति में लेखकाभिमत पाठ का अन्वेषण करना टेढ़ी खीर है। कतिपय मूल अवधारणाओं के बाद भी ग्रन्थ की रचना का मूल आधार सङ्गीतरत्नाकर ही है। अतः मद्रास की मूलप्रति के अतिरिक्त अन्य सम्पूर्ण प्रतियों के अभाव में सङ्गीतरत्नाकर से ही तात्पर्यों का अवगमन करके 'स्थितस्य गतिश्चिन्तनीया' इस उक्ति का यथासम्भव पालन करते हुए पाठ को परिष्कृत करने का प्रयास किया गया है।

ग्रन्थ में जो स्थान रिक्त हैं उनकी पूर्ति सन्दर्भित तात्पर्यानुसार कोष्ठकों [ ] में की गयी है। रिक्तियों की पूर्ति के लिए यत्र-तत्र सङ्गीतरत्नाकर की सामग्री का उपयोग किया गया है। जहाँ सङ्गीतरत्नाकर को ही शब्दावली का प्रयोग सम्पादक द्वारा किया गया है वहाँ टिप्पणी में उसकी सूचना दे दी गयी है। कोष्ठकों ( ) के अन्तर्गत सुझाए गये पाठों में जहाँ किसी ग्रन्थ का सन्दर्भ पादटिप्पणी में नहीं दिया गया है, वे सभी पाठ प्रसङ्गानुरूप सम्पादक द्वारा परिकल्पित हैं। पाठ को शुद्ध करने के उपरान्त मूल की यथास्थिति पादटिप्पणी में सुरक्षित है, जिससे विद्वानों की स्वतन्त्र-विचार-प्रक्रिया में किसी प्रकार का अवरोध न उत्पन्न हो।

टिप्पणी का नाम 'प्राची' निश्चित किया गया है, यतः सूर्योदय की वही नियत दिशा है। प्राची में ग्रन्थ की पूर्व स्थिति का अङ्कन भी किया गया है, इस दृष्टि से भी नाम की सार्थकता व्यञ्जित है।

मूल में श्लोकों की क्रम-सङ्ख्याएँ अङ्कित नहीं हैं। अतः कहीं-कहीं भ्रान्तिवश पूरे के पूरे प्रकरण इधर-उधर हो गये हैं। इन अस्त-व्यस्त

प्रकरणों को प्रायः क्रम में लाने का प्रयास किया गया है और उसकी सूचना सन्दर्भित टिप्पणी में सकारण दे दी गयी है। ग्रन्थ के समस्त श्लोकों को क्रमसंख्याओं के अन्तर्गत व्यवस्थित करने का प्रयास किया गया है। आवश्यकतानुसार मूलग्रन्थ के आशय 'टिप्पणी' में व्यक्त किये गये हैं। कहीं-कहीं 'सङ्गीतरत्नाकर' तथा अन्य ग्रन्थों से श्लोकों, श्लोकांशों अथवा टीकाओं के उद्धरण सङ्कलित हैं।

तालाध्याय में अनुद्रुत को भी पाँचवें अङ्ग के रूप में मान कर विभिन्न मेरुओं की रचना की गयी है और विराम-मेरुओं का भी विस्तृत विवेचन दिया गया है। दोषपूर्ण पाठ और अन्यत्र इतना विस्तृत-विवरण अनुपलब्ध होने के कारण उपर्युक्त अनेक मेरुओं के निर्माण में अतीव प्रयास करना पड़ा है।

लक्ष्मीनारायण द्वारा परिकल्पित १२१ नवीन तालों से सम्बद्ध पाठ का परिष्करण ग्रन्थ में विद्यमान लक्षण एवम् उदाहरण के पारस्परिक अध्ययन के उपरान्त किया गया है।

संक्षेप में सम्पादन की यही रूपरेखा व्यवहृत है। मान्य मनीषियों का ध्यान इस ओर आकृष्ट करना चाहता हूँ कि एक पाण्डुलिपि के माध्यम से वैज्ञानिक आधार पर पाठसंशोधन असम्भव है अतः कोष्ठकों में दिए गये पाठ-प्रस्तावों का प्रयोजन विषयों के क्रम में गतिरोधविहीन तारतम्य-स्थापन-मात्र है।

सम्पादक-द्वारा विद्वज्जनों के सत्परामर्श निरन्तर अभ्यर्थित हैं।

विषयानुक्रमणिका

नृत्ताध्यायः (११७-२७५)

■

संगीतसूर्योदयः

॥ श्रीः ॥

श्रीमते रामानुजाय नमः ।

*वन्दे देवं तुरगवदनं चन्द्रबिम्बान्तरस्थं
राकाचन्द्रस्फुरदुरुकलासाम्यसङ्क्रान्तकान्त्यै ।
कीर्त्यै संगीतविद्याविलसितपदवीन्यासमावक्तुकामो
लक्ष्मीनारायणोऽहं सुघटजनमनःपद्मसंफुल्लकान्तिम् ॥१॥
†विद्वद्व्यापि[1]नमुन्नतोन्नतकलं[2] यत्याश्रयं मुक्तिदं
सन्मार्गैकनिबद्धवृत्तिमतुलं कान्तं प्रियाङ्गान्वितम् ।
नानारूपविभिन्न[3]जातिविविधप्रस्तारचित्तद्रवं
‡विष्णुं ज्ञानघनं भजामि करणैर्जात्वङ्गनावल्लभम् ॥२॥

'प्राची'

त्रितापातप्तचित्तानां चन्दनं नन्दनोद्भवम् ।
ब्रह्मानन्दमयं वन्दे नादं मोहनिकन्दनम् ॥१॥
तालोल्लासितनृत्तमर्मभरितं गुञ्जत्स्वरैर्मञ्जुलं
नानाजातिशुभप्रबन्धवलितं पञ्चांशुभिर्मण्डितम् ।
नादाम्भोजमधुव्रतालिसुखदं संगीतसूर्योदयं
हेयादेयविचारचारुविधिना संशोध्य सम्पादये ॥२॥

---

*उपन्यस्तमङ्गलात्मकपद्यस्य पूर्वार्धभागो मन्दाक्रान्तावृत्तोपनिबद्ध उत्तरार्द्धभागस्तु स्रग्धरान्वितः । दृश्यते चाऽत्र विशिष्टमिश्रणाङ्गीकरण-विवशता । एतत्तुल्यनिदर्शनन्त्वन्यत्रापि समुपलभ्यते यथा 'रामरक्षास्तोत्रे' रामं लक्ष्मणपूर्वजमिति पद्ये शार्दूलविक्रीडितस्रग्धरयोर्मिश्रणं विद्यते ।

†कला-यति-मुक्ति-मार्ग-निबद्ध-वृत्ति-अङ्ग-रूप-जाति-प्रस्तार-करणादि-श्लिष्टपदानामुपनिबन्धनेन वर्णनीयानि वस्तून्यपि व्यज्यन्ते । मुद्रालङ्कारोऽत्र विद्यते ।

‡ग्रन्थस्यादावन्ते च 'रामानुजाय नम' इत्युल्लेखेन अनेकत्र विष्णु-वन्दनया च लक्ष्मीनारायणोऽयं वैष्णव इति निश्चीयते ।

१. ०पि०　　२. ०ळं　　३. ०न जा०

कर्णाटाह्वयदेशं सौख्यजननी श्रीतुङ्गभद्रावृता
या[1] शृङ्गोन्नतमाल्यवत्क्षितिधरश्रीहेमकूटान्विता ।
पम्पाधीश्वरविट्ठ[2]लेश्वरकृपादृष्टिप्रभामण्डिता
श्रीविद्यानगरीति भाति धरणीधम्मिल्लमाणिक्यवत् ॥३॥

तस्यां काञ्चनमण्डपे[3] परिलसन्माणिक्यहारावली[4]-
प्रान्तव्रातविशुद्धमौक्तिकमणिश्रेणी[5]च्छवीरञ्जितम् ।
आरुह्य द्विरदादिपीठमतुलां क्ष्मामीश्वरस्यात्मजो
निस्तन्द्रः प्रशशास[6] तुर्वसुकुलोत्तंसो नृसिंहो नृपः ॥४॥

कीर्तिस्फूर्तिभिरह्न्यपि प्रतिकलं ज्योत्स्नां परां जृम्भयन्
[विद्यादीधिति] नां[7] सितेन सकलान् सम्प्रीणयन् प्राणिनः ।
नित्याभिश्च कलाभिरुत्सुकतरं धिन्वन् बुधानां व्रजं[8]
तस्मा[द्] दुग्धपयोनिधेरिव विधुः श्रीकृष्णरायोऽजनि ॥५॥

विकारयुक्पाण्डुलिपेर्दुरूहतां
विदन्ति वेद्यार्थविदो विपश्चितः ।
तथाप्यभीप्सामि बुधोचितं यशः
शिशुः शशिक्रीडनकं यथेच्छति ॥३॥
विधातृजां चेतसि कोऽपि कामता-
प्रसादनामा प्रणिधाय भारतीम् ।
प्रतीक्ष्यसूर्योदयदिव्यदीधितिं
तनोति तौर्यत्रिकहासहेतवे ॥४॥
अशेषदोषेष्वपि ये सहिष्णवो
गुणं क्वचिद् वीक्ष्य मुदं वितन्वते ।
प्रणम्य तानेव वचांसि मादृशां
स्वभावतश्चञ्चलतामुपासते ॥५॥

---

१. माशीङ्गो०
२. ०ट्ट०
३. ०ट०
४. ०ली
५. ०णीरतीर०
६. ०सतु०
७. ···०नासि०
८. व्रजान्

बाल्येऽसौ सकलकलाकलापयुक्तं
सप्राणं सपदि विजित्य गाङ्गराजम् ।
[2]भंक्त्वा तद्भवनसमुद्रमुत्कटं द्रा-
गावासं व्यतनुत निर्भरं शिवानाम् ॥६॥

दुर्गं जित्वाथ सोऽसावुदयगिरिवरं तत्तदायत्त[3]राज्यं
बन्दीकृत्या[4]शु हृत्वा युधि नगरवरे कोप[5]दृक्प्रान्तवृत्त्या ।
जीवग्राहं गृहीत्वा गजपतितनयं [6]पोट्टमत्पत्तनाग्रे
विश्वश्लाध्यप्रतापो विरुदयुतजयस्तम्भमुच्चै[7]र्न्यखानीत् ॥७॥

सोऽयं कृष्णनरेश्वरो गजपतिं जित्वा तदीयश्रिया
साकं तस्य सुतामुदुह्य यवनक्ष्मापं सयादं ततः ।
गोज्जूरुस्थलवासिनं सरभसं जित्वा सुवित्तान्वितं
हस्त्यश्वं[10] स तदीयदुर्गममलं [गोज्][11]जूरमादत्तवान् ॥८॥

कृष्णामुत्तीर्य सोऽयं यवनजनपदं वह्निसात्कृत्य सर्वं
तद्भार्या रुक्मिणीति प्रचुरतरगुणा तत्सुधापूरगर्भे[12]त् ।

लिपिकजनितदोषा मार्जिताः किन्तु तेषा-
मपि तु निखिलरूपं दर्शितं पादवृत्तौ ।
भ्रमविकृतिसमेतग्रन्थवैकल्यशल्यं
बहुलमिह मयेत्थं पूरितं कोष्ठकेषु ॥६॥
लक्ष्मीनारायणोन्नीतसूर्योदयनिदर्शिनी ।
प्रीत्यै शास्त्रदृशां 'प्राची' टिप्पणीयं प्रणीयते ॥७॥

---

१. ०प्र०
२. भ०
३. ०हुत्तराजं
४. ०त्वा०
५. कोन्तपित्कोन्तप्रत्यै
६. पोट्टुमत्पट्टणाग्रे
७. ०निखा०
८. ०दू०
९. ०पा०
१०. ०श्वान्
११. ····चू०
१२. ०र्भे

लक्ष्मीनारायणोऽयं व्यंजनि[1] भुवि [लसत्सर्वविद्या] सुलक्ष्मा
कान्त्यां[2] व्याकृष्टवान् दोर्बलघनमहिमा स्त्रीपरीतानमित्रान्[3] ॥९॥

तस्य श्री कृष्णरायस्य कृपाक्षीराब्धिचन्द्रमाः ।
लक्ष्मीनारायणो नाम [सामगा]नरसाग्रणीः ॥१०॥

यो भारद्वाजगोत्रे समजनि श्रुतवित् केशवा (चार्य) वर्य—
* स्तद्देवी गौरवाम्बा[4] तदमलजठरे विट्ठलाख्यो वरेण्यः ।
....
.... ॥११॥

सोऽयं श्रीलक्ष्मणार्यो भरतमुनिमताम्भोधिमार्गेण सर्वान्
कृत्वा [5]चोक्षान् प्रबन्धान् [भुवि]बुधजनसंगीतविद्याधिपानाम्[6] ।
मौलीनाकम्पयंस्तानिव[7] दिवि विबुधान् नारदः किन्नराद्दीन्
भूमौ श्रीकृष्णरायक्षितिपतिकृपया वर्धते सर्ववन्द्यः ॥१२॥

सदाभिनवशब्दादिर्भरताचार्यनामकः ।
विरुदं धरणीचक्रे धत्ते [चक्र] मिवाच्युतः ॥१३॥

असकृद्दानदोर्दण्डमण्डितारातिसज्जनः ।
लक्ष्मीनारायणाख्योऽयं सदौदार्यस्फुरत्करः ॥१४॥

श्रीमत्कृष्णनरेश्वरस्य कृपया स्वर्णाञ्चितां पालकीं†
मुक्तागुच्छशतानुबद्धवलयं मुक्तातपत्रद्वयम् ।
शाश्वन्नृत्य[पयोधि][8]गानलहरीवाद्यं निजान्तःपुर-
स्थाने नाट्यरसाधिपत्यमसकृल्लक्ष्मीपतिः प्राप्तवान् ॥१५॥

---

* अस्य स्रग्धराच्छन्दसश्चरणद्वयं खण्डितं वर्त्तते । तत्कृते प्राप्तादर्श-पुस्तके स्थानमपि न रिक्तमस्ति । तदभावेऽभिप्रायो नावगम्यते ।

† शिविकार्थे प्रयुक्तोऽयं देशजः शब्दः प्रतिभाति ।

१. जयति
२. ०न्ता
३. त्रिपरित्राणमि०
४. ०मा०
५. वेलान्
६. ०दिकानान्
७. ०नां क०
८. णान्त०

यथा स्फुरद्द्वीपविचित्रखण्डमेरुं प्रशासद् भुवि कार्त्तवीर्यः ।
तथा स्फुर[द्] द्वीपविचित्रखण्डमेरुं[2] प्रशासद् भुवि लक्ष्मणार्यः॥१६

*स्वामिना कृष्णरायेन संसारानन्दचित्तवान् ।
लक्ष्मीनारायणो वक्ति कार्यसाधनकारणम् ॥१७॥

संगीतागमलक्ष्यलक्ष्मनिपुणश्री[3]विष्णुभट्टारकौज्–
ज्ञात्वा दत्तिलकोहलादिभरतग्रन्थान् सुटीकान्वितान् ।
भूमौ कीर्तिशरीररक्षणधिया ग्रन्थः कृतोऽयं मया,
[नादाब्जोन्नय] योग्यताधिकरतः संगीतसूर्योदयः ॥१८॥

ग्रन्थेऽस्मिन् वक्ष्यमाणानां वस्तूनां यः पृथक् पृथक् ।
उद्देशः कल्पते दीर्घ[5] वस्तुग्रहणसाधकः ॥१९॥

तत्रादौ प्रोच्यते ता[ला]ध्याये वस्तु[विधि]क्रमः ।
तालशब्दस्य निष्पत्ति[6]स्तदङ्गानि ततः परम् ॥२०॥

तदङ्गभेदास्तेषान्तु विषयस्तत्प्रमाणतः ।
योगः कालप्रमाणं च क्रियाङ्गं च ततः परम् ॥२१॥

[अङ्गानां] क्रमशस्तेषां कलावर्णविचित्रता ।
[आवा] पादिक्रिया [प्रो]क्ता[7] चाङ्गुलीनामतः परम् ॥२२॥

भेदत्रयमयुग्मस्य ततः स्यात् परिवर्त्तनम् ।
मार्गो देशी लया[8]श्चाऽथ यतय[श्च] ग्रहस्ततः ॥२३॥

प्रस्तारसंख्या नष्टं चोद्दिष्टं पाताल[9]कस्तथा ।
द्रु[10][तानुद्रुतसंयो]ग[11] मेरवस्तदनन्तरम् ॥२४॥

---

* स्वामिना कृष्णरायेनेत्यत्र तृतीया चिन्त्यास्ति ।

१. ० दा स्पदद्वी०
२. ० ड मे०
३. ० णै:
४. ० कै:
५. ० र्घं
६. ० ति: त०
७.····द्वाचा०
८. ० यौ चा०
९. ० ळ०
१०. अ····
११. ····गं मौर०

मेरवश्च विरामश्च[1] विस्तारस्तु षडङ्गजः ।
तत्संख्या[2] तस्य पातालं नष्टोद्दिष्टे ततः परम् ॥२५॥
खण्डप्रस्तार[3] [कश्चैव] तालकर्मे[4] [निरूपणम् ।] ।
कौतुकेन नयेनैव *क्रौञ्चा[5] [दि]वृत्तलक्षणम् ॥२६॥
नृत्ताध्याये द्वितीये तु नृत्तस्य जननं ततः ।
तद्भेदान् तत्फलं तत्र ताण्डवं च शिरः[6][करः] ॥२७॥
[करो][7]पयोगवस्तूनि वक्षः पार्श्वे[8] [कटीतटम् ।]
**[पादौ ग्रीवा] बाह[व]श्च दृष्टयोर्लक्षणं भ्रुवोः ॥२८॥
करणानि कराणाञ्च सम्प्रदायवचांसि च ।
मुख[10]ाचारसमुद्भूतः पुष्पाञ्जलिरतः परम् ॥२९॥
करणान्यपि शुद्धानि तथो[11]त्प्लुतिमुखानि च ।
अङ्गहारा[12] रेचकाश्च चार्यो[13] [भूव्योमसम्भवाः] ॥३०॥
शुद्धाश्च] [14]देशिसंज्ञाताः स्थानकानि ततः परम् ।
मण्डलं पात्रलक्ष्माणि[15] गुणदोषास्तद[16]ाश्रिताः ॥३१॥
लास्याङ्गानि ततो रेखा[17] लक्षणञ्च सभापतेः ।
लक्षणं भरतज्ञस्य नटस्य च ततः परम् ॥३२॥

---

* क्रौंचादिप्रसङ्गस्त्वत्र न विद्यते ।
** अस्यैव ग्रन्थस्य नृत्ताध्यायगतोद्देशमनुसृत्य प्रायेणात्रत्यानि रिक्त-स्थानानि कोष्ठान्तर्गतानि पूर्णीकृतानि सन्ति ।

१. ० मस्य
२. ० ख्यान्त०
३. ० प्रलय····
४. ० मा····
५. ० कौच्य····
६. प ०
७····स
८. ० श्वं····
९. द्वि०
१०. ० ख०
११. दोत्पत्ती मु०
१२. ० रारे०
१३. ० र्या····
१४.····वशिसंज्ञौ तौ
१५. ० नि
१६. ० था त्रिधा
१७. खाल०

शुद्धाद्या [पद्धति] र्वृन्दो[१] लक्षणं तु [नटस्य च] ।
वस्तून्येतानि नृत्तस्य निरूप्यन्ते क्रमादिह ॥३३॥
अथ स्वरगताध्याये कथ्यन्तेऽत्र तृतीयके ।
श्रुतयश्च स्वराः शुद्धा विकृतास्तदनन्तरम् ॥३४॥
मूर्च्छनं च स्वरे.................................?
गुणयोगाश्च शारीरं गमकाश्च ततः परम् ॥३५॥
मूर्च्छना[नां क्रमस्]तत्र ग्रामयोरुभयोः पृथक् ।
ततः स्वराणां प्रस्तारः तत्संख्या च ततः परम् ॥३६॥
*[२]पूर्णादिसप्ततानाश्च खण्डमेरुस्ततः परम् ।
तत्तदुद्दिष्टनष्टे[३] च काकल्यन्तरलक्षणम् ॥३७॥
स्वरसाधारणं[४] जातिसाधारणमतः परम् ।
स्थाय[५]लक्षणमित्येवमखिलं स्व[६]रविस्तरम् ॥३८॥
चतुर्थेऽथ निरूप्यन्ते जात्य[७]ध्याये क्रमादिह ।
प्रथमं जातयः शुद्धा विकृ[८]तास्तदनन्तरम् ॥३९॥
संसर्गजातयस्तत्र तत[स्तासाञ्च] लक्षणम् ।
तासु ग्रामविभागश्च [सम्पूर्ण] षाडवौ[९]डुवाः ॥४०॥
तत्र प्रयोग [रूपं] साधारणस्य ततः परम् ।
स [प्रयोगस्तु] जातीनां[१०]मंशन्यासविभागतः ॥४१॥

---

* अत्र कूटतानस्य तात्पर्यमस्ति । सप्त कूटतानास्तु पूर्णषाडवौडुवस्व-रान्तरसामिकगाथिकार्चिकनामभिः प्रसिद्धाः सन्ति ।

१. ० दल०
२. ० र्णादिसक्तनामादे
३. ० ष्टं
४. सा०
५. ० यि
६. रसवि०
७. ० ताध्या०
८. ० श्रु०
९. ० नादितः
१०. ० नां मैक्यांशो वि०

लक्षणं च [1]ग्रहाद्येनां विस्तारेण [च वर्णि][2]तम् ।
पञ्चमे तु प्रबन्धाख्या[न्विते ऽ]ध्याये क्रमं ब्रुवे ॥४२॥
प्रबन्धाः शुद्ध[3]सूडस्थाः[कथिताः][4]सालगा बुधैः ।
आलिक्रमप्रबन्धाश्च [5]ततो वा द्वित्रियोगतः ॥४३॥
विप्रकीर्णप्रबन्धाश्च ततश्छायालगाह्वयाः ।
*सूल[6]प्रबन्धाश्च ततः प्रबन्धा[7] देशजाः क्रमात् ॥
इत्युक्तोद्देशमार्गेण लक्षणं प्रतिपाद्यते ॥४४॥

[इत्युद्देशः]

[तालाध्यायः]

अनु[8]नयन्ति चराचरदेहिनः
शिशुमुखव्यवहारविदं[9] सदा ।
[10]तंदनुदेशवशोल्लसितोऽखिलं
त्रिविधतालमिह प्रथमं ब्रुवे ॥४५॥

[तालशब्दस्य निष्पत्तिः]

तालस्तल प्रतिष्ठायामिति धातोर्घञि स्मृतः ।
गीतं नृत्तं च वाद्यञ्च यतस्ताले प्रतिष्ठितम् ॥४६॥
[तला]द्धातोः पदरुजविशस्पृशो [घ]ञित्यनु[11]–
वर्त्तमाने तथ[12]ऽकर्तरीति घ[13]ञ्प्रत्यये[सति] ॥४७॥

---

* 'प्रबन्धाः शुद्धसूडस्था' एवं प्रतिपाद्य पुनः 'सूलप्रबन्धाश्च' इत्यादि-रूपेण वर्णनात् पुनरुक्तिराभाति ।

१. गृ०
२.⋯⋯तथः
३. ० सुतस्था⋯⋯
४. यागला
५. नुचादित्रयो-गतौ
६. ० त०
७. ० धादेशजौ
८. ० नुयान्ति
९. ० दां
१०. तमुदशभेन नशोखिलं
११. ० नु
१२. ० था कतनैव्यर्थे
१३. वै प्र इ प्रत्यये

विहिते तालशब्दस्य रूपं [1]संसर्गतो[2] [भवेत्] ।
अङ्ग-काल-क्रिया-मार्ग-कला-लय-यति-ग्रहाः ॥४८॥
जाति-विस्तार–[भेदेन ताल-प्रा]णा दश स्मृताः ।
अङ्गान्यतोऽनुद्रुतश्च द्रुतो लघु[3]र्गुरु[4]-प्लुतौ ॥४९॥
पञ्चैतानि समुच्यन्ते प्रत्येकं [5]नामपञ्चकैः ।
चतुर्भागश्चन्द्रकला[6] पादश्शीघ्रस्त्वनुद्रुते ॥५०॥
अर्द्ध[7]मात्रः कुण्डलञ्च [8]बिन्दुर्व्योम द्रुताभिधे[9] ।
व्यापकश्च कला ह्रस्वो मात्रि[10]कैः कीर्त्यते लघौ ॥५१॥
कलावा[11]न् गो द्विमात्रश्च दीर्घो गुरुणि शस्यते ।
त्र्यङ्गं त्रिमात्रस्सामोत्थो[12] दीप्तै[13]ः प्लुतनिरूपणे ॥५२॥
अथाङ्गुलिपर्व[14] समस्त्वर्धेन्दुवदनुद्रुतः ।
चक्रवद् द्रुतविन्यासो दण्डवल्लभ्यते लघुः ॥५३॥
[15]वक्रदण्डो गुरुर्ज्ञेयो गुरुः सशिखर[16]ः प्लुतः ।
अनुद्रुतद्वयं बिन्दु[17] बिन्दुद्वन्द्वं लघुर्भवेत् ॥५४॥
लघुयुग्मं द्विमात्रं स्यात् त्रिलघुः प्लुत उच्यते ।
सद्योजातादिवक्त्राणि क्रमात् पञ्चाङ्गदेवता[18] ॥५५॥

---

१. यत्सं०
२. ० तः ॥
३. ० घु०
४. ० रुस्मृतौ
५. वा०
६. ० लापा०
७. ० र्थमात्रा
८. सिंहव्यो०
९. ० धाः
१०. ० त्र०
११. ० वन्यो द्वि०
१२. ० च्चो
१३. ० र्घै०
१४. ० यस्सार्वमथेन्दु०
१५. ० च०
१६. ० रप्लु ०
१७. ० दु-
१८. ० ता

यदङ्गमौलौ वै[1] वक्रा रेखा यदि भवेत्तदा ।
स विराम इति ज्ञेयो[2] गुरुप्लुतविरूपतः[3] ।।५६।।
देशितालेषु निःशब्दो लिख्यते हंसपादवत् ।
स चतुर्लघुकालैः[4] स्यात् काकपादोऽपि कथ्यते ? ।।५७।।
प्रस्तारे त्वङ्गतां गत्वा[5] तदाङ्गत्वं भजत्यसौ ।
अङ्गतानङ्गते[6] तस्य वर्त्तेते[7] समलक्षणे[8] ।।५८।।
नोक्ताङ्गतास्य[9] यत् प्रायो भरतादिमुनीश्वरैः ।
द्रुताद्युच्चारणस्थाने देशितालादिलक्षणे ।।५९।।
श्रुतौ[10] वाद्याक्षरैर्बो[11] ध्यस्तद्वदष्टगुणो[12] ह्यपि ।
विशेषणमिह त्यक्त्वा प्रोच्यते चतुरश्र[13]कः ।।६०।।
त्र्यश्रादिलघवस्तत्र प्रोच्यन्ते सविशेषणाः ।
अत्रान्ये लक्षणज्ञास्तु मेनिरे[14]ऽङ्गानि षड् विद[15]: ।।६१।।
प्रत्येकं गतयस्तत्र धृत्वा साम विशेषणात् ।
चातुर्विध्यं भवेत्तद्वत् तयोर्बिन्दुविशेषणात् ।।६२।।
द्वैविध्यं[16] जायते तेन षडङ्गत्वमतिक्रमात् ।
द्रुतमध्यविलम्बत्वे किमर्थं प्रथमो[17] द्रुतः ।।६३।।

---

१. यावग्रा
२. ० यः
३. ० ता
४. ० लस्य लघु तत्पादनं ततः
५. ० त्वात्तदा ०
६. ० ता
७. ० र्तते
८. ० णम्
९. ० मिति यः
१०. द्याद्या ०
११. ० र्वलया तद्व ०
१२. णानपि
१३. ० छला
१४. ० रङ्गानि
१५. ० दुः
१६. ० यौ
१७. ० मं गता

तथा चेल्लक्ष्यवैधुर्यं जायते नाऽत्र संशयः ।
अङ्गानि यदि लक्ष्ये चेत्तेषां च लययोगतः ॥६४॥
बहुकालो भवेत्तत्त्वं तत्त्यागस्तु सतां मतः[1] ।

इत्यङ्गाख्यप्रथमप्राणः

[अथ कालो नाम द्वितीयप्राणः]

पञ्चलघ्वक्षरोच्चारकालः स्यात् परिभाषितः ॥६५॥
अनुद्रुतादि[तः] प्लुतपर्यन्तं[2] [3]चैव कल्पयेत् ।
[छित्वा]शतपद्मपत्रतते सूच्या सकृद्गतिम् ॥६६॥
क्षणं[5] इत्यत्र सा युक्ति[6]र्व्यर्था स्याल्लक्ष्यवर्त्मनि ।
नेत्रेन्दुवसुरुद्रान्तं[7]–पद्मपत्रविभेदनात् ॥६७॥
कालः कथं मात्रिकायाः पादभागो भवेदिह ।
तत् सर्वसार*संगीतरत्नाकरमतं महत् ॥६८॥
तस्माद् दण्डलयो[8] जातो[9] रागसारसमन्वितम् ?
चतुरश्रं[10] लघुं केचिद् दण्डवत् सकलस्थले ॥६९॥
व्यवहारक्षमं प्राहुः स[11] ममाप्यत्र सम्मतः ।
नो,चेच्चतुर्भागकाले नैकवर्णस्वभावं[12] ता ॥७०॥
तेन ते चतुरश्राख्यलघु[13] साधारणं विदुः ।
वर्धमानं[14] सारितादिक्रियासु स लघुर्भवेत् ॥७१॥

---

* सङ्गीतरत्नाकरस्य प्रभावः 'सङ्गीतसूर्योदये' वर्त्तत एव लक्ष्मीनारायण-स्त्वत्र स्वयमपि प्रत्यक्षतस्तद्ग्रन्थमहत्त्वमङ्गीकरोति ।

१. मतम्
२. तर्यन्ते
३. दै०
४. छन्दत्सद्वे पद्म०
५. ०णा
६. ०क्ति व्यर्थः
७. ०ते
८. ०या
९. ०ते
१०. ०श्रा
११. सममप्य०
१२. ०ग०
१३. ०घुसा०
१४. ०नो सा०

तथापि पूर्वन्नद्द्वन्द्वे[1] खण्डमात्रविशेषतः ।
प्रोक्तस्थास्यादि भावस्तु ? शम्भुनापि न शक्यते ।।७२।।

।। इति कालो नाम द्वितीयप्राणः ।।

[अथ क्रिया नाम तृतीयप्राणः ।।]

सा[2] क्रिया स्याद् द्विधा मार्गो देशीत्येवं[3] विभागतः ।
तत्र मार्गक्रिया द्वेधा निःशब्दा[4] शब्दसंयुता[5] ।।७३।।

ते द्वे चतुर्धा प्रत्येकं कलापातविभागतः ।
क्रमादावापनिष्क्रामविक्षेपाश्च प्रवे[6]शकः ।।७४।।

केवलेन कलाशब्देनोच्यन्ते भरतादिभिः ।
सशब्दा तु ध्रुव[7]ः शम्या [8]तालश्च सन्निपातकः ।।७५।।

ए[9]ता अपि कलाशब्देनोच्यन्ते मार्गवर्त्मनि ।
ब्रवीमि लक्षणं तासां क्रियावैचित्र्यभेदक[10]म् ।।७६।।

आवापो दक्षिणोत्तानतलपाणिप्रकुञ्चनम् ।
निष्क्रामोऽधस्तलत्वेनाङ्गुलीनां यत्प्रसारणम् ।।७७।।

प्रसारितस्य तस्यैव पाणेः सव्ये* ततिर्भवेत् ।
[11]सुव्यक्तोऽनेन विक्षेपस्तत्करांगुलिकुञ्चनम् ।।७८।।

प्रवेश[12]कः स विज्ञेयः, सशब्दा च निगद्यते ।
[13]छोटिका शब्दपूर्वेण शिखरेणात्र निर्मित[14]ा ।।७९।।

---

* दक्षिणहस्तस्यार्थे सव्यशब्दोऽत्र प्रयुक्तो वर्त्तते ।

१. ०द्वे
२. स तौश स्याद्
३. ०नं
४. ०दाः
५. ०ताः
६. ०देशतः
७. ०व
८. कालावनि निपातके
९. साता हृतकला०
१०. ०कः
११. समस्तानेकवि०
१२. ०देशतस्स
१३. भो०
१४. ० ताः

सा क्रिया ध्रुवपातः स्याद्, वामे दक्षिणपाणिना ।
[1]शम्या, *हस्तद्वयस्यैवं पातः स्यात् सन्निपातकः ॥८०॥
आदौ प्रयोज्या निःशब्दाः सशब्दास्तदनन्तरम् ।
आवा[2]पादिप्रयोगस्तु मार्गताले चतुष्कले ॥८१॥
अथ मार्गयुताश्चापि व[3]क्ष्यष्टौ मात्रिकास्ततः ।
... देशिगताः क्रियाः ? ॥८२॥
ध्रुवका सर्पिणी †कृष्या पद्मिनी च विसर्जिता ।
विक्षिप्ताख्या पताका च पतिते[4]त्यष्टमात्रिकाः ॥८३॥
‡वामे करे करतले(?) ताडिता ध्रुवका मता ।
तत्र व्यावर्त्तिते पाणौ मात्रिका चैव सर्पिणी ॥८४॥
परिवर्त्तनतः किञ्चिद् गतिर्दक्षिणपार्श्वगा ।
कृष्या भवेत्, तथाधोगा पद्मिनी संगतोर्ध्वगा ॥८५॥
विसर्जिताथो[5] विक्षिप्ता दूरादाकुञ्चनात्मिका ।
तथो[6]ऽ[7]तलमू[8]र्ध्वा च पता[9]का,ऽधःस्थकृत्तला ॥८६॥
अधोनता तु पतिता, सम्प्रदायस्तु कथ्यते ।
ध्रुवपा[9]ते ध्रुवाद्यष्टौ प्रयोज्याः सर्वधा कलाः ॥८७॥
आव[10]ापादौ क्रियाविद्भि[11]र्न प्रयोज्याः कदाचन ।
निष्कम्पेऽस्मिन् मार्गयुताः[12] क्रियाः प्रोक्तास्ततः परम् ॥८८॥

---

* तालस्त्विह न लक्षितो विद्यते 'तालो वामकरस्य तु' [सं० र० ५/९]

† सङ्गीतरत्नाकरे तु 'कृष्णा' इतिपाठो वर्त्तते । 'ध्रुवका सर्पिणी कृष्णा पद्मिनी च विसर्जिता' [५।१२]

‡ सङ्गीतरत्नाकरे तु 'सशब्दा तु ध्रुवा ज्ञेया'[५/१३]इत्येव ध्रुवकालक्षणमस्ति ।

१. समस्समतटावि····प्लुतः स्यात्
२. ०ला०
३. षड्वच्मि···।
४. ०तोद्दाममा०
५. ०धो
६. ०तो०
७. ०मूध्वस्मात्
८. ०तकासाश्वकृत्तलौ
९. सादे
१०. ०ला०
११. ०भिः न
१२. प्रि०

तासां [1]देश्यङ्गभूतत्वं वक्ष्ये लक्ष्यविदां मतम् ।
ध्रुवका पतिता यत्र क्रमेण क्रियते यदा ॥८९॥
सा क्रिया गुरुतो ज्ञेया प्लुत[2]श्च ध्रुवको [3]मतः ।
आकुञ्चित[4]क्रियायुक्ता पताका पतिता क्रमात् ॥९०॥
द्रुतो लघ्व[5]र्धघातः स्यात् तदर्धो[6]ऽनुद्रुतो मतः ।
तर्जनी[7] मध्यमापृष्ठभागस्था चेद् विरामजा ॥९१॥
सा क्रिया तु स्वदेहार्धा ज्ञेया तालविचक्षणैः[8] ।
[10]चतुर्मात्रात्मको नाम निःशब्दो वक्ष्यते ततः ॥९२॥
क्रमेण सर्पिणी कृष्या पताका पतिता मता ।

इति क्रिया नाम तृतीयः प्राणः

[अथ मार्गप्राणः]

भवन्ति मार्गाः[11] *पञ्चात्र ध्रुवश्चित्रश्च वार्तिकः ॥९३॥
दक्षिणः क्षिप्र[12] इत्येते लक्ष्यमार्गसुखप्रदाः ।
[13]ध्रुवे तु ध्रुवका[14], चित्रे ध्रुवका पतिता मता ॥९४॥
वार्तिके ध्रुवका चाऽथ सर्पिणी च ततः परम् ।
पताका पतिता चाऽथ दक्षिणे तु क्रमात्तदा ॥९५॥
अष्टौ कलाः, क्षिप्रमार्गे[15] ध्रुवका चन्द्रगामिनी ।
लघुगम्य[16]श्चतुर्मार्गा[17] स्तन्मार्गस्य विभेदकः ? ॥९६॥

* संगीतरत्नाकरे तु चत्वारो मार्गा वर्णिताः सन्ति 'मार्गाः स्युस्तत्र चत्वारो ध्रुवश्चित्रश्च वार्तिकः । दक्षिणश्चेति,....[५|१०] ।

१. के०
२. ०तस्य
३. त०
४. ०ता०
५. ०वर्थ०
६. ०र्थो०
७. ०र्जन
८. ०र्हा
९. ०णा
१०. चतुर्थस्वात्मको
११. ०त्राः
१२. ०प्त
१३. द्रुते
१४. ०काश्चित्र
१५. ०र्ग
१६. ०य०
१७. ०र्गः

तयोरिहानुसारेण नदीपात्रा* रुन्तुदम् ।
मार्गपञ्चकमेवात्र सर्वसाधारणं मतम् ॥९७॥
मार्गभेदाच्चै[1] ककलो द्विकलश्च चतुष्कलः ।
इति त्रिधा भवन्त्येव प्रबन्धादिप्रयोगतः ॥९८॥
मृडपञ्चमुखोद्भूता[2] स्तालाः पञ्चैव मार्गतः ।
†चञ्चत्पुटश्चाचपुटः[3] षट्पि[4]तापुत्रकस्तथा ॥९९॥
सम्पक्वेष्टाक उद्घ[5]ट्ट इति नामभिरीरिता[6] ।
उत्तरः पञ्चपाणिश्चेत्येवं नामद्वयं [7]ननु ॥१००॥
षट्[8]पितापुत्रको धत्ते व्यवहाराय सर्वतः ।
तत्र चञ्चत्पुटो नाम युग्मत्वाच्चतुरश्रकः ॥१०१॥
ततश्चाचपुटो नाम बीजत्वात् त्र्यश्र उच्यते ।
अन्यै[9]श्चाचपुटो नाम कथ्यमानक्रियास्पदम् ॥१०२॥
[स्वनामाक्षरतुल्याभि] र्मात्राभिः परिकल्पित[10]ः ।
तत्र[11] किञ्चिद्विशेषोऽत्र मुनिवाक्यप्रमाणतः ॥१०३॥
चञ्चत्पुटो[12] गुरुद्वन्द्वं प्लुत[13] [श्च लघुपूर्वकः] ।
[गलौ लगौ क्रमादस्मिन् ताले चाच]पुटाह्वये ॥१०४॥
प[14],लगा विपरीताश्च [षट्पितापुत्रके मताः] ।
सम्पक्वेष्टाकताले[15] तु [प्लुताद्यन्तगुरुत्रयम्] ॥१०५]

---

* अरुन्तुदशब्दोऽत्र द्रुतार्थे प्रयुक्तो वर्त्तते । अभिप्रायावगमस्तु सम्यङ् न भवति ।

† अन्यत्र चच्चत्पुटोऽपि पाठो वर्त्तते 'चच्चत्पुट इतिः' [सं० र० २१८५]

१. ०चे०
२. ०ता:ता०
३. ०घं०
४. ०जतामेतक०
५. ०घुष्टो
६. ०ता
७. मनः
८. पटिट्कापु०
९. ०न्ये
१०. ०ता
११. ०च्च
१२. ०टी
१३. ०ता····
१४. लयगावि०
१५. ०लेषु····

ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ	ऽ ऽ
नि श	नि ता	श प्र	नि सं

[इति द्विकलचञ्चत्पुटकलाविधिः]

*[आदावधिक आवापे क्षिप्ते विक्षेपकेऽन्तरा] ।।११३।।
चतुष्कले पादभागे प्रत्येकं द्विकलो[1] यथा ।
चतु[2]र्थोऽथ यथा[मा]त्रो विक्षेपः स्यात्तृ[3]तीयके ।।११३।।
एवमावापविक्षेपौ विषमस्थौ क्रमादिह ।
[4]तदा हि षोडश कला भवन्ति गुरुसंख्यया ।।११४।।

[5]ऽ ऽ ऽ ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ | [6]ऽ ऽ ऽ ऽ | ऽ ऽ ऽ ऽ
आ नि वि श आ नि वि ता आ श वि प्र आ नि वि सं

।।इति चपुष्कले[7] चञ्चत्पुटे[8] कलाविधिः।।

[अथाङ्गुलिकलायोगः]

अत्राङ्गुलीकलायोगो नियमेन निरूप्यते ।
आवापादिक्रिया यत्र तत्र कार्याङ्गुलीकला ।।११५।।
[पादभागीयभेदानां ज्ञानायोक्ताङ्गुलीकला] ।
प्रथमे [पादभागे स्यात् कलांगुल्या क]निष्ठया ।।११६।।
द्वितीये[10]ऽनामिकायोगात् [11]तृतीये तिसृभिः क्रमात् ।
[तुर्ये चतसृभिश्चैवं चञ्चत्पुटेऽङ्गुलीकला] ।।११७।।

---

* सङ्गीतरत्नाकरतो मया सङ्कलितेयं पङ्क्तिः [सं० र० ५/३१]

१. ०ला
२. ०तस्त्रोऽथ,
३. ०प्र०
४. कदाचित् षो०
५. ? ? ? ?
इ नि वशा
२
६. ?? ??
आ ता
७. ०ला
८. ०टी
९. ....निश्चया
१०. ०योना०
११. प्र०

प्रतियोज्या [चाचपुटे तिसृभिर्मध्यमां विना ।
पातयुक्त]कलास्थाने, न[1] कार्यांगुलिभिस्ततः ॥११८॥
समस्तहस्तविन्यासाः कर्तव्याऽशक्तिकारणम् ।

॥इत्यङ्गुलिकलाविधिः॥

यथाक्षरे चा[चपुटे शतौ द्वौ व्युत्क्रमावपि] ॥११९॥

ऽ । । ऽ ऽ । । ऽ
[श ता श ता; ता श ता श]

॥[2]इत्येककलचाचपुटकलाविधिः॥

निशौ[3] ताशौ निसं चाचपु[टे द्विकल]संज्ञके[4] ।

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
[5]नि श ता श नि श

॥इति द्विकल[6]चाचपुट[7]कलाविधिः ॥

चतुष्कले चाचपुटे पूर्वव[8]त् [स्यात् कलाविधिः] ॥१२०॥

[9]ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
आ नि वि श आ ता वि श आ नि वि सं

॥इति चतु[ष्कल]चाचपुट[10] [कला]विधिः ॥

षट्[पि]ता[11]पुत्रके सं[12]ता शता[13] द्वन्द्वं यथाक्षरे ।

ऽ । ऽ ऽ । ऽ
[14]सं ता श ता श ता

॥इत्येककलै[15]षट्पितापुत्रककलाविधिः॥

---

१. नवान्ताङ्गु०
२···इत्यक्षरचाचपुटी०
३. ०शावाशा निशावाचापु···
४. ०ज्ञि०
५. ? ? ? ? ? ?
निशताशनश
६. ०ला०
७. ०टी०
८. ०वंसल्ला····
९. ? ? ? ? ? ? ? ?
आताविश अनितनि
१०. ०टी०
११. का०
१२. सन्ति
१३. तं द्वं द्वं
१४. ? ॥ ? ? ?। ।
श ता श ता श त
१५. ० लषष्ठिता०

[निप्रताशनितालाश्च निशताप्रनिसं क्रमात् ॥१२१॥
[1]षट्पितापुत्रके ख्याता द्विकले चैवं कलाविधिः ।]

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
[2]नि प्र ता श नि ता नि श ता प्र नि सं

॥इति द्विकल[3]षट्पितापुत्रकलाविधिः॥

चतुष्कलै[4]श्चोत्तरः स्यादावापादिक्रियान्विते[5] ॥१२२॥
[6]मध्ये[विपक्षेपके क्षिप्ते द्विकले] हि[7] तथोत्तरे ।

ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ
आनिविप्र आताविश आनिविता

ऽऽऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ
आनिविश आता विप्र आनि विसं

॥इति चतुष्कल[8]षट्पितापुत्रक[9]कलाविधिः॥

संपक्वेष्टाकतालोऽयं षट्पितापुत्रकात्मजः[10] ॥१२३॥
[सन्निपातं विहायात्र योनिवत् स्यात् कलाविधिः ।]

ऽ ऽ ऽऽ ऽ
[11]ता श ताश ता

॥[12]इत्येककलसंपक्वेष्टाककलाविधिः॥

द्विकलः सन्निपा[तस्तु] नि[13]जकारणतः स्मृतः-॥१२४॥

---

१. ····संयत् मध्यमं····।

२. ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ? ?
विश्यताप्रतिसं

३. ०लवत्षष्ठिता०
४. ०ले चोत्तरा
५. ०ता
६. त्रिधा
७. सं०
८. ०ला०
९. ०लतालवि०
१०. ०जा

११. ? ? ? ? | ? ? ? ? ? ? ? ? ?
निवितानि | ल स वि वि पु नि व सं

१२. इति षष्टिकलाविधिः
१३. इति विनाका०

ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ

[1]निप्रताश नितानिश ताप्रनिसं

॥इति द्विकलसंपक्वेष्टाककलाविधिः॥

चतुष्कले तथा सन्ति षट्[2][पितापुत्र] वत्कलाः ।
चतुर्विंशतिसंख्याका[3] [आवापादि]वि[4]भूषिता[5]: ॥१२५॥

ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ

आनिविप्र आताविश आनिविता आनिविश आताविश आनिविसं[6]

॥इति चतुष्कल[7]संपक्वे[8][ष्टाककलाविधिः ॥]

*[उद्घट्टे तु सनिष्क्रामं शम्याद्वन्द्वं च योजयेत् ।]

ऽ ऽ ऽ

नि श श

॥इ[9]त्येककलोद्घट्टकलाविधिः॥

द्विकलो[10]द्घट्ट[तालस्य] बीजं[11] चाचपुटो भवेत् ॥१२६॥
द्विचतुष्कलयोस्तस्य बीजं[12]वद् योजयेत् कलाः ।

ऽऽ ऽऽ ऽऽ

[निश ताश निसं]

[इति द्विकलोद्घट्टकलाविधिः]

---

* सं० र० ५|३६

१.

? ?	? ?	? ?	? ?	? ?	? ?
अ प्र	ता क	स ता	न ता	वा प्र	सि स

२. द्वि····क्वतत्कला ।

३. ०का:

४.····वि०

५. ०ता

६. अनिविप्र आता निश आनिशिता आनिविश आताविप्र आनिविश निशताशनिस ।

७. ०ला०

८. ०द्वे ।

९. करोद्घट्टतालविधिः

१०. ०लो स्फुट····

११. ०ज०

१२. ०जोपाट्यो जयेत ताः

[एवं चतुष्कलोद्घट्टे बीजतुल्य] क्रियान्विता ॥१२७॥
द्वादशात्मक[संख्याका] भागत्रयान्विता [कला] ।

ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ ऽऽऽऽ
[आनिविश आताविश आनिविसं]

॥इति चष्तुकलोद्घट्टकलाविधिः॥

*चञ्चत्पुटमुखा[2]: पञ्च ताला[3] मार्गगता[4] [इमे] ॥१२८॥
उक्ता,श्चतुष्कला[द्या ये भेदा एषां प्रकीर्तिताः]।
[तेऽप्यत्रान्योन्यसंकीर्णा बहुभेद] समन्विताः ॥१२९॥
सन्ति, ह्येते तु संकीर्णा देशिप्रस्तारसम्भवाः ।
..................समस्ते वा ....घटैर्नटैः ।?
जातित्रयान्वितास्सन्तः प्रयोज्यास्ते विचक्षणैः ॥१३०।
†आवृत्तिः [पा]दभागादेः प[रिवर्त्तनमिष्यते] ।
[विश्रान्तियुक्तया काले क्रियया मानमिष्यते]॥१३१॥

॥इति कला नाम पञ्चमः प्राणः॥

---

* युग्मस्य ये त्रयो भेदाः षड् वायुग्मस्य कीर्तिताः ॥
तेषामन्यान्यसंसर्गात् संकीर्णा बहवो मताः ॥
अन्ये पञ्चैव संकीर्णान् गान्धर्वे ऽभिदधुर्बुधाः ॥
पञ्च सप्त नवापि स्युर्दशैकादश तत्कलाः ।
तालाश्चत्वार इत्यन्ये चतुर्दशकलादिकाः ॥
चञ्चत्पुटादिभेदास्तु सन्ति खण्डाभिधाः परे ।
देशीतालप्रपञ्चेन तानपि व्याहरामहे ॥
—इति तुलनीयमत्र । (सं० र० ५/३९–४२)

† सं० र० ५/४३ ।

१. ०घुष्ट....ति । ३. ०लानि
२. ०खान् ४. ०गान्....

[अथ लयो नाम षष्ठः प्राणः]

लयः क्रियागत[1]च्छेदः [प्रोक्तो विश्रा]न्ति[2]कारकः ।
स त्रिधा स्या[त् क्रमाज्ज्ञेयो द्रुतो] मध्यो[3] विलम्बितः[4] ॥१३२॥

इति क्र[मे भवेदाद्यो] द्रुतः शीघ्रगति[5]ः [स्मृतः] ।
*[द्विगुणद्विगुणौ ज्ञेयौ तस्मान्मध्यविल]म्बि[6]तौ ॥१३३॥

बदर्यामलका[7][मृत]फला[न्य]त्र [नि]दर्शनम् ।
द्रुतो[8] [लयः सदा] मार्गैश्चित्रवार्तिकदक्षिणै[9]ः ॥१३४॥

प्रयुज्य[10]ते, त[11]थैकस्य गुरोरन्ते द्रुतो लयः ।
गुरुद्वयान्ते मध्यस्थो[12] [लयो]†ग्मान्ते विलम्बितः ॥१३५॥

[13]मार्गा [ध्रुवादयश्]चैते [विलम्बद्रुतमध्यगाः] ।
[अतोऽनेके लयास्त्वत्र][14]मार्गस्था [हि]भवन्ति ते ॥१३६॥

[॥इति लयो]नाम षष्ठः प्राणः॥

[अथ यतिर्नाम सप्तमः प्राणः]

लयप्रवृत्तिनियमो[15] यतिः स्या[त् सा] त्रिधा मता ।
समा स्रोतोगता चान्या [16]गोपुच्छा [च] गुणाख्यया ॥१३७॥

---

* सं० र० ५/४५

† 'ग्मान्ते' इत्यस्य 'गुरुमगणान्तेऽर्थाद् गुरुचतुष्टयान्ते इति तात्पर्यमस्ति ।

१. ०दिविच्छे०
२....न तार०
३. ०योवि०
४. ०तम्
५. ०ति....
६. ....वंस
७. ....०क....
८. ०त....
९. ०णः
१०. ०यन्ते
११. दलेक०
१२. ०था
१३. इयं मार्ग....प्रते....
१४. भाग०
१५. ०मा
१६. गोघ्नी

आदिमध्यावसानेषु लयैकत्वे [समा] त्रिधा ।
स्रोतोगता चित्रिणी [? च] गीते भागत्रयात्मिका ॥१३८॥

विलम्बमध्यद्रुतगा प्रथमा स्याद् विभागतः ।
विलम्बमध्या विज्ञेया त्वन्या म[ध्यद्रुता मता] ॥१३९॥

[गोपुच्छा] च त्रिधा प्रोक्ता पूर्ववद् [योज]नान्विता ।
द्रुतमध्यविलम्बान्ता प्रयोगे प्रथमा मता ॥१४०॥

द्रुतमध्या द्वितीया स्यादन्या मध्यविलम्बिता ।
इति त्रिधा त्रिधा भूत्वा नवधा स्याद् यतित्रयम् ॥१४१॥

॥ इतियति[र्नाम] सप्तमः प्राणः ॥

[अथ ग्रहो नामाष्टमः प्राणः]

गीतवाद्यादिकं येन गृह्यते स ग्रहः स्मृतः ।
ग्रहणं [ग्रह] इत्यत्र भावे तु करणेऽथवा ॥१४२॥

घप्रत्यये कृते सद्भिर्ग्रह इत्यभिधीयते ।
स त्रिधा स्यात्समोऽतीतो[10]ऽनागतश्च[11] त्रिकालभाक् ॥१४३

गीतघाते [समाघातः] स[12]मो ग्रह इतीरितः ।
गीतात्पूर्वं यदा[13] घातः सोऽतीत इति कथ्यते ॥१४४॥

गीतानन्तरघातो यो ग्रहः स स्यादनागतः ।
आद्योक्त्यन्तोक्तिनियमो[14] गीत[15]वद् वाद्यनृत्तयोः ॥१४५॥

---

१. प्रत्येक....
२. गगे
३. वत्....गभाजः
४. वुभा
५. पति....
६. संग्रहे
७....मो इत्य....
८. पूयते क्रु सेधवा
९. ०द्विग्र०
१०. ०तः ना०
११. ०श्चितिका०
१२. स तु
१३. ०था
१४. ०मः
१५. ०ताद्येतद्विमात्रयोः

अन्ये वदन्ति विषमं[1] ग्रहोपस्थितिसं[2]द्विदः ।
विषमस्तु समादन्यः प्रख्यातो भूतले[3] बुधैः ।।१४६।।
एवमुक्तप्रकारेण ज्ञात्वा वाग्गे[4]यकारकः ।
गीतप्रबन्धपाके तु कथयेदवधानतः ।। १४७।।

।।इति ग्रहो नामाष्टमः प्राणः।।

[अथ जातिर्नाम नवमः प्राणः]

चतुरश्रत्र्य[5]श्रमिश्रखं[6]डसंकीर्णसंज्ञकाः ।
जात[7]यः पञ्च तालेषु यथोचितविधानतः ।।१४८।।
वर्णप्रमाणकाः[8] [सर्वे] तास्व[9][न्त] र्नियोजिताः[10] ।
तास्वनन्ताः खण्डतालास्सञ्जाता जातिगर्भिताः ।।१४९।।
चञ्चत्पुटादयस्तालाः पुत्रा इव न संशयः ।
तस्माज्जातिविहीना[स्तु] स[11]न्ति ताला [न केचन] ।।१५०
[तत्र] जातिप्रधानत्वाद् वक्ष्यन्ते जातयः पृथक् ।
चतुर्लघ्वक्षरोच्चार[12] कालः स्याच्चतुरश्रकः ।।१५१।।
त्रिलघ्वक्षरकालो यस्त्र्यश्र इत्यभिधीयते ।
[पञ्चभिर्लघुवर्णैस्तु खण्डः प्रोच्यते तथा ।।१५२।।
सप्तभिर्लघुवर्णैस्तु मिश्र इत्युच्यते लघुः] ।
नवभिर्लघुवर्णैस्तु संकीर्णः कथ्यते लघुः ।।१५३।।

---

१. ०मग्र०
२. ०त०
३. जपैः
४. ०लय०
५. ०त्रयं
६. ०बन्धसं०
७. ०तो यः पञ्चता०
८. ०का....
९. ०स०
१० ०तः
११. जातिस्ता०
१२. ०रः

एवमुक्तप्रकारेण देशी[1] ताले नियोजयेत् ।
त्रिचत्वारिंशताद्येषु[2] वाक्यापादेषु चाप्यगाः ।।?१५४।।
यो जातिष्वनभिज्ञः सन् तूर्यादित्रयकर्मणि ।
वक्तुमिच्छति तालेऽस्मिन् स मूढस्तालनाशकः ।।१५५।।

।।इति जात्याख्यो नवमः प्राणः।।

[अथ प्रस्तारो नाम दशम प्राणः]

अथ प्रस्तारसम्भूताः प्रत्ययाः सन्ति विस्मयाः ।
तत्र पञ्चाङ्गसम्भूतः प्रस्तारः कथ्यतेऽधुना ।।१५६।।
प्रस्तारेऽस्मिन् विजानीयाद[3]ल्पान्त्योपान्तिकं महत् ।
ई[4]ष्टतालं लिखेत् पूर्वं लक्षणाद् वामगामिनम् ।।१५७।।
तथा स्थूलादिसूक्ष्मातं यथासम्भवयोगतः ।
त[5]दैतल्लेखिताकृत्या प्रस्तारः प्रस्तुतो भवेत् ।।१५८।।
वामाङ्कमहतोऽधस्तादल्पं विन्यस्य, दक्षिणे ।
यथोपरि तथा शेषं वामे स्थूलीकृतं न्यसेत् ।।१५९।।
अथो[6]नाङ्कं ततो वामे लिखेदेवं पुनः पुनः ।
सर्वानु[7]द्रुतपर्यन्तं तदा संख्यासमं भवेत् ।।१६०।।

।।इति प्रस्तारो नाम दशमः प्राणः।।

[अथ संख्या]

इत्यङ्गयुक्तो यस्ता[8]लैस्तस्य भेदाः कतीति यः ।
पृच्छति प्रसभं तस्य वक्तुं संख्याङ्गसङ्तम् ।।१६१।।

---

१. ०शी ता०
२. ०रि०
३. ०दल्पमात्ययिकं
४. इच्छाता०
५. तमेतल्लेखया कृत्य
६. ०थो ना०
७. ०सु द्रु०
८. ०या स०
९. ०लः त०

प्रकल्प्य लक्षणाध्वानं[1] वच्मि लक्ष्मविचक्षणः[2] ।
पृच्छदिच्छा[3]तालजातसद्माङ्क[4]समकोष्ठगान् ॥१६२॥

तिरश्चिद्वामपूर्वं च विलिखे[5]दङ्कयोजनाम्[6] ।
एकं[7] द्व्यङ्कं क्रमान्न्यस्य योजयेद् वामसम्भवान् ॥१६३॥

अङ्कानन्त्योपान्त्यतुर्या[8]ष्टमद्वादशकोष्ठगान् ।
तुर्याष्टमद्वादशानाम[9]भावे तु लिखेत् क्रमात् ॥१६४॥

तृतीयं सप्तमं चैकादशं चैव पुनः पुनः ।
चन्द्रा[10]र्धद्रुत[लग्पान्ता] लीयन्ते च तद्[11]द्भवाः ॥१६५॥

क्रमादेकादिसंख्याङ्ककोष्ठतालान् ब्रुवेऽधु[12]ना ।
अ[13]न्वत्र दो द्रुतस्सार्ध [स्ततो][14] मात्रा सपादलः ॥१६६॥

दलौ, चन्द्रदला[15] वक्रो विधुगौ [16]बिन्दुगौ ततः ।
चन्द्रकाशा[17]युतो वक्रः प्लुतः स्याद् द्वादशे गृहे ॥१६७॥

ततः परं तथैकैककलावर्धनयोगतः ।
लिखेदुत्तरकोष्ठानां तदधः कोष्ठसंख्यया ॥१६८॥

तावन्तो लवभेदाः स्युरित्युत्तरमिहोच्यताम् ।

---

१. ०ध्यायं
२. ०म वि०
३. ०ते०
४. ०ङ्ग०
५. ०लिख्याद०
६. ०ना ।
७. ०कद्व्य०
८. ०र्यं षष्ठम०
९. ०नां अभागे
१०. ०द्रदात्यन्त····न्तैर्ली०
११. ०त····द्भ०
१२. ०थवा
१३. अन्यत्र यो द्रुतश्चार्थ····
१४. ममात्रास०
१५. ०लाव०
१६. ०वि०
१७. ०रयुता वक्रा

अथास्य लक्ष्यं दर्शयति तद्यथा—

*[1]

U	o	Uo	|	U|	o|	Uo|	S	US	oS	UoS	S
१	२	३	६	१०	१८	३१	५६	९४	१७४	३०६	५४२

[इति संख्या]

[अथ नष्टम्]

लिखेद[2][भी]ष्टकं तालं यावत्[3]संख्यां लिखेत् क्रमात् ॥१६९॥
तत्रान्त्यै[4]: पातनस्थानं पात्यास्तूपान्त्यपूर्वकाः ।
पातस्थाने नष्टसंख्यां प्रथमं पातयेत्ततः ॥१७०॥
शेषतः पातयेदङ्कान् क्रमादेकैककोष्ठजान् ।
एककोष्ठाङ्कपातेन भवेदेकद्रु[5][ता]गमः ॥१७१॥
निरन्तरे कोष्ठयुग्मे पतिते मात्रि[6]कागमः[7] ।
मात्रिकातस्तृतीये तु पतिते लो गुरुर्भवेत् ॥१७२॥
गुरुहेतोश्चतुर्थे[8] तु पतिते गः[9] प्लुतो भवेत् ।
तत्रांशपतनाभावे भवेदस्मादनुद्रुतः ॥१७३॥
अङ्काभावे तालपूर्तिपर्यन्तं चन्द्रलेखनम् ।
सम्प्रदायं प्रवक्ष्यामि द्रुतलाभादनन्तरम् ॥१७४॥
कोष्ठमेकं त्यजेत्तेन पतितेन समन्वितम् ।
लघुलाभात्परं कोष्ठद्वयं ताभ्यां सह त्यजेत् ॥१७५॥
गुरुलाभे तु तेभ्योऽथ त्यजेत् कोष्ठत्रयं तथा ।

---

* लक्ष्येऽस्मिन् क्रमशः प्रथमकोष्ठकाद् द्वादशपर्यन्तमेकानुद्रुतात्मकतालादारभ्य द्वादशानुद्रुतात्मकतालानां चित्रणं वर्त्तते ।

१.

U	०	o||	|	U	|०|	U०	२|	U?	०?
१	२	३	१०	१८	१२	०११	०११	१०४	२

२. ०दा····ष्टकाता०
३. ता०
४. ०योपासनं
५. ०त्र ता····मः ।
६. ०त्र०
७. ०मा
८. ०त्रा हिस्तास्तृ०
९. कः

प्लुतलाभे तथा तेभ्य[1]स्त्यजेत् कोष्ठचतुष्[2]टयम् ।।१७६।।
अनुद्रुतस्त्व[3]कृतार्थस्तस्मात्त्यागो न लभ्यते ।
एवं कुर्यान्नष्टभेदमात्रापर्यन्तगां क्रियाम् ।।१७७।।
तदा नष्टस्य भेदस्य रूपमायाति[4] कौतुकम् ।

।।इति नष्टम्।।

[अथोद्दिष्टम्]

भेदमेकं समालिख्य कथमेवं वद त्व[5]थ ।।१७८।।
यः पृच्छति तमुद्दिष्टं तस्योत्तरमिहोच्यताम् ।
उद्दिष्टेऽपि लिखेत् संख्यासन्ततिं नष्टवत् पुनः ।।१७९।।
नष्टोत्पन्ने तु पतितानङ्कानन्ते निपातयेत् ।
शे[6]षस्त्वनुद्रुताङ्कोऽयं स्वोद्दिष्टस्योत्तरं भवेत् ।।१८०।।

।।इत्युद्दिष्टम्।।

[अथ पातालः]

अङ्कान्यनुद्रुतादीनि तालेऽस्मिन् प्रस्तुते सति ।
सम्भव[7]न्ति कियन्त्येवं प्र[8]श्नः पाताल उच्यते ।।१८१।।
संख्यापंक्ते[9]रधः पंक्ति[मिष्ट]कोष्ठान्तिकं तथा ।
त[10]त्राप्येकं च युग्मं च क्रमात् कोष्ठद्वये लिखेत् ।।१८२।।
ततोऽन्तस्थं च संख्यावदित्यङ्कं च, स्वपंक्तिगान् ।
उपान्त्यादीन् यथायोगं प्रति त्यक्त्वा पुरो लिखेत् ।।१८३।।
[अन्तस्थोर्ध्वाङ्कसंयु]क्तं तदान्त्यान्त्यं च पञ्चकम् ।
उच्यन्तेऽनुद्रुतादीनि क्रमादङ्कानि लक्ष्यके ।।१८४।।

अथास्य लक्ष्यं दर्शयति—

---

१. ०थो
२. ०ष्ठ०
३. ०ताहतार्थ०
४. ०पि
५. ०त्य०
६. तत्र शेषद्रु०
७. ०वत्येक इत्येवं
८. प्रध
९. ०क्ति०
१०. ततात्प्यङ्काङ्कयुक्तात्मा क्र०

तद् यथा—

१	२	३	६	१०	१८	३१	५६	९८	१७४	३०६	५४२
१	२	५	१०	२२	४४	८९	१७४	३६२	६६०	१२७०	२४२०

||इति पाताल:||

[अथानुद्रुतमेरुलक्षणम्]

अथानुद्रुतमेरोस्तु लक्षणं ब्रूमहेऽधुना ।
[1]पंक्तिं स्वेच्छागते[2] ताले प्रतिचिह्नं[3] यथा ततः ।।१८५।।
तत्संख्यां[4]समकोष्ठाङ्कां तिरश्चीनामथो लिखेत् ।
पंक्तिमेकां ततश्चोर्ध्वं मूलोत्थो[5] नैककोष्ठिकाम् ।।१८६।।
ततः परं द्विद्विकोष्ठ[6]हीनत्वात् सर्वपंक्तयः ।
प्रभवन्त्यन्तपर्यन्तं सा[7] त्वङ्कावलिरुच्यते ।।१८७।।
एकैकं विलिखेत्तासां कोष्ठयोः पूर्वपूर्वयोः ।
तत्राधःपंक्तिकोष्ठेषु विषमेषु यथाक्रमम् ।।१८८।।
लिखेदन्त्योपान्त्यतुर्याष्टमं[8]द्वादशकोष्ठगान् ।
अङ्कान्[9] समेषु कोष्ठेषु त्यक्त्वान्यं पूर्ववल्लिखेत् ।।१८९।।
तुर्याष्टमद्वादशानां[10]मभावे तु यथाक्रमम् ।
तृतीयं सप्तमं चैकादशं च प्रतिसंल्लिखेत् ।।१९०।।
अथोर्ध्वं[11] विषमेष्वत्र तत्संख्यानादधस्तनम् ।

---

१. कति
२. ०तिस्ता०
३. ०ह्ना
४. ०ख्या स०
५. ०त्थे०
६. ०ष्ठे
७. तान्यङ्का०
८. ०मं०
९. ०कास०
१०. ०नां अ०
११. ०र्ध्वमपि ष ष्ठस्संख्यादधस्त कम्

अन्त्यं[१] प्रतिनिधिं कृत्वोपान्त्यादिग्रहणं भवेत् ॥१९१॥
समेष्वन्त्यादिपञ्चात्र, नास्ति प्रतिनिधिस्त्विह ।
अ[२]नुमेरावधः पंक्तेरेकादिविषमे [३]गृहे ॥१९२॥
ऊर्ध्वपंक्तौ क्रमेणैव ता[लसंख्या] समुच्यते ।
एकत्र्यॅा[द्यर्धचन्द्रादि]युक्तान् तालान् विनिर्दिशेत् ॥१९३॥
समोर्ध्वपंक्तिकोष्ठेषु[५] क्रमादुक्तिमथा[६]चरेत् ।
चन्द्रहीनान् च युगल[७]चतुष्पदचन्द्रपूर्वकान्[८] ॥१९४॥
तालान् प्रस्तारसञ्जातान् लक्ष्मणार्यनिरूपितान् ।
इत्युक्तलक्षणं [मे]रुं लक्ष्ये निर्दिशति द्विधा ॥१९५॥
अथास्य लक्ष्यं वर्णयति तद् यथा—

*

१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
											१
									१	१	११
							१	१	९	१०	५४
					१	१	७	८	३५	४४	१४०
			१	१	५	६	२०	२७	६५	९८	१९५
	१	१	३	४	९	१४	२२	४०	५४	१०९	१२३
१	१	२	२	५	३	१०	६	२२	१०	४४	१९

[इत्यनुद्रुतमेरुः]

* प्राप्तपाण्डुपुस्तकेऽनुद्रुतकोष्ठकमिदमन्यस्मिन् पृष्ठे दर्शितं वर्त्तते । तत्स्वरूपन्त्वत्र निरूप्यते—

										१	५	
									१	११	०	
					१	१	१	९	१०	५	४	
				१	१	६	०६	१५	४४	५	१०	
			१	१	२	६	२०	२७	६	१९५	९४	२९
	१	१	६	४	९	१४	१२	१२	५४	४४	१२३	
१	१	२	२	५	३	१०	६	२२	१०		१९	

१. ०न्त्य०
२. अ न्मे०
३. ग्र०
४. ०द्वि·······पञ्चता०
५. ०तु
६. ०थेरयेत्
७. ०ले
८. ०काः

[अथ द्रुतमेरुः]

प्रस्तारे च द्रुते[1] बिन्दुही[2]नैकद्व्यादिसंभवान् ।
तालान् दर्शयितुं मेरुः प्रोच्यते विष्णुसूनुना ॥१९६॥
द्रु[3]तार्धमेरुवत् कोष्ठान् द्रुतमेरौ[4]वथो लिखेत् ।
ततः पंक्तिषु सर्वासु [वामस्थे] प्रथमे गृ[5]हे ॥१९७॥
लिखे[6]देकाङ्कमेकाङ्कं ततोऽधः पंक्तिरुच्यते ।
त्यक्त्वोपा[7]न्त्यमथान्तादीनभावे प्रतियोगतः ॥१९८॥
संयोज्य विलिखेदग्रे तालसंख्या[क्रमा][8]वधिम् ।
[9]तदोर्ध्वोर्ध्वमुपा[न्त्यस्य] त्वधःस्थस्य परिग्रहः ॥१९९॥
तथा पञ्चकसंयोग[10]स्त्वग्रे लेख्यः पुनः पुनः ।
सर्वास्वेवं प्रतिनिधिं न कु[11]र्यादत्र पूर्ववत् ॥२००॥
ताल[12]मानक्रमा[दत्राभीष्ट]द्रुत विनिर्णयात् ।
एकद्वित्रिचतुःपञ्च[13]द्रुततालान् निवेशयेत् ।
समेषु विषमेष्वेवं द्रष्टव्यं बुद्धिमत्तरैः ॥२०१॥

अथास्य लक्ष्यम्—

[सम्पादकनिर्मितम्]

											१
									१	६	२१
							१	५	१५	३५	७४
					१	४	१०	२०	३९	७६	१४४
			१	३	६	१०	१८	३३	५८	९६	१५९
	१	२	३	४	७	१२	१९	२८	४४	७०	१०९
१	१	१	२	३	४	५	८	१२	१७	२३	३४
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

[इति द्रुतमेरुकोष्ठकम्]

१. ०तेबि०
२. ०तानेक०
३. दशाङ्का मेरवः
४. ०का च लिख्यताम् ।
५. भवेत्
६. ०कान्तमेकान्ते
७. ०पान्तगयान्ता०
८. ····विधिः,
९. तथोथ प त स्याधस्थं परिग्रहेत्
१०. ०ग्रे० अग्रे लेख्यं
११. तुरा द०
१२. ०लामा···न्क्रमा···द्रु०
१३. ०ध्रुवता०

[अथ लघुमेरुः]

[इष्टानुद्रुततालानामेकाद्यङ्कान् क्रमाल्लिखेत् ।
अंकोर्ध्वगामिकोष्ठानामाद्या पंक्तिर्भवेत् ततः ॥२०२॥
परा स्याद् वामतः पंक्तिः कोष्ठत्रयविवर्जिता ।
चतुश्चतुष्कोष्ठहीना भवेयुः पंक्तयोऽपराः ॥२०३॥
पंक्तीनामाद्यकोष्ठेषु वामादेकैकमालिखेत् ।
अधःपंक्तौ द्वितीयस्तु कोष्ठः स्याद्द्व्यंकसंयुतः ॥२०४॥
लिख्यन्ते शेषकोष्ठांका अन्त्योपान्त्याष्टमान्विताः ।
परासां शेषकोष्ठेषु तुर्यांका अप्यधोगताः ॥२०५॥
योज्याः, प्रतिनिधीनान्तु नियमः पूर्ववन्मतः ।
गहीनैकद्विगादीनां कोष्ठाङ्काः स्युरधःक्रमात् ॥२०६॥]

[अथास्य लक्ष्यम्]

*

											१
							१	३	९	२२	५१
			१	२	५	१०	२०	३८	७१	१३०	२३७
१	२	३	५	८	१३	२१	३५	५७	९४	१५४	२४३
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

[इत्यनुद्रुतप्रस्तारलघुमेरुः]

[अथ गुरुमेरुः]

गुरुमेरावधः[1]पंक्तेः[2] सप्तकोष्ठो[3]निता परा ।
तृतीयाद्याः पंक्तयः स्यु[4]रष्टकोष्ठोनितास्ततः ॥२०७॥

* प्राप्तपाण्डुपुस्तके लघुमेरुकोष्ठकमिदमसम्बद्धपृष्ठे दर्शितं वर्त्तते । तद् यथा—

									१
					१	३	९	२२	५१
	१	२	५	१०	२०	२८	७१	१३०	१००
१२	५	८	१३	२१	३५	५९	९४	१५	२०३

१. ०धिः
२. ०क्तिः
३. ०ठान्विता
४. ०युः एककोष्ठाष्ठकामिव

एवमन्त्यसमे मेरौ लेख्या[1] स्यात् पंक्तिरादिमा ।
एकद्व्यङ्कौ क्रमान्न्यस्य लिखेदन्त्यादिपञ्चकम् ।।२०८।।
अष्टमाङ्कं त्यजेत्तत्र पुनः पुनरयं विधिः ।
तत्र तुर्यादिकोष्ठानाम[2]भावे प्रतिकल्पिताः ।।२०९।।
अधःपंक्तिगता,–स्तत्र पंक्तिष्वाद्याद्यकोष्ठके ।
लिखेदेकैकमेवाङ्कमन्त्यादीन् चतुरश्रकान् ।।२१०।।
अष्टमस्याष्टमाध[3]ःस्थं कृत्वा प्रतिनिधिं लिखेत् ।।
मर्या[4]दाप्रतिनिधिभिरथ तालान् विलोकयेत् ।।२११।।
अधोभागात्[5] तदोर्ध्वान्तं गुरुहीनमथैकगम् ।
[6]द्विगं त्रिगं चतुर्गादितालरूपं विलोकयेत् ।।२१२।।

अथास्य लक्ष्यं दर्शयति—

[7]

							१	२	५	१०	२२
१	२	३	६	१०	१८	३१	५१	९६	१६९	२९६	५२०
१	१	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

[इत्यनुद्रुतप्रस्तारगुरुमेरुः]

[अथ प्लुतमेरुः]

[8]प्लुत[मेरा]वधःपंक्तेः[9] [कोष्ठै]कादशहीनतः ।
द्वितीयालिं[10] लिखेत्सर्वा[11]-स्तदोर्ध्वं पंक्तयः पराः ।।२१३।।

---

१. ०ख्यादिः पं०
२. ०माधारे
३. ०ध०
४. ०द०
५. ०त....तोन्तगु०
६. द्व्यंगं त्र्यंग तुर्यादि०—
७.

×	१	२	३	६	१०	१८	३१	×
१	२	५	१०	२२	४४	८०	१७१	
५५	९३	१६०	१९६	५२	१०६६	२०	१६	

८. प्रतावधः
९. ०तिष्ठे....
१०. ०दिं
११. ०र्वं

द्वादशद्वाशोना[1]: स्युर्[2]दक्षिणाग्रे [3]प्लुतत्वतः ।
तत्रादिपंक्तौ प्रथमे कोष्ठयुग्मे यथाक्रमम् ।।२१४।।

एकद्वयं लिखेत् पूर्वं परं[4]स्वाद्याद्यकोष्ठके ।
क्षिपेदेकांकमेकाङ्कं ततोऽधःपंक्तिलेखने ।।२१५।।

त्यक्त्वा द्वादशमन्त्यादीन् प्रतियोगात् पुरो लिखेत् ।
तदो[5]र्ध्वपंक्तयः स[6]ाध्यास्तथा प्रतिविहीनतः ।।२१६।।

द्वादशं[7]द्वादशाधःस्थकोष्ठकेन युतैः प्लुतैः ।
पूरयेदङ्कविन्यासै[8]र्मेरुकोष्ठान् ततः परम् ।।२१७।।

अधं[9]स्तादूर्ध्वशाखान्तमप्लुतैकप्लुताधिकाः ।
मीय[10]न्ते, वितनोत्येवमुत्तरं[11] विट्ठलात्मजः ।।२१८।।

अथास्य लक्ष्यं दर्शयति । तद्यथा—

।।अयमनुद्रुतप्रस्तारे प्लुतमेरुः।।

*											
१	२	३	६	१०	१८	३१	५६	९८	१७४	३०६	५४२
१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२

[इति प्लुतमेरुः]

---

* | १ | २ | ३ | ६ | १० | १८ | ३५ | ५५ | ९८ | १७९ | ३७ |

१. ०नां
२. ०युः द०
३. स तत्वतः
४. ०रा स्यादा०
५. ०तो०
६. साधा०
७. ०शा स्याद् द्वादशाथ को०
८. ०सैः मे०
९. ०धोभागादधश्शा०
१०. ०यतेति त०
११. ०रो विटला०

[अथानुद्रुतसंयोगमेरुः]

*अथानुद्रुतसंयोगमेरु[१]लक्ष्यं निगद्यते ।
अनुद्रुतादिपञ्चाङ्गयोगतालान्विता[२]ङ्कितम् ॥२१९॥
सर्वैकाङ्गादिसंयोगक्रमरूप[निदर्शनम्] ।
अथोर्ध्वपंक्तयः पञ्च शिर[३]ःस्थानसमन्विता[४]ः ॥२२०॥
तास्वि[५]ष्टतालभागा[६]र्धबिन्दुसंख्याग्रहान् लिखेत् ।
अत्रोपरिष्टा[७]दारभ्य द्विद्विकोष्ठविहीनत[८]ः ॥२२१॥
द्वे पंक्तौ[९] तु, ततः सप्तमा[१०]वलेरेकपंक्तितः[११] ।
हीनास्तिस्रः पंक्तयः स्युः, परन्तु दशमावलेः ॥२२२॥
कोष्ठैकेन विहीनत्वात् पंक्तयः प्रथिता[१२]श्च षट् ।
त[१३]तः षोडशपंक्तेस्तु चतुष्कोष्ठविहीनजा ॥२२३॥
पंक्तिरेका भवेत्, सप्तदशपंक्तेरनन्तरम् ।
कोष्ठद्वये[न] द्वे पंक्ती स्यातामेकोनविंशतेः[१४] ॥२२४॥
पंक्ते[१५]रेकेन कोष्ठेन विहीने[१६]ञ्चावलित्रयम् ।
द्वाविंशत्याः[१७] परं[१८] तस्मादेककोष्ठविहीनजाः[१९] ॥२२५॥

---

* प्राप्तपाण्डुपुस्तके इत आरम्य पंक्तित्रयस्य 'अथोर्ध्वपंक्तयः पञ्च शिरः स्थानसमन्विताः' इति पंक्तेरनन्तरं पुनरुल्लेखः सञ्जातः ।

१. ०रुं लक्ष्ये
२. ०लो०
३. ०र०
४. ०तम्
५. ०स्व०
६. ०गो०
७. ०ठा०
८. ०ता
९. ०क्तिस्तु
१०. मोवलेखकपं०
११. ०कात्
१२. ०ताः परम् ।
१३. तस्मात्
१४. ०तिः
१५. ०क्तिरे०
१६. ०ना वा प्रतिद्वयम्
१७. ०या
१८. ०रैस्०
१९. ०जा

चतस्रः पंक्तयो लेख्याः, ततष्षड्विंशकावले[1]ः ।
ऊना[2] चतुर्भिः कोष्ठैश्च पंक्तिरेका, ततः परम् ॥२२६॥
सप्तविंशतिपंक्ते[3]स्तु तथा कोष्ठचतुष्टय[4]म् ।
विहाय पंक्तिरेका स्यात्तथाष्टाविंशका[5]वलेः ॥२२७॥
कोष्ठद्वय[6]विहीना[7] च पंक्तिरन्या, ततः परम् ।
क्रमादेकैककोष्ठेन द्वे पंक्ती[8]स्तोऽन्तिमे ततः ॥२२८॥
एवमेकत्रिंशका[9]ः स्युरूर्ध्वरूपास्तु पंक्तयः ।
एता[10]सां मेरुपंक्तीनां क्रमेण प्रक्रियां ब्रुवे ॥२२९॥
पञ्चानां पूर्वपंक्तीनां मौलिस्थानां यथाक्रमम् ।
अनुद्रुत[11]दलगपाः लेख्यास्तु तदनन्तरम् ॥२३०॥
अथ द्वियोगादिमौलिप्रक्रियां ब्रूमहे क्रमात् ।
चन्द्रद्रुतौ[12] चन्द्रलघू[13] विधुव[14]क्रौ विधुप्लुतौ[15] ॥२३१॥
दलौ[16] दगौ दपौ मात्रा[17]वक्रौ मात्राप्लुतौ गपौ[18] ।
एवं दश प्रयोगाः स्युः, प्रयोगास्तु तथा दश ॥२३२॥
अनुद्रुता[19]द् दलौ बिन्दुगौ च चन्द्रा[20]द् दपौ ततः ।
अनुद्रुताल्लगौ[21] चन्द्राल्लपावि[22]न्दोर्गपौ मतौ[23] ॥२३३॥

---

१. ०दादिके
२. ०नाश्च०
३. ०क्तिस्त
४. ०ष्ठ०
५. ०वावधेः
६. ०ये
७. ०नेन पं०
८. ०क्तिस्तो०
९. ०ता
१०. ०तेषां
११. ०तावलगपा
१२. ०ता
१३. ०घु
१४. ०र०
१५. ०ता
१६. ०तारगौ
१७. ०त्रा वक्रमात्रप्लुतो
१८. ०मौ
१९. तार्थता बिन्दुः वगौ
२०. ०द्रदपौ
२१. ०घौ
२२. ०वन्दोगमो
२३. ०ता

*[1]दलगा दलपाश्चाथ दगपा[2] लगपा इति ।
प्रयोगाः स्युश्चतुर्योगाः प्रोच्यन्तेऽथ क्रमादिह ॥२३४॥
अनुद्रुता[3]च्च दलगा[4]श्चन्द्रा[द्] द्रुतलघुप्लुताः ।
चन्द्रादि[5]न्दुगपाः प्रोक्ता [6]अर्धचन्द्राल्लगप्लुताः ॥२३५॥
ततो दलगपाश्चेति चतुर्योगा अमी[7] मताः ।
[स्यात्]पञ्चमस्तु[8] पञ्चानां[योगाच्च]लेखनं क्रमात् ॥२३६
इत्येकत्रिंशकं[9] पंक्ते,—मौलिलेख्या प्रतिक्रिया ।
अनुद्रुतसमाख्यायामाद्यपंक्तौ निरन्तरम् ॥२३७॥
कोष्ठा एकाङ्कव[10]न्तः स्युर्द्वितीयायाथोच्यते ।
प्रथमे[11]त्र्यादिकोष्ठेषु [12]विषमेष्वम्बरं लिखेत् ॥२३८॥
द्वितीयादिसमेष्वत्र लिखेद्रूपं† पुनः पुनः ।
लघुपंक्तौ तृतीयायां त्रये[13]: कोष्ठा नभोऽन्विताः ॥२३९॥
चतुर्थो रूपवानेवं[14] पुनः पुनरयं विधिः ।
गुरुपंक्तौ चतुर्थ्यां तु कोष्ठाः सप्त नभोऽङ्किताः ॥२४०॥
अष्टमो रूपवानत्र पुनरेवं लिखेत्ततः ।
पञ्चम्यां प्लुतपंक्तौ तु कोष्ठा एकादश क्रमात् ॥२४१॥

---

* प्राप्तपाण्डुपुस्तके अत्र असम्बद्धरूपेण अनुद्रुतप्लुतप्रस्तारमेरुर्दर्शितो वर्त्तते ।

† एकार्थे रूपशब्दोऽत्र प्रयुक्तोऽस्ति ।

१. वलगादिल०
२. ०लपाल्ल०
३. ०ताश्च
४. ०गाः
५. ०चिन्दु०
६. वागवागालघुप्लता
७. न ताः
८. ०मो स्तु
९. ०ता
१०. ०म०
११. ०मद्वित्रिको०
१२. षष्ठमेष्वपरं
१३. ०म०
१४. ०व

खयुक्तास्तु, द्वादशस्तु[1] भवेदेकाङ्कवानिति ।
*पुनः पुनः स्वे[2]ष्टतालकोष्ठानथ[3] लिखेत् क्रमात् ॥२४२॥
[4]द्वित्रियोगादिपंक्तीनामङ्कन्यासो निगद्यते ।
अनुद्रुतद्रुताख्यायां पंक्तौ तु प्रथमं लिखेत् ॥२४३॥
लेख्यपंक्त्युपरि[5]श्रेणिस्थान् तिरश्चीनमा[6]श्रितान् ।
अङ्कानन्त्योपान्त्यमुख्या[7]न्[8] यथासम्भवयोगतः ॥२४४॥
विपर्यासक्रियायोगाल्लेख्य[9]पंक्ताववस्थितान् ।
अङ्कानपि तथादाय संयोज्य विलिखेदिति ॥२४५॥
मार्गयोरुभयोरङ्काभावश्चेच्छून्यमालिखेत् ।
तथा स्वपंक्तिमौलिस्थे[10] प्रक्रियाभाग[11] रूपतः ॥२४६॥
ग्रा[12] ह्यस्वहेतुपंक्तिभ्यो हेतुत्वमिह कथ्यते ।
द्वियोगानां हेतवः स्युः पूर्वोक्ताः पञ्च पंक्तयः ॥२४७॥
[13]त्रियोगानां द्वियोगाःस्युः, [14]त्रियोगास्तु ततः परम् ।
[15]स्युश्चतुर्योगपंक्तीनां, चतुर्योगास्त्वनन्तरम् ॥२४८॥
भवेयुः पञ्चयोगायाः[16] पंक्तेरेवा[17]त्र हेतवः ।
अतः परं विपर्यासक्रमस्तत्र निगद्यते ॥२४९॥

---

* प्राप्तपाण्डुपुस्तके तु अस्याः पंक्तेरधो 'द्वितीयादि समेष्वत्र.....' इति लिखितं वर्त्तते । तत्र तु भ्रान्तिरेव कारणमित्यनुमीयते ।

१. स्युः
२. स्व०
३. ०वथ
४. यो द्वियो०
५. ०रि श्रेणिर्या०
६. ०या०
७. ०ख्याः०
८. ०न०
९. ०ख्या पंक्तिरितिस्थिता
१०. स्थः,
११. ०व०
१२. ग्राम्यास्स्व०
१३. प्र०
१४. प्र०
१५. स्या.....र्यो०
१६. या
१७. ०का०

अन्त्यादयस्तु यत्पूर्वमुक्ताश्चन्द्रादिषु क्रमात् ।
त एवात्रावरोहेण फलन्ति प्रतिमावशात् ॥२५०॥
अयमेव विपर्यासो भागरूपमुदीर्यते ।
तत्र द्वियोगे प्रथमा प्रक्रियेन्दुनभोऽङ्किता ॥२५१॥
अत्रेन्दोरिन्दुपंक्ते[1]श्च बिन्दोर्बिन्द्वावलिक्रमात् ।
[अंक-]ग्राहं[2][क्रमात् कृत्वा]विद्यादे[3]वं द्वयोर्गतम् ॥२५२॥
भागौ विभज्य विख्याताः[4] प्रोच्यन्तेऽथ त्रियोगजाः[5] ।
[6]त्रियोगादथ सर्वेषां प्रक्रियाभागकारणम् ॥२५३॥
लक्षणं वच्मि यल्लक्ष्ये प्रति [संख्यां] नियोजयेत् ।
शक्याङ्गा[7]नां प्रक्रियायां [योगावादिद्वितीयकौ] ॥२५४॥
[तत आदि]तृतीयौ[च] द्वितृतीयावितिक्रमात् ।
भागत्रयं समादाय द्वियोगेभ्यः समाहरेत् ॥२५५॥
[तत] एवं चतुर्भागलक्षणं व्याहरामहे ।
अतः परं [चतु]र्यो[8]गभागलक्ष्म निगद्यते ॥२५६॥
[प्रथमद्वित्रिचा] एकद्वित्रिपा[9]स्तदनन्तरम् ।
क्रमा[10]त् प्रद्विचपाः[11] प्रत्रिचपा[12] द्वित्रिचपा इति ॥२५७॥
पञ्चाङ्ग[13]-प्रक्रियोत्पन्नपञ्चभेदाः प्रकीर्तिताः ।
ते चतुर्योगपंक्तिभ्यो ग्राह्या लक्ष्मविचक्षणैः ॥२५८॥

॥ इति भागरूपाधारविधानम् ॥

---

१. ०क्ति०
२. ०हा····
३. ०देवद्वये ग०
४. ०ता
५. ०जा
६. ०प्रयोगात्स तु
७. ०ङ्गानि
८. ०यो०
९. ०पञ्चमस्त०
१०. ०मो द्वि त्रि च वा
११. प्र त्रि च सा
१२. द्वि त्रि च पा
१३. ०ङ्गः

अथ सर्वैकाङ्गमुख्यानङ्गयोगसमुद्भवान् ।
तालान् प्रस्तारसम्भूतान् प्रष्टुं लक्ष्म निगद्यते ॥२५९॥
स्वेष्टतालसमाख्यायां तिर्यग्वीथ्यां विलोकयेत् ।
अत्राद्या पञ्चकोष्ठाङ्कक्रमेण सकलान् विधून् ॥२६०॥
सर्वद्रुतान् सर्वलघून् सर्ववक्रानतः परम् ।
सर्वप्लुतान् वदत्यत्र तालाभावांस्तु बिन्दुभिः ॥२६१॥
तिर्यक्पंक्तिगतैरंकैः स्वशिरोभागयोगजाः ।
तालास्तावन्त एव स्युस्तालाभावास्तु शून्यतः ॥२६२॥

॥ इत्यनुद्रुतसंयोगमेरुलक्षणम् ॥

अथानुद्रुतमेरुसंयोगपङ्क्तीनां संख्याक्रमेणोपरिष्टादारभ्य अधोऽधः कोष्ठेषु स्थाप्याङ्का लिख्यन्ते ।

अथास्य लक्ष्यं दर्शयति—

॥[अथ] प्रथमपंक्तिसंख्या॥–१

१ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १ | १[१]

॥इति प्रथमपंक्तिसंख्या ॥–१

॥अथ द्वितीयपंक्तिसंख्या॥–२

० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० [१ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ०]

॥इति द्वितीयपंक्तिसंख्या ॥–२

॥अथ तृतीयपंक्तिसंख्या ॥–३

०[४] | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० |

॥इति तृतीयपंक्तिसंख्या ॥–३

१. ०ख्यमङ्ग० २. ०ष्ठ० ३. विध्यां
४. ॥– | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | –॥ =

।। अथ चतुर्थपंक्तिसंख्या ।।–४

[1]० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | ० | ० |
० | १ | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० |

।।इति चतुर्थपंक्तिसंख्या।।–४

।।अथ पञ्चमपंक्तिसंख्या।।–५

[2]० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० |
० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० |

।।इति पञ्चमपंक्तिसंख्या ।।–५

।।अथ द्वियोगसंख्याः।।

[अथानुद्रुतद्रुतपंक्तिसंख्या]–६

[3]२ | ३ | ७ | ११ | २० | ३२ | ५४ | ८७ | १४३ | २३१ | ३७६ | ६०८ | ९८६ | १५९५ | २५८३ | ४१७९ | ६७६४ | १०९४४ | १७७१० | २८६५५ | ४६३६७ | ७५०२३ | १२१३९२ | १९६४१६ | ३१७८१० |

[इत्यनुद्रुतद्रुतपंक्तिसंख्या]–६

---

१. ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | =

२. ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० ० | ० | ० | ० | ० | ० | —

३. १ | २ | ३ | ७ | १० | २० | ३२ | ५४ | ८७ | १४३ | २३ |-३७६ | ९०८ | १५९५ | २५०३ | ४१७९ | ६७६४ | १९९४४ |-१७०७१० | २८०६५५ | ४६०३६७ | ७५०२३ | लक्कानु | २१०३-९२ | लक्षानु | ९६०४१६ | मूडुल क्षलुन्नु | १७०८१० | इति संख्या | uʎ |

॥अथ[ानुद्रुतलघु]पंक्तिसंख्या॥–७

२ | ३ | ४ | ५ | ९[1] | १३ | १८ | २४ | ३५ | ४९ | ६८ | ९३
| १३० | १८० | २४९ | ३४३ | ४७५ | ६५६ | ९०६ | १२५० |
१७२७ | २३८४[2] | ३२९१ |

॥इ[3]त्यनुद्रुतलघुपंक्तिसंख्या॥–७

॥अथानुद्रुतगुरुपंक्तिसंख्या॥–८

० | ० | ० | २ | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८ | ९ | १३ | १७ |
२२ | २८ | ३५ | ४३ | ५२[4] | ६२ | [5]७७ | ९५ | ११८ |

[इत्यनुद्रुतगुरुपंक्तिसंख्या]–८

[अ[6]थानुद्रुतप्लुतपंक्तिसंख्या]–९

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | [२] | ३ | ४ | ५ | ६ | ७ | ८
| ९ | १० | ११ | १२ | १३ | १७ | २१[7] | २६ |

॥ई[8]त्यनुद्रुतप्लुतपंक्तिसंख्या॥–९

[अथ द्रुतलघुपंक्तिसंख्या]–१०

२ | ० | ३ | ० | ७[9] | ० | ११ | ० | २०[10] | ० | ३२ | ० | ५४ |
० | ८७ | ० | १४३ | ० | २३१[11] | ० | ३७६ | ० |

[इति द्रुतलघुपंक्तिसंख्या]–१०

---

१. ९१३ | १० | २४ |

२. २५८४ | २०९ | इतिसंख्या
Uov | Uov |

३. इत्यधःपंक्तिसंख्या

४. | ५० |

५. | ७० | ९५|१० | इति संख्या
| १८ | १७ |

६. अधःपंक्ति संख्या

७. | २१ | १३ | १७ | = २६
॥ई इं दलु विचारितम् ।

८. इतिसंख्या ।

९. २

१०. ० | ५ | ४ | ०

११. २१३ | द्रुतं ० | ३ | ७६ | ०
इति संख्या

[अथ द्रुतगुरुपंक्तिसंख्या]–११

०[1] | ० | ० | २ | ० | ३ | ० | ४ | ० | ५ | ० | ९[2] | ० | १३ |
० | १८ | ० | २४ | ० | ३५ | ० |

[इति द्रुतगुरुपंक्तितसंख्या]–११

[अथ द्रुतप्लुतपंक्तिसंख्या]–१२

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | २[3] | ० | ३ | ० | ४ | ० | ५ |
० | ६ | ० | ७ | ० | ११ | ० |

[इति द्रुतप्लुतपंक्तिसंख्या]–१२

[अथ लघुगुरुपंक्तिसंख्या]–१३

० | ० | ० | ० | ०[4] | २ | ० | ० | ० | ३ | ० | ० | ० | ७ |
० | ० | ० | ११ | ० | ० | ० |

[इति लघुगुरुपंक्तिसंख्या]–१३

[अथ लघुप्लुतपंक्तिसंख्या]–१४

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | २[5] | ० | ० | ० | ३ |
० | ० | ० | ४ | ० | ० | ० |

[इति लघुप्लुतपंक्तिसंख्या]–१४

[अथ गुरुप्लुतपंक्तिसंख्या]–१५

०[6] | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | २ |
० | ० | ० | ० | ० | ० | ० |

[इति गुरुप्लुतपंक्तिसंख्या]–१५

॥ इति द्वियोगसंख्याः ॥

---

१. ० | ० | ० | ० | ० | २ |
२. ९०,
३. २० | ११ | = | ५ | ० | ० | ६ | ० | १७ | ० | ११ |
४. | १ |
५. ४ | ० | ० | ० | इति संख्या | – १४ | ७७ | ७७ | = |
६. ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | २ | ० | ० | ० | ० | ०
| ० | ० |

९. ०या

।। अथ त्रियोगपंक्तिसंख्याः[1] ।।

[अथानुद्रुतद्रुतलघुपंक्तिसंख्या]–१६

६ | १२ | ३२ | ६० | १३४ | २५१[2] | ५०० | ९२२ | १७५४ | ३२०७[3] | ५९३७ | १०७६७ | १९६२८[4] | ३५३७७ | ६३८६१|११४५२७| २०५३९८ | ३६६९०२ | ६५५००८ | ११६३४२ | २०७५२१८ |

[इत्यनुद्रुतद्रुतलघुपंक्तिसंख्या]–१६

[अथानुद्रुतद्रुतगुरुपंक्तिसंख्या]–१७

[६ | १२ | ३२ | ६० | १२२ | २२१ | ४१० | ७२७ | १३०८ | २२९५ | ४०४६ | ७०३७ | १२२४४ | २११४० | ३६४५३|६२५६१ |१०७१९८]

[इत्यनुद्रुतद्रुतगुरुपंक्तिसंख्या]–१७

[अथानुद्रुतद्रुतप्लुतपंक्तिसंख्या]–१८

० | ० | ६ | १२ | ३२ | ६० | १२२ | २२१[5] | ४१० | ७२७ | १२९६ | २२६५ | ३९५६ | ६८४२ | ११८१८ |

[इत्युनुद्रुतद्रुतप्लुतपंक्तिसंख्या]–१८

[अथानुद्रुतलघुगुरुपंक्तिसंख्या]–१९

६ | १२ | २० | ३० | ५४ | ८६[6] | १३२ | १९५ | ३१० | ४७४ | ७१६ | १०६२ | १६०२ | २३८५ | ३५३४ |

[इत्यनुद्रुतलघुगुरुपंक्तिसंख्या]–१९

---

१. प्रतियो०   २. २५०   ३. ३०२०७ | ५९३२

४. ११०६२८ | ३५०३७७ | ६०६३०८६ | लक्षा नुं रें डु लक्षलुन्नु, ५२५८ मुडुलक्षलुन्नु | ६६०९०२ | आरुलक्षलुन्न, | ५५०००८ | लक्षलुन्नु | ६३४२ | २० लक्षलुन्नु | ७५०२१८ | इति संख्या १६ | = | u० | ७ |

५. २२ | १ | १० | ७२२ | १२९६ | २२६५ | ७८५६ | ६४४२ | ११०९१८ | इति संख्या | १८u | u | ७ |

६. ८६ | १९२ | १९५ | ३१० | ४७४ | ७१६ | ११११२ | १६०२ | २३४५ | ३५३४ | इति संख्या १९ | ८ | ० |

[अथानुद्रुतलघुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२०

० | ० | ० | ६ | १२ [२०] ३० | ५४ | ८६ | १३२ | १९५ |
[२९८] ४४४ | ६५६ |

[इत्यनुद्रुतलघुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२०

[अथानुद्रुतगुरुप्लुतसंख्या]–२१

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ६ | १२ | २०|३०|४२ | ५६ | ७२|

[इत्यनुद्रुतगुरुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२१

[अथ द्रुतलघुगुरुपंक्तिसंस्या]–२२

६[1] | ० | १२ | ० | ३२ | ० | ६० | ० | १३४ | ० | २५१ | ० |
५०० | ० |

[इति द्रुतलघुगुरुपंक्तिसख्या]–२२

[अथ द्रुतलघुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२३

| ० | ० | ० | ६[2] | ० | १२ | ० | ३२ | ० | ६० | ० | १२२|०|

[इति द्रुतलघुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२३

[अथ द्रुतगुरुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२४

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ६ | ० | १२ | ० | २० | ० |

[इति द्रुतगुरुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२४

[अथ लघुगुरुप्लुतपंक्ति संख्या]–२५

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० [६ | ० | ० | ०]

[इति लघुगुरुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२५

[इति त्रियोगपंक्तिसंख्याः]

---

१. ६० | ० | ० | २ | ० | १२ | ० | ६० | १३४ | ० | २५१ | द्रुतम्
० | ५०० | १ | इति संख्या

२. २२ | ० | ३ | अथपंक्ति संख्या
० | ० | ० | ० | ६६० | १२ | ० | ३२ | ६० | ० | १२ | २ |
इति संख्या २३

॥ अथ चतुर्योगपंक्तिसंख्याः ॥

[अथानुद्रुतद्रुतलघुगुरुपंक्तिसंख्या]–२६

२४ | ६० | १८०[1] | ३९० | ९३६ | १९४४ | ४१६२ | ८३४० | १६९६८ | ३३२८८ | ६५५४८ | १२६४३२ | २४३८५८ |

[इत्यनुद्रुतद्रुतलघुगुरुपंक्तिसंख्या]–२६

[अथानुद्रुतलघुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२७

२४ | ६० | १८०[3] | ३९० | ९३६ | १९४४ | ४१६२ | ८३४० | १६९०८ |

[इत्यनुद्रुतलघु प्लुतपंक्तिसंख्या]–२७

[अथानुद्रुतगुरुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२८

२४ | ६० | १८० | ३९० | [4]८७६ |

[इत्यनुद्रुतद्रुतगुरुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२८

[अथानुद्रुतलघुगुरुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२९

२४ | ६० | १२० |

[इत्यनुद्रुतलघुगुरुप्लुतपंक्तिसंख्या]–२९

[अथ द्रुतलघुगुरुप्लुतपंक्तिसंख्या]–३०

२४ | ० |

[इति द्रुतलघुगुरुप्लुतपंक्तिसंख्या]–३०

[इति चतुर्योगपंक्तिसंख्याः]

[अथानुद्रुतादिपञ्चांगयोगपंक्तिसंख्या]–३१

| १२० |

[इति पञ्चांगपंक्तिसंख्या]–३१

---

१. १ | ० |

२. १६०९६४ | ३३०२८८ | ६५०५५४ लक्ष २४०४८३२ | २ लक्षनुन्नु ४३०८५८ इति संख्या । २६ | ८० | oy

३. १८० ३९० ९७६ | १९४४ | ४१६६ | ८३४० | १६०९०८ | इति संख्या २७ | u० | γγ

४. ३७६ इति संख्या २८ | लं γγ

[अथ विरामप्रस्तारलक्षणम्]

* नयं विदुर्मुनेरिच्छातालस्थाङ्गानि तान्यथ[1][2][3]।
क्रोडीकृत्य लिखेदादौ तत्र युक्ततया यदि ॥२६३॥
शेषाङ्गं वर्त्तयेद् वामे [तत्तदङ्गं] निवेशयेत् ।
प्रस्तारो[4] नययोः स स्यात्तालजन्यक्रमं ब्रुवे ॥२६४॥
पूर्वप्रस्तारवत्कार्य[5]स्तत्राल्पत्वमहत्त्वयोः ।
क्रमं ब्रवीमि महतः प्लुतस्याधो[6] गुरुं न्यसेत् ॥२६५॥
गुरो[7]श्च महतो[ऽधस्ताद् विरा]मा[8]ङ्गं लघुं न्यसेत् ।
तस्याधस्ताच्च ल[9]स्तस्य[भवेच्]चाधो विरामदः ॥२६६॥
तद[10]धो बिन्दुशो[11]ऽन्यः स्याद् दान्तकर्मविधिस्त्वयम् ।
सर्वद्रुतावधिः कार्यः प्रस्तारोऽयं विरामजः ॥२६७॥

॥ इति विरामप्रस्तारलक्षणम् ॥

वक्ष्ये विरामप्रस्तारसंख्यां कोष्ठादिभेदतः ।
इ[12]ष्टताले स्थिताङ्गानि द्रुतान् कृत्वा प्रयत्नतः ॥२६८॥
तान् द्रुतान् द्विगुणीकृत्य तत्रैकेनोनसंख्यया ।
कोष्ठान् कृत्वा, तिरश्चीनां पंक्तिमेकां लिखेदधः ॥२६९॥
तस्यान्तु प्रथमं[13] कोष्ठद्वयं सैकं क्रमाल्लिखेत् ।
द्वितीययुग्मे द्वौ द्वौ च ततो युग्मतृतीयके ॥२७०॥
पञ्च पञ्च लिखित्वाथ[14] सप्तमे मन्दिरे पुनः ।
रुद्रसंख्यां विनिक्षिप्यं तद्[15]र्ध्वं लक्ष्म कथ्यते ॥२७१॥

---

* नकारो विरामद्रुतो यकारो विरामलघुश्चेति ग्रन्थेऽस्मिन्नग्रे परिभाषितौ वर्त्तेते ।

१. ०ल०
२. विन्दु०
३. ०था
४. ०ऽपि न को यः स्या०
५. ०र्यः त०
६. ०थो
७. ०रुश्च
८. ....मके
९. ० ...घ०
१०. दन्यो
११. ०शान्यस्स्यान्मतं दर्पविधिस्वया
१२. ०ष्ठ
१३. ०मे कोष्ठद्वयैक०
१४. ०धस्स०
१५. ०तो०

द्वितीयञ्च तृतीयञ्च चतुर्थं षष्ठमष्टमम् ।
द्वादशाङ्कश्च संयोज्य लिखेत् कोष्ठे[1]ऽग्रिमे तथा ॥२७२॥
सै[2]कं कृत्वा प्लुतस्थाने तदग्रे पूर्ववल्लिखेत् ।
यथालाभं लिखेदग्रे कोष्ठे कोष्ठे पुनः पुनः ॥२७३॥
एवमन्त्यं विहायाङ्कं समूहे लिखिते सति ।
क्रमाद्[3] द्वित्र्यङ्गभूतानां तालानां भेदवाचकैः[4] ॥२७४॥
पूर्वादयं क्रमः प्रोक्तः, परा[5]त् तन्नान्त्यमुच्यते ।
उपान्त्यादिक्रमेणैव द्रुताद्याद्यन्त[वा] चकः ॥२७५॥
मातृमात्राक्षमं[6] तेषां कोष्ठानां ब्रूमहे क्रमम्[7] ।
द्रुतो, विरामदो[8], लोऽथ, बिन्दुयुक्तो विरामदः ॥२७६॥
विरामलो, विरामो[9]ऽथद्रुतयुक्तो लघु,—र्गुरुः ।
सविरामौ[10] दलौ, तस्मा[11]द् दगौ, शिखरबिन्दुगौ ॥२७७॥
प्लुतो, विरामान्तबिन्दुद्वययुक्तो गुरुस्ततः ।
द[12]पौ, विरामद्रुतपौ[13], लपावि[14]त्य*र्धबिन्दुना ॥२७८॥
विवर्धितानां तालानां प्रस्तारेण समुत्थितान् ।
भेदानङ्का वदन्त्येते तत्तत्कोष्ठगतान् कमात् ॥२७९॥

॥ इति विरामप्रस्तारलक्षणम् ॥

---

* यद्यप्यर्धबिन्दुना विवर्धितानां तालानां भेदनिरूपणमिहाङ्गीक्रियते तथापि विरामप्रस्तारेऽस्मिन् अनुद्रुतस्य प्रत्यक्षसत्ताभावात् तच्चिह्नं विहायैव प्रकारान्तरेण तालभेदाः संख्यायन्ते ।

१. ०ष्ठाग्रि०
२. से०
३. द्वयद्वयङ्ग०
४. ०कौ
५. ०रात्तद्वान्तमु०
६. ०मात्ते०
७. ०मात्
८. ०तालो०
९. ०मोत्र द्रु०
१०. ०मेद०
११. ०मादगौ
१२. ०व०
१३. ०सौ०
१४. ०दित्यर्थबि०

[अथ विरामप्रस्तारसंख्यालक्ष्यम्]

o	δ	|	oδ	f	δ|	S	ɔf	oS	ˀS	S̀	oδS	oS̀	δS̀	|S̀
१	१	२	२	५	५	११	१३	२४	३२	५६	७७	१२९	१८४	२९९

वक्ष्ये विरामपातालं[१] संख्यापंक्ते[२]रधः क्रमात् ।
समकोष्ठद्वयां[३] पंक्तिं कृत्वा तत्राङ्कयोजनाम् ॥२८०॥

ब्रूमॆ[४]स्तत्रादिमे कोष्ठद्वये त्वेकैकमालिखेत् ।
द्वितीये कोष्ठयुग्मे तु द्वौ द्वौ, पंक्तौ ततःपरम् ॥२८१॥

पञ्चमे पञ्च षष्ठे च, सप्तमे दश पञ्च च ।
अष्टमे[५]ऽष्टादशाङ्कं च वीथिकां विलिखेदिति ॥२८२॥

नवमादिषु कोष्ठेषु लक्षणं[६]क्रमयोगतः ।
विहाय नित्यं चेद्वामसंस्थानङ्कान् प्रयत्नतः ॥२८३॥

द्वितीयं च तृतीयं च चतुर्थं पष्ठमॆ[७]ष्टमम् ।
एकादशञ्च संयोज्य वामभागगतं तथा ॥२८४॥

द्वितीय[८]-शिरसः स्थानकोष्ठांकेन युतं पुरः ।
लिखेदेवं विधानेन [९]बोध्यकोष्ठावधिं[१०]क्रमात् ॥२८५॥

तत्रोपान्त्यादिभेदेन मीयन्ते स्वस्वभेदजाः ।
सर्वद्रुतादयस्तालाः[११], [कोष्ठोऽ]यमिति पूरितः ॥२८६॥

---

१. ०ळं
२. ०क्तिरथ क्र०
३. ०यं
४. ०तस्त०
५. ०मे वा दशा०
६. ०णः
७. ०मे तथा
८. ०ये०
९. मध्या०
१०. ०धिः
११. ०लः

अथानयोः संख्यापातालयोर्लक्ष्यं दर्शयति, तद्यथा

१	१	२	२	५	५	११	१३	२४	३२	५६	७६	१२९
१	१	२	२	५	५	१५	१८	३९	५४	१०३	१५०	२७३

इति पातालसंख्या[लक्ष्यम्]

[अथ विरामप्रस्तारनष्टम्]

ब्रूमो विरामप्रस्तारे[1] नष्ट[2]तालस्य दर्शनम् ।
अन्त्यान्त्ये श्रुतनष्टाङ्कं पातयित्वाथ[3] शेषतः ॥२८७॥
पातयेद् वामभागाङ्कान्[4] पूर्वपूर्वान् प्रयत्नतः ।
प्रत्यङ्के पतिताङ्कं यदन्त्यं[5] सन्त्यज्य शेषतः ॥२८८॥
तालाङ्गानि[6] स्युरित्येवमन्त्यं त्यक्त्वा पुनः पुनः ।
एककोष्ठाङ्कहीनेन[7] स्याद् विरामद्रुतागमः ॥२८९॥
कोष्ठद्वयाङ्कपातेन निरन्तरतया यदि ।
पतितेन विरामो लः समायाति ततः परम् ॥२९०॥
विरामलघु[8]हेतोस्तु तृतीये पतिते सति ।
पूर्वलब्धविरामाङ्को[9] लघुरेव गुरुर्भवेत् ॥२९१॥
गुरुहीना[10]स्तृतीये तु पतिते सति लब्धग[11]ः ।
प्लुतो भवत्यथापाते कोष्ठे[12] शुद्धद्रु[13]तागमः ॥२९२॥
सविरामे द्रुते[14] लब्धे तदा कोष्ठद्वयं[15] त्यजेत् ।
[16]द्रुतौ लब्ध्वा लघु[17]प्राप्तिस्ताभ्यां कोष्ठद्वयं त्यजेत् ॥२९३॥

---

१. ०प्रहरे
२. षष्ठ
३. पतत्याद्याथ शे०
४. ०ङ्का पू०
५. ०दन्ते
६. ०ङ्गास्युरे देव०
७. ष्ठान्तही०
८. ०घु वास्ते
९. ०ङ्काः
१०. ०नास्तृ०
११. ०गम्
१२. ०ष्ठशु०
१३. ०श्रु०
१४. ०तालब्धे
१५. ०ष्ठं द्रुतं त्य०
१६. यदि लब्धे
१७. ०घुप्राप्ते

सविरामे लघौ प्राप्ते तेभ्यो गे[1]हृत्रयं त्यजेत् ।
गुरु[2]लाभस्तदा कोष्ठा[3]स्त्रयस्त्याज्या निरन्तरम् ॥२९४॥
प्लुतलाभे[4] ततः पञ्चकोष्ठत्यागो निरन्तरम् ।
यदा[5] शुद्धद्रुते लब्धे[6] [विहायै]कैकमन्दिरम् ॥१९५॥
स एवो[7]नद्रुतस्तालः स्याद् यावन्मात्रहीनवान् ।
तदा[8] वामान्तिके[9] व्योम[10] स्थापयेत् [तन्मितं] तदा ॥२९६॥

॥ इति विरामप्रस्तारनष्टम् ॥

[अथ विरामप्रस्तारोद्दिष्टम्]

निरूप्यते विराम[स्योद्दिष्टं]विट्ठ[11]लसूनुना ।
अन्यद् विलोकनीयं स्यात् संख्यापंक्तौ तथा पुनः ॥२९७॥
[एककोष्ठाङ्कहीनेन] सविरामद्रुतो यदि ।
[गृह्णीयात्तत्प्र] कोष्ठा[12]ङ्कमेवं यत्र लघुस्तथा ॥२९८॥
कोष्ठद्वयाङ्क[सातत्यपातेनैव][13] विरामलः ।
तदा कोष्ठद्वयस्याङ्कं[14] गृह्णीयादथ[15] गोऽस्तिचेत् ॥२९८॥
स[16] चतुःकोष्ठकाङ्कं[17]ञ्च, प्लुतो[18]ऽस्ति यदि तत्र तु ।
गृह्णीयात् पञ्चकोष्ठाङ्कं[19] तत्र शु[20]द्धद्रुतोऽस्ति चेत् ॥३००॥
तदा तस्यैव कोष्ठाङ्कं हि[21]त्वान्त्यान्त्यांकसन्ततौ ।
शुद्धीकृतायामङ्कः स्यात् सोद्दिष्टस्योत्तरं भवेत् ॥३०१॥

[इति विरामप्रस्तारोद्दिष्टम्]

---

१. दे०
२. ०गुम्भस्त०
३. ०ष्ठाः त्र०
४. ०भ लाच्च त्यागो नि रन्त०
५. ०था
६. ०धे त····
७. ०व न द्रुतस्या····प्रासही०
८. ०दावा०
९. ०मव्यो०
१०. स्थ त्त
११. ०ट०
१२. ०ष्ठकमेव····त्थल०
१३. नरा मलः
१४. ०ङ्कः
१५. ०धगो०
१६. स जातु
१७. ०ङ्कश्च
१८. ०तास्ते
१९. ०न्तं
२०. शब्दद्रु०
२१. इत्युद्रुत्याङ्क०

[अथ विरामप्रस्तारे द्रुतमेरुः]

उपर्युपरि तत्पंक्तिद्विद्विकोष्ठविहीनतः ।
पंक्तयो दक्षिणान्तोङ्का[१]: प्रभवन्ति शिखावधि ॥३०२॥

तत्र पंक्तिषु सर्वासु मूलकोष्ठशिरः[२]स्थले ।
एककोष्ठादिकत्वेन कृतस्तत्राङ्कयोः क्रमात् ॥३०३॥

सर्वत्र शिरसस्स्थाने कोष्ठेष्वेकाङ्कलेखनम् ।
अधः[३] पंक्तौ बिन्दुमेव लिखेत् प्रथममन्दिरे ॥३०४॥

त[४]द्द्वितीये तृतीये च लिखेत् कुमुदबान्धवम् ।
ततः परं चतुर्थादिष्वन्त्योपान्त्ये च सद्मनि ॥३०५॥

तत्का संख्या[५] वदैवं स्यात् सम्प्रदायोऽत्र कथ्यते ।
केवले द[६]विरामाङ्के केवले[७] च गुरौ प्लुते ॥३०६॥

नैकं कृत्वा लिखेदग्रे पूर्वोक्तविधिना पुनः ।
उपरिस्थासु सर्वासु सान्त्यार्ध[८]:स्थानदो गतः: ॥३०७॥

त्यक्तको[९]ष्ठेऽपि गण्यं[१०] स्यान्नालौ[११] पंक्त्यादिमन्दिरम् ।
अङ्काभावे भवेद्वृत्तं कोष्ठाभावेऽपि वा भवेत् ॥३०८॥

यदा स्यादुभयाभावो [तदा] तालान् वदन्ति ते ।
इति विरामप्रस्तारे[१२] द्रुतमेरुः ।

---

१. ०तांक्या:
२. ०र०
३. ०तः
४. तद्वि०,
५. ०य।वदेव
६. र०
७. ०लौ
८. ०ध०
९. ०गो०
१०. ०ण्यः
११. ०ली
१२. ०रे अनुद्रुत०

अथास्य*लक्ष्यं दर्शयति—

*

										१
								१		०
						१			५	१५
					१		४	४		१४
		१		०	३	३		८	१२	९
१	०	०	२	२	०	५	६	५	१०	१८
०	१	१	०	२	२	२	३	६	५	९

[इति विरामप्रस्तारे द्रुतमेरुः]

[अथ सविरामद्रुतमेरुः]

स[1]विरामद्रुतोत्पन्नतालमेरुरिहोच्यते ॥३०९॥

इष्टतालद्रुतानत्र द्विगुणीकृत्य तत्र तु ।
एकोनसंख्या[2]कोष्ठाङ्कामेकां पंक्ति लिखेदधः ॥३१०॥

मू[3]लाच्चचतुष्कोष्ठहीना[4] द्वितीया पंक्तिरन्त्यगा ।
ततष्षट्षट्कोष्ठहीना[5]: पंक्त[6]यस्त्वन्तसंश्रिताः ॥३११॥

---

* 'अयमविरामप्रस्तानुद्रुतमेरुः' इत्युल्लेखोऽधोऽङ्कितो मेरुश्च मूलपुस्तके वर्त्तते ।

						१	५	१			१	
					१	५४		५		६	६	
		१			४	१६	१२	१४	२०	२०		
	१	२		३	१			१०	९			१४
१	१	२		५		५			१४		२२	४२
१	१		२	२		३					१	२
											१	२०

१. अ०
२. ०ख्या को०
३. ०लात् षट्को०
४. ०नत्वं
५. ०ना
६. ०क्तियंस्त्व०

पञ्चमे पञ्चमे तासां कोष्ठे कुर्याच्छिखागतम् ।
कोष्ठमेकं ततस्तेषां[1]मङ्कावलिरथोच्यते ॥३१२॥

सर्वेषु मौलिकोष्ठेषु रूपं [रूपं] विनिक्षिपेत् ।
अधःपंक्तौ तु मूलादारभ्य कोष्ठचतुष्टये ॥३१३॥

लिखेदेकाङ्कमेकाङ्कं द्व्यङ्कं द्व्यङ्कं ततः परम् !
पञ्चमादिषु सर्वेषु विषमेषु लिखेत् क्रमात् ॥३१४॥

अन्त्यं तृतीयं सन्त्यज्य यथोपान्त्यादियोगतः ।
षष्ठादिसमकोष्ठेषु त्यक्त्वा[2]न्त्यं[क्रमशो]लिखेत् ॥३१५॥

[स]शि[3]खरे लघौ दीप्ते चैकं कृत्वावधानतः ।
अथोर्ध्वपंक्तिकोष्ठेषु[त्वङ्कानेवं लिखेत्] क्रमात् ॥३१६॥

विषमे[4][ष्वन्तिमं] त्यक्त्वा तृतीयाधःस्थयोगतः ।
[निजोपान्त्यप्रभृत्यंकि]तेन पुनरयं विधिः ॥३१७॥

समेष्वन्त्यं विहायैव स्वपंक्तौ *द्व्य[5]ादिकान् लिखेत् ।
इति संख्या[न्वितान् व्योमशिखाता]लान्विलोकयेत् ।३१८।

एकादिविषमे[ष्वेवं] मूलपंक्तिगतेषु तु ।
कोष्ठेषूर्ध्वक्रमेणैव शिखाद्रुतविहीनतः ॥३१९॥

द्विचतुष्षड्मुखानत्र शिखाबिन्दुयुतानथ ।
समे[6]ष्वेकादि-विषमविरामद्रुतसम्भवान् ॥३२०॥

तालान् वितीर्य[7] कथयेदित्याह करणेश्वरः ।

---

* उपान्त्यादीनित्यर्थः

१. ०षां अ०
२. ०वान्तं····
३. ····शेखरेषु तौ दीप्तस्यैकं
४. ०म········
५. ०यधिका०
६. ०ममष्टिका०
७. ०य

अथास्य लक्ष्यं दर्शयति, तद्यथा—

†

										१
				१	०	३	१	९	४	२५
१	१	२	२	४	५	८	१२	१५	२८	३०

[इति सविरामद्रुतमेरुः]

[अथ विरामप्रस्तारे लघुमेरुः]

अथ मात्रामेरुरयं कथ्यते विष्णुसूनुना ॥३२१॥

इष्टतालगतान् बिन्दून् द्विगुणीकृत्य तत्र तु ।

एकोनसंख्याकोष्ठान्तां पंक्तिमेकां लिखेत्तदा ॥३२२॥

चतुश्चतुःकोष्ठहीनाश्चोर्ध्वगाः पंक्तयोऽन्यगाः ।

तासु तृतीयकोष्ठःस्यान् मौलिको[1]ष्ठसमन्वितः ॥३२३॥

तत्र मौलिषु सर्वेषु लिखेदेकाङ्कमेव तम् ।

मूलपंक्तिष्वाद्यकोष्ठद्वये च विलिखेत्तदा ॥३२४॥

								१	१२	४	
				१		३०	३	६	३०	१९	
		१		२	३	६	२९	७	२५	३४	५०
१	१	१	२	३	६	७	१२	२४		५६	

*

	१	
१	१०	२०
३०	५९	८२
८०	११	१८६०
९४	१०६	१४६

१	१	३	२	४	५	३	१	३	१			१	११	५	१	२१	६
								८	१२	६	४	२५	१४	६६	१४	१६	२९
										१५	२८	३०	६२	५८	१८१	१३	३०

१. ०रो०

ततस्तस्यां तृतीयादिकोष्ठान्तक्रम उच्यते ।
तुर्यं विहाय संख्या[1]वद् यथालाभं नियुज्यते ॥३२५॥

इत्ये[2]वं पूरिते मेरावध[3]:स्थात् स्वशिखावधि ।
ल[4]हीनैकलघुद्वित्रिचतु:पञ्चादिलान्वितान् ॥३२६॥

तालान् विनिर्दिशेदत्र लक्ष्या[5]न् लक्षणवेदिनाम् ।

॥ इति [विरामप्रस्तारे] लघुमेरुः ॥

[विरामप्रस्तारे लघुमेरुलक्ष्यम्]

										१
						१	०	३	३	६
		१	०	२	२	३	६	९	१२	२५
१	१	१	२	३	३	७	७	१२	१७	२४

[इति विरामप्रस्तारे लघुमेरुलक्ष्यम्]

[विरामप्रस्तारे लघुविराममेरुः]

[6]मेरुर्लघुविरामाणां विरामद्रुतमेरुवत् ॥३२७॥

कोष्ठपंक्तिक्रमो लेख्यस्तथाङ्कावलिरुच्यते ।
तत्र मौलिषु सर्वेषु लिखेदेकं पृथक् पृथक् ॥३२८॥

अध:पंक्तौ मूलकोष्ठद्वये[रूपं] पुनर्द्वयो: ।
द्व्यङ्क द्व्यङ्कं विनिक्षिप्य, ततस्तु[7] पञ्चमादिषु ॥३२९॥

षष्ठं[8] त्यक्त्वोपान्त्यमुख्ययोगं[9] कृत्वा लिखेत् पुर: ।
उप[10]र्यध:स्थित: षष्ठो योगे तत्र पुन: पुन: ॥३३०॥

---

१. ०व मुधा ला०
२. ०त्येकपूरे ते
३. ध: स्यात् सुशि०
४. लघूनेक०
५. क्ष्यं
६. एका ल०
७. सर्वञ्च०
८. ष्ठे त्वन्त्योपा०
९. गान
१०. रिस्थापितष्षष्ठे

इत्थं[1] कैरंकिते मेरौ हीनैकद्वित्रिसंख्यया ।
स्यु[2]ः शिखालघुजास्ताला इयन्त[3] इति निर्दिशेत् ॥३३१॥

अथास्य लक्ष्यं दर्शयति, तद् यथा—

*

										१
				१	०	२	२	५	६	१३
१	१	२	४	५	५	९	११	१९	२६	४२

[इति विरामप्रस्तारे लघुविराममेरुः]

[विरामप्रस्तारे गुरुमेरुः]

गुरुमेरावधःपङ्क्तौ कोष्ठा[4]न् संख्यागृहावधि[5] ।
कृत्वा तदुपरिश्रेण्यो[6] हीनाः कोष्ठाष्टकैः[7] पुनः ॥३३२॥
पंक्तीनां सप्तमाः कोष्ठा मौलिकोष्ठसमन्विताः ।
……………………†……………………………………
त[8]न्मौलिष्वङ्कमेकैकं प्रथमं विलिखेत्ततः ॥३३३॥
अ[9]धः पंक्तौ [न्यसेदङ्क] [10]मेकैकं कोष्ठयोर्द्वयोः ।
तृतीयादिष्वष्टमाङ्कं विहा[यो]पान्त्यपूर्वकान् ॥३३४॥
पञ्चकोष्ठगतानङ्कान् संयोज्याऽत्र पुनः पुनः ।
ल[11]घौ च लविरामे च प्लुते[12] चैकं भवेत्ततः ॥३३५॥
द्वितीयाद्युपरिस्थासु पंक्तिष्वेव तथाष्टमे[13]म् ।
अधः[14] कोष्ठाङ्कमादाय [लिखे]द[15]ग्रे पुनः पुनः ॥३३६॥

*

१	१	२	२	१।	१		२	२	५	६	१		३	३	६२	१२
							९	११	१९	२६	१३	८	१४	२४	८६	१२६
											४०	५४,	९२	११२	२०३	१९०

† मूलपुस्तके 'कलेषु विरामलघुमेरु'रिति लिखितं वर्त्ततेऽत्र ।

१. ०ये०
२. न
३. ०यत्ता
४. ०ष्ठसं०
५. ०धेः
६. ०योर्ह्रो०
७. ०ष्ठाश्चकैः
८. स मौ०
९. ततः
१०. ए०
११. लभ्ये चलवि०
१२. तस्यैकं
१३. ०मान्
१४. ०थः
१५. ····वग्रे

एवम[1]ङ्कितपत्राङ्कमेरु[2]तालोदयं ब्रुवे ।
अध:-[3]पङ्क्त्यङ्कमारभ्य गुरुहीनैकगादिकान् ॥३३७॥
[4]क्रमादुदीरयेदङ्कै[5]रूर्ध्वाध:स्थितपंक्तिगै: ।

अथास्य लक्ष्यं दर्शयति तद् यथा

						१	०	२	२	५
१	१	२	२	५	५	१०	१३	२२	३०	५१

[इति विरामप्रस्तारे गुरुमेरु:]

[विरामप्रस्तारे प्लुतमेरु:]

प्लुतमेरा[6]विष्टतालसंख्याकोष्ठा[7]न्तिकां लिखेत् ॥३३८॥
पंक्तिमेकां, द्वितीयां तु पूर्वद्वादशकोष्ठकै: ।
शून्यं कृत्वा लिखेत्तद्वल्लिखेयु: सर्वपं[8]क्तिका: ॥३३९॥
प्रत्येकमङ्कपर्यन्तं विशेषस्तासु पंक्तिषु ।
गुरुकोष्ठे तु पङ्क्तीनां मौलिष्वेकाङ्कलेखनम् ॥३४०॥
अध:पङ्क्तावादिकोष्ठद्वयं [9]सैकं पृथक् पृथक् ।
तृतीयादिषु कोष्ठेषु त्यक्त्वा द्वादशकं च गात् ॥३४१॥
संयोज्योपान्त्यसंख्यातान् लिखेदग्रे पुन: पुन: ।
लघौ च[10] लविरामे च गुरौ चैकं नियोजयेत् ॥३४२॥

---

* ३ | १ |
१८ | ३८ |
१० | |

							१		२	२	५	६	१५	
१	१	२	२	५	५	१०	१३	२०	३०	५९	७०	११८		

१. म०ङ्क····प०
२. क०
३. ध: प०
४. कलासु वीरये०
५. ०ङ्कै: ऊर्ध्वा०
६. ०का शि०
७. ०ष्ठेति भां लि०
८. ०पंक्तय:
९. चै०
१०. चल०

द्वितीयाद्युपरिस्थासु[द्वा]दशाङ्कस्य[1] योगतः ।
अन्त्यं हित्वा लिखेदत्रोपान्त्यादीन् दक्षिणे पुनः ॥३४३॥
तालान् विलोकयेदत्र तत ऊर्ध्वासु पंक्तिषु ।
इति [2]नैकप्लुतद्वित्रिचतुःपञ्चादिदीप्तका[3]न् ॥३४४॥

अथास्य लक्ष्यं दर्शयति,

तद् यथा—

*

											१
४	१	१	२	२	५	५	११	१३	२४	३२	५५

॥इति विरामप्रस्तारे प्लुतमेरुः॥

[अथ खण्डप्रस्तारलक्षणम्]

खण्डतालान् पृथक् कर्तुमनुद्रुतविरामयोः ।
लक्ष्मीनारायणेन्द्रोऽयं निरूपयति लक्षणम् ॥३४५॥

प्रयोजिताङ्गे पूर्वस्मिन् विशेषाङ्गविहीनता ।
विद्यते, तस्य तालस्य स एष प्रथमो मतः ॥३४६॥

तमेव विषयीकृत्य चलत्यङ्गं विना तथा ।
प्रस्तारयेत् क्रमेणैव क्रमभङ्गादितीरितम् ॥३४७॥

अङ्गं स्याद् यदि वामाङ्गे वर्त्तते तदधःस्थले ।
तदङ्गं सन्न्यसेत्तत्र तत्पूर्वं तदधःस्थितम् ॥३४८॥

यथापूर्वं क्रमेणैव कृत्वा प्रस्तारयेत् सुधीः ।
एवं कृते खण्डतालाः क्रमादायान्ति सङ्करात् ॥३४९॥

[इति खण्डप्रस्तारलक्षणम्]

१	१	२	२	५	५	११	१३	२४	४२	५५	७९	१००	२१	२३३	४२९

१. ०स्थयो० २. ०तै०
३. ०मान्

[अथ विरामसंयोगमेरुलक्ष्यलक्षणम्]

विरामताले[1]संयोगमेरुलक्षणमुच्यते ।
षडूर्ध्वपंक्तयस्तत्र शिरः[2]स्थानसमन्विताः ॥३५०॥
तासु तिर्यङ्मुखा लेखाः पञ्चत्रिं[3]शल्लिखेत् क्रमात् ।
तत्र कोष्ठा[4]श्चतुस्त्रिंशत् प्रत्येकं षट्सु पंक्तिषु ॥३५१॥
लिखिता दक्षिणस्थाने पूर्वो[5]त्कोष्ठत्रयोनिताः ।
पंक्तिरेका तरेत् सप्त[6]मावलिस्तदनन्तरम् ॥३५२॥
कोष्ठैकेन विहीनत्वात् पंक्तिरन्या विधीयते ।
तदू[7]र्ध्वमावले[8]रेककोष्ठेनै[9]वं विहीनजाः ॥३५३॥
चतस्रः पंक्तयो लेख्यास्ततस्तु द्वादशावलेः ।
म[10]न्दिरद्वयहीनेन भवेयुर्दशपंक्तयः ॥३५४॥
द्वाविंशत्यावलेः कोष्ठद्वयहीना परावलिः ।
भवेत्ततस्त्रयोविंशत्यावलेरेकमन्दिरा[त्] ॥३५५॥
हीनास्तिस्रः पंक्तयः स्युस्ततष्षड्विंशतेः परम् ।
भव[11]न्त्येकेन कोष्ठेन हीनाष्षट् पंक्तयस्ततः ॥३५६॥
द्वात्रिंशदावलेरूर्ध्वं मन्दिरद्वयहीनजाः ।
पंक्तयो दश जायन्ते, द्विचत्वारिंशदावलेः ॥३५७॥
कोष्ठद्व[12]योनिता पंक्तिरेका स्यात्तदनन्तरम् ।
त्रिचत्वारिंशतः पंक्तेः कोष्ठाभ्यामूनिते[13] परे ॥३५८॥

---

१. ०र०
२. ०र०
३. ०विं०
४. ०ष्ठाश्शतं त्रि०
५. ०र्वाः कोष्ठतयोदिताः
६. ०त माविधिस्त०,
७. ०तो०
८. ०रैक०
९. ०क
१०. मण्डितद्व०
११. ०वत्ये०
१२. ०याचाद्य०
१३. ०तेधरे

द्वे पंक्ती[1] तु ततः पञ्चचत्वारिंशदनन्तरम् ।
कोष्ठेन हीनजास्तिस्रः पंक्तयः स्युस्ततः परम् ॥३५९॥
अष्टचत्वारिंशदावल्यूर्ध्वं[3] कोष्ठैकहीनतः[4] ।
चतस्रः पंक्तयस्तत्र लेख्याः स्युस्तदनन्तरम् ॥३६०॥
द्विपञ्चाशत्परं कोष्ठद्वयोनाः पञ्च पंक्तयः ।
जायन्ते, सप्तपञ्चाशदूर्ध्वं[6] गेहचतुष्टयम् ॥३६१॥
विहाय पंक्तिरेका स्यादष्टपञ्चाशदावलेः ।
द्विमन्दिरविहीनत्वादेकपंक्तिर्भवेदधः ॥३६२॥
अन्या चैकोनषष्ट्यूर्ध्वं[7][जायते] मन्दिरद्वयात् ।
विहीना[8] पंक्तिरेकाथ क्रमात् षष्ट्यावल्यनन्तरम्[9] ॥३६३॥
[10]एकैकेन क्रमाद्धीने द्वे पंक्ती भवतस्ततः ।
द्विषष्ट्यनन्तरं पंक्तिरेका कोष्ठद्वयो[11]निता ॥३६४॥
इत्यूर्ध्वपंक्तयस्तस्मिन् त्रिषष्टिरुदिता मताः ।
अतः परमधो[12]ऽधःस्थाः पंक्तयस्तिर्यगाश्रिताः ॥३६५॥
स्वेच्छातालद्रुतवशात् सम्भवन्ति पुनः पुनः ।
॥इति विरामसंयोगमेरुकोष्ठोद्धारलक्षणं समाप्तम् ॥

[अथप्रक्रियाविन्यासक्रमः]

अथ त्रिषष्टि[13]पंक्तीनां ब्रूमहे प्रक्रियां क्रमात् ॥३६६॥
तास्सर्वपंक्तिमौलिस्था भवन्त्यल्पादिविग्रहैः ।
मूलपंक्तिषु *षट्[14]स्वत्र षडङ्गानि क्रमाल्लिखेत् ॥३६७॥

---

१. ०क्तिस्तु
२. ०ट च०
३. ०योरुर्ध्वं०
४. ०ष्ठे रही०
५. ०ष्ट०
६. ०र्ध्वगे०
७. ०ष्ठ्योर्द्वं····
८. ०न०
९. ०यादन०
१०. एकेन कोष्ठहीनत्वात्
११. ०यान्विता
१२. ०थो०
१३. ०ष्ठि
१४. ०संख्याः

अतः परं द्वियोगानां प्रक्रियां वस्तुमङ्गयोः ।
विरामयुक्तयोः संज्ञामग्रे[1] सुलभवाचिकाम्[2] ॥३६८
विधाय[3] लक्ष्यते लक्ष्म, सविरामद्रुतस्य तु ।
नकारः[4] स्याद्, यकारस्तु सविरामलघो[5] [स्तथा] ॥३६९॥
पंक्तीनां सप्तमादीनां क्रमेण प्रक्रियां ब्रुवे ।
दनौ[6] दलौ दयौ[बिन्दुगुरू] बिन्दुप्लुतौ ततः[7] ॥३७०॥
नलौ नयौ नगौ[8] चैव नपावत्र[9] लयौ लगौ ।
लघुप्लुतौ यवक्रौ च य[10] प्लुतौ गप्लुताविति ॥३७१॥
द्वियोगाः स्युस्त्रियोगाः स्युर्द[11] नला दनयास्ततः ।
....*.......... ....

स्यु[12] र्दनगुरवश्चाथ द[13] नपा दलयास्तथा ॥३७२॥
*[14] दलगा द[15] लदीप्ताश्च दयगा द[16] यपास्तथा ।
[17] दगपा [18] नलयाश्चाथ नलगा[19] नलपास्तथा ॥३७३॥
नयगा[20] नयपाश्चाथ नगपा[21] लयगास्तथा ।
लयपा[22] लगपाश्चैव यगपा[23] श्चेति तत्क्रमात् ॥३७४॥

---

*. अत्र प्राप्तदर्शपुस्तके 'द्वौ बिन्दुमतः' इति लिखितमस्ति
१. ०ज्ञां तदङ्गं सु०
२. ०वाचकम्
३. ०ह्रा०
४. नि०
५. ०घु...
६. घसौदतावयौ बिन्दु०
७. ०तत नयोनयौ
८. पञ्च
९. ०पावफलयोलगाः
१०. यदिप्लु०
११. ०रन०
१२. स्युः कूदनलनयास्साथ
१३. घनपाखलयास्तव
१४. व०
१५. ०व
१६. ०ध०
१७. व०
१८. ०नलयागाथ
१९. ० गान०
२०. ०गानयथाश्चा०
२१. ०पाल०
२२. ०पागलपा०
२३. ०पाज्ञेति

चतुर्योगाः खनलैयाः कुण्डलाद्[1] यलगास्तथा ।
[2]खशिखाबिन्दुलघुर्पाः[3] कुण्डलान्नयगाः[4] क्रमात् ॥३७५॥

ततः परं[5] दनयपाः पश्चाद्[6] दनगपास्ततः ।
आकाशलयवक्राः स्युः कुण्डलाल्लयसामजाः ॥३७६॥

[7]ततो दलगपा[श्चैव] ततो[8] दयगुरुप्लुताः ।
ततो नलयगाः प्रोक्ताः परं नलयपाः स्मृताः ॥३७७॥

ततो नलगप[9]ाः प्रोक्तास्तस्मान्नयगसामजाः ।
ततो ल[10]यगदीप्ताः स्युः पञ्चयोगानथ ब्रुवे ॥३७८॥

तस्माद् द्रुतान्नलयगा बिन्दोर्नलय[12]पास्ततः ।
ततो बिन्दुर्नलगपा व्यो[13]म्नो नयगपास्ततः ॥३७९॥

अर्धमात्रो[14] लयगपास्ततो नलय[15]गप्लुताः ।
अन्तिमप्रक्रियायान्तु षडङ्गानि क्रमाल्लिखेत् ॥३८०॥

॥इति प्रक्रियावि[16]न्यासक्रमः॥

॥अथाङ्कविन्यासलक्षणम्॥

विरामतालसंयोगमेरावङ्कावलिक्रमात् ।
अथोपरिष्टादारभ्य स्यादधोऽधोऽङ्कलेखनम् ॥३८१॥

---

१. ०त०
२. ०लास्स्थलगा०
३. वाच्छिखा बि०
४. ०पा०
५. गा०
६. वयगपाः
७. मगनपा०
८. लतोथल०
९. ०तोद०
१०. ०ताः
११. मलग०
१२. ०म०
१३. मान्नलग०
१४. ०त्रा
१५. ०यथक्रपाः
१६. ०दिन्यायक्रमः

प्रथमायामूर्ध्वपंक्तौ[1]वेकादिविषमेष्वपि ।
कोष्ठेष्वेकैकमेकाङ्कं लिखेद्, द्व्यादिसमेषु तु[2] ॥३८२॥
कोष्ठेषु बिन्दुका[3]: क्षेप्याः स्वेष्टतालगृहावधि ।
पुनः पुनर्लिखेदेवं द्वितीयायामथ ब्रुवे ॥३८३॥
प्रथमे मन्दिरे बिन्दुं[4] लिखेद्रूपं द्वितीयके ।
ततः क्रमेण कोष्ठेषु त्रिषु त्रिषु निगद्यते ॥३८४॥
द्वौ कोष्ठौ शून्यवन्तौ स्त[5]स्तृतीयो रूपवान् भवेत् ।
एवं पुनरधोऽधः स्युस्त्रिषु त्रिषु पुनः पुनः ॥३८५॥
तृतीयायामाद्यकोष्ठ[6]द्वयं बिन्दुसमन्वितम् ।
कुर्यात् तृतीयं रूपाढ्यं ततः परमुदीर्यते ॥३८६॥
त्रिषु कोष्ठेषु बिन्दुः स्यात् तुर्ये [7]त्वेकाङ्कलेखनम् ।
एवं चतुश्चतु[8]:कोष्ठेष्वधोऽधो लेखन[9]क्रमः ॥३८७॥
चतुर्थ्यामथ चत्वारः कोष्ठाः स्युश्शून्संयुताः ।
पञ्चमो रूपवानत्र भवेदथ निरूप्यते ॥३८८॥
पञ्च कोष्ठाश्शून्यवन्तः षष्ठस्त्वे[10]काङ्कसंयुतः ।
एवं षट्षण्मन्दिरेषु लिखेदङ्का[11]नधः क्रमात् ॥३८९॥
पञ्चम्यामथ कोष्ठेषु षट्सु [12]शून्यानि सप्तमे ।
न्यसेदेकाङ्कमेवात्र ततः परमिहोच्यते ॥३९०॥
[13]सप्त कोष्ठाश्शून्यवन्तस्त्वष्टमस्त्विह रूपवान् ।
एवमष्टसु कोष्ठेषु लिखेदङ्कान् पुनः पुनः ॥३९१॥

---

१. ०तौ वे०
२. तम्
३. ०का
४. ०दून्
५. स्थः तृ०
६. ०ष्ठे द्व०
७. त्वङ्कावले०
८. ०तुः को०
९. ०नं क्र०
१०. ०त्वंकांक०
११. ०द०
१२. मा०
१३. पञ्च०

षष्ठ्यां दशसु[1] कोष्ठेषु बिन्दूनेकादशे विधुम्[2] ।
विन्यस्याथ क्रमं वक्ष्ये कोष्ठेष्वेकादशस्विह ॥३९४॥
लिखेद् बिन्दून् द्वादशे तु रूपमेवं पुनः पुनः ।
प्रतिद्वादशकोष्ठेषु लिखेदन्त्यावधि[3] त्वतः ॥३९५॥
पूर्वासामत्र पङ्क्तीनां षण्णां संज्ञा निगद्यते ।
शिरस्स्वँग्रे[4] क्रियानामवत्यष्षट् पङ्क्तयः क्रमात् ॥३९६॥
अथ[5] द्वियोगपङ्क्तीनामिति[6] न्यासो निगद्यते ।
लेख्यपंक्त्युपरिश्रेणीषु[7] तिर्यश्चितमाश्रितान् ॥३९७॥
कोष्ठाङ्कान्, स्वशिरःस्थानकोष्ठाङ्कांश्च[8] प्रयत्नतः ।
परिगृह्य विपर्यासविधानेन क्रमादिह ॥३९८॥
मार्गद्वयस्यान्त्यमङ्कं त्यक्त्वोपान्त्यादिषट्सु च ।
[क्रमाद]ङ्कान्[9] समादाय संयोज्य विलिखेदधः ॥३९९॥
मार्गयोरुभयोरङ्काभावाच्छून्यं विनिक्षिपेत् ।
अत्रैवायं विपर्यासक्रमं[10] स्तु प्रोच्यते मया ॥४००॥
द्रुतमुख्यषडङ्कानि पूर्वषट्पंक्तिषु क्रमात् ।
निवेशितानि पूर्वार्थो योगपंक्त्यङ्कलेखने ॥४०१॥
विपरीतक्रियात्वेन फलत्रितयमीयते ।
प्लुतपंक्तेरुपान्त्यस्य ग्रहणं स्यात्ततः परम् ॥४०२॥
गुरुपंक्तौ तृतीयस्य परिग्रहणमाचरेत् ।
विरामलघुपंक्तौ तु तुर्यग्रहणमाचरेत् ॥४०३॥
लघुपंक्तौ तु षष्ठस्य ग्रहणं परिकीर्तितम् ।
विरामबिन्दुपंक्तेः[11] स्यादष्टमग्रहणन्ततः ॥४०४॥

---

१. ०मको०
२. ०दुः
३. ०या विधिस्त्वतः
४ ०त्व०
५. यो द्वि०
६. ०गादिपं०
७. ०णी या विपश्चित्तथाश्रि०
८. ०ठाग्रांश्च
९. ····भं समा०
१०. ०मा०
११. ०क्तिः

[1]द्रुतपङ्क्तौ द्वादशस्य ग्रहणं स्यादिति क्रमः ।
लेख्यपंक्तिशिरः[2]स्थानप्रक्रियाभाग[3]रूपतः ॥४०५॥

तुर्यादुपान्त्यादिकोष्ठग्रहणं सावधानतः ।
प्रक्रियाभागरूपस्य क्रमोऽप्यत्र निगद्यते ॥४०६॥

अत्र द्वियोगपंक्तीनां हेतवः पूर्वपंक्तयः ।
सप्तम्या[4]मथ पंक्तौ तु व[5]र्त्तते दद्वयं तथा ॥४०७॥

भागद्वयं विधायात्र पूर्वषट्पंक्तिषु क्रमात् ।
द[6]पंक्ते[7]श्च [8]नपंक्तेश्च संग्रहेदङ्कसन्ततिम् ॥४०८॥

इति द्वियोगपंक्तीनां विभागस्समुदीरितः ।
भागाष्षडङ्गमाश्रित्य कथ्यन्ते ते[9]न लक्षणम् ॥४०९॥

षडङ्गेषु प्लुतं त्यक्त्वा पञ्चाङ्गेषु समुद्भवेत् ।
प्लुतोपान्त्यं तत्तृतीयं तच्चतुर्थं च पञ्चमम् ॥४१०॥

त[10]त्षष्ठं चक्रवत्त्यक्त्वा लिखिते सति त[11]द्भवाः ।
भागास्पदेन जायन्ते पञ्चाङ्गै रुपलक्षिता[12]ः ॥४११॥

अथ त्रियोगपङ्क्तीनां द्वियोगा[13] एव साधकाः ।
आद्या पङ्क्तिस्त्रियोगा स्या[द्]दनलप्रक्रियात्मिका॥४१२॥

कथ्यते तद्विभागस्तु भवत्यङ्गद्वयात्मकः ।
दनाभ्यां च दलाभ्यां च नलाभ्यामिति तत्त्रिधा ॥४१३॥

---

१. ध्रुवप०
२. ०र०
३. ०व०
४. ०दनप०
५. ग०
६. ०दं प०
७. ०ति०
८. ०न पङ्तिश्च
९. के०
१०. तक्षथ
११. तद्यवाः
१२. ०ता
१३. ०गायैव

एवं द्वियोगपङ्क्तिभ्यः पङ्क्तित्रयपरिग्रहः ।
स्युश्चतुर्योगपङ्क्तीनां त्रियोगा एव हेतवः ॥४१४॥

तत्र भागक्रमं वक्ष्ये चतुर्योगासु[1] चादिमा ।
पङ्क्तिर्दनलयाङ्गा[2] स्यात् तद्भागास्त्र्यङ्गरूपगाः ॥४१५॥

दनला दनयाश्चाथ दलया नलया इति ।
चत्वारस्ते[3]त्रियोगेभ्यः पङ्क्तिग्रहणमाचरेत् ॥४१६॥

भवन्ति पञ्चयोगानां चतुर्योगास्तु हेतवः ।
त्रित्रिभागक्रमं वक्ष्ये पञ्चयोगासु चादिमा ॥४१७॥

द्रुतान्नलयगाङ्गा[4] स्यात् तद्भागाश्चतुरङ्गजाः ।
आदौ[5] दनलयाः[6] ख्यातास्ततो दनलगाः स्मृताः ॥४१८॥

ततः परं दनयगास्ततो[7] दलयगास्ततः ।
ततो नलयवक्राः स्युः पञ्चभागा अमी मताः ॥४१९॥

[8]तांश्चतुर्योगपङ्क्तिभ्यः समादाय लिखेदधः ।
षड्योगपङ्क्तिरेकस्यां पूर्वपञ्चाङ्गपङ्क्तयः ॥४२०॥

हेतवः स्युः समुद्भूतभागषट्कं निगद्यते ।
द्रुतान्नलयगाः प्रोक्ता बिन्दोर्नलगपास्ततः ॥४२१॥

शून्यान्नलगदीप्ताःस्युर्व्यो[9]म्नो नलगपाः स्मृताः ।
बिन्दोर्लयगपाश्चाथ क्रमान्नलयगप्लुताः ॥४२२॥

तान् पञ्चयोगपङ्क्तिभ्यः समादाय क्रमादिति ।
षडङ्गपङ्क्तौ लेख्याः स्युरुपान्त्यादिविधायकाः ॥४२३॥

---

१. गाश्च
२. ०दनं याङ्का
३. ०तान् त्रि०
४. ०ङ्का
५. ०दा
६. ०या
७. ०नन्तस्तः त०
८. ता०
९. ०मान्त०

एवं द्वियोगपङ्क्तिभ्यः पङ्क्तित्रयपरिग्रहः ।
स्युश्चतुर्योगपङ्क्तीनां त्रियोगा एव हेतवः ॥४१४॥
तत्र भागक्रमं वक्ष्ये चतुर्योगा[1]सु चादिमा ।
पङ्क्तिर्दनंलयाङ्गा[2] स्यात् तद्भागास्त्र्यङ्गरूपगाः ॥४१५॥
दनला दनयाश्चाथ दलया नलया इति ।
चत्वारस्तै[3]स्त्रियोगेभ्यः पङ्क्तिग्रहणमाचरेत् ॥४१६॥
भवन्ति पञ्चयोगानां चतुर्योगास्तु हेतवः ।
त्रित्रिभागक्रमं वक्ष्ये पञ्चयोगासु चादिमा ॥४१७॥
द्रुतान्नलयगाङ्गा[4] स्यात् तद्भागाश्चतुरङ्गजाः ।
आदौ[5] दनलयाः[6] ख्यातास्ततो दनलगाः स्मृताः ॥४१८॥
ततः परं दनँ[7]यगास्ततो दलयगास्ततः ।
ततो नलयवक्राः स्युः पञ्चभागा अमी मताः ॥४१९॥
[8]तांश्चतुर्योगपङ्क्तिभ्यः समादाय लिखेदधः ।
षड्योगपङ्क्तिरेकस्यां पूर्वपञ्चाङ्गपङ्क्तयः ॥४२०॥
हेतवः स्युः समुद्भूतभागषट्कं निगद्यते ।
द्रुतान्नलयगाः प्रोक्ता बिन्दोर्नलगपास्ततः ॥४२१॥
शून्यान्नलगदीप्ताःस्युर्व्यो[9]म्नो नलगपाः स्मृताः ।
बिन्दोर्लयगपाश्चाथ क्रमान्नलयगप्लुताः ॥४२२॥
तान् पञ्चयोगपङ्क्तिभ्यः समादाय क्रमादिति ।
षडङ्गपङ्क्तौ लेख्याः स्युरुपान्त्यादिविधायकाः ॥४२३॥

---

१. गाश्च
२. ०दनं याङ्का
३. ०तान् त्रि०
४. ०ङ्का
५. ०दा
६. ०या
७. ०नन्तस्तः त०
८. ता०
९. ०मान्न०

एवं त्रिषष्टिपङ्क्तीनामङ्कन्यासादनन्तरम् ।
अयोगानां च योगानां ताला[1]नां दर्शनं ब्रुवे ।।४२४।।
तिर्यक्पङ्क्तिस्थितैरङ्कै[2]स्तत्तन्मौल्यङ्कयोगजाः[3] ।
ताला इयन्त इत्येवं द्रष्टव्यं, तत्र शून्यतः ।।४२५।।
ताला[4]भाव इति ज्ञेयो मूलषट्पङ्क्तयः क्रमात् ।
प्राहुः[सर्वद्रुतादित्वं]ताला[5]भावं तु शून्यतः ।।४२७।।

।। इति विरामसंयोगमेरुलक्षणम् ।।

अथास्य लक्ष्यं दर्शयति, तद् यथा—

अथ पंक्तिक्रमेणोपरिष्टा[6]दारभ्याङ्का लिख्यन्ते ।

।।अथैका[7]ङ्कपंक्तिसंख्याः[8]।।

१ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० |
१ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | १[० |
१ | ० | १ | ० | १]

।।इति[9] द्रुतपंक्तिसंख्या ।।–१

[०]१ | ० | ० | १ | ० | ० | १ | ० | ० | १ | ० | ० | १ |
० | ० | १ | ० | ० | १ | ० | ० | १ | ० | ० | १ | ० | ० |
१ | ० | ०[१ | ० | ० | १]

।।इति [द्रुतविराम]पंक्तिसंख्या ।।–२

*० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० |

*. प्राप्तपाण्डुपुस्तके इतः प्रागेवं लिखितमस्ति—२ | ० | ० | ० | २ |
० | ० | ० | १ | ० | १ | ० | १ | ० | इति संख्या ध्रुवपंक्तिसंख्या
। १ | १ | ० | ० | १ | ० | ० | १ | ० | ० | १ | ० | ० | १ |
० | ० | १ | ० | ० | १ | ० | ० | १ | ० | ० | १ | ० | ० |
इति संख्या ।।२ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० |
० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ |
० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | —इति संख्या ।।२।।

---

१. ०ता०
२. ०रंशैः
३. ०जम्
४. ०ल०
५. ०ल०
६. ०ष्ठा०
७. प्रथमपंक्ति०
८. ०या
९. ०ति संख्या ध्रुवप०

१ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | १ | ० | ० |
० | १ | ० | ० | ०[१]

॥इति लघुपंक्तिसंख्या ॥–३

[1]० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ०—
० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | ०[१ |
० | ० | ० | ० | ० | १]

॥इति विरामलघुपंक्तिसंख्या ॥–४

[2]० | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० |
१ | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | ० | ० |
० | १ | ० | ० | ० | ० |

॥इति गुरुपंक्तिसंख्या॥–५

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | [3]१ | ० | ० | ० |
० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | ० | ० |
० | ० | ० | ० | ० | १ |

॥इति प्लुतपंक्तिसंख्या ॥–६

॥अथ द्वियोगपंक्तिसंख्याः॥

[4]२ | ० | [5]३ | ३ | ४ | ६ | ९ | १० | १६ [२०] २७ | ३६ |
४९ | ६३ | ८६ | ११३ | १५० | [6]१९९ | २६५ | ३४९ | [7]४६५ |
[६१५] ८१५ | [8]१०८० | १४३२ | १८९५ | २५१३ | ३३२८ | ४४०९ |
५८४१ | ७७३९ |

॥इति [०ℰ–पंक्ति]संख्या॥–७

---

१. ० | ० | ० | ० | ० | १
२. ० | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० |
० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | ० | | इति०
३. १ | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० |
० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | ० | ० |
० | ० | ० | ० | १ | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० |
० | —इति०
४. ० | ० | २ |
५. | २ |
६. | १९५० |
७. | १६५
८. | १००८५ | १०४०३२ |

१२ | ० | ३ | ० | ७ | ० | ११ | ० | २० | ० | ३२ | ० | ५४ | ० | ८७ | ० | १४३ | ० | २३१ | ० | ३७६ | ० | ६०८ | ० | २९८६ | ० | १५९५ | ० | [3]२५८३ | ० |

॥इति [०। –पंक्ति]संख्या॥–८

२ | ० | ३ | ० | ४ | ० | ८ | ० | १२ | ० | १७ | ० | २७ | ० | ४० | ० | ५८ | ० | ८७ | ० | १२८ | ० | १८७ | ० | २७६ | ० | ४०५ | ० |

॥इति of [–पंक्ति]संख्या–॥–९

० | ० | २ | ० | ३ | ० | ४ | ० | ५ | ० | ९ | ० | १३ | ० | १८ | ० | २४ | ० | ३५ | ४० | ४९ | ० | ६८ | ० | ९३ | ० | १३० | ० |

॥इति [०ऽ–पंक्ति]संख्या॥–१०

[5]० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | २ | ० | ३ | ० | ४ | ० | ५ | ० | ६[6] | ० | ७ | ० | ११ | ० | १५ | ० | २० | ० | २६ | ० | ३३ | ० | ४१ |

॥इति [०ऽ–पंक्ति] संख्या॥–११

[२ | ० | ० | ३ | ३ | ० | ४ | ६ | ४ | ५ | १० | १० | ११ | १५ | २० | २२ | २७ | ३५ | ४३ | ४९ | ६३ | ७९ | ९२ | ११२ | १४४ | १७१ | २०४ | २५७ | ३१६]

[इति ऽ।–पंक्तिसंख्या]–१२

---

१. | ० | २ | ३ | ० | २ | ० | ११ |
२. | ६८६ |
३. | २५७८३ |
४. | ० | ४४ | ० | ४९ |
५. | ० | ० | ० | ० | ० | ० | २ |
६. | ६ | ६ | ० | १० | ७०४ | १५ | ८ | १५ | ८ | १० | २१ | ९ | २० | १८ | १५ | इति०

[२ | ० | ० | ३ | ० | ० | ७ | ० | ० | ११ | ० | ० | २० | ०
| ० | ३२ | ० | ० | ५४ | ० | ० | ८७ | ० | ० | १४३ | ० | ०]

[इति δf–पंक्तिसंख्या]–१३

[० | ० | २ | ० | ० | ३ | ० | ० | ४ | ० | ३ | ५ | ० | ६ |
६ | ० | १० | ७ | ४ | १५ | ८ | १० | २१ | ९ | २० | २८ | १५]

[इति δs–पंक्तिसंख्या]–१४

०[1] | ० | ० | ० | ० | ० | २ | ० | ० | ३ | ०[2] | ० | ४ | ० |
० | ५ | ० | ० | ९ | ० | ० | १३ | ० | ० | १८ | ० | ०

॥इति [δs̄–पंक्ति]संख्या॥–१५

०[3] | ० | २ | ० | ० | ० | ३[4] | ० | ३ | ० | ४ | ० | ६ | ० |
९ | ० | १०[०]१६ | ० | २० | ० | २७ | ० | ३६[5] | ० | ४९

॥इति [|f –पंक्ति]संख्या॥–१६

[० | ० | ०]२ | ० | ० | ० | ३ | ० | ० | ० | ७ | ० | ० | ०
| ११ | ० | ० | ० | २० | ० | ० | ० | ३२ | ० | ०[५४]

॥इति [|s –पंक्ति]संख्या॥–१७

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | २ | ० | ० | ० | ३ | ० | ० | ० |
४ | ० | ० | ० | ८ | ० | ० | ० | १२[6] | ० | ० | ० |

॥इति [|s̄ –पंक्तिसंख्या]॥–१८

[० | ० | ० | ० | ० | २ | ० | ० | ० | ० | ० | ३ | ० | ३ |
० | ० | ० | ४ | ० | ६ | ० | ४ | ० | ५ | ० | १० | ०]

[इति fs पंक्तिसंख्या]–१९

---

१. ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | २ | —
२. | २ | ० | ४ | २ | ० | —
३. | ९ |
४. ३ | ० | ० | ० | ६ | —
५. ३७ | ० | ४४ | ० | इति०
६. | १३ | —

[० | ० | ० | ० | ० | ० | ०][1]० | ० | २ | ० | ० | ० | ० |
० | ३ | ० | ० | ० | ०[०][2]७ | ० | ० | ० | ० | ०

॥इति [ſऽ –पंक्ति]संख्या॥–२०

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | २ | ० | ० | ०
| ० | ० | ० | ० | ३ | ० | ०[० | ३ | ० | ० | ०]

॥इति [ऽऽ–पंक्ति]संख्या॥–२१

॥इति द्वियोगसंख्या[3]: ॥

॥अथ त्रियोगपङ्क्तिसङ्ख्याः[4]॥

६ | ० | १२ | १२ | ३२ | ३० | ८० | ९०[5] | १८२ | २२५[6] |
४२१ | ५४३[7] | ९४२ | १२६७[8] | २०९९ | २८८७ | ४६२८ | ६४८७[9]
| १०१५३ | १४४०० | २२१७२[10] | ३१७३४ | ४८२४० | ६९४९८ |
१०४७०८[11] | १५१६३८ | २२६७५८ |

॥इति[०ऽ -पङ्क्ति]सङ्ख्या॥–२२

[12]६ | ० | १२ | १२ | २० | ३० | ६२ | ६०[13] | १३२ | १६५ |
२५६ | ३६३ | ५७९ | ७४२ | १२०० | १६३१ | २४०६ | ३३९३ |
५०२२[14] | ६८९० | १०२०८[15] | १४२४३ | २०५०६ | २८९२४ |
४१६२२ |

॥इति[०ऽſ-पङ्क्ति]सङ्ख्या॥–२३

---

१. | ९ | ८ | १ | ० | ० | ० | ० | ० | ० | २ | —
२. | १४ | ० | ६ | ० | ४ | ० | ५ | ० | ० | ० | इति०
३. ० | ख्या
४. ० | ख्या
५. ७० |
६. १२५ |
७. ५७८३ |
८. १२२६ | ७० | ९९ |
९. ९६४८७ | १०११२ |
१०. २२०११३ | ३१०७३४ |
४८०२४० | ६९०४९८ |
११. ॥लक्षानु॥४७०८ | रेंडुलक्षलुन्नु |
२६०७५८ | -इति०
१२. ० | ० | ९ | ६ | १ | १२ |
१० |
१३. ११० | १७२ |
१४. | ५१२२ |
१५. ११०२०८ | १४०२४५ |
२०००५०६० | २८०९२४ |
४१०६२२ |

० | ६ | ० | १२ | १२ | २० | ३० | ५० | ६० | ११४ | १३५ |
२२६ | ३०३ | ४५४ | ६२२ | ९२७ | १२५६ | १८५२ | २५३२ |
३६५६ | ५०४६[1] | ७१९६ | ९९४८ | १५०९७[2] |

।।इति[०ऽऽ-पङ्क्ति]सङ्ख्या।।–२४

[3]० | ० | ० | ० | ० | ६ | ० | १२ | १२ [२०]३० /५० | ६० |
१०२ | १३५ | १९६ | २७३ | ४०६ | ५३२ | ७९२[१०७६]१५१४ |
२०९७[4][२९४९]

।।इति[०ऽऽ पङ्क्ति]सङ्ख्या।।–२५

[5]६ | ० | १२ | ० | ३२ | ० | ७२ | ० | १५२[6] | ० | ३११[7] |
०[६२५ | ०]१२२५[8] | ० | २३७८ | ० | ४५६६ | ० | ८७०० | ० |
१६४७५[9][०]

।।इति[०।ऽ पङ्क्ति]सङ्ख्या।।–२६

[10]० | ६ | ० | १२ | ० | ३२ | ० | ६० | ०|१३४ | ० | २५१ |
० | ९२२[11] | ० | १७५४ | ० | ३२·७[12] | ० | ५९३७[०]

।।इति[०।ऽ पङ्क्ति]सङ्ख्या।।–२७

[13]० | ० | ० | ० | ० | ६ | ० | १२ | ० | ३२ | ०|६० | ० |
१२२ | ०[२२१ | ०]४२२ | ० | ७५७ | ० | १३८६[14][०]

।।इति[०।ऽ पङ्क्ति]सङ्ख्या।।–२८

---

१. ५००४६ | ७००१९६ |
२. ११०४९७ |
३. ० | ० | ० | ० | ० | ० |
=१ | १२ |
४. २९१७ |
५. ९ |
६. १ | २ |
७. ३ | ११ |
८. ९२२५ |
९. १६०४७५ |
१०. ००० |
११. १२२ |
१२. ३२२२ |
१३. ० | ० | ० | ० | ० | ० |
१४. १३८७ |

१० | ० | ० | ६ | ० | १२[2] | ० | [२० | ०]४२ | ० | ८४ | ०|
१४६ | ० | २५७ | ० | ४५३[3] | ० | ७८० | ० | १३२४ | ० |

॥ इति[०ऽ पंक्ति]संख्या ॥–२९

०[4] | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ६ | ० | १२[5] | ० | २० | ०|
४२ | ० | ७२ | ० | ११६ | ० | २०९[6] | ० | ३४८ | ० |

॥ इति[०ऽ पंक्ति]संख्या ॥–३०

[7]० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ६ | ० | १२ | ० | २०
| ० | ३० | ० | ५४ | ० | ८६ | ० | १४४[०]

॥ इति[०ऽऽ पंक्ति]संख्या ॥–३१

६ | ० | ० | १२[8][१२]० | ३२[9] | ३० | २० | ६०[९० | ६०]१५२
| १९५ | २०० | ३२६ | ४८० | ४९० | ७९५ | १०५०[10] | १२६० |
१७७७[11] | २४५३ |

॥ इति[ऽ।। पंक्ति]संख्या ॥–३२

६ | ० | ० | १२ | १२ | ० | २० | ३० | ३२ | ३० | ६० | ९०
| १०२ | १०५ | २०० | १५१[12] | २९० | ३८५ | ५६२ | ६९० |
८९३[13]

॥ इति[ऽ।ऽ पंक्ति]संख्या ॥–३३

---

१. ९ | ३ | ० २. ११२ ३. ० | ५३
४. ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ०
५. ११२ | ० | २२ | ० | २० | १ | २ | ० | ७२
६. २५००९ | ० | ३ | ५८ | —
७. | ० | ८. | ११२ |
९. | ३२ | ० | ३० | ० | ० | २० | ० | ६० | १५२ |
१०. | १५० | ११. | १७०७७७ |
१२. | २० | ० | २०९० | १३. | ८९७ |

० | ० | ० | ० | ६ | ० | ० | १२ | १२[1] | ० | २० | ३० | २०[2]
३० | ६० | ६० | ८४ | १०५ | १४० | १९१ | २४०

॥ इति[ऽ।ऽ पंक्ति]संख्या ॥–३४

० | ० | ६ | ० | ० | १२ | ० | ० | ३२ | ० | १२ | ६० | ०
| ३० | १२२ | ० | ९० | २२१ | २० | १९५ | ४१० |

[इति ऽ।ऽ पंक्ति]संख्या–३५]

० | ० | ० | ० | ० | ० | ६ | ० | ० | १२ | ० | ० | ३२ | ०
० | ६० | ० | ० | १३४ | ० | ० |

[इति ऽ।ऽ पंक्ति]संख्या–३६

[०]० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ६ | ० | ० | १२ | ० | ० |
२० | ० | १२ | ३० | ०[३०]५४

॥ इति[ऽऽऽ पंक्ति]संख्या ॥–३७

० | ० | ० | ६ | ० | ० | ० | १२ | [०] १२ | ० | ३२]०[3] |
३० | ० | ८० | ० | ९० | ० | [१८२ | ०]

॥ इति[।ऽ पंक्ति]संख्या ॥–३८

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ६ | ० | ० | ० | १२ | ० | २० |
० | ३० | ० | ६२ | ० |

॥ इति [।।ऽ पङ्क्ति] सङ्ख्या ॥—३९

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ६ [० | ० | ० | १२]
० | ० | ० | [4]३२ | ० | ० | ०[5]

॥ इति [।ऽ ऽ पङ्क्ति] सङ्ख्या ॥—४०

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | ० [० | ० | ० | ६ | ० | ० |
० | ० | ० | १२[6] | ०[१२ | ०]

॥ इति [। ऽ ऽ पङ्क्ति] सङ्ख्या ॥—४१

[इति त्रियोगपङ्क्तिसङ्ख्याः]

---

१. | ११२ |
२. | २० | २१ | ३० |
३. | ० | ९ | ३० |
४. | ३३ |
५. | ० |
६. | ११२ |

॥ अथ चतुर्योगपङ्क्तिसङ्ख्याः ॥

२४ | ०[3] | ६० | ६० | १८०[१८०]५७०[4] | ६०० |१४७६ | १८६०[5]
३१०४ | ५०८२ | १०१०८ | १३६५०[6] | २५२९४ | ३५७४४ | ६२८४८
९०५४० | १५४५१ | २२५१६२ | ३७५५५२

॥ इति [०४ा पङ्क्ति] सङ्ख्या ॥–४२

२४[7] | ० | ६० | ६० | १८० | १८० | ५१० | ६००[8] | १३५६ |
१६८० | ३४८४ | ४६३२[9] | ८६९८ | ११९७० | २१४७२ | ३०२९४ |
५२०१० | ७४८२० | १२४८४८

॥ इति [०ऽ।ऽ पङ्क्ति] सङ्ख्या ॥—४३

० | ० | २४[०]६० | ६० | १८०[10][१८० | ५१०]६०० | १२९६ |
१६८०[11][३३०४ | ४४५२ | ८१५८]११३४०[12] | १९७१२ |

॥ इति[०ऽ।ऽ पङ्क्ति]सङ्ख्या ॥–४४

२४ | ० | ६० | ६० | १२० | १८० | ३९०[13] | ४२० | ९९६[14] |
१२३० | २२२४[15] | ३१६२ | ५३७६[16] | ७३५० | १२५९४ | १७४८४ |
२८२२२

॥ इति[०ऽ।ऽ पङ्क्ति]सङ्ख्या ॥–४५

---

१. ०म०
२. ०या
३. | ७ |
४. | १७० | ६० |
५. | ३११४ |
६. १३०६०५०, २५०२९४, ३५०-५४४, ६६०८४०, ९९०९४०, लक्षानु ५४०३३०, रेण्डुलक्ष-लुन्नु, २४०३०२, मूडुलक्षलुन्नु ७४०७५३,
७. ?०४
८. ६०
९. ४६३३, ८६९८०, ०, ०, ९७०, २१०४६२, ३०२९४, ५२००-२०, ७४०८२० लक्षानु, २४०-८४८०
१०. १५०,
११. १७८० | ३०३४ | ४४०५२ | ८०१६ | ८,
१२. ११०३४० | १९०६२,
१३. ३०९,
१४. ७९६,
१५. २१२४,
१६. ५३०७६ | = | ७३५० | १०५९४ | १०७४८४ | २८०-२२२॥ इतिसंख्या ॥४५॥ ० | ०?००० | २४ | ० | ६० | ६० | १२० | १८० | ३५० | ४२० | ६९६ | १२३० | २१-२४ | ३१६२ | ५३७६।७३५०। १०५०९४।१७०४८४।१८०२२२

०[१] | ० | ० | २४ | ० | ६० | ६० | १२० | १८० | ३९० | ४२०[२] | ९३६ | १२३० | २०४४[३] | २८८२ | ५०१६

॥ इति[०८ऽऽ पङ्क्ति]सङ्ख्या ॥–४६

० | ० | ० | ० | ० | २४ | ० | ६० | ६० | १२० | १८० | ३३० ४२० | ८१६ | १०५० | १८०४ |

॥ इति[००ऽऽ पङ्क्ति]सङ्ख्या ॥–४७

२४ | ० | ६० | ० | १८० | ० | ४५० | ० | १११६ | ० | २५४४ | ० | ५७५२[० | १२५५२ | ०]

॥ इति[०।ऽ पङ्क्ति]सङ्ख्या ॥–४८

० | ० | ० | २४ | ० | ६० | ० | १८० | ० | ४५०[५] | ० | १०५६ | ० | २३६४ | ० |

॥ इति[०।ऽ पङ्क्ति]सङ्ख्या ॥–४९

० | ० | ० | ० | ० | २४ | ० | ६० | ० | १८० | ० | ३९० | ०[६] | ९३६ | ० |

॥इति[०।ऽऽ पङ्क्ति]सङ्ख्या॥–५०

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | २४ | ० | ६०[७] | ० | १२० | ० [२७० | ०]

॥इति[०ऽऽऽ पङ्क्ति]सङ्ख्या॥–५१

[८]२४ | ० | ० | ६० | ६० | ० | १८०[९] | १८० | १८० | ३९० ६०० | ६०० | १२६६ | [१०]१४७० | २१४०

॥ इति[ऽ।ऽपङ्क्ति]सङ्ख्या ॥–५२

---

१. ०४?०००२४,
२. ४००।३३६,
३. २४।४।२९८२,
४. ०।९।०।२४,
५. ४०।०।०।११५६।०।२७६४।०,
६. | ० | ० | ९० |
७. | ४० |
८. | ३४ |
९. | १ | ० | १८० | १९० |
१०. | ४३७० |

० | ० | २४ | ० | ० | ६० | ६० | [०] [1]१८० | १८० | १२० ३९० | ६००

* ॥ इति [ऽ।ऽ पङ्क्ति] सङ्ख्या॥—५३

० | ० | ० | ० | २४ | ० | ० | ६० | ६० | [2]० | १२० | १८० | १८०

॥ इति [ऽ।ऽऽ पङ्क्ति] सङ्ख्या ॥—५४

० | ० | ० | ० | ० | ० | २४ | ० | ० | ६० | ० | ० | १८०

॥ इति [ऽऽऽ पङ्क्ति] सङ्ख्या ॥—५५

० | ० | ० | ० | ० | ० | ० | २४[3] | ० | ० | ० | ६० | ०

॥इति [।।ऽऽ पंक्ति] संख्या ॥—५६

[इति चतुर्योगपंक्तिसंख्याः]

[अथ पञ्चयोगपंक्तिसंख्याः]

१२० | ० | ३६०[4] | ३६० | १२०० | १२६० | [5]४१४० | ४६२० | १२१०४ | १५५४० | ३५२८० | ४७४६० | ९९०५६४

॥ इति [०ऽ।ऽ पंक्ति] संख्या ॥—५७

० | ० | १२० | ०[6] | ३६०[7] | ३६० | १२०० | १२६० | ४१४० | ४६२० | ११८४४

॥ इति [०ऽ।ऽ पंक्ति] संख्या ॥—५८

---

* प्राप्तप्राण्डुपुस्तके तु इह काश्चन सङ्ख्या असम्बद्धरूपेण लिखिताः सन्ति ताश्चैताः—७७ | ० | ० | ० | ० | २४० | ० | ६० | ६० | ० | ११० | १२० | ० | १८० | १८० | ३६० | ६०० | ६०० १२६६ | १४७० | ११०४० | इति संख्या ॥५८॥

१. | १८२ |

२. | १० |

३. | २४ | ० | ० | ० | ० | ६०

४. | ३ | ० |

५. | १२१४० | ४६२१ | १२ २४ | १५० | ४० | १५०२८० | ४७०-४६० |

६. | ० | ० | ३६० |

७. | ३०६० | १२०१२६० | ४ | १४० | ४६२० |

१२० | ० | ३६०[३६०] १२०० | १२६० | ३७८० |

॥ इति [०ऽ।ऽऽ पंक्ति] संख्या ॥—५९

१२० | ०[१] | ३६०[३६०] ८४०

॥ इति [०ऽ।ऽऽ पंक्ति] संख्या ॥—६०

१२० | ० | ३६० | ०

[इति ०।ऽऽ पंक्तिसंख्या—६१]

१२० | ० | ० |

[इति ।ऽऽऽ पंक्तिसंख्या—६२]

॥ इति पञ्चयोगसंख्याः[२] ॥

॥अथ षड्योगः ॥

[७२०]

[इति ०ऽ।ऽऽ पंक्तिसंख्या—६३]

॥ इति षड्योगपंक्तिस्समाप्ता ॥

[अथ देशीतालाः]

अथाधुना देशभागान्वितान् जातिलयान्वितान् ।
प्रभू[३]तानिष्टयो[गेभ्यो देशितालान्]ब्रुवेऽधुना ॥४२७॥
उद्देशलक्षणे तेषां परीक्षां च यथाक्रमम् ।
*आदितालो द्वितीयश्च तृतीयश्च चतुर्थकः ॥४२८॥
पञ्चमो निःशङ्क[४]लीलो दर्पण[५]ः सिंहविक्रमः ।
रतिलीलः सिंहली[६]लः कन्द[७]र्पोवीरविक्रमः ॥४२९॥
रङ्ग[८]ः श्रीरङ्गचं[९]च्चर्यौ प्रत्यङ्गो यतिलग्नकः ।
राजचूडामणी[१०] रङ्गद्योतो[११] रङ्गप्रदीपकः ॥४३०॥

---

* सङ्गीतरत्नाकरोक्तदेशीतालोद्देशस्यानुसरणमत्र विद्यते (सं० र. ५/२३९)

१. | १ |
२. ०या
३. ०भदाविष्ट....
४. ०शंशलला०
५. ०णसिंहातिश्रमः
६. ०ल०
७. ०दपोलिरवि०
८. ०ङ्गश्री०
९. ०चश्चर्य प्रत्यङ्गा०
१०. ०णेर०
११. ०तोर०

राजतालो वर्णतालः[1] सिंहवि[2]क्रीडितो जयः ।
वनमाली हंसनादः[3] सिंहनादः[4] कुडु[5]क्ककः ॥४३१॥

तु[6]रङ्गलीलः[7] शरभलीलः[8] स्यात् सिंहनन्दनः ।
त्रिभङ्गिरङ्गाभरणो मं[9]ण्ठकः कोकिलप्रियः ॥४३२॥

निःसारु[10]को राजविद्याधरश्च जयमङ्गल[11]ः ।
मल्लिकामोदविजयानन्दौ क्रीडा[12]जयश्रियौ[13] ॥४३३॥

मकरन्दः कीर्तितालः श्रीकीर्तिः प्रतितालकः ।
विजयो बिन्दुमाली च समनन्दनम[14]ण्ठिकाः ॥४३४॥

दीपकोद्वीक्षणौ[15] ढेङ्की विषमो वर्णम[16]ण्ठिका ।
अभिनन्दो[17]ऽनङ्गनान्दी[18]मल्लकङ्कालकन्दु[19]काः ॥४३५॥

एकताली च कुमुदश्चतुस्तालश्च* डोम्बुली ।
अभङ्गो रायव[20]ङ्कोलो वसन्तो लघुशेखरः ॥४३६॥

प्रतापशेखरो झम्पा ग[21]जझम्पश्चतुर्मुखः ।
मदनः प्रतिम[22]ण्ठश्च पार्वतीलोचनो रतिः ॥४३७॥

---

* संगीतरत्नाकरे तु 'चतुस्ताली' इति इति पाठो वर्त्तते (सं०र०५/२४७)

१. ०ल०
२. ०विक्रमतो
३. ०द०
४. ०द०
५. ०डुकक:
६. ०कु०
७. ०लशरभः
८. ०ला
९. मच्चकः
१०. ०रि०
११. ०कः
१२. ०डा ज०
१३. ०या
१४. मल्लिका
१५. णांडङ्के
१६. ०मल्लिका
१७. ०दो नन्दनाङ्गी
१८. मल०
१९. ०तुका
२०. ०दे०
२१. जगझ्झ०
२२. ०मातश्च

[1]लीलाकरणयत्याख्यौ ललितो गारुगिस्तथा ।
राजे[2]नारायणाख्यश्च लक्ष्मीशो ललितप्रियः ॥४३८॥
श्रीनन्दनश्च जनको वर्धनो रागवर्धनः ।
षट्ता[3]लश्चान्तरक्रीडा हंसोत्सवविलोकिताः ॥४३९॥
[4]गजो वर्णयतिः सिंह[5]ः करणः सारसस्तथा ।
च[6]ण्डतालश्चन्द्र[7]कलालयस्क[8]न्दोऽड्डुतालिका ॥४४०॥
घ[9]त्ता द्वन्द्व[10] मुकुन्दौ[11] च कुविन्दश्च कलध्वनिः ।
गौरी[12]-सरस्वती[13]-कण्ठाभरणौ[14] भग्नसंज्ञकः ॥४४१॥
तालो राजमृगाङ्कश्च राजमार्तण्ड इत्यमी ।
देशितालाः समुद्दिष्टा विंशतीत्यधिकं शतम् ॥४४२॥
[इति देशीतालोद्देशः]

स्यादादितालो लघुना[15]ऽयं रासश्चेति कथ्यते ।
[।]—इत्यादितालः (१)
द्वितीयो द्वौ द्रुतौ[16] लश्च[17]
[००।]—इति द्वितीयतालः (२)
तृतीये त्वन्त्यशेखरम् ॥४४३॥

---

१. विलोकरयस्यास्यो
२. ०य०
३. ०पातश्शाङ्करक्रीडा
४. षवो
५. ०हृ०
६. चन्द्र०
७. ०डताला०
८. ०संदोद्धतालिना
९. द्रुत०
१०. ०द्वं
११. ०दश्च
१२. ०री स०
१३. ०ती कण्ठा भ०
१४. ०णो
१५. ०ना परा०
१६. ०ताल०
१७. कुण्डलत्रितयमेतदनन्तरमेव लिखितं वर्त्तते प्राप्तादर्शपुस्तके ।

कुण्डलत्रितयं ज्ञेयं

[००६]–इति)(तृतीयतालः (३)

*चतुर्थे लौ[1] द्रुतो मतः ।

[2]।।०–इति चतुर्थः (४)

*पञ्चमे कुण्डलद्वयम् ।।४४४।।

००–इति पञ्चमः (५)

सामो[3]द्भवौ गकारश्च गॅलौ निःशङ्कलीलके ।

[5]ऽऽऽऽ।–इति निःशङ्कलीलः (६)

§दर्पणे लयुगं गुरुः ।।४४५।।

[6]००ऽ–इति दर्पणः (७)

सिंहविक्रमसंज्ञे तु मगणाल्लपॅला गपौ ।

[8]ऽऽऽ।ऽ।ऽऽ–इति सिंहविक्रमः (८)

रतिलीले लॅघू गौ च† ।।४४६।।

[10]।।ऽऽ–इति रतिलीलः (९)

---

* 'लघुद्वयं द्रुतश्चैक' इति सङ्गीतरत्नाकरे पाठो वर्त्तते (५।१६२)

★ श्लोके षष्ठं गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम् ।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमं दीर्घमन्ययोः ॥
इति लक्षणेन अनुष्टुप्छन्दसो द्वितीय-चतुर्थचरणयोरेव सप्तमं लघु भवति । अत्र चरणद्वयं तादृशमेव अव्यवहितरूपेण प्रयुक्तं वर्त्तते येन छन्दोनियमः श्लथ इवाभाति !

§ अत्राप्यव्यवहितरूपेण सप्तमलघुवर्णात्मकयोश्चरणयोः प्रयोगो विद्यते ।

† इहापि सप्तमदीर्घवर्णात्मकचरणयोरव्यवहितप्रयोगोऽस्ति ।

१. ०तु
२. | ०
३. ०मोद्यवौ तका०
४. ०ततो
५. ०|???|
६. | ००? |
७. ०वलाग०
८. |???|ऽ|
९. गयौ ज्ञेयौ
१०. |??

*मध्ये बिन्दुत्रयं ज्ञेयं सिंहलीले तु लद्वयोः ।

।०००।–इति सिंहलीलः (१०)

कन्दर्पे[1] दौ लगौ गुरुः ॥४४७॥

[०० ।ऽऽ]–इति कन्दर्पः (११)

लघुर्बिन्दुद्वयं वक्रो वीरविक्रमसंज्ञके ।

[2]।००ऽ–इति वीरविक्रमः (१२)

गुरुरेको विधातव्यो रङ्गे बिन्दुचतुष्टयात् ॥४४८॥

००००ऽ–इति श्रीरङ्गः[3] (११)

§श्रीरङ्गे[4] लौ गलौ प्लुतः ।

[5]।।ऽ।ऽ–इति श्रीरङ्गः (१४)

)(चच्चर्यां[6] दौ शिखान्तौ लस्तथाष्टकमितीरितम् ॥४४९॥

[8]०ऽ। ०ऽ। ०ऽ। ०ऽ। ०ऽ।

०ऽ। ०ऽ। ०ऽ।–इति चच्चरीतालः (१५)

प्रत्यङ्गे गौ भकारश्च—

[9]ऽऽऽ।।–इति प्रत्यङ्गः (१६)

यतिलग्ने दं[10]लौ मतौ ।

[०।]–इति यतिलग्नः (१७)

गजलीलाख्यताले स्यात्, शिखा[11]न्तलचतुष्यम् ॥४५०॥

[।।।ſ]–इति गजलीलः (१८)

---

* सङ्गीतरत्नाकरे तु 'लघ्वन्ते दत्रयं सिंहलील' इति–लक्षणमस्ति। (५।२९४)

§ इह सप्तमलघुवर्णात्मकचरणयोरव्यवहितप्रयोगो वर्त्तते ।

)(सङ्गीतरत्नाकरे तु 'विरामान्तद्रुतद्वद्वान्यष्टौ लघु च चच्चरी (५।२६६) इति लक्षणं विद्यते ।

१. ०र्पौ
२. ।०००।
३. ०ङ्गतालः
४. ०ङ्गोता गलो
५. ।?।?
६. ०र्या
७. ०खां ताल तथा०
८. ।०ऽ? ऽ०? ०ऽ? ०ऽ? ०ऽ? ०ऽ? ०ऽ? इति
९. ।???।
१०. तरौ
११. ०खातु०

[1]हंसलीलाह्वये ताले शिखान्तं लयुगं भवेत् ।
[2]।।ऽ–इति हंसलीलः (१९)
वर्णभिन्ने[3] कुण्डलाभ्यां लगाविति निरूपितौ ।।४५१।।
[4]००।ऽ–इति वर्णभिन्नः (२०)
[5]त्रिभिन्ने तु लघोः पश्चाद् गप्लुतौ परिकीर्तितौ ।
[6]।ऽऽ̀–इति त्रिभिन्नः (२१)
राजचूडामणौ[8] बिन्दू नगणः कुण्डले लगौ ।।४५२।।
[००।।।००।ऽ]–इति राजचूडामणिः (२२)
रङ्गद्योते गुरोरूर्ध्वं तगणश्च प्लुतो भवेत् ।
[9]ऽऽऽ।ऽ̀–इति रङ्गद्योतः[10] (२३)
रङ्गप्रदीपके तो[11] गप्लुताविति निरूपितम् ।।४५३।।
[12]ऽऽ।ऽऽ̀–इति रङ्गप्रदीपकः (२४)
राजताले गपौ बिन्दू गलपाः परिकीर्तिताः ।
[13]ऽऽ̀००ऽ।ऽ̀–इति राजतालः (२५)
[14]त्र्यश्रवर्णे लघू[15] पश्चाद् द्रुतद्वन्द्वं लघुद्वयम् ।।४५४।।
[16]।।००।।–इति त्र्य[17]श्रवर्णः (२६-क)

---

१. सिंहली०
२. ।।।?।।
३. नौ
४. । ००? ।
५. तेभि०
६. । ? ?—
७. ०नतालः
८. ०णेर्बिन्दून् न गणः
९. । ???̀ ।
१०. ०ततालः
११. लो०
१२. । ?? ।
१३. ??̀ ।
१४. प्रश्र०
१५. ०फोः
१६. । ०० ।
१७. प्रश्र०

मिश्रे[वर्णे]विधातव्यं शिखान्तं खचतुष्टयम् ।
त्रिवारं स्यात् पगौ बिन्दू गलगाश्त्र विभूषिताः ॥४५५॥

००० ऽ ००० ऽ ००० ऽ ऽ ऽ ०० [ऽ।] ऽ–इति मिश्रवर्णः (२६-ख)

चतुरश्राह्वये वर्णे गलाभ्यां कुण्डले गुरु[2]: ।

[3]ऽ।००ऽ–इति चतुरश्रवर्णः (२६-ग)

सिंहविक्रीडिते ताले लपगाः[4] पपगा लगौ ॥४५६॥
पलपाश्च प्रयोक्तव्याः—

[5]।ऽ ऽऽ ऽ ऽ।ऽऽ ।ऽ–इति सिंहविक्रीडितः (२६)

जये[6] जाल्लो द्रुतौ प्लुतः ।

[7]।ऽ।।००ऽ–इति जयः (२८)

वनमाली च बिन्दूनां चतुष्टयमथो लघु[8]: ॥४५७॥
[9]दौ गुरुश्च ततो ज्ञेयो

[10]००००।००ऽ–इति वनमाली (२९)

*हंसनादे लघुप्लुतौ ।
बिन्दुद्वयं[11] प्लुतश्चैव,

[12]।ऽ ००ऽ–इति हंसनादः (३०)

सिंहनादे यलौ[13] गुरुः ॥४५८॥

[14]।ऽऽ।ऽ–इति सिंहनादः (३१)

---

* इतः पूर्वं 'बिन्दुद्वयप्लुतश्चैव' इति प्राप्तादर्शपुस्तके लिखितमस्ति ।

१. ०श्रावि०
२. ०रुम्
३. ?००?
४. ०गालपगालगौ
५. =???– ??– ? =
६. ०यजाल्ला द्रु०
७. l= ?–००–?–
८. ०गु:
९. लदौ लगौ च वद्ग्राह्यौ
१०. ००००–००४
११. य०
१२. | ll = ००? – |
१३. ०तौ गुरौ
१४. | ???? | ?

कुडुक्के कुण्डलद्वन्द्वं[1] लघुयुग्मं निगद्यते ।

[2]००।।–इति कुडुक्कः[3] (३२)

तुरङ्गलीलताले[4] तु शिखान्तं दद्वयं द्रुतौ ।।४५९।।

०[5]००–इति तुरङ्गलीलः (३३)

स्यातां शरभलीलाख्ये[6] लघू[7] बिन्दुचतुष्टयम् ।

ततः परं तथा[8] लौ द्वौ—

।।००००।।–इति शरभलीलः[9] (३४)

सिंहनन्दनकः पु[10]नः ।।४६०।।

*गौ[11] लपौ च लगौ दौ[12] गौ लपलाश्च प्लुतो गुरुः ।

लयु[13]ग्मं लाश्च निःशब्दा[14]श्चत्वारः परिकीर्तिताः[15] ।।४६१।।

[16]SSIS̀ISooSSIS̀।।४–इति सिंहनन्दनः (३५)

त्रिभङ्ग[17]याख्ये लयौ स्यातां

[18]।।SS–इति त्रिभङ्गिः (३६)

रङ्गाभरणसंज्ञके ।

गद्वयं लद्वयं[19] पः स्यात्—

[20]SS।।S̀–इति रङ्गाभरणः[21] (३७)

---

* 'तपौ लगौ द्रुतौ गौ लः पलपा गो लघू ततः । चत्वारो लघवोऽशब्दाः'
इति (सं० र० ५।२७५-) लक्षणमनुसृत्यात्र पाठः संशोधितः ।

१. ०लि०
२. ।००
३. ०कतालः
४. ०ला०
५. ०ला
६. ०ख्यं
७. ०घोर्बि०
८. ०दा
९. ०ला
१०. पुंसः
११. च पौ
१२. दा गौ
१३. ०यमं चाथ निः०
१४. ०द क्रमेण प०
१५. ०ता
१६. I???ऽ इति
१७. ङ्गाख्य०
१८. | ?? | इति त्रिभङ्गी
१९. पश्चात्
२०. ? | ?̀ |
२१. ०णम्

—मण्ठके सगणस्ततः ॥४६२॥

*चतुर्लघ्वथ[3] निश्शब्दं—

[[4]॥ऽ ४ +] इति मण्ठकः (३८—क)

यद्वा भाद् द्वावशब्दकौ ।

[6]ऽ॥२ + इति वा मण्ठकः (३८-ख)

[मुद्रि] ताद्यमण्ठके[7] तु भाल्लघ्वब्ध्यध्वनिर्भवेत् ॥४६३॥

[9]ऽ॥ ४ + इति मुद्रित[10] मण्ठकः (३८-ग)

अथ[11] वा नजलाः कार्यास्तस्मिन् मुद्रितम[12]ण्ठके ।

[॥॥ऽ॥—इति वा मुद्रितमण्ठकः (३८-घ)]

अन्ये वदन्ति म[13]ण्ठस्य षड्भेदान् रूपके[14] तदा ॥४६४)

॥इति षड्विधोक्तम[15]ण्ठः ॥

‡कोकिलप्रियताले तु ग[16]लपाः परिकीर्तिताः ।

[17]ऽ।ऽ—इति कोकिलप्रियः[18] (३९)

निःसारुके शिखान्तौ लौ—

[।ſ—इति निःसारुकः (४०)]

---

* अयं चरणो 'मण्ठके सगणस्ततः' इतः पूर्वमेव प्राप्तादर्शपाण्डुपुस्तके लिखितो वर्त्तते ।

‡ 'कोकिलप्रियनाम्नि तु गलपाः स्युः' [सं० २०५।२७८] इति लक्षणानु-

[redacted]

५. जाभाववशब्दिका

६. ।?॥।?॥४॥।

७. मठंके

८. भगणाधध्वनिर्भवेत्

९. ?७४२॥

१४. ०कस्तदा

१५. ०मठः

१६. सपला प०

१७. ??।

१८. ०यतालः

—मंण्ठके[1] सगणस्ततः ।।४६२।।

*चतुर्लघ्वेथ[2] निश्शब्दं[3]—

[[4]।।ऽ ४ +] इति मण्ठकः (३८—क)

यद्वा भाद् द्वावशब्दकौ[5] ।

[6]ऽ।।२ + इति वा मण्ठकः (३८-ख)

[मुद्रि] ताद्यमंण्ठके[7] तु भाल्लघ्वब्ध्यध्वनिर्भवेत्[8] ।।४६३।।

[9]ऽ।। ४ + इति मुद्रितं[10] मण्ठकः (३८-ग)

अथ[11] वा नजलाः कार्यास्तस्मिन् मुद्रितमं[12] ण्ठके ।

[।।।।ऽ।।—इति वा मुद्रितमण्ठकः (३८-घ)]

अन्ये वदन्ति मं[13] ण्ठस्य षड्भेदान् रूपके[14] तदा ।।४६४)

।।इति षड्विधोक्तमं[15] ण्ठः ।।

‡कोकिलप्रियताले तु गं[16] लपाः परिकीर्तिताः ।

[17]ऽ।ऽ—इति कोकिलप्रियः[18] (३९)

निःसारुके शिखान्तौ लौ—

[।।—इति निःसारुकः (४०)]

* अयं चरणो 'मण्ठके सगणस्ततः' इतः पूर्वमेव प्राप्तादर्शपाण्डुपुस्तके लिखितो वर्त्तते ।

‡ 'कोकिलप्रियनाम्नि तु गलपाः स्युः' [सं० र०५।२७८] इति लक्षणानुरोधेन पाठोऽयं प्रस्तावितः ।

१. मठगे
२. ०घूथ
३. ०दो
४. ?इति मठकः
५. जाभाववशब्दिका
६. ।?।।।?।।४।।।
७. मठंके
८. भगणाधध्वनिर्भवेत्
९. ?७४२॥
१०. ०तामठकतालः
११. ०थ वानजिता
१२. मट्ठ०
१३. मट्ट०
१४. ०कस्तदा
१५. ०मठः
१६. सपला प०
१७. ??।
१८. ०यतालः

—राजविद्याधराह्वये ॥४६५॥

※लगौ बिन्दुद्वयं ज्ञेयं—

[१]।ऽ००—इति राजविद्याधरः (४१)

—जयमङ्गलसंज्ञके[२] ।

[सगणद्वितयं ज्ञेयं—

[३]।।ऽ।।ऽ--इति जयमङ्गलः (४२)]

मल्लिकामोद[४]नामके ॥४६६॥

ताले लघुद्वयाद् बिन्दुचतुष्टयमुदीरितम् । ।

।।००००-इति मल्लिकामोद[५]: (४३)

विजयानन्दविख्याते लद्व[६]याद् गत्रयं तथा ॥४६७॥

[७]।।ऽऽऽ—इति विजयानन्द[८]: (४४)

क्रीडाताले विरामान्तं द्रुतद्वन्द्वं निगद्यते ।

स एव च[९]ण्डनिःसारु:—

[१०]ꣳꣳ--इति क्रीडातालः, [चण्डनिःसारुकश्च] (४५)

—जयश्रीतालके क्रमात् ॥४६८॥

†गलौ गलौ गुरुश्चेति—

[११]ऽ।ऽ।ऽ-इति जयश्रीः (४६)

—मकरन्दे द्रुतद्वयात् ।

※ अयं चरणो 'राजविद्याधराह्वये' इतः प्रागेव प्राप्तपाण्डु-पुस्तके लिखितो वर्त्तते ।

† अयं चरणः प्राप्तपाण्डुपुस्तके 'जयश्रीतालके क्रमात्' इतः प्रागेवाङ्कितोऽस्ति ।

१. ।?००।
२. ०ज्ञि०
३. ।?।।?।
४. ०द ना०
५. ०दतालः
६. ०दयादत्र०
७. ।???।
८. ०दतालः
९. चन्दने स्यात्तु
१०. ।।०४।। इति क्रीडासारः
११. ।?-?।?।-इति जयश्रतालः

लघुत्रयं च विज्ञेयं

[1]००।।।-इति मकरन्दः (४७)

कीर्तिताले* गुरुर्लपौ[2] ।।४६९।।

[3]गलौ समोद्भवः कार्यः–

[4]ऽ।ऽऽ।ऽ-इति कीर्तितालः (४८)

–श्रीकीर्त्याख्ये गुरू[5] लघू ।

[6]ऽऽ।।-इति श्रीकीर्तिः (४९)

प्रतिताले लघू द्वौ दौ[7]–

[8]।।०० इति प्रतितालः (५०)

विजये प[9]गपा लघुः ।।४७०।।

[10]ऽऽऽ।-इति विजयः[11] (५१)

बिन्दुमालिनि गद्वन्द्वं मध्ये बिन्दुचतुष्टयम् ।

ऽ००००ऽ-इति बिन्दुमा[12]ली (५२)

समताले लघुद्वन्द्वं विरामान्तं द्रुतद्वयम् ।।४७१।।

[13]।।००-इति सम[14]ः (५३)

नन्दने लो द्रुतौ [15]पः स्यात्–

।००ऽ-इति नन्दनः (५४)

[16]मण्ठिकायां गदौ[17] प्लुतः ।

* सङ्गीतरत्नाकरे तु 'लपौ गलौ प्लुतः कीर्तिः' (५।२८२) इति लक्षणमस्ति।

१. ।०० इति मकरन्दबिन्दुः
२. ०रुल०
३. लगौ
४. ।??।?`??`–
५. ०रु०
६. ।।??।-इति श्रीकीर्तितालः
७. द्वौ
८. ।००
९. पलालपा
१०. ।?।?
११. ०यतालः
१२. ०मालिनितालः
१३. ।।०ऽ।।
१४. ०मतालः
१५. पश्चात्
१६. मक्षिका०
१७. दा

[ऽ०ऽ[1]] इति मण्ठिका (५५क)

परे लघुद्वयादूर्ध्वं विरामादि[2] द्रुतद्वयम् ॥४७२॥

[3]॥०ॕ-इति मण्ठिकाद्वयम् (५५-ख)

दीपके[4] तु द्रुतौ लौ[5] गौ–

[6]००॥ऽऽ-इति दीपकः[7] (५६)

*उद्वीक्षे[8] गुरुरेककः ।

ऽ-इत्युद्वीक्षणः (५७)

[9]ढेङ्किकायां तु र[10]गणो–

[11]ऽ।ऽ इति ढेङ्किकातालः [५८]

विषमे[12]ऽष्टौ द्रुतास्तदा ॥४७३॥

[13]तुर्याष्टमौ शिखावन्तौ कर्तव्यौ[14] भवतः क्रमात् ।

[14]०००ॕ०००ॕ-इति विषमः (५९)

स्याद् वर्ण[15]मण्ठिकायां तु[16]लौ द्वौ दौ[17]द्वौ लदौ[18] द्रुतः ॥४७४॥

[19]॥००।००-इति वर्णमण्ठिका (६०)

---

* सङ्गीतरत्नाकरे ५।२८५ तु 'उदीक्षण' इति पाठो वर्त्तते । तत्र लक्षणमपि 'लौ द्वौ गुरुरुदीक्षण' इति वर्णितमस्ति ।

१. मक्षिका
२. ०वि०
३. ॥०ॕ॥-इति मक्षिका०
४. ०गे
५. लगौ
६. ॥००।??।
७. ०कतालः
८. उत्तिष्ठे
९. धे०
१०. करणं
११. ।?।?। इति धेङ्कि०
१२. ०मेष्वो द्रु०
१३. कुर्याष्ठमौलिकावन्तौ
१४. ०००ॕ००००।
१५. ०र्णा मल्लिका०
१६. तौ
१७. द्वौ
१८. ०दो लधुः
१९. ॥००।०।-इति वर्णमल्लिका

अभिनन्दे[1] लघुद्वन्द्वं[2] भवेदन्त्यगुरुद्रुतौ ।
।।००ऽ इत्यभिनन्दः[3] (६१)

अनङ्गे लप्लुतौ[4] लौ गो
।ऽ̇।।ऽ[5] इत्यनङ्गः (६२)

नान्दिताले लदौ दलौ[6] ।।४७५।।

*यगणश्च विधातव्यो[7]
[8]।००।।ऽऽ इति नान्दी[9] (६३)

—मल्ले[10] ताले नलौ त[11] तः ।
विरामान्तं द्रुतद्व[12]न्द्वं [लक्षितं तालसूरिभिः] ।।४७५।।
[13]।।।०ॅ इति मल्ले[14] तालः (६४)

कङ्कालस्तु चतुर्धा[15] स्यात् पूर्णः[16] खण्डः समो[17] ऽसमः ।
तत्र पूर्णे तु बिन्दूनां चतुष्टयमथो[18] गलौ ।।४७७।।
००००ऽ। इति पूर्णः (६५ क)

खण्डताले द्रुतो[19] गौ च—
००ऽऽ इति खण्डः[20] (६५ ख)

समे तु त[21]गणो मतः ।
ऽऽ। इति समः (६५ ग)

विषमे यगणः[22] प्रोक्त [इति कङ्कालचतुष्टयम्] ।।४७८।।
।ऽऽ इति विषमः (६५ घ)

---

* अयं चरणः प्राप्तपाण्डुपुस्तके 'नान्दिताले लदौ दलौ' इतः प्रागङ्कितो वर्त्तते ।

१. अबि नन्दे
२. ०द्वौ
३. ०दतालः
४. ०तो गुरुः
५. ।।?`?`।।
६. ०लघुः
७. ०दा०
८. ।००।??।
९. ०दितालः
१०. ०ल्लि०
११. तश्च
१२. ०द्वयम्
१३. ।??।०ॅ
१४. ०ल्लि०
१५. ०र्थः
१६. ०र्णा०
१७. ०मो नमः
१८. ०दो
१९. गदाल्
२० ०डतालः
२१. ०त गण्यो
२२. ०णो भवेत्

॥ इति चतुर्विधकङ्कालः ॥

कन्दुके[1] नो लगौ स्याता[2]–

[।।।।ऽ] इति कन्दुकः (६६)

[3]मेकताल्यां द्रुतो मतः ।

०इत्येकताली[4] (६७)

कुमुदे[5] लो द्रुतौ लौ गः

[6]।००।।ऽ इति कुमुदः (६८ क)

परेषां लो[7] द्रुतद्वयात् ॥६७९॥

दद्वयं ग[8]श्च कुमुदे

[9]।००००ऽ इति वा कुमुदः (६८ ख)

चतुस्ताले गुरोः परम्[10] ।

त्रयो द्रुता विलेख्याः स्यु[11]–

रिमं केचिज्जयं विदुः ॥३८०॥

ऽ००० इति चतुस्तालः (६९)

डोम्बु[12]ल्यां तु विरा[13]मान्तं लद्वयं परिकीर्तितं[14]म् ।

[15]।। इति डोम्बुली (६०)

अभङ्गे ल[16]प्लुतौ स्यातां

[17]।ऽ इत्यभङ्गः (६?)

रायव[18]ङ्कोलके ततः ॥४८१॥

[गलौ] गुरु[र्द]द्व[19] यच्च

ऽ।ऽ०० इति रायव[20]ङ्कोलकः (७२)

---

१. कीकालगौ
२. ०तां
३. ए०
४. ०लः
५. ०दी गौ द्रुतौ लोगः
६. । = ००।???
७. लौ
८. गच्छ
९. ।।००??।२ =
१०. ०क्री
११. ०यु इद किञ्चिज्जयं
१२. ०म्बिल्यां
१३. रांमां लो लत्रये
१४. ०तः
१५. । = ।।९ = । इति डोम्बलः
१६. ल प्लु०
१७. = ? =
१८. ०रेंकोलकिलगौ
१९. ०द्वै०
२०. ०रे०

वसन्ताख्ये नभौ[1] मतौ ।

।।।ऽऽऽ इति वसन्तः (७३)

लघुशेखरताले[2] स्याद् विरामसहितो[3] लघुः ॥४८२॥

[ſ] इति लघुशेखरः[4] (७४)

प्रतापशेखरे[5] दीप्ता[चिछ]खान्तं खद्वयं मतम् ।

[6]ऽ ०ᵴ इति प्रतापशेखरः[7] (७५)

झम्पाताले विरामान्तं खद्वयं मात्रिका मता ॥४८३॥

[8]०ᵴ। इति झम्पातालः (७६)

गजझम्पा गदौ[9] पश्चाद् विरामान्तं द्रुतद्वयम् ।

[10]ऽ००ᵴ इति गजझम्पा (७७)

चतुर्मुखे स्युर्लगलो[11]: पश्चात् सामोद्भवो मतः ॥४८४॥

[12]।ऽ।ऽ इति चतुर्मुखः (७८)

मदने[13] दद्वयं गश्च

[14]००ऽ इति मदनः (७९)

प्रतिमण्ठे[15] सभौ पृथक् ।

।।ऽऽ।। इति प्रतिमण्ठः[16] (८०)

*पार्वतीलोचने ताले मलपाश्च[17] गुरू द्रुतौ[18] ॥४८५॥

---

* 'पार्वतीलोचने पुनः मलपा द्वौ गुरू दौ द्वौ' (सं० र० ५/२९६) इति लक्षणानुरोधेनात्र पाठः संशोधितः ।

१. च मौ
२. ०घुशि०
३. ०माः वहितोलघुः
४. ०शि०
५. ०शि०
६. । = ?०० =
७. ०शि०
८. ।।०ᵴ।।
९. जगझम्पागदौ
१०. ।?००ᵴ। इति जगझ०
११. ०लाः
१२. ।।√ = ।।? = ? =
१३. ०नेद०
१४. m = ००० =
१५. ०मठे नखौ पृ०
१६. ०मठ०
१७. ०ग०
१८. गुरुप्लुतौ

ऽऽऽ।ऽ̀ऽऽ०० इति पार्वतीलोचनः (८१)

रतिताले[1] लगौ ज्ञेयौ

।ऽ इति रतितालः (८२)

लीलाताले दलौ[2] प्लुतः ।

[3]०।ऽ̀ इति लीलातालः (८३)

ततः परं तु करणयतौ[4] बिन्दुचतुष्टयम्[5] ॥४८६॥

०००० इति करणयतिः (८४)

ललिते खद्वयाल्लोगं[6]—

[7]००।ऽ इति ललितः (८५)

[8]स्ताले गारुगिसंज्ञके ।

बिन्दुद्वयाद् विरामान्तबिन्दुनाऽथं[9] द्रुतो भवेत् ॥४८७॥

०००̆ इति गारुगि[10]: (८६)

*रायनारायणे दौ लस्ततो[11] गो लो गुरुर्भवेत् ।

[12]००।ऽ।ऽ इति रायनारायणः (८७)

लक्ष्मी[13]शे तु विरामान्तद्रुतद्वन्द्वाल्लपौ स्मृतौ[14] ॥४८८॥

[15]०̆।ऽ̀ इति लक्ष्मीश[16]: (८८)

ललिते[17]प्रियविख्याते सगणाच्च लगौ क्रमात् ।

[18]।।ऽ।ऽ इति ललितप्रियः (८९)

---

* सङ्गीतरत्नाकरे तु 'राजनारायण' ५।२९८ इति पाठो वर्त्तते

१. ०ती०

२. ०लो

३. ।। = ०१? =

४. ०यत्यौ

५. ०तुश्चय०

६. ०गा

७. १ = ००? =

८. ता०

९. ०थक्रुतो

१०. ०गितालः

११. ०तः पश्चाद् गुरु भ०

१२. । = ००।? = । इति रायनारायणतालः

१३. ०मीसेतु०

१४. ०तः

१५. ।।०६? =

१६. ०शतालः

१७. ०तः प्रि०

१८. ।।?।०।०।! = । इति ललितत्रयतालः

श्रीनन्दने [1]भपौ ज्ञेयौ

[2]ऽ।।ऽ इति श्रीनन्दनः (९०)

जनके[3] नयसा गुरुः ॥४८९॥

[4]।।।।ऽऽ।।ऽऽ इति जनकः (९१)

[5]वर्धने व्योमयुगलां[6]ल्लपौ च परिकीर्तितौ ।

[7]००।ऽ इति वर्धनः (९२)

रागवर्धनविख्याते शिखान्तंकुण्डले दपौ[9] ॥४९०॥

[10]०ँ०ऽ इति रागवर्धन[11]ः (९३)

षट्ताल:[12] षड् द्रुत:[प्रोक्तो–]

०००००० इति षट्ताल: (९४)

[13]ऽन्तरक्रीडा निरूप्यते[14] ।

कुण्डलत्रितयं तत्रान्तिमं[15] ते[षु] शिखायुतम् ॥४९१॥

००ँ इत्यन्तरक्रीडा (९५)

हंसे लघू विरामान्तौ[16] —

[17]।ॅ इति हंस:[18] (९६)

[19]वुत्सवे[20] लप्लुतौ मतौ ।

[21]।ऽ इत्युत्सव: (९७)

---

१. खलौ
२. =γ=γ=।
३. ०केन य०
४. ।γγ।०।
५. दर्दने
६. ०ललपौ
७. ।००।y =।०।
८. ०तं
९. ०लौ
१०. ००`००?।
११. ०नताल:
१२. ०ले षड्०
१३. अन्त०
१४. ०प्यन्ते
१५. ०मंतं
१६. ०तौ
१७. =॥=॥
१८. ०सताल:
१९. उ०
२०. वे ल प्लुतो
२१. ।=?=

विलोकिते[1] गुरोरूर्ध्वं दद्वयं[2] प्लुत उच्यते ॥४९२॥

ऽ००ऽ इति विलोकितः[3] (९८)

गजश्चैतुर्लसंयुक्त[4]--

[5]।।।। इति गजः (९९)

[6]स्ततो वर्णयतौ[7] लघू ।

व्योमद्वयं[च]तत्र स्यात्

।।०० इति वर्णयतिः (१००)

*सिंहताले लदो[8] र्च नः ॥४९३॥

[9]।०।।। इति सिंहतालः (१०१)

करुणा गुरुणैकेन

ऽ इति करुणः[10] (१०२)

सारसे लो द्रुतत्रं[11]यम् ।

पश्चाल्लघू च कर्तव्यौ[12]

[13]।०००।। इति सारसः (१०३)

चण्डताले तु खत्रयात् ॥४९४॥

लघुद्वयं च विज्ञेयं

[14]०००।। इति चण्डतालः (१०४)

ततश्चन्द्रकलाह्वये ।

द्विमात्रिकत्रयं पश्चात् प्लुतत्रयमथो लघुः ॥४९५॥

---

* 'सिंहे लदौ लत्रयं च' (सं० र० ५।३०३) इति लक्षणमनुसृत्य पाठोऽयं संशोधितः।

१. ०त०
२. ल०
३. ०ततालः
४. ०श्च लाभर्बहुभं
५. । = ।।। =
६. ०त०
७. ०तो
८. दतौ
९. ।। = ।।००।
१०. ०णातालः
११. ०द्व०
१२. व्यो
१३. । = ।।००० = इति सारसतालः
१४. ।।०००।।

SSSऽऽऽ[।]इति चन्द्रकला (१०५)

लये गलौ[1] पत्रयञ्च गपौ[2] बिन्दुत्रयं क्रमात् ।

[3]SISऽऽSSऽ००० इति लयतालः (१०६)

स्कन्दे सैरगणौ दौ गौ

[5]SIS००SS इति स्कन्दः[6] (१०७)

अँड्डताल्यां द्रुतो लघू ॥४९६॥

परे तु त्रिपुटं प्राहुर्मतूप्यनुमतं भवेत् (?)

०।। इत्यड्डताली (१०८)

घंत्तातालै लघू द्वौ दौ[10] लगाविति निरूपितौ ॥४९७॥

[।।००।S इति घत्तातालः--१०९]

[द्वन्द्वताले लघू गौ च गलपाश्च प्रकीर्तिताः ।

।।SSS।ऽ इति द्वन्द्वः—११०]

मुकुन्दाख्ये लदौ बिन्दुत्रयं पश्चाद् द्विमात्रिकः ।।४९८।।

[11]।००००S इति मुकुन्दः (१११)

[*कुविन्दके लघुर्बिन्दुद्वयं गुरुरथ प्लुतः ।

।००Sऽ इति कुविन्दकः (११२)]

कलध्वनौ लघू पश्चाद् गलपा: परिभाषिताः ॥४९९॥

[12]।।S।ऽ इति कलध्वनिः (११३)

---

* पङ्क्तिरियं 'सङ्गीतरत्नाकरतः (५।३०७) सङ्कलिता ।

१. ०ता पत्र०

२. ०लौ

३. । = ०।q।q।q ??०००।।

४. सार्द्रंगणारगौ

५. ।। = ०।०।०।०।qq =

६. ०दतालः

७. अकता०

८. मंत्रे पु०

९. पङ्क्तौ

१०. द्वौ

११. ।। = ००००qq =

१२. । = ।qq। =

गौरीताले लघोरूर्ध्वं नगणश्च लघुर्भवेत् ।

[1]।।।।। इति गौरीतालः (११४)

ताले *सरस्वतीकण्ठाभरणाख्ये गलौ द्रुतौ ।।५००।।

ऽ।०० = इति सरस्वतीकण्ठाभरणतालः (११५)

ताले भ[2]ग्नाह्वये बिन्दुचतुष्टयमथो[3] लघुः[4] ।

[5]नो विरामलघुः पश्चात्

००००।।।।ǐ इति भग्नतालः† (११६)

ताले राजमृ[6]गाङ्कके ।।५०१।।

द[7]लगा इति विज्ञेया—

[8]०।ऽ इति §राजमृगाङ्कः[9] (११७)

राजमार्त[10]ण्डसंज्ञके ।

तस्यैव[11] विपरीतत्वाद् गलदाः परिकीर्तिताः ।।५०२।।

ऽ।० इति राजमार्त[12]ण्डः (११८)

।। ¶इति विंशत्युत्तरशतं देशिताला: ।।

---

* सङ्गीतरत्नाकरे तु कुविन्दकस्य 'द्वौ गुरू द्वौ लघुद्रुतौ' इति लक्षणं विद्यते ।

† ०'भग्नताले चतुर्बिन्दुर्नगणश्च विरामवान्' इति 'सङ्गीतरत्नाकरे ५।३०९ पाठः ।

‡ प्राप्तपाण्डुपुस्तकेऽयं चरणस्तु 'ताले राजमृगाङ्कके' इतः प्रागेवाङ्कितो विद्यते ।

§ 'सङ्गीतरत्नाकरे' तु 'ताले राजमृगाङ्के तु द्रुतौ लघुरथो गुरुः' इति लक्षणमस्ति ।

¶ सङ्गीतसूर्योदयकारेणात्र 'सङ्गीतरत्नाकरे' वर्णितयोर्निःशङ्कशार्ङ्ग-देवाख्ययोस्तालयोर्निरूपणं नाकारि । अतोऽष्टादशोत्तरशतं देशिताला एव सङ्कलनेन लभ्यन्ते ।

१. ✓ = ✓ = ।।।।। = ।
२. ल०
३. ०धो
४. ०घु
५. न वि०
६. ०गान्तके
७. र०
८. = ०y =
९. ङ्कतालः,
१०. ०र्ता०
११. ०रिप तत्वा०
१२. ०र्ता०

[अथ ग्रन्थकृत्परिकल्पिता देशितालाः]

अलङ्कारः कुलीनश्च महेन्द्रः पारिपार्श्वकः ।
कमलः कुमुदः कुन्दः[1] कुशलो कुम्भसम्भवः ॥५०३॥
मरुद्गणो मण्डलश्च मधु[2]रो मधु[3]रप्रियः ।
यज्ञसेनो यशश्शाली यादवेन्द्रो यमेश्वरः ॥५०४॥
रक्षो[4]घ्नो रक्षको[5] रामो राजवीरो रमापतिः ।
लक्ष्मणो ललितो लीलो[6] लघ्वङ्कोऽथ लयान्वितः ॥५०५॥
वसुन्धरासिँ[7]वज्री च वरुणो वारिधिर्वसुः[8] ।
शेषशायी शतमखः शकटघ्नश्शशाङ्कधृत् ॥५०६॥
षण्मुखष्षड्गुणष्षड्जष्षडभिज्ञष्षडूर्मिजित् ।
सर्वज्ञस्सुमुखस्सान्द्रस्सरसस्सरसीरुहः ॥५०७॥
हरिदश्वो हरिप्रीतो हरिपक्ष्मा[9] हलायुधः ।
पवनः पार्वतीनाथः पद्मनाभः पर[10]न्तपः ॥५०८॥
फणी च मिश्रलः फुल्लो फल्गुनः[11] पदमञ्जरी ।
बलभद्रो बृहद्भा[12]मो बान्धवो बलनन्दनः ॥५०९॥
भरतो भीमसेनश्च भास्करो[13] भाललोचनः ।
खगेश्वरः [खु]रा[घा]तः खे[14]चरः खेलनाह्व[15]यः ॥५१०॥

---

१. पाद०
२. ०थु०
३. ०थु०
४. ०क्ष०
५. ०का०
६. ०भो
७. ०शि०
८ सु
९. ०या
१०. ०रं त०
११. ०नी०
१२. ०द्रोम०
१३. ०रः फा०
१४. ०ख०
१५. ०द्वयोः

गजवक्त्रो गतिवरो गर्वभङ्गो गजासुरः ।
चतुर्मुखश्चञ्चरीके[1]श्चतुर्भुजधरो हरिः ॥५११॥
शारदाभर[णो लक्ष्मीक]टाक्षः[2] कामवर्धनः ।
ग[3]ङ्गातरङ्गः[4] सुरभिस्ततो भ्रमरयुग्मकः ॥५१२॥
वसन्ततिलको रत्नमाला[5] मलयमारुतः ।
तरङ्गशीकरो मेघा[6]वरणः करुणालयः ॥५१३॥
कोकिलार[7]णितो मत्तमयूरो [मदवि] ह्वलः ।
प्र[बन्ध]बन्धुरः पूर्वः[8] पु[लिन्द]श्चन्द्रमण्डलः ॥५१४॥
इन्द्रकोदण्डकः पुष्पबाणो गन्धर्ववासुकी[9] ।
दशाननः पंक्तिरथः कलिङ्गः कल्पभूरुहः ॥५१५॥
रत्नगर्भो [10]हं[सपदी मृ]गरा[11]ड् हरिणप्लुतः ।
गोपतिर्गण्डभेरु[12]ण्डो रणभे[री]म[13]दोद्भवः ॥५१६॥
सुधा[14]तुवान् चित्रपाणिष्षडङ्गगुणवर्धनः ।
चित्रपादो य[15]तिप्रौढो भरतज्ञ[16]कुलेश्वरः ॥५१७॥
लक्ष्मणा[17]ह्वय इत्येक[विंश]त्यभ्यधिकं श[18]तम् ।
व्यवहारानुकूलत्वाल्लक्ष्मणार्येण भाषितम् ॥५१८॥
॥ इति[लक्ष्मीनारायणोक्तदेशि][19]तालोद्देशः ॥

---

१. ०कः च०
२. ०क्षका०
३. र०
४. ०ङ्गसु०
५. ०लाम०
६. ०ष०
७. ०भरणो
८. ०र्वपु
९. ०किः
१०. ह
११. ०राण्डलिनः प्लुतः
१२. ०र०
१३. मह्रोदवः
१४. ०रामवा०
१५ यतन्नातो
१६. ०ज्ञः कु०
१७. ०णो हृदयमित्येक
१८. त्र्यभम्
१९. रागोद्०

अलङ्कारे प्लुतद्वन्द्व[1]मध्ये स्यात् प[2]वनस्य भूः ।

ऽ̀०ऽ̀ इत्यलङ्कारः (१)

कुली[3]नो लो गुरुद्वन्द्वं

[4]।ऽऽ इति कुलीनः (२)

महेन्द्रे[5] रलगा लघुः ।।५१९।।

[6]ऽ।ऽ।ऽ। इति महेन्द्रः (३)

पारिपार्श्वकताले स्युश्चन्द्रा[7]ल्लगपाः क्रमात् ।

[8]०।ऽऽ̀ इति पारिपार्श्वकः (४)

कमले मगणो लौ[9] दौ

[10]ऽऽऽ।०० इति कमलतालः (५)

कुमुदो जगणोद्भवः ।।५२०।।

[11]।ऽ। इति कुमुदः (६)

कुन्दे[12] बिन्दुत्रयं पश्चाद् दलौ मो[13] दो लघुर्भवेत् ।

[ᴗ०००।ऽऽऽ०।] इति कुन्दः (७)

कुशली स्यात् प्लुतैकेन

ऽ̀ [इति कुशली] (८)

गुरुणा कुम्भसम्भवः ।।५२१।।

ऽ इति कुम्भसम्भवः (९)

---

१. ०द्वान्म०

२ ०पुतितस्थ०

३. ०लि०

४. ।।?।?

५. ०द्र०

६. ।।=।?-?=।=।

७. ०द्राल०

८. ।।?̀?̀।।

९. लोभौ

१०. ???।०।

११. ।=।?।।

१२. ०दाद्रि०

१३. मोदौ

मरुद्गणे तु नगणो

[2] ||| इति मरुद्गणः (१०)

मञ्जुलः पूर्वलो गुरुः ।

[3] |S इति मञ्जुलः (११)

मदने गप्लुतौ प्रोक्तौ

SS̀ इति मदनः (१२)

पलगा मधुरप्रिये ॥५२२॥

[4] S̀|S इति मधुरप्रियः[5] (१३)

यज्ञसेनो यजना गो

[7] |SS|S||||S इति यज्ञसेनः (१४)

यशश्शालिनि[8] भो मयुक् ।

[9] S||SSS इति यशश्शाली (१५)

यादवेन्द्रो[10] यमौ जः[11] सो

[|SSSSS|S|||S] इति यादवेन्द्रः (१६)

यमेशो भयभूषितः ॥५२३॥

[12] S|||SS इति यमेशः (१७)

रक्षोघ्नो[13] यमसा[14] रः स्याद्

[15] |SSSSS||SS|S इति रक्षोघ्नः[16] (१८)

रक्षको[17] रजतात्मकः[18] ।

[S|S|S|SS|] इति रक्षकः[19] (१९)

---

१. मद्गुणिःस्यात्तु
२. || = || इति मद्गुणः
३. ||?||
४. |?|?|
५. ०यतालः
६. ०नगो
७. ||??|?||?|
८. ०निभो
९. ०| = |?||???|
१०. ०द्रा
११. जसा
१२. |?|||??||
१३. ०घ्नी
१४. ०सारः
१५. ||?|?|?
१६. ०घ्नता०
१७. ०रो
१८. ०जः
१९. घ्नः

रमाङ्कितो रामतालो

[1]ऽ।ऽऽऽऽ इति रामतालः (२०)

राजवीरे तु[2] गौ दलौ ।।५२४।।

[3]ऽऽ०। इति राजवीरः (२१)

[4]रमापतौ रमाभ्यां स[5]सगणो[6]ऽन्तो निरूपितः ।

[7]ऽ।ऽऽऽऽ।।ऽ इति रमापतिः[8] (२२)

लक्ष्मणस्तु गुरोः पश्चाल्लघुर्भूत्वा विराजते ।।५२५।।

[ऽ।] इति लक्ष्मणः (२३)

ललिते स्याद् द्रुतद्वन्द्वा[9]नुत्रयान्ते द्रुतौ लघुः ।

००ᑌᑌᑌ००। इति ललितः (२४)

लोलताले क्रमा[10]त् प्रोक्ता खण्डमिश्रविरामता ।।५२६।।

[11]५, ७–इति लोलतालः (२५)

लघ्वङ्के पादजा[12]तौ द्वौ [13]दश्च द्राघमनुद्रुता । ?

[14]षड्लघ्वङ्कसमुद्भूतो–

ᑌᑌ० ᑌᑌ० ᑌᑌ० ᑌᑌ० ᑌᑌ० [ᑌᑌ०] इति लघ्वङ्कः (२६)

भवेदथ लयान्विते ।।५२७।।

चतुरश्रादिजा[15]तीनां लघूनां क्रमगामिनाम् ।

अनुलोमविलोमाभ्यां लक्ष्मीनारायणोदितः ।।५२८।।

४ ३ ५ ७ ९[16] ९ ७ ५ ३ ४[17]-इति लयान्वितः (२७)

---

१. ।। ????।।
२. ग०
३. ।yy०।
४. रमौ पलौ
५. स स०
६. ०णोन्तनि०
७. ।।?।????।।??।।
८. ०तिताल:
९. ०द्वौ द्लौ त्रया०
१०. ०मा:
११. ६६६।।
१२. ०लागौ
१३. दश्र
१४. षल्लघ्वण्डस०
१५ ०रा०
१६. ८
१७. ९

वसुन्धरायां[1] दलपा लद्वयं [2]दत्रयं लघुः ।

[3]०।ऽ ।।०००। इति वसुन्धरातालः (२८)

[4]असिः स्याल्लघुनै[5]केन

[6]। इत्यसितालः (२९)

वज्रताऽे लपौ गुरू ।।५२९।।

[7]।ऽऽऽ इति [8]वज्रतालः (३०)

वरुणे[9] दलगाः प्रोक्ता

[10]०।ऽ इति वरुणः[11] (३१)

वारिधौ गो[12] लघू दगौ ।

[13]ऽ।।०ऽ इति वारिधिः[14] (३२)

वसु[15]ः स्याल्ल[16]द्वयोर्मध्ये बिन्दुद्वन्द्वसमुद्भवः ।।५३०।।

[17]।००। इति वसुतालः (३३)

---

१. ०यं वलपा०
२. द त्र०
३. ।। ?।?।०००-।
४. लघु
५. ०नृतेन
६. इति वशितालः ।। = ।।
७. ।।??।।
८. ब०
९. ०णाा
१०. ।।०।? = ।।
११. ०णातालः
१२. गोलघाद०
१३. । = ।?।।०।।
१४. ०धितालः
१५. ०सु
१६. ०ल द्व०
१७. ।। ।।००। = ।।

गगाष्टकश्शेषशायी

ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ ऽऽ [1]ऽऽ इति शेषशायी[2] (३४)

[3]प्रथितो माश्शतक्रतुः ।

[4]ऽऽऽ ऽऽऽ ऽऽऽ इति शतक्रतु[5]: (३५)

शकटघ्ने[6] विरामान्तंद्रुत[7]त्रयमथो गुरुः ॥५३१॥

[००ऽ[8]] इति शकटघ्नः (३६)

शशाङ्कधृति दो[9] लो गो मिश्रलः परिकीर्तितः ।

[10]०।ऽ इति शशाङ्कधृत् (३७)

षण्मुखो द्रुतषट्केण[11] विरामान्तेन भूषि[12]तः ॥५३२॥

०० ०० ०ऽ इति षण्मुख[13]: (३८)

षड्गुणे स्युर्गलगपा[14]:

[15]ऽ।ऽऽ इति षड्गुण[16]: (३९)

षड्जाख्ये लाद् गलौ स्मृतौ ।

[17]।ऽ। इति षड्जाख्यतालः (४०)

षडभिज्ञे मिश्रे[18]लो लस्त्र्यश्रलश्चतुरश्रलः ॥५३३॥

[19]७,।,३,४ इति षडभिज्ञः[20] (४१)

---

१. ऽऽऽ
२. ०यितालः
३. प्रतीतो माश्शितक्रमः
४. ॥॥?।?।???॥?।???॥
५. ०तुतालः
६. ०घ्नतिरा०
७. ०द्रु त०
८. ०द्रु०
९. दालोगो
१०. ॥?॥५३।
११. ०को०
१२. ०हि०
१३. ०खतालः
१४. ०पा
१५ ॥ = ॥?।??॥
१६. ०णतालः
१७. ॥??॥=॥
१८. ०त्रलोलत्र्यश्रलश्चमरश्चलः
१९. ॥ = ॥२॥?॥
२०. ०ज्ञतालः

षड्मिंजिति ताले तु क्रमाच्चच्चत्पुटादयः ।
पूर्वं कीर्तिधरोक्ताः स्युर्लक्ष्मीनारायणोदिताः ॥५३४॥
[२]ऽऽ।ऽ ऽ।।ऽ ऽ।ऽऽ।ऽ ऽऽऽऽऽ ऽऽऽ इति षड्मिंजित्[३] (४२)
क्रमात्सर्वाङ्गसंयुक्तस्सर्वज्ञः [४]प्रतिभाषितः ।
[५]u०8 । ſ ऽ ऽ + इति सर्वज्ञः (४३)
सुमुखे तु विरामान्तं द्रुतद्वन्द्वं[६] लगौ लगौ ॥५३५॥
०० ।ऽ ।ऽ इति सुमुखः[७] (४४)
सान्द्रे त्रिचन्द्रसम्मिश्रद्रुतत्रयमथो लघुः ।
[८]uuu ०००। इति सान्द्रः (४५)
सरसे[९] सरसा एव
[१०]।।ऽ ऽ।ऽ ।।ऽ इति सरसः[११] (४६)
द्विरेफः[१२] सरसोरुहः[१३] ॥५३६॥
[ऽ।ऽ ऽ।ऽ] इति सरसोरुहः[१४] (४७)
अम्बरे[१५] हरिदश्वः[१६] स्याद्
[१७]० इति हरिदश्वः (४८)
*हरिप्रीतो रमाङ्कितः ।
[१८]ऽ।ऽ ऽऽऽ इति हरिप्रीतः (४९)

---

*. रामतालस्यापि इदमेव लक्षणं ग्रन्थकारेण दत्तमस्ति ।
१. ०जतु
२. ।।yy।।??।??????????।।
३. ०मिताल:
४. पति०
५. u8०8qq??=।।
६. ०द्वौ
७. ०खतातः
८. ।।uuu०० ०।।
९. ०सी
१०. ।।=।??।७।।
११. ०सिताल:
१२. ०फा०
१३. ०हा
१४. ०हताल:
१५. आम्बरं
१६. पारिदश्च
१७. ।।=।। इति परिदश्वः
१८. ।?।????।।

हरिवक्त्रे[1] विरामान्तं लपञ्चकमुदीरितम् ॥५३७॥

[2]।।।।ỉ इति हरिवक्त्रः (५०)

हलायुधे दलौ लौ वा

[3]०।, ।। वा इति हलायुधः (५१)

पवने स्याद् विरामलैः ।

[4]ỉ इति पवनः[6] (५२)

पार्वतीपतिताले तु द्रुता एकादश स्मृताः ॥५३८॥

विरामान्तास्तु तो मो[7] गः

[8]०००००००००००̆ ऽऽ। ऽऽऽऽ इति पार्वतीपतिः (५३)

पद्मनाभे निरूपिताः ।

[9]गुर्वोर्मध्ये तु [10]षट्खण्डलघवोऽर्धद्रुतान्तरा[11] ॥५३९॥

[12]ऽ।ט।ט।ט।ט।ט।ऽ इति पद्मनाभः[13] (५४)

[14]परन्तपे प्लुतो वक्र[15]: खण्डलः कुण्डलो लघुः ।

[ऽ̆ऽ।०।] इति परन्तपः (५५)

फणिताले द्रुताः पञ्च लघुस्तद्वत्त्रितारकम् ॥५४०॥

ततोऽन्ते वि[16]श्रमो दस्स्याद्

[17]०००००।०००̆ इति फणितालः (५६)

---

१. ०श्री
२. ।=।=?।।
३. ।।=।०।?।
४. ०ल
५. ।।व।।
६. ०नतालः
७. मोगो
८. ।।००००००००००००̆।।?।।
९. गुरोर्म०
१०. षदखण्ड/ल०
११. ०रा
१२. ।?।।?।।ט।।v।ט।ט।?।
१३. ०तालः
१४. परं तप तपे स्मृते । परन्तपे०
१५. ०क्री
१६. मिश्रमोप०
१७. ।।००००̆।।००००̆।।

मिश्रलः [1]पेन मार्दवे ।

[2]ऽ। इति मिश्रलः (५७)

फुल्ले कुण्डलयोर्मध्ये [3]चार्धचन्द्रो विराजते ॥५४१॥

[4]०U० इति फुल्लः[5] (५८)

फल्गुने लपदा[6] गः स्याद्

[7]।ऽ०ऽ इति फल्गुनः (५९)

रसजाः [8]पदमञ्जरी ।

[9]ऽ।ऽ।।ऽ।ऽ। इति पदमञ्जरी (६०)

बलभद्रो प्लुतो गश्च लो[10] द्रुतोऽनुद्रुतो लघुः ॥५४२॥

ऽऽ।०U। इति बलभद्रः (६१)

बृहद्भ्रामो[11] रययुतो

ऽ।ऽ ।ऽऽ इति बृहद्भ्रामः (६२)

बान्धवः परमाश्रयः ।

ऽ ऽ।ऽ ऽऽऽ इति बान्धवः (६३)

*ब्रह्मनन्दनताले तु द्रुतं[12] स्याद्यन्त्ययोर्गुरू[13] ॥५४३॥

[14]ऽ०ऽ इति ब्रह्मनन्दनः (६४)

भैरवे भगणस्त्वेको

[15]ऽ।। इति भैरवः (६५)

भीमो भीमगदाङ्कितः ।

[ऽ।।ऽऽऽऽ०] इति भीमः[16] (६६)

---

* उद्देशे तु 'बलनन्दन' इति पाठो वर्त्तते (सं० सू० १।५०९)

१. फे०
२. ।। = ।।??।।
३. यथा च०
४. ।०।e।०।
५. ०ल्लताल:
६. ०दाग:
७. ०।?०?।
८. फाल०
९. ?।?।?।?।
१०. लद्रुतानु०
११. ०मा०
१२. ०तस्स्या०
१३. ०रो:
१४. =००?=।
१५. ।। = ?।।
१६. मसेन:

भास्करो *नभसा प्रोक्तः[1]

० इति भास्करः (६७)

ततः स्याद्[2] भाललोचने ॥५४४॥

गुरोरूर्ध्वं लघुद्वन्द्वं लविरामः प्रकीर्तितः ।

[ऽ।।ľ] इति [3]भाललोचनः (६८)

खगेश्वरे[4] गपौ लश्च

ऽऽ̆। इति खगेश्वरः[5] (६९)

खुराघातश्चतुर्द्रुतः ॥५४५॥

विरामान्तो भवेत्तत्र

[6]०००ȣ इति खुराघातः (७०)

†[7]खेचरे षड्विधूत्तरे ।

विरामलो मिश्ररूप[8]ः

[9]००००००ľ-५ इति [10]खेचरः (७१)

खेलनाख्यो द्रुतौ लघुः ॥५४६॥

[11]००। इति खेलनतालः (७२)

गजवक्त्रस्तु चत्वारो लघवो निर्ध्वनिः स्मृतः ।

[12]।।।। + इति गजवक्त्रः (७३)

---

* 'अम्बरं हरिदश्वः स्याद्' इत्येकद्रुतात्मक एव हरिदश्वतालः पूर्वं लक्षितः । एवं हरिदश्वस्य भास्करस्य च लक्षणयोरेकरूपता दृश्यते । प्राप्तपाण्डुपुस्तकेऽत्र द्रुतश्चिह्नितोऽपि विद्यते येन 'नभसा' इति पदस्य नभसगणा इत्यर्थोऽपि न निश्चीयते ।

† प्राप्तादर्शपुस्तके अस्माच्चरणात् पूर्वमेव 'विरामलो मिश्ररूप' इति पाठोऽस्ति ।

१. ०क्तो
२. ०त् फाल०
३. फा०
४. रफपौ
५. ०रतालः
६. ।।=।।००ȣ०।।
७. ख०
८. ०प
९. ।।UUUU००।।
१०. ख०
११. ।।=।००।=।
१२. ।।=।। ।। ।।=

ताले गतिवरे प्रोक्तौ[2] खण्डमिश्रौ[3] लघुः क्रमात् ॥५४७॥

[4]५,७,। इति गतिवरः (७४)

ताले स्याद् गर्वभङ्गाख्ये विरामान्तं द्रुतत्रयम् ।

००ó इति गर्वभङ्गः[5] (७५)

एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्[6][द्रु]तान्ते लघुर्यदि ॥५४८॥

भवेद् गजासुरो नाम तालोऽयं प्रतिभाषितः[7] ।

०।००।०००।००००।०००००। [००००००।]

——इति गजासुरः (७६)

चतुर्मुखे द्रुतद्वन्द्वं शीघ्रमेवं पुनस्तथा ॥५४९॥

[8]पस्स्याल्लघु [श्च] निश्शब्दे[9]—

[10]०० ००ऽ।+ इति चतुर्मुखः (७७)

[11]श्चञ्चरीकाह्वये [ततः] ।

रसत्रयं कुण्डलान्तं विधूनां मिश्रलस्ततः ॥५५०॥

[12]UUUUUU० UUUUUU० UUUUUU०–[7]

इति चञ्चरीकः (७८)

चक्रवर्त्तिनि तालेऽस्मिन् गलौ जौ[13] लः प्रकीर्तितः ।

ऽ।।ऽ।।ऽ।। इति चक्रवर्ती (७९)

---

१. ०च०

२. ०तो

३. ०श्रो लघु०

४. ।।५।।५।। = ।।५।।

५. ०ङ्गताल:

६. ०ड०

७. ०ति भा०

८. पश्चात्य०

९. ०दा

१०. = oou|oou|?| =

११. ततश्च०

१२. || = ||UUUUU०|UUUUUUUU.|
UUUUUUU०|

१३. जौलः

चतुर्भुजश्चतुर्भल्लै[1]विरामान्त्यद्रुतान्तरैः ॥५५१॥

[2]।०।०।ऽ। इति चतुर्भुजः (८०)

शारदाभरणे पञ्च तालाश्च[3]ञ्चत्पुटादयः ।

आदौ बिन्दुद्वयेनान्ते निःशब्देन समन्विताः ॥५५२॥

[4]००ऽऽ।ऽ ऽ।।ऽ ऽ।ऽऽ।ऽ ऽऽऽऽऽ ऽऽऽ + इति शारदाभरणः[5] (८१)

ताले लक्ष्मीकटाक्षाख्ये मगणः परिभाषितः ।

[ऽऽऽ] इति लक्ष्मीकटाक्षः (८२)

कामसम्भवताले तु प्लुतो बिन्दुरुदीरितः ॥५५३॥

[6]ऽ० इति कामसम्भवः[7] (८३)

गङ्गातरङ्गे प्रत्येकमष्टौ पञ्च त्रिबिन्दवः ।

लघ्वन्तास्स्युस्ततोऽन्ते लौ

०[8]०००००००।०००००।००० ।।। इति गङ्गातरङ्गः[9] (८४)

सुरभिः कथ्यतेऽधुना ॥५५४॥

चतुर्भिर्लघुभिर्मिश्रै[10]—

[11]७७७७ इति सुरभितालः (८५)

[12]स्ततो भ्रमरयुग्मके ।

षट्त्रिंशद्बिन्दवस्तत्र

मध्य[13]-द्वारयुतास्ततः ॥५५५॥

---

१. ०लैः वि०

२. ✓ = ०।०।०।?।।

३. ०च चतुरोदयः

४. १✓ = ००??।??।????।??????- ???+ =

५. ०णतालः

६. ।। = ।।?०। =

७. ०वतालः

८. ।। = ००००००००।००००००००।

९. ०ङ्गतालः

१०. श्रैः

११. ।। = ।।????।। ।।

१२. ततो

१३ ०ये द्वारशतं ततः

तालान्ते च विधातव्यो लघुस्सङ्कीर्णजातिभृत्[1][2] ।

UUUUUUUUUUUU

UUUUUUUUUUUU

UUUUUUUUUUUU—९ इति भ्रमरयुग्मतालः (८६)

वसन्ततिलको लघ्वो[3] मध्ये बिन्दुरुदीरितः[4] ॥५५६॥

[5]।०। इति वसन्ततिलकः (८७)

रत्नमालाह्वये ताले दलौ रगरपाः[6] क्रमात् ।

[7]०।ऽ।ऽऽऽ।ऽऽ इति रत्नमालातालः (८८)

मलयानिलताले तु खण्डमिश्रौ लघुः[8] क्रमात् ॥५५७॥

[५, ७,।] इति मलयानिलः (८९)

तरङ्ग[9]शीकरे ताले निःशब्दान्ते[10] प्लुतो भवेत् ।

[11]ऽ + इति तरङ्गशीकरः[12] (९०)

मेघावरणतालेऽस्मिन् नव[13]-दान्तर्गुरुप्लुतौ ॥५५८॥

[14]ऽ००००००००ऽ इति मेघावरणः[15] (९१)

करुणालयविख्याते ताले लो[16] दौ गुरुप्लुतौ ।

[17]।००ऽऽ इति करुणालय[18] तालः (९२)

कोकिलारणिते बिन्दुयुग्मान्त्यः[19] कीर्णलो भवेत् ॥५५९॥

[20]९०० इति कोकिलारणिततालः (९३)

---

१. ०घुस०

२. ०भिः

३. ०ध्वो । म०

४. ०तम्

५. ।०।। = ।।

६. ०पा

७. ।।।०।०y।०y।

८. ०घु०

९. ०शीतले

१०. ०तं०

११. । = ।? +

१२. ०रतालः

१३. ०वेद्यन्तगु०

१४. ।।√।।UUUUUUUUUU।

१५. ०णतालः

१६. लोदौ

१७. ।U। = ०? ? = ।।

१८. ०यतालः

१९. ०यं

२०. ।√००। = ।

ततो मत्तमयूराख्ये लपौ[1] लो द्वौ गुरू[2] स्मृतौ ।

[3]।ऽ।ऽऽ इति मत्तमयूरः (९४)

मदविह्वलताले तु द्रुतौ द्वौ ल्प्लुतौ स्मृतौ ॥५६०॥

[4]००।ऽ इति मदविह्वलः[5] (९५)

प्रबन्धबन्धुरे[6] लौ द्वौ विरामान्तौ[7] व्युदाहृतौ ।

[।।] इति प्रबन्धबन्धुरः (९६)

पूर्वताले द्रुतद्वन्द्वं[9] गद्वयं लद्वयं भवेत् ॥५६१॥

[10]००ऽऽ।। इति पूर्वतालः (९७)

पुलिन्दे स्याद् विरामान्तं द्रुतद्वन्द्वं लघुस्तथा ।

चतुर्वारं लपावन्ते

[11]०॑।०॑।०॑।०॑।।ऽ इति पुलिन्दः[12] (९८)

चन्द्रमण्डलसंज्ञे[13] के ॥५६२॥

*लघुमध्ये प्लुतौ स्याताम्[14]

[15]।ऽऽ। इति चन्द्रमण्डलः[16] (९९)

—इन्द्रकोदण्डके[17] ततः ।

दलगा[18] गलदास्तत्र [19]दान्तास्तत्र विरामता ॥५६३॥

[20]०।ऽऽ।०॑ [21]इतीन्द्रकोदण्डकं[22]: (१००)

---

* प्राप्तपाण्डुपुस्तकेऽयं चरणश्चन्द्रमण्डलसंज्ञक इत्यतः प्रागङ्कितोऽस्ति ।

१. ०पोलोद्वौ
२. ०रुस्०
३. ।=००।?।
४. ।=।००।?।
५. ०लतालः
६. ०रेलो
७. ०ता
८. ०रतालः
९. ०तौ द्वन्द्वौ
१०. ।।००।२२।
११. ।=०ऽ।०ऽ।०ऽ।०ऽ।०ऽ।०ऽ।२।
१२. ०दतालः
१३. ०ज्ञि०
१४. ०तां
१५. ।।??।।
१६. ०लतालः
१७. ०केतरः
१८. ०गाग०
१९. द्या००
२०. ।ऽ०।??।०ऽ।
२१. इति इन्द्र०
२२. ०डतालः

पुष्पबाणे रसौविष्टौ[1]

[2]ऽ।ऽ।। इति पुष्पबाणः[3] (१०१)

गन्धर्वो[4] मरभासुरः ।

[5]ऽऽऽऽ।ऽ इति गन्धर्वः (१०२)

वासुकिर्गरलाविष्टो[6]

ऽऽ।ऽ। इति वासुकिः (१०३)

दशानन इतीरितः ॥५६४॥

*दलगा दलैदागश्च,[7]

[8]०।ऽ०।०ऽ इति दशाननः[9] (१०४)

ततः पङ्क्तिरथे[10]पलौ ।

[11]ऽ। इति पङ्क्तिरथः (१०५)

कलिङ्गे स्याद् विरामान्तं[12] बिन्दुत्रयमतः परम् ॥५६५॥

००ऽ इति कलिङ्गतालः (१०६)

[निगद्यन्ते क्रमादत्र] श्रीमूर्तौ[13] कल्पभूरुहे ।

अनुद्रुतमुखान्यष्टा[14] वङ्गान्यन्ते तु निर्ध्व[15]निः ॥५६६॥

[16]u०ऽ।ऽऽ + इति कल्पभूरुहः (१०७)

रत्नगर्भे तु गलपा—

[17]ऽ।ऽ इति रत्नगर्भः[18] (१०८)

[19]स्ततो हंसपदी भवेत् ।

---

* प्राप्तपाण्डुपुस्तके तु अयं चरणो 'दशानन इतीरित' इत्यतः प्रागङ्कितो वर्त्तते ।

१. ० सो विषौ
२. ॥?।?॥?॥
३. ०प वा०
४. ०धर्वा०
५. ।??।??।??। = ।
६. ०ठो
७. ०लिदागश्च
८. ।०?।?०।?०।
९. ०नतालः
१०. ०फ०
११. । = ।?।
१२. ०तं ।
१३. ०मूर्त्या
१४. ०टौ रङ्गा०
१५. ०ध्वनि
१६. ।u6।u6।9।???। = ।
१७. ॥ = ।?।?। =
१८. ०र्भतालः
१९. ततो

नो[1] विरामैश्चतुर्भि[2]र्लैरन्त्यनिःशब्दसंयुतैः ॥५६७॥

[।।। ſſſſ+] इति हंसपदी (१०९)

मृगराडिति[3] विख्याते द्रुतात् सङ्कीर्णलो भवेत् ।

[4]०९ इति मृगराट्[5] (११०)

हरिणप्लुतविख्याते पादभागं[6]चतुष्ट[7]यात् ॥५६८॥

विरामदो लत्रयं च द्रुतो मिश्रलघुर्भवेत् ।

[8]UUUU8।।।०–u इति हरिणप्लुतः (१११)

गोपतिः पादभागौ द्वौ लद्रुतौ त्र्यश्रलो[9] लगौ ॥५६९॥

[10]UU।०३।S इति गोपतिः[11] (११२)

गण्डभेरुण्डतालोऽयं गजाभ्यामुपरिस्थितः ।

[12]S।S। इति गण्डभेरुण्डतालः (११३)

रणभेरीमदोत्साह–[13]तालेऽस्मिन् सम्प्रयुज्यते ॥५७०॥

द्रुताष्टकं समस्थान–[14]विरामेण विराजितम् ।

ततो लघुत्रयं गश्च[15] लपञ्चकमतः परम् ॥५७१॥

[16]०८०८०८०८।।।S।।।।। इति रणभेरी[17]मदोत्साहः (११४)

सुधातु[18]वान् गलौ पश्च

[19]S।S` इति सुधातु[20]वान् (११५)

---

१. न
२. ०भिल्लै । र०
३. ०ति वि०
४. । = ।9।।
५. ०ट्तालः
६. ०ग च०
७. ०ठ०
८. । = UUUU8।।।०9।।
९. लघूलगौ
१०. = ।।UU।०।।?`।
११. ०तितालः
१२. । = ।?।?।।
१३. ०ह ता०
१४. न विरामेन
१५. ०च । लपश्चक०
१६. । = ।००८०८०8।।।?।।। ।।
१७. ०रीतालः
१८. तु योगलौ
१९. ।। = ।।?=?`।।
२०. ०तुयीतालः

ततश्चित्र[1]पदी भवेत् ।
गुरुद्वन्द्वं लघुद्वन्द्वं द्रुतद्वन्द्वं प्लुतं[2]ःक्रमात् ॥५७२॥
[3]SS।।००S इति चित्रपदी (११६)
षडङ्गगुणवृद्ध्याख्ये मगणो भगणोऽथवा ।
[SSS,S।।] [4]वेति षडङ्गगुणवर्धनः (११७)
चित्रपादे[5]ऽपि दद्वन्द्वं लघुद्वन्द्वं द्रुतद्वयम् ॥५७३॥
[6]००।।०० इति चित्रपाद[7]ः (११८)
यतिप्रौढे[8] द्रुताच्चन्द्रद्वयं बिन्दुद्वयं पुनः ।
चन्द्रत्रयं खत्रयं च तथा चन्द्रत्रयं मतं[9]म् ॥५७४॥
[10]०UU००UUU०००UUU इति [यति] प्रौढ[11]ः (११९)
यथा[12]र्थगणविन्यासो भरतज्ञकुलेश्वरः ।
[13]S।।S।SSS। इति भरतज्ञकुलेश्वरः (१२०)
लक्ष्मणाह्वयताले तु ग[14] लद्वन्द्वं गुरुस्तथा ॥५७५॥
[15]S।S।S इति लक्ष्मणाह्वयतालः (१२१)
॥ इत्येकविंशत्युत्तरशतं दे[16]शितालाः ॥
॥ इति सङ्गीतसूर्योदये तालाध्यायः ॥
॥श्रीः॥

---

१. ०तरी
२. ०त०
३. ।??।।००?।
४. इति
५. दे विदुर्द्वन्द्वं
६. ।०। = ।U।००।
७. ०दः । = ।✓।।q✓।
८. ०ढद्रुताश्च०
९. ०तं
१०. ।✓। = ०UUU०UUUUUU
११. ०ढतालः
१२. ०धा०
१३. ।। = ।।?।?।???।।
१४. म०
१५. ?।?।?।
१६. दश०

॥इति सङ्गीतसूर्योदयप्राच्यां प्रथमस्तालाध्याय॥

अथ

द्वितीयो नृत्ताध्यायः

*अश्ववक्त्र-पद-पंकज-युग्मं
भुक्ति-मुक्ति-सुखदं सुर-सेवितम् ।
आंगिकाद्यभिनयैरिह सांगै–
र्यन्नुमस्सरस-बुद्धिविद्रुतैः ॥१॥

श्रीमल्लक्ष्मण-भूसुरस्य विलसत्–कीर्त्यंगना-नर्तकी
नाट्यं नूतनमेव कर्तुमपटी[1]–क्षेपं प्रविष्टा[2] ततः ।
आवेगात्प[3]रितो दिशोर्द[4]रपटीं गत्वा स्थिता मण्डले
रोदस्यो[5]रचिरेण तानभिनयत्यर्थान् समग्रान् सुधीः ॥२॥

प्राची

लोललास्यललितार्धविग्रहं
द्योतितार्धतनुचण्डताण्डवम् ।
नर्तयन्तमनिशं नटेश्वरं
लीलयात्मकलितं जगन्नुमः ॥

---

* अश्ववक्त्रपदपङ्कजयुग्ममिति पद्ये प्रथमतृतीयचरणयोः 'स्वागतेति रनभाद् गुरुयुग्म' (वृ० र० ३।४०) मिति लक्षणमनुसृत्य स्वागताच्छन्दः। द्वितीये चरणे तु द्वादश वर्णाः सन्ति, तत्र सेवितमित्यत्र सेव्यमिति विन्यस्य दोषमार्जनं कर्तुं शक्यते। चतुर्थे चरणे तु 'रान्नराविह रथोद्धता लगौ' (वृ० र० ३।३५) इति लक्षणानुरोधाद् रथोद्धता-वृत्तं वर्त्तते। काचन विचित्रोपजातिरस्मिन्नपि मङ्गलात्मकपद्ये प्रतीयते।

१. ०टी क्षेप०
२. ०ष्टं
३. ०र०
४. ०दपदीं
५. ०यो र०

तालालाने नर्तकाख्यं मदेभं
भावाख्याभिः शृंखलाभिर्निबद्धम् ।
तत्त्वादीनां सम्प्रदायां[1] कुशेन,
तत्तद्वृत्तं लक्षणं[2] व्याकरोमि ।।३।।

नृत्ताध्याये द्वितीयेऽस्मिन् नृत्तस्य[3] जननं ततः ।
तद्भेदौ[4] लास्यकं तत्र[5] ताण्डवं च शिरः करः ।।४।।

करोपयोगवस्तूनि वक्षः पार्श्वे कटी–तटम्[6] ।
पादौ ग्रीवा बाहवश्च दृष्टयोर्लक्षणं भ्रुवोः ।।५।।

करणानि कराणां च सम्प्रदायैवचांसि[7] च ।
मुखाचारसमुद्भूतः[8][9][10] पुष्पांजलिरतः परम् ।।६।।

करणान्यपि शुद्धानि तथोत्प्लुतिमुखानि च ।
अंगहारा[10] रेचकाश्च चार्यो भूव्योमसम्भवाः ।।७।।

शुद्धाश्च देशिसञ्जाताः स्थानकानि ततः परम् ।
मण्डलं पात्रलक्ष्माणि[11] गुणदोषास्तदा[12] श्रिताः ।।८।।

[13] लास्यांगानि ततो रेखा लक्षणं च सभापतेः ।
लक्षणं भरतज्ञस्य नटस्य च ततः परम् ।।९।।

---

१. ०यांशुकेन
२. यः करोति
३. जिननन्दनः
४. तद्भेदास्स
५. काण्डपंच ।
६. ०क
७. ०या
८. मुखसारे
९. तदुद्भूता
१०. ०चारो
११. ०लक्षाणि
१२. ०तथाश्रुताः,
१३. वाह्यां०

शुद्धाद्या पद्धति [१]वृन्दो[२] लक्षणं [३]कुतपस्य च ।
वस्तून्येतानि नृ[४]त्तस्य निरूप्यन्ते क्रमादिह ॥१०॥

[इति नृत्ताध्याय स्योद्देशः]

[नृत्तोपत्ति-निरूपणम्]

तन्नर्तनं [५]यथा नाटयं नृत्तं नृत्यमुदीरितम् ।
सामवेदोपवेदत्वान्नाट्यवेदं चतुर्मुखः ॥१२॥
भरताय ददावादौ ततस्स भरतो[६]ऽग्रणीः ।
अप्सरोगणगन्धर्वैः साकं शम्भोः पुरस्सुधीः ॥१३॥
प्रयुक्तवान् गिरीशोऽथ विचार्यात्मविनिर्मितम् ।
तण्डुना गणवर्येण भरताय [७]न्यदीदिशत् ॥१४॥
ततः शम्भुकृपायुक्तः शाम्भव्याश्च विशेषतः ।
लास्यं सीमन्तिनीभागं ततस्तु मुनयो[८]ऽखिलाः ॥१५॥
ताण्डवं तण्डुना ज्ञात्वा मर्त्येभ्यो न्य[९]वदंस्तदा ।
शाम्भव्या शिक्षिता[१०] सम्यग् ह्यु[११]षा बाणात्मजा ततः॥१६॥
तया गोपस्त्रियस्तद्वत्ताभिस्सौराष्ट्रकन्यकाः ।
ताभिर्जनपदोद्भूताः शिक्षिता वामलोचनाः ॥१७॥
एवं परम्पराप्राप्तं लोकेऽस्मिन् सुप्रतिष्ठितम् ।
केवलं सामवेदोपवेदत्वं नास्य कथ्यते ॥१८॥
ऋग्वेदात्पाठविततं यजुषो[१२]ऽभिनयाह्वयम् ।
गीतिं[१३] साम्नस्समुद्धृत्याथ[१४] वणो[१५] रसनिर्णयम् ॥१९॥

---

१. वृ०
२. ०द
३. क....वस्य च
४. वृ०
५. त०
६. तोग्र०
७. व्य०
८. ०योखि०
९. ०व०
१०. तास्
११. धु० ६*०ट०
१२. षो भि
१३. नित्य०
१४. ध०
१५. ०णाद्०

प्रयुक्तवान् शिवस्याग्रे नाट्यादित्रितयं परम् ।
स्तोकायुर्जन्मचकितो विरिंचिर्मोक्षकामुकः ॥२०॥
देहिनां धर्मकामार्थमोक्षदं सुखहेतुकम् ।
मखशोकाग्निनिर्वेद[1]भेद[2]–विच्छेदकारणम् ॥२१॥
तस्मादिदं ब्रह्मसंविदधिकं मन्वते बुधाः ।
नो चेत् पुरन्दरादीनाम[3]पहृत्य मन[4]ः स्वयम् ॥२२॥
कथं विजृम्भते तस्माद् द्रष्टुस्सुखकरं परम् ।
वस्त्वन्तरं किंचिदस्मिन् न लोके नु चराचरे ॥२३॥
कृति[5]ना नाट्य-नृत्ये[6] ते द्रष्टव्ये सर्वदा ततः ।
नृत्तं तूत्तुङ्गभूपाना[7]मभिषिक्ते महोत्सवे ॥२४॥
सत्सङ्गमे देवतादि-यात्रास्वपि विशेषतः ।
चतुरानन-सम्प्रोक्तं म[8]ङ्गल्यं सर्वकर्मसु ॥२५॥
प्रयोगं ब्रूमहे तत्र नाट्यादि-त्रितयस्य च ।
प्रपंच-व्यक्त-विधिना संक्षेपेण सतां मतम् ॥२६॥
*रसे मुख्यो नाट्यशब्दो रसाभिव्यक्तिकारणम् ।
आङ्गिकाद्यैस्समायुक्तं लक्षणावृत्तितो बुधैः ॥२७॥
त[9]न्नर्तनं नाट्यशब्देनोच्यते भरतादिभिः ।

---

*क—पद्यमेतदधोलिखितस्य श्लोकस्य तात्पर्यमनुसरदिव दृश्यते ।
नाट्यशब्दो रसे मुख्यो रसाभिव्यक्तिकारणम् ।
चतुर्धाभिनयोपेतं लक्षणावृत्तितो बुधैः (सं० र० ७-१७) ।
ख—भरतादिभिः तन्नर्तनं नाट्यशब्देन उच्यते स नाट्यशब्द एव अभिनयत्वेन काव्यादिषु विराजते इत्यन्वयः ।

१. ०दं भे०
२. दा०
३. ०नां अ०
४. ०नुः
५. ०तेनाना०
६. ०येते
७. ०नां अ०
८. मङ्गव्यं
९. तेन तर्नं

अभिनयभेदाः

चतुर्धा स्यादभिनयस्त्वाङ्गिको वाचिकस्ततः ।
आहार्यस्सात्विकश्चेति तेषां लक्ष्माभिदध्महे ॥२९॥
आङ्गिकोऽङ्गसमुद्भुतो वाचिको वाक्समुद्भवः ।
आहार्यः स्यादलङ्कारः, सात्त्विकस्सात्त्विकैर्युतः ॥३०॥

[धर्मीनिरूपणम्]

[1]ईतिकर्तव्यता तस्याभिनयस्य द्विधा मता ।
लोकधर्मी नाट्यधर्मीत्येते च द्विविधे[2] मते ॥३१॥
तत्राद्याया लोकधर्म्या भेद-द्वन्द्वं क्रमाद् ब्रुवे ।
*चित्तवृत्यर्पिका[3] काचिद् बाह्य[4]-वस्त्वनुसारिणी ॥३२॥
तत्राद्या चित्तसम्भूता पद्याद्य[5]भिनयात्मिका ।
⋆नाट्यधर्म्या अपि[6] प्रायो [7]भेदद्वन्द्वं विदुर्बुधाः ॥३३॥
कैशिकीं वृत्तिमाश्रित्य नाट्यस्याङ्गैरिहादिमा ।
द्वितीया करणैरेवावेष्टिताद्यैः करोद्भवैः ॥३४॥
वक्ष्यमाणैरिति प्रोक्तं नाट्यभे[9]दचतुष्टयम् ।
आंगिकाभिनयैरेव [11]काव्यार्थास्तु व्यनक्ति यत् ॥३५॥

---

* तुल०—चित्तवृत्यर्पिका काचिद् वाह्यवस्त्वनुकारिणी ।
—सं० र० ७।२३

⋆ लोकधर्म्या वाह्यवस्त्वनुसारिणीभेदो नाऽत्र विवेचितो वर्तते । तल्लक्षणन्तु 'अंशेनैवोपजीवन्ती लोकमन्या प्रवर्तते'—सं० र० ७।२५

१. इति कव्यता
२. ०द्विधा
३. ०ता
४. ०ह्या
५. ०द्या०
६. अजप्रायो
७. भत्र०
८. ०मद्यत्या०
९. वे०
१०. कैदयँ यंद्व्य०
११. मार्गवृत्यां करिष्यते

तैरेव केवलान् भावान् मार्गनृ[1]त्यं किरन्ति तत् ।
[2]नृत्तं त्वभिनयाभावादङ्गविक्षेपमात्रकम्[3] ।।३६।।
आंगिकोक्तविधानेन विभाति, मुनिसत्तमाः[4] ।
पृथगेते नृत्तनृत्ये[5] लास्यताण्डवभेदतः[6] ।।३७।।
लपन्ति, तल्लक्ष्म वक्ष्ये कैशिक्या परिभाषितम् ।
सुकुमाराङ्गसंभूतं मदनाह्लाद-कारणम् ।।३८।।
लास्यं तत्स्यात्, ताण्डवस्य लक्षणं ब्रूमहेऽधुना ।
[8]वर्धमानासारिताद्यैर्गीतैस्तत्तद्[9]ध्रुवायुतम् ।।३९।।
[10]उद्धतैः करणैरङ्गहारैर्निर्वर्तितं यथा ।
वृत्तिरारभटी गीता का[11]व्ये तत् ताण्डवं मतम् ।।४०।।
अन्ये [12]तण्डु-समाख्यातं प्रयोगं ताण्डवं विदुः ।
नृत्तं पुनस्त्रिधा प्रोक्तं विषमं विकटं लघु ।।४१।।
इत्येषां लक्षणं वच्मि यद्र[13]ज्जुभ्रमणादिकम् ।
विषमं, तद्[14], विरूपादिनटनं विकटं[15] मतम् ।।४२।।
अंचिताद्यैस्तु करणै[16]रुपयुक्तं लघु स्मृतम् ।
नाटक-स्थित-वा[17]क्यादि-पदार्थाभिनयात्मकम् ।।४३।।
नाट्यमित्युच्यते तच्च नाटकेषु[18] प्रयोजितम् ।
अथ हित्वा वाचिकादीन् मुख्यत्वादा[19]ङ्गिकं प्रति ।।४४।।

---

१. ०नृत्यं करिष्यते
२. नृत्यं
३. ०कः
४. ०मः
५. ०त्यौ
६. ०कः
७. ०स०
८. वर्तमाना हरोता०
९. ०तत् ध्रु०
१०. प०
११ काले तं
१२. क०
१३. ०दृजु
१४. तद्०
१५. लं
१६. णैः उ
१७. ०नाट्यादीन्०
१८. ०ष्व०
१९. ०दांसकं

क्रमात् कारणिकश्रेष्ठो वक्ति संक्षिप्य लक्षणम् ।
आङ्गिकाभिनयस्तत्र त्रिधा भूत्वा प्रवर्त्तते ॥४५॥
शाखाङ्कुरौ च सूची[2]ति, स्यात्[3] शाखा[4] करवर्तना ।
अङ्कुरो भूतवाक्यार्थं परिगृह्य नियम्यते ॥४६॥
स्यात्[5] वर्तनास्थैव[6] सूची भाविवाक्योपजीविनी[7] ।
एतौ सूच्यङ्कुरौ नात्र[8] करणाभिनयात्मकौ[9] ॥४७॥
अस्मिन् शास्त्रे वक्ष्यमाण-लक्षणं च क्वचित् क्वचित् ।
वक्ष्ये लक्ष्यानुसारेण नो चेद्योगो न दृश्यते ॥४८॥

[अङ्ग–निरूपणम्]

अङ्गान्यत्र निरूप्यन्ते सुलभान्युचितानि च ।
शिरो हस्ता उरः पार्श्वे कटिः पादौ यथाक्रमात् ॥४९॥

[१—शिरः]

अङ्गेषु शिरसस्तत्र प्राधान्यं तेन तच्छिरः ।
प्रथमं ब्रूमहे, तस्य वक्ष्याम्युद्देशलक्षणे ॥५०॥
ततः परीक्ष्य[10] रूपाणि विनियोगं यथोचितम् ।
लक्ष्मणां वक्ष्यमाणानां, विनियोगे क्वचित् क्वचित् ॥५१॥
क्रियापदन्तु कुलकेनोच्यते, दृश्यतां बुधैः ।
*धुतं विधुतमाधूतमवधूतं च कम्पितम् ॥५२॥
आकम्पितोद्वाहिते च परिवाहितमंचितम् ।
निहंचितं परावृत्तमुत्क्षिप्ताधोमुखे[11] तथा ॥५३॥

* शिरोभेदसम्बद्धं पंक्तित्रयमक्षरशः 'संगीतरत्नाकर'तः ७।४९-५० संगृहीतमस्ति

१. क०
२. ०चेति
३. ना०
४. ०खाक०
५. या वर्त्त०
६. ०नास्थ व०
७. भार वा०
८. शत्रुमरणा०
९. ०का
१०. ०क्षा०
११. ०खस्०

लोलितं चेति तेषान्तु क्रमाल्लक्ष्म निरूप्यते ।
धुतं शिरस्तदेवाऽत्र शनैः पार्श्वद्वयानुगम् ॥५४॥
भवेदभीष्टालाभे च परपार्श्वावलोकने ।

इति धुतशिरः (१)

तदेव द्रुतकम्पेन विधुतं तत्र युज्यते ॥५५॥
भीते शीतान्विते सद्यः[1]पीतमद्ये ज्वरान्विते ।

इति विधुतम् (२)

तदाधूतं सकृत्पार्श्वोन्नतं मन्दचरं शिरः ॥५६॥
स्वयौवनमदोन्मत्त [भावेन स्वाङ्ग][2] वीक्षणे ।
पार्श्वस्थहर्म्यचन्द्रादिदर्शनेष्वभिनीयते ॥५७॥

इत्याधूतम् (३)

किंचित्सकृदधोनीतमवधूतं निगद्यते ।
समीपस्थानां[3]माह्वाने चोपदेशकसूचने ॥५८॥
समीपस्थितवस्तूनां निदेशे विनियुज्यते ।

इत्यवधूतम् (४)

कम्पितं स्याद् यदूर्ध्वाधो बहुशः कम्पनाच्छिरः ॥५९॥
गूढार्थ[4]ज्ञान-विषये दुष्टानुचर-निग्रहे ।
किं चत्रारे[5] ? समानीत-वाक्येशेषे[6]ऽभिनीयते ॥६०॥

इति कम्पितम् (५)

तदेवाकम्पितं मन्दचार्यां[7] कम्पद्वयाश्रितम् ।
तत्स्यात् पुनः पुनर्वक्त्राश्रवणे शिष्यबो[8]धने ॥६१॥

इत्याकम्पितम् (६)

सकृत्-समोर्ध्वमुन्नीतमुद्वाहितमुदीर्यते ।
अ[10]स्मिन् कार्यें त्वहं [9]शंक्त इति वाच्यनिरूपणे ॥६२॥

इत्युद्वाहितम् (७)

---

१. सत्यपित्त माध्यज्वरा०
२. भवी०
३. ०न०
४. ०र्था०
५. ०रसमा०
६. शेषि विनीयते,
७. ०र्याकम्प०
८. ०भोजने
९. त०
१०. स०

शिरः स्यान्मण्डलाकारभ्रामितं परिवाहितम् ।
ग्रहाविष्टे[१] मधुभ्रान्ते[२] परिश्रमगतेऽध्वनि ॥६३॥

इति परिवाहितम् (८)

ईषत्पार्श्वनतग्रीवमंचितं तदुदीर्यते ।
रुङ्मोहचिन्तामूर्च्छासु त्रिपताकमि[३]लद्धनुः ॥६४॥
लोकधर्म्यां मुष्टिरे[५]व पताकस्तूभयान्वितः ।

[६]इत्यंचितम् (९)

समुत्क्षिप्तभुजद्वन्द्वं तुङ्गग्रीवं निहं[७][चितम् ॥]६५॥
गर्वे विलासे ललिते बिब्बोके किलकिंचिते ।
मोट्टायिते कुट्टमिते माने स्तम्भे[८] नियुज्यते ॥६६॥
प्रियलाभोदया वृत्ति[१०] गर्वो [ऽनेनाभि]नी[११]यते ।
विलासो[१२] गमनादिः स्याच्चेष्टाश्लिष्टाङ्गया कृता ॥६७॥
कान्तायां* सुकुमाराङ्गोपाङ्गत्वं ललितं जगुः ।
स[१३] बिब्बोकः स्वेष्टलाभजाताद् गर्वादनादरः ॥६८॥
हर्षक्रोधनहासादिक्रिया स्यात् किलकिंचितम् ।
मोट्टायितं प्रियकथादृष्ट्यादौ तन्मयात्मता[१४] ॥६९॥
†केशादिग्रहजे[१५] हर्षे दुःख[व]द्वेदनं तु यत् ।
तत्स्यात् कुट्टमितं, मानो[१६] रोषः प्रणयसम्भवः ॥७०॥
स्यात्तु निष्क्रियता स्तम्भो नवोढा-प्रियसङ्गमे ।

इति निहंचितम् (१०)

* संगीतरत्नाकरे तु 'कान्तायाः सुकुमाराङ्गोपाङ्गत्वं ललितं विदुः'[७।६७]

† प्रायेणात्रत्यान्यखिलान्यपि पद्यानि 'संगीतरत्नाकरात्' संगृहीतानि सन्ति । [७।६८-६९]

१. ०टे०
२. ०न्ति०
३. ०मिलं धनुः
४. ०र्या
५. ०रव०
६. इत्यंचितशिरः
७. ०ह···
८. ०बे
९. ०द्व०
१०. वृत्ति-गर्भो०
११. ····ली०
१२. ०से
१३. साभियोक्तस्वेष्ट०
१४. ०त्मिका
१५. ०णे
१६. दो०

शिरः पराङ्मुखीभूतं परावृत्तं विदुर्बुधाः ॥७१॥
तन्नियोज्यं कोपलज्जारम्भे पश्चान्निरीक्षणे ।

इति परावृत्तम्(११)

शिरस्तूर्ध्वनीतास्यं[1] यदुत्क्षिप्तं तन्नियुज्यते ॥७२॥
हर्म्यान्तरान्तशिखरालोकमध्यगते विधौ ।

इत्युत्क्षिप्तम् (१२)

अधोमुखमथो वक्ष्ये तदन्वर्थं प्रकीर्तितम् ॥७३॥
प्रणामलज्जादुःखादिभावेषु भरतोदितम् ।

इत्यधोमुखम् (१३)

[2]शिथिलोत्प्लुतदृष्टिभ्यां सर्वदिक्षु शनैः शनैः ॥७४॥
वलितं लोलितं तत्स्यान्निद्रा-[3]प्रेत-ग्रहाकुले ।
आपत्सम्भूतमूर्च्छासु प्रयोज्यं मध्यमे मदे[4] ॥७५॥

इति [5]लोलितम् (१४)

*इति भरतोक्तं चतुर्दश [-विधं] शिरः

मनोजातं वचो लोके मुखरागेण सूच्यते ।
मुखं शिरोगतं विद्याच्छिरसोऽनुचरो करौ ॥७६॥

---

* नाट्यशास्त्रे तु त्रयोदश शिरोभेदा वर्णिताः सन्ति किन्त्वत्र संगीतरत्नाकरोक्तमनुसृत्य 'इति भरतोक्तं चतुर्दश (–विधं) शिरः' [सं० रं० नर्त० पृ० २३] इति लिखितं वर्त्तते ।

१. त्वूर्ध्वनिता०
२. सिद्धिलो
३. ०पैन्य०
४. ०ले
५. भ्रो०

तस्मात्करोद्देशलक्ष्मविनियोगान् वदाम्यहम् ।
विनियोगक्रियाभेदादिषु [1]विविधगामिनाम् ॥७७॥
कराणां लक्षणाभावो नास्तीति मुनिसम्मतम् ।

॥ हस्ताः ॥

§-पताकस्त्रिपताको[2]ऽर्धचन्द्राख्यः कर्तरी[3]मुखः ॥७८॥
[4]अरालो मुष्टि[5]शिखरः कपित्थः ‡कटकामुखः ।
शुकतुण्डश्च[6] काङ्गूलः पद्मको[7]शोऽलपल्लवः ॥७९॥
सूचीमुखस्सर्पशिरा[8]श्चतुरो मृगशीर्षकः ।
हंसास्यो हंसपक्षश्च [9]भ्रमरो मुकुलस्तथा ॥८०॥
पूर्णनाभश्च सन्दंशः ताम्रचूडो[10]ऽपरः करः ।
इत्यसंयुतहस्ताः स्युः संयुतत्वे[11]ऽपि कुत्रचित् ॥८१॥
योजना[12]चेति भट्टाद्यैश्शास्त्रेष्वेवं निरूपिता[13] ।
अंजलिश्च कपोत[14]श्च कटकावर्धमानकः ॥८२॥
गजदन्तावहित्थौ[15] च [16]निषधो मकरस्तथा ।
वर्धमानश्चेति हस्ताः संयुताः स्युस्त्रयोदश ॥८३॥

---

§ हस्तोद्देशप्रसङ्गेऽत्र प्रायः सङ्गीतरत्नाकरस्यैव पद्यानि संगृहीतानि सन्ति [सं० र० ७|७८—८१]

‡ संगीतरत्नाकरे तु 'अरालमुष्टिशिखरकपित्थखटकामुखाः' [७|७९] एवं 'खटकामुख' इति पाठो वर्त्तते ।

१. द्विकृतगा०
२. ०र्थ०
३. ०रे मु०
४. आरामो
५. ०ष्टिशि०
६. डश्चांगु
७. कोशाल०
८. ०र०
९. मक०
१०. ०डोप०
११. ०क
१२. ०नानामिति
१३. ०ताः
१४. ०ख्यश्च
१५. ०था
१६. निष्ठथो

अमी सप्तत्रिंशदुक्ताः करास्त्वभिनयात्मकाः ।
चतुरश्रावथो[1]द्वृत्तौ हस्तौ तलमुखाभिधौ ॥८४॥
स्वस्तिकौ[2] विप्रकीर्णाख्यौ[3]वरालकटकामुखौ ।
आविद्धवक्त्रौ[4] सूच्यास्यौ रेचितावर्धरेचितौ ॥८५॥
नितम्बौ पल्लवौ केशबन्धावुत्तानवंचितौ ।
लताख्यौ करिहस्तौ[5]श्च पक्षवंचति[का]भिधौ ॥८६॥
पक्ष-प्रद्योतकौ[6] दण्डपक्षौ गरुडपक्षकौ[7] ।
ऊर्ध्व[मण][8]डलिनौ हस्तौ पार्श्वमण्डलिनाव[9]पि ॥८७॥
उरोमण्डलिनौ स्यातामुरः[10]पार्श्वार्धमण्डलौ ।
मुष्टिकस्वस्तिकावन्यौ नलिनीपद्मकोशकौ ॥८८॥
अलपद्मावुल्वणौ च वे[11]लितौ ललिताविति ।
नृत्तहस्ता मतास्त्रिंशन्नृ[12]त्तप्रायाः प्रसिद्धि[13]तः ॥८९॥
एतौ[14]नभिनये[15]ऽप्याहुराचार्याः कोहलादयः ।
शास्त्रेषु सम्प्रदायेषु प्रयोज्यन्ते विचक्षणैः ॥९०॥
पुष्पांजलिमुखोद्व्यापि-नृत्तोक्तौ यौ लताकरौ ।
प्रयोज्येते बुधास्तस्मान्नृत्ताभिनयगोचराः ॥९१॥
तथा स्युस्साहचर्यात्ते त्वपि[16] हेतु-प्रभावतः ।
सर्वे द्विवच[17]नेनोक्तास्तेष्वेकवचनेन यः ॥९२॥

१. ०धो०
२. ०कापि प्र०
३. स्याद्यरा०
४. ०वक्रौ
५. ०स्य
६. ०कोद०
७. ०म०
८. ··· तलिनौ
९. ···ह्व०
१०. ०डु०
११. परितौ
१२. ०मतः प्रायः
१३. ०द्धया
१४. ०को०
१५. ०नयस्याहु०
१६. ०भि०
१७. ०दने०

प्रोक्तः करः[1] करिकरस्त्वेसंयुक्तकुलोद्भवः[2] ।
[ए]वं[3] पुरा विरूपाक्षो गजासुर-वधोद्धते ॥९३॥

ताण्डवे तस्य चारित्रमनुकुर्वन् प्रयुक्तवान् ।
तस्मान्नृत्तकरेष्वत्र संयुक्तो भक्ततण्डुना ॥९४॥

जातित्रितयसंयुक्तास्सप्तषष्टिरिमे कराः ।
चतुष्षष्टिस्त्वमी[4] तेषां वदन्त्यन्ये तदुच्यते ॥९५॥

विप्रकीर्णस्वस्तिकयोर्मण्डलान्तोर्ध्वपार्श्वयोः[5] ।
पल्लवोल्बणयोस्तेषां समाधत्तेऽनुसंयुतम् ॥९६॥

यथा नीलो[6]त्पलस्यार्थे द्विरूपाभाव इत्यतः ।
तथा तयोः स्वतन्त्रत्वं नास्तीत्याद्यैः[7] प्रकल्पितम्[8] ॥९७॥

विशेषणविशेष्यत्वं प्रतिपाद्यपरागमात् ।
ब्रह्मादिभिर्विप्रकी[9]र्णमुखाः पृथगुदीरिताः ॥९८॥

उद्देशलक्षणाभ्यां च तस्मात्सप्ततिरेव ते ।
केचित्पृथग्[10] विदुस्तस्मिन्नयुतेषु निकुंचितम् ॥९९॥

युतेषु शिखरद्वन्द्वं नृत्तेषु वरदाभयौ[11] ।
स्वशास्त्रे लक्ष्मणार्योऽसौ वक्ति लक्ष्यविचक्षणः ॥१००॥

---

१. ०रं
२. ०तसंयुक्तः कु०
३. मं०
४. ०ष्ठि०
५. र्मादिला०
६. ०लात्पल सान्द्र विरूपा०
७. ०त्यस्यै:
८. ०कम्पि०
९. ०र्णा मु००
१०. ०गयं त०
११. ०यम् ।

इष्टदाविति नृत्ताख्यौ हस्तौ विद्वज्जनाश्रयौ ।

[इति हस्तोद्देशः]

तताङ्गुलिसमुपेतपताकः[1] स्याद्युताङ्गुलिः[2] ॥१०१॥
संकुचत्कुञ्चिताङ्गुष्ठो[3] विनियोगो निरूप्यते ।
मङ्गलद्रव्यसंस्पर्शे चपेटाद्यङ्गमर्दने[4] ॥१०२॥
ज्वाला-वृष्टि-पताकादिनीराजनमुखेषु[5] च ।
पक्षिपक्षे चन्दनादिलेपने च यथोचितम् ॥१०३॥
प्रमाणमनतिक्रम्य पदवाक्येषु योजयेत् ।

इति पताकहस्तविनियोगः—१

स[6] हस्तस्त्रिपताकः[7] स्याद्यदा वक्रा त्वनामिका ॥१०४॥
कस्तूरिकादितिलकग्रहणे बाष्पपातने ।
पराङ्मुखतलत्वेन[8] लग्नद्व्यङ्गुलिकुंचना त् ॥१०५॥
आह्वाने तत्यजेदे[9] तद्वचनादौ यथोचितम् ।
ललाटप्रान्तविस्रस्तालकावलिर्युता[10] मता ॥१०६॥

इति त्रिपताकः—२

अतिक्रम्यानतिक्रम्य पताकाङ्गुष्ठलक्षणे ।
क्रमेण[11] ह्यांचनं साम्यं विशेषादर्धचन्द्रकः ॥१०७॥
सप्तम्यर्धे[12]धिचंद्रेषु[13] कोपाविष्टासनादिषु ।
नयेन्[14] यथोचितस्थानं दु[15]ष्टापेन[16]यमाचरेत् ॥१०८॥

[इत्यर्धचन्द्रः—३]

---

१. तालाङ्गु०
२. ०मुत्पे०
३. ०ष्ठौ
४. ०चाङ्ग०
५. ०नि
६. सहस्तस्त्रि०
७. ०का
८. ०लयत्वे०
९. ०त्येत०
१०. ०लिन्यु०
११. ०यं०
१२. ०या०
१३. कोपादिष्ठास०
१४. लवं तथो०
१५. दृ०
१६. ०जन०

तर्जनी त्रिपताकः स्याद् बहिरीषद् विसर्पिता ।
स कर्तरीमुखो नाम हस्तः स्यादभिनीयते ॥१०९॥
अलक्तकादिना[1] पाद-नख-रंजन-कर्मणि ।
तर्जनी-मध्यमा-स्थान-व्यत्यये[2] भवतः पुनः ॥११०॥
तालमाने बालशिखालेखने प्रौढलेखने ।

इति कर्तरीमुखः–४

तर्जन्याद्याः[3] पताकस्थाः[4] प्रत्येकैकं बहिर्गताः ॥१११॥
किंचिद्-वक्रा तर्जनी स्यादर्ध[5] वक्रा यदा-कदा ।
अराल[6] इति विज्ञेयो विनियोगोऽथ कथ्यते ॥११२॥
आक्रो[7]शने गौरवाशीर्वचने च प्रदक्षिणे ।
अवेष्टितक्रियायुक्तो भवेद् धम्मिल्लबन्धने ॥११३॥
पराङ्मुखः स्यादाह्वाने स हस्तः[8] पतदङ्गुलिः ।
सेनायाः[9] क्षेत्र-विस्तारे[10] ष्वन्यपार्श्वा[11]त् स्वपार्श्वगः ॥११४॥
सन्मानकथने चासावभिनेयो मनीषिभिः ।

इत्यरालः–५

अंगुल्यग्रसमासक्तकर[12]मध्या [ङ्गुलेः खलु] ॥११५॥
पृष्ठे निपीडकां[13]गुष्ठो मुष्टिर्मल्लाहवे भवेत् ।
गदा-दण्ड-ग्रहे, कुन्त-ग्रहे[14] खड्ग-ग्रहे भवेत् ॥११६॥

इति मुष्टिः–६

---

१. ०त०
२. ०प्र०
३. ०द्या
४. ०ष्या
५. ०र्ध०
६. ०ळ
७. ०पो०
८. ०तस्तदङ्ग०
९. ०ना वा क्षे०
१०. ०रं अस्य पा०
११. ०र्वस्व०
१२. कवमद्यो····
१३. ०डिताङ्ग०
१४. ०हृ०

मुष्टिरेवो[१]न्नतांगुष्ठः शिखरश्चाभिधीयते ।
*पुरुषाभिनये देशे कुटुम्बस्थापनादिषु ॥११७॥
तौ युतौ द्वित्रिवारं स्यान्नास्तीत्यर्थेऽभिनीयते ।
इति शिखरः—७

मुष्टि[२]रंगुष्ठतर्जन्यौ ल[३]ग्नाग्रे वर्तुलाकृती ॥११८॥
कपित्थः स्यादसौ कार्यो वज्र-चक्र-गदादिषु ।
श[४]रयुक्तोऽभिनेतव्यो[५]ऽप्युत केश-निपीडने ॥११९॥
क्वचित् कपित्थ-शिखरावन्योन्याभिनयात्म[६]कौ ।
इति कपित्थः—८

अनामिकाकनीय[७]स्यौ विरले कुटिलांचिते ॥१२०॥
तयोः कनीयसी[८] किंचिदुन्नता दृश्यते यथा ।
कपित्थे[९] च, तथा[१०] नीते तदासौ कटकामुखः ॥१२१॥
कस्तूरिकादिवस्तूनां कर्षणे दर्पणग्रहे ।
वृन्तच्छेदे नागवल्लीदलानां ग्रहणे तथा ॥१२२॥
शरमन्था[११]कर्षणे च पुष्पसृक्चामरादिषु ।
इति कटकामुखः—९

अरा[१२]लो[१२]नामिका यत्र तर्जनीसमतां गता ॥१२३॥
यत्रासौ शुकतुण्डः स्यादभिनेयमिहो[१३]च्यते ।
उत्तमाधमम[१४]ध्यानां वि[१५]भागे लेखनेऽपि च ॥१२४॥

---

* 'पुरुषाभिनये केशे कुन्ताङ्कुशग्रहादिषु' इत्यपि पाठः समीचीनः प्रतिभाति, 'शक्तितोमरयोर्मोक्षे धनुर्भल्लाङ्कुशग्रहे । अलकोत्पीडने मुष्टिः कार्यः सोऽप्यस्य लोकतः ॥' (७|१३१) इति सङ्गीतरत्नाकर-वचनात् ।

१. ०नो०
२. ०ष्ठि०
३. वर्णाग्रे
४. प०
५. ०यप्लुत०
६. ०तिमका
७. ०यांस्सौ
८. ०से
९. ०थस्य
१०. ०दा
११. ०दा
१२. ०ळा०
१३. ०वो०
१४. ०रत्नानां
१५. त्रि०

पूर्वापरार्थ[1]संबद्धे गर्हिते[2] वचने तथा ।
क्रियातिपत्तावासू[3]यासूर्ध्वाधःस्थलतां[4]कृतः ॥१२५॥
अपूर्वबोधचकितावाह्वा[5]नेऽप्यभिनीयते ।

इति शुकतुण्डः—१०

त्रिपताकस्य हस्तस्य तर्जन्यंगुष्ठमध्यमाः ॥१२६॥
परस्पर-सम[6]स्थान-पराश्चोर्ध्व-समा यदि ।
भवेत् स एव कांगूलस्ततोऽसावभिनीयते ॥१२७॥
अल्पग्रासे फले[7]ऽल्पे च रत्ननक्षत्रदर्शने ।
विडालशशकादीनां पदमुद्रानिरूपणे ॥१२८॥

इति कां[8]गूलः—११

अङ्गुल्यो[9]ऽस्पर्शशिरसो विरलाभिमुखौ[10] यदि ।
स हस्तः पद्मकोशाख्यः प्रयोगोऽथ निरूप्यते ॥१२९॥
किंचित्कुंचितकी[11]र्णाग्रः पुष्पप्रकरदर्शने ।
बलिदाने नारिकेले पीनोन्नतकुचादिषु ॥१३०॥

इति पद्मकोषः—१२

पद्मकोषस्य हस्तस्याङ्गुल्यः पंचात्र पार्श्वगाः ।
तदा स पल्लवो ज्ञेयो विनियोगो निरूप्यते ॥१३१॥
तिर्यगान्दोलनात्साधुवचने मृ[12]दुपल्लवे ।
सुवस्त्राभरणादीनां[13]मुत्कर्षालोकने भवेत् ॥१३२॥
किं तत्रेति वचः[14]स्थाने तुच्छोऽयमिति भाषणे ।
स्त्रीभिः प्रयुज्यते लोके [15]चानृतोद्दीप्रशंसने ॥१३३॥

---

१. ०द्य०
२. जहिते
३. ०हूयमू०
४. ०का०
५. ०मा०
६. ०स्तानां प०
७. परे द्वेच
८. रा०
९. ल्यस्य
१०. ०खो
११. ०कर्णाग्रि पु०
१२. मद्य प०
१३. ०नां उ०
१४. ०चस्था०
१५. कर्मता दीपिकासने

इति पल्लवः—१३

कटकामुखहस्तस्य तर्जन्येका समुन्नता ।
तदा सूचीमुखो[1] नाम हस्तोऽयमभिनीयते ॥१३४॥
शस्त्रे[2] चक्रे[3] कुम्भकारचक्रे रथविभूषिते ।
ऊर्ध्वाधःपार्श्वभागेषु तर्जनी क्रमवर्तिनी[4] ॥१३५॥
स्यादन्यपार्श्वात्संपार्श्वमायान्ती[5] जनदर्शने ।
बालानां तर्जने च स्या[6]द् दोलिता साधुवादने ॥१३६॥

इति सूचीमुखः—१४

पताको निम्नमध्यत्वं प्राप्तः[7] सर्पशिराः करः ।
दर्पणे जुषि दीपानां मल्लाहवमुखे भवेत् ॥१३७॥
गजकुम्भहयस्कन्धास्फालने जलधारणे ।

इति सर्पशिराः[9]—१५

चतुरः प्रोच्यते हस्तः पताकस्य कनीयसो ॥१३८॥
ऊर्ध्वा यदा त[10]दाङ्गुष्ठो मध्यमा-मध्य-प[11]र्वगः ।
विनियोगो[12]ऽस्य शेषार्थे तथे[13]ह त्वेषु वस्तुषु ॥१३९॥

इति चतुरः—१६

तस्यैव सर्पशिरसस्तर्जन्यादित्रयं यदि ।
मूलश्लि[14]ष्टं भवेद्धस्तो मृगशीर्षकरः स्मृतः ॥१४०॥
मृगाख्याने जनाह्वाने ह्य[15]द्यादिकथने तथा ।

---

१. ०खा०
२. ०त्री
३. ०क्री
४. ०ना
५. ०न्ति
६. ०ल्लोडितस्यानुवा०
७. ०तसर्वशि०
८. ०ध०
९. ०रः
१०. क०
११. ०स०
१२. ०गस्य
१३. ०थै०
१४. ०संरम्भ०
१५. सस्यादि०

मणिबन्धस्वस्तिकेन पक्षादिषु नियोजयेत् ॥१४१॥
इति मृगशीर्षः [१७]
अन्तर्मुखसमायुक्तास्तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यमाः ।
क्रमादूर्ध्वोर्ध्वसंस्थानानामिका च कनीयसी ॥१४२॥
स हंसास्योऽभिनेयः स्याद् भवने चाल्पवस्तुनि ।
द्यूताक्षपातने वृन्तात्सूक्ष्मपुष्पावकर्षणे ॥१४३॥
चुम्बने पोतकादीनां चिबुकग्रहणे पुनः ।
अल्पे मृदुनि निःसारे श्लक्ष्णे च शिथिले क्रमात् ॥१४४॥
कुर्यात्क्षिप्तं मर्दितं च मथितं धुतसंयुतम् ।
इति हंसास्यः–१८
सर्पमस्तकनामा स्यादूर्ध्वा स्याच्च कनीयसी ॥१४५॥
स करो हंसपक्षाख्यः प्रयोगोऽस्य विधीयते ।
आमोदादिलसद्हृत्स्वरूपसन्दर्शने पुनः ॥१४६॥
उभाभ्यां च जयस्तम्भे, वधूवरनियोजने ।
मण्डलीकृतबाहुस्सन् प्रत्यक्षालिङ्गनादिषु ॥१४७॥
स्वस्तिकीकृतबाहुः स्याद्वक्षसोऽग्र्यं द्वयोरपि ।
इति हंसपक्षः–१९
मध्यमाङ्गुष्ठयोर्वक्त्रे हंसपक्षस्य संयुते ॥१४८॥
भ्रमरः स्यात्तदा हस्तः कण्टकोद्धरणे ततः ।
सनालपद्मोद्धरणे भ्रमद्भ्रमरविभ्रमे ॥१४९॥
जलबिन्दुनिपातादिक्रियासु विनियोजयेत् ।

१. प्र०
२. ०मु०
३. सहंसान्यो०
४. ०लतादी०
५. चु०
६. संज्ञे
७. शिथिले स्यात्तदा क्र०
८. ०द्वि०
९. ०धि०
१०. मुक्तः
११. ०क नाम
१२. सक०
१३. ०शलसहृस्व०
१४. ०क्षेपाङ्गनादिषु पुनः
१५. ०के कृ०
१६. सोग्रे द्व०
१७. ०शरणे
१८. ०मो ध०

इति भ्रमरः:–२०

करशाखापंचकाग्रमेलनान्मुकुलः[1] करः ॥१५०॥
पूजने भोजने सम्यग्[2] भूषणे नववस्तुनि ।
स्यादा*च्छुरितके योज्यः[3] कुचादौ मदनाहवे ॥१५१॥

इति मुकुलः–२१

अङ्गु[4]ल्यः पद्मकोशस्य यत्किंचित्कुंचिता यदि ।
[5]ऊर्णनाभाह्वयो हस्तः स्यात्, प्रयोगोऽथ कथ्यते ॥१५२॥
धम्मिल्लग्रहणे स्त्रीणां, स्वस्तिको[6] दुष्टजन्तुषु ।
ग्रहणे कुङ्कुमादीनां, चौर्ये स्यात् सम्प्रदायतः ॥१५३॥

इत्यूर्णनाभः—२२

अराल[7]स्यायताङ्गुष्ठतर्जन्यौ नि[8]म्नकुञ्चिते ।
तदा सं[9]दंशको हस्तः स त्रिधा परिकीर्तितः ॥१५४॥
कण्ठयुङ्मुखयुक्पार्श्वयुगित्यथ नियुज्यते ।
क[10]ण्टकोद्धरणे सूक्ष्म-कुसुमाव[11]चये क्रमात् ॥१५५॥
रत्नमुक्तादिवस्तूनां सूत्रप्रोतनकर्मणि ।

इति संदंशः–२३

[धत्ते सा] [12]कुक्कुटाकारं या सूचीमुखतर्जनी ॥१५६॥
तदा स्यात्ताम्रचूडाख्यहस्तोऽयमभिनीयते ।

इति ताम्रचूडः–२४

इत्यसंयुतहस्ताः[13]

अथ संयुतहस्ताः[14]

---

* आच्छुरितलक्षणं संगीतरत्नाकरे यथा—'यदांगुलीपञ्चकेन सशब्दं नखलेखनम् । कुचादौ कामसूत्रज्ञास्तदाच्छुरितकं विदुः' (७।१७२)

१. ०ळ
२. ०गूदूषणेन च व०
३. ०य०
४. ०ङ्गल्यः
५. पू०
६. ०का
७. ०ळ०
८. निर्म०
९. ०द०
१०. ०ठ०
११. ०प०
१२. वाथ कुराका०
१३. ०तः०
१४. ०तस्य विनियोगः

पताकाहस्तयोरन्तःसमयोगादिहाञ्जलिः ॥१५७॥
देवतागुरुविप्रेषु मस्तके वदने हृदि ।
क्रमात्कुर्यान्नमस्कारं, कुठारे लगुडादिषु ॥१५८॥
भुजयोरेवमन्यत्र क्रियास्थाने नियोजयेत् ।

इत्यंजलिः—१

अंजलिस्सावकाशो[1]ऽन्यः कपोतः स्यात्तदा करः ॥१५९॥
गुरुस्वामिसभादीनां निरु[2]पग्रहणे पुनः ।
ब्रह्मज्ञे चोद्यवस्तुनि ग्रहणादौ नियोजयेत् ॥१६०॥

[इ]ति[3] कपोतः*—१

अर्धचन्द्रौ यदा[4]न्योन्यमु[5]खप्रस्तुतशाखिनौ ।
तदा क[6]र्कटको नाम हस्तो[7]ऽसावभिधीयते ॥१६१॥
बहिर्योगादसावे[8]व बहिःकर्कटि[9]को मतः ।
अन्तःकर्कटिकः शंखवा[10]दने जृम्भणादिषु ॥१६२॥
जपन्यासादिनियमे बहिःकर्कटिको मतः ।

इति कर्कटः—३

अन्योन्यौ [11]चाभिवक्रौ तु पताके[12] मणिबन्धकौ ॥१६३॥
उर्ध्ववक्त्रौ[13] करौ, हस्तः स्वस्तिकाख्यः प्रयुज्यते ।
पुन्नागचन्दनादीनां [14]वासनेऽथाभिनीयते ॥१६४॥

इति स्वस्तिकः—४

---

* मूलपुस्तके कपोतोऽञ्जलितः प्राग् लक्षितो वर्त्तते ।

१. ०शाख्यः
२. ०रू०
३. त्रिकपो०
४. ०था०
५. ०सुख्यप्र०
६. ०नटको
७. ०तःस्यादभि०
८. ०देन
९. ०ट०
१०. ०वसने
११. नभि०
१२. ०का०
१३. ०त्रातरा
१४. वसन्तेनाभि०

आजानुपार्श्वनीतौ तौ[1] पताकौ[2] डोल उच्यते ।
[3]सम्मोहने मदाविष्टे गदक्षीणविधौ भवेत् ॥१६५॥

इति डोलः–५

[4]सर्पशीर्षकरद्वन्द्वकरभद्वययोगतः।
भवेत्पुष्पपुटो[5] नाम हस्तोऽयमभिनी[6]यते ॥१६६॥
अर्घ्यप्र[7]दाने सर्वेषां द्विजानां जलपारणे ।
पुष्पांजलिविधौ हृष्टादाने च विनियुज्यते ॥१६७॥

इति पुष्प[8]पुटः–६[9]

वक्षोऽभितल[10]तां नीतौ स्वस्तिकौ[11] हंसपक्षकौ ।
यदि स्यातां तदोत्संगो, विनियोगो निगद्यते ॥१६८॥
आलिंगने स्याद् विनये स्नेहार्थे प्रियबान्धवे ।

इत्युत्संगः–७

स्वपृ[12]ष्ठाभिमुखत्वेन स्वस्तिकौ[13] कटकामुखौ ॥१६९॥
वक्षसो[14]ऽग्रे यदा तौ [15]स्तः कटकावर्धमानकः ।
स्त्रीपुंसयोर्मध्यमयोः प्रीति[16]सन्न्यासयोर्भवेत् ॥१७०॥
* [17]अयं करः प्रिया[18]स्वैरिदलयोर्जनयोर्भवेत् ।
तथा[19]भयाकुलोद्धारे [20]द्विमुखेषु च जन्तुषु ॥१७१॥

इति कटकावर्धमानकः–८

---

* 'इयं करक्रिया वैरिदलनायोजने भवेत्' इयमपरा पाठसम्भावना वर्त्तते ।

१. यौ
२. ०का गोल
३. तद्भोजने तदा क्लिष्टप्रदक्षिणविधौ
४. सस्व०
५. ०टा
६. ०धी०
७. ०प्रा०
८. निजा०
९. ०पाञ्जलिपुट
१०. ०र०
११. ०का
१२. ०सृष्टाभि०
१३. ०कातटकामुखा
१४. ०सा०
१५. ०स्ता
१६. ०तिस्०
१७. इयं कर०
१८. ०यावै०
१९. ०थोभय०
२०. वि०

त्रिपताकौ परभुजाश्लिष्टान्तर्मुखराजितौ[1] ।
कुचाग्रकूर्परौ[2] यत्र गजदन्तः स उच्यते ॥१७२॥
सम्पूर्णभागे[3] ह्युत्सङ्गे[4]ऽभिनये[5] गजदन्तयोः ।
स्वस्वपार्श्वदला[6]सक्तौ[7] भवेतां[8] स[9]शीर्षकौ[9] ॥१७३॥
[10]तदा पुरो[11]ऽभिवर्धन्तौ कूर्परौ स्तो मतान्तरे ।

इति गजदन्तः–९

अन्योन्याभिमुखत्वेनाधस्तनौ[13] शुकतु[14]ण्डकौ ॥१७४॥
कुचाग्रस्थौ[15] यदि [16]स्यातां सोऽवहित्थ इतीरितः ।
गुप्तालापे गुप्तधने गुप्तविग्रहदर्शने ॥१७५॥
मित्रादि-[17]बोधने चास्त्रप्रवाहे विनियोजयेत् ।

इत्यवहित्थः–१०

मुकुलो[18]ग्रं कपित्थस्य कनीयस्या निवे[19]ष्टयेत् ॥१७६॥
स[20] करो निषधा[21]ख्यः स्यादतिगोप्येषु वस्तुषु ।
निर्बन्धे कीर्णवस्तूनां संग्रहे सामग्री[22]तके ॥१७७॥
शरे नियमवासस्थे[23] विनियोगः प्रकीर्तितः ।

इति निषधः–११

उपर्युपरिविन्यस्तौ पूर्ववक्त्रावधस्तनौ ॥१७८॥
[24]अर्धचन्द्रौ यदा हस्तौ मकरः परिकीर्तितः ।

---

१. ०ली
२. ०कौ
३. ०गेत्यु०
४. ०ङ्गाभि०
५. ०यं
६. ०ला०
७. ०क्ता
८. ०ता
९. ०का
१०. क०
११. ०रोपि व०
१२. ०कास्तो०
१३. ०ना
१४. ०मन्डना
१५. ०स्ते
१६. ०कदा सोम हि०
१७. ०भेदने चास्त्र०
१८. ०ला०
१९. ०वि०
२०. सक०
२१. ०दा०
२२. ०नी०
२३. ०स्ते
२४. अर्थचन्द्रो

[1]रक्षोमकरनक्रादिष्वभिनेयो[2] मनीषिभिः ॥१७९॥

इति मकरः–१२

हंसपक्षौ करौ यत्र वक्षो[3]ऽग्रे स्वस्तिकाकृती[4] ।
पार्श्वाभिमुखतां नीत्वा विश्लिष्याधः कुचाग्रगौ ॥१८०॥
यदा स्यातां तदा हस्तो वर्धमानाह्वयो भवेत् ।

इति वर्धमानः–१३

इति त्रयोदशसंयुतहस्ताः

कटकामुखपाणी[5] द्वौ तौ सम[6]स्कन्धकूर्परौ[7] ॥१८१॥
वक्षसो[8]ऽष्टाङ्गुलस्थाने पुरो[9]ऽधस्तलतां गतौ ।
चतुरश्राविति ज्ञेयौ पुष्पस्रग्धा[10]रणे शुभे ॥१८२॥

इति चतुरश्रौ[11]–१

लक्षणं चतुरश्रस्य हंसपक्षावथोर्ध्वगौ ।
अन्योन्याभिमुखावष्टाङ्गुलिविस्तारसंस्थितौ ॥१८३॥
तावुद्वृत्ताविति प्रोक्तौ [12]विनियोगो विधीयते ।
सरसे कुररे[13] [?] नारिकेल[14]संग्रहणादिषु ॥१८४॥
वदन्त्यन्ये हंसपक्षौ तत्रैवाधोर्ध्व[संस्थि]तौ ।

---

१. वक्षो मकरपत्रादि०
२. ०तो
३. वक्षोग्रस्व०
४. ०तिः
५. ०णे
६. ०मु०
७. ०लौ
८. ०सोङ्गुष्ठांगुल०
९. ०रोधवरतां
१०. ०ध०
११. ०श्रः
१२. क्रि०
१३. ०रणे
१४. ०र०

आवृत्तिपरिवृत्तिभ्यां ताव[1]द्वृत्तावितीरितौ ॥१८५॥
अन्ये तु प्रथमोद्वृत्तौ व्यावृत्तपरिवर्त्तितौ ।
एवं [2]तूद्वृत्तसंज्ञानावेतौ त्रैविध्यभाजिनौ ॥१८६॥

इत्युद्वृत्तौ–२

उद्वृत्ताख्यौ[3] समक्ष[4]स्थौ त्र्यश्रौ पार्श्वस्थितौ यदा ।
अन्योन्याभिमुखत्वेन जान्वोरग्रे सकृत्कृतौ ॥१८७॥
यातौ[5] तलमुखौ ज्ञेयौ [6]स्याता मर्द[7]लवादने ।

इति त[8]लमुखौ–३

स्वस्तिकत्वं यद[9]ा स्रस्तौ हंसपक्षावसंगतौ ॥१८८॥
वक्षोऽग्रे पूर्वमानेन [10]स्थितौ तौ स्वस्तिकौ मतौ ।

इति स्वस्तिकौ[11]–४

स्वस्तिकौ[12] विच्युतौ शीघ्र-[ग]त्या[13] चोन्नतया पृथक्॥१८९॥
नीचगौ वा [14]चोर्ध्वगौ वा तावुरोजाग्रवर्त्तिनौ ।
स्वपार्श्व[15] प्रति नीतौ च [16]विप्रकीर्णौ तदा स्मृतौ ॥१९०॥
तयोः परा[ङ्मुख]त्वेन[17] त्वाहुः केचिन्मतान्तरे ।

इति विप्रकीर्णौ[18]–५

---

१. ०ने०
२. स्युर्वृत्तसंज्ञानीत्येवं
३. ०ख्यं
४. ०क्षास्थौ
५. ०सौ
६. भवेन्
७. ०न०
८. दलमुखहस्तः
९. ०दास्त्रास्तौ
१०. शिलौ
११. ०का
१२. ०का०
१३....ताशोन्न
१४. नो०
१५. ०र्श्वपति०
१६. द्वि०
१७. ०नास्याहुः
१८. ०र्णः

चतुरश्रोत्मकौ कृत्वा पताकौ[2] स्वस्तिकाकृती[3] ॥१९१॥
तदूर्ध्वं पद्मको[4]शाख्यमरालं[5] कटकामुखम् ।
क्रमात्कुर्यात्तदाप्ये[6]तावरालं[7]कटकामुखौ ॥१९२॥
वणिजां [मन्त्रिणाम्]ह्ये[8] कलहे विनियोजयेत् ।
पुनर्मतान्तरं प्राहुः प्राङ्मुखं कटकामुखम् ॥१९३॥
च्युतत्वाद्वा तिर्यगल्प [प्रोन्नताग्र] प्रसारितः ।
चतुरश्रमतिक्रम्य पार्श्व[9]व्यत्ययभाजिनौ ॥१९४॥
स्वस्वपार्श्वगतौ[10] हस्तौ तालान्तरगतौ मतौ ।
प्रयोगान्तरसंयुक्तावरालौ कटकामुखौ ॥१९५॥

इत्यरालकटकामुखौ–६

[परिवृ]त्तिमथो[11] कुर्यात् पताकाभ्यां प[12]रस्परम् ।
भुजा[13]ग्रयोः कूर्परयोः स्कन्धयोः सविलासयोः[14] ॥१९६॥
ततोऽधस्तलतां नीतौ स्यातामाविद्धव[15]क्त्रकौ ।
*विलासवलने पुण्यदेहिनां तौ प्रयोजयेत् ॥१९७॥

इत्या[16]विद्धवक्त्रौ–७

मध्यमा-मध्यमाप[17]र्वांगुष्ठौ निम्नाय[18]तौ करौ ।

---

* संगीतरत्नाकरे (७।२३१) अशोकमल्लस्य नृत्याध्याये च (ह० प्र ३०७) 'विक्षेपवलने' इति पाठो वर्त्तते ।

१. ०श्राष्टके
२. ०का
३. ०तिः
४. ०पूवर्त०
५. ०लक०
६. ०का
७. ०ळ०
८. ···ये
९. ०प्र०
१०. ०दा०
११. ०सां
१२. ससत्प०
१३. ग्ना०
१४. ०तः
१५. ०वक्रकौ
१६. ०ति विद्धवक्रा
१७. ०पर्वनिष्ठौ
१८ ०द०

पताक[1]चतुरश्रस्य स्थानाद्विश्लिष्य पार्श्वगौ ॥१९८॥
सूचीमुखौ सूचिमुखमपरे स्वस्तिकत्वतः ।
पताकौ[2] चतुरश्रत्वाद् व्यावृत्ति[3]परिवर्तितौ ॥१९९॥
पुनः स्वस्तिकतां नीतौ तौ च सूचीमुखावि[4]ति ।

इति सूचीमुखौ–८

हंसपूर्वद[5]लौ [प्रोक्तौ] कुचाग्रस्थौ समत्वतः ॥२००॥
तावेव रेचितौ स्यातां प्र[6]सृतौ चेद् द्रुतभ्रमौ ।
लक्ष्म[7]लक्षणयोगत्वं केचिदूचुस्तयोर्बुधाः ॥२०१॥

इति रेचितौ[8]–९

तत्रैकहस्तश्चतुर[9]रस्तदा स्यादर्धरेचितौ ।

इत्यर्धरेचितौ[10]–१०

पताकौ[11] विषमत्वेनाधोमु खो[12]र्ध्वमुखौ यदा ॥२०२॥
नितम्बस्कन्धपर्यन्तं द्वित्रिवारं परिप्लुतौ ।
स्रस्तौ नितम्बावित्युक्तौ महाभाग्यनिरूपणे ॥२०३॥

इति नितम्बौ–११

व्यावृत्तत्वेन बाहू द्वौ प्रसार्य वदनाग्रगौ ।
पताकौ स्वस्तिकाकारौ स[13]म्प्रोक्तौ पल्लवौ तदा[14] ॥२०४॥
[15]पातिताधोमुखतलौ त्रिपताक[16]करौ यतः ।

---

१. ०का०
२. ०का०
३. ०त्ति०
४. ०दि०
५. ०त०
६. अस्यतौ
७. ०य०
८. ०तहस्तः
९. ०रः त०
१०. ०तहस्तः
११. ०का०
१२. ०खोऽर्ध्व
१३. पताका०
१४. ०था
१५. तापिनाधो०
१६. ०का०

[1]शिथिलौ पल्लवौ ज्ञेयौ ततः स्वस्तिकपल्लवौ ॥२०५॥

दृढौ वा [2]शिथिलौ वापि पल्लवा[3]वूचिरे परे ।
पताकौ वा पद्मकोशा[4]वुन्नतौ शिथिलौ हृदि ॥२०६॥

तथापि पल्लवौ तौ च चतुर्भिर्लक्षणैः पृथक् ।

इति पल्लवौ[5]–१२

[6]क्रमादंसं तु वा मौलिं नितम्बक्रि[7]यया करौ ॥२०७॥

पार्श्वदे[8]शात्पार्श्वदेशमस्पृशन्तौ [गतागतौ] ।
[केश]–बंधाविति ज्ञेयौ स्यातां धम्मिल्लबन्धने ॥२०८॥

इति केशबंधौ[9]–१३

त्रिपताकौ करौ यद्वा तालहस्तक्रमेण च ।
भुजाग्रयोः कपोलां[10]सललाटाग्रसमस्थले ॥२०९॥

समग्रौ वा लताकारौ······? ।
ईषत्तिर्यक्सम्मुखत्वं मिथः पूरणभावगौ ॥२१०॥

अंसकूर्परयोः किंचिद्वलनादूर्ध्वतस्तलौ ।
क्षणं भूत्वा [11]प्रचरितौ स्यातामुत्तानवंचितौ ॥२११॥

[इत्युत्तानवंचितौ]–१४

पृष्ठभागतलौ भूत्वा पताकौ पार्श्वयोर्द्वयोः ।

---

१. सिद्धिताप०
२. सिद्धितौ
३. ०ऊ०
४. ०वो०
५. ०वः
६. कर्णावतंसा वा मौलि०
७. ०प्रि०
८. ०देशे केशपाशम०
९. ०धः०
१०. ०लाग्रल०
११. प०

लम्बितौ शिथिलौ[1] देहसमगौ तौ लताकरौ ॥२१२॥

नितम्बयोः केशबन्धकरयोरनयोः परे[2] ।
त्रिपताकौ[3] च कर्तव्यावित्याहुर्भरतादयः ॥२१३॥

इति लताकरौ–१५

दक्षिणस्थो लतापाणिः स्फुरद्द्विपकराकृतिः[4] ।
नीतोर्ध्वदेशिको[5] भूत्वा पताकौ पार्श्वयोर्द्वयोः ॥२१४॥

भवेत् पराङ्मुखो नाम कर्णाग्रे कटकामुखः ।
त्रिपताकोऽथवा [6]चोर्ध्वमयं करिकरो मतः ॥२१५॥

इति करिहस्तः–१६

कटी[7] शिरोयुताङ्गुष्ठौ त्रिपताकौ करौ यदा ।
पक्षवंचितकौ प्राहुर्रन्ये[8] तत्राग्रयोगतः ॥२१६॥

इति पक्षवंचितौ[9]–१७

पक्षवंचितयोरेव कराग्रौ पार्श्वगामिनौ ।
पक्षप्रद्योतकौ स्याता[10]मुत्तानाङ्गुलिकम्पनात् ॥२१७॥

अन्ये तूर्ध्वमुखौ भूत्वा तावेव भुजपार्श्वयोः ।

इति वक्षप्रद्योत[11]कौ–१८

---

१. सिद्धिलौ
२. ०रः
३. ०का
४. ०तिम्
५. ०तो
६. मन्ध्यम०
७. ०टी शि०
८. ०रन्त्ये
९. ०तहस्तः
१०. ०तां पदङ्ग०
११. ०तहस्तः

वक्षःस्थो[1] हंसपक्षस्तु[2] शनैः पार्श्वादधस्तनात् ।।२१८।।

प्राप्ये वामे लताहस्तस्तिर्यग्भुजसमाङ्गुलिः ।
प्रसृतः[3] स्यात्तथान्योन्य-व्यत्ययेनाथवा भवेत् ।।२१९।।

तदा विलास-सहितौ स्यातां तौ दण्डपक्षकौ ।
समप्रसारणं चात्र करयो[4]र्मेनिरे[5]ऽपरे ।।२२०।।

इति दण्डपक्षौ–१९

कटिक्षे[6]त्र–समाक्षिप्तपताकौ तावधोमुखौ ।।२२१।।

सकृदूर्ध्वं समानीतौ तिर्यग्भुजसमानगौ ।
कुर्याद् वा[7] त्रिपताकाभ्यां तदा गरुडपक्षकौ ।।२२२।।

इति गरुडपक्षौ[8]–२०

उरसो मण्डलभ्रान्त्या ललाटक्षेत्रमागतौ ।
पुनस्तथैव विवृतौ व्यावृत्तपरिवर्तितौ ।।२३।।

कटकामुखौ क्रमात् स्यातामूर्ध्वमण्डलिनौ तथा ।

इत्यूर्ध्वमण्डलिनौ[9]–२१

अन्योन्यसंमुखौ सन्तौ पताकौ पार्श्ववर्त्तिनौ ।।२२४।।

पार्श्वमण्डलिनौ स्यातां मन्वतेऽन्ये[10] स्वपार्श्वयोः ।
आविद्ध[11]-भुजयोर्भ्रान्तिं कुर्यात्तौ पार्श्वमण्डलौ ।।२२५।।

---

१. पक्षश्च
२. संगहस्तस्तु
३. ०स्युतः
४. ०रं यो
५. रेजिरे
६. ०शीर्ष०
७. द्वि०
८. ०क्षहस्तः
९. ०लिहस्तः
१०. नै
११ ०द्धद्भुजजभ्रा०

कक्षवर्त[1] निकेत्येतौ प्रोच्ये[2]ते नृत्तवेदिभिः ।

[इति पार्श्वमण्डलिनौ]–२२

पताकौ[3] युगपत् कृत्वावतीतौ परिवेष्टितौ ॥२२६॥

आर्व[4]क्षः पार्श्वदिग्भागाद् भ्रामितौ विषमेण वा ।

तौ तदो[5]रोमण्डलिनौ, परे वक्षः[6]स्थले तथा ॥२२७॥

उरोवर्त[7]निकात्वेन स्यातामिति वदन्ति च ।

इत्युरोमण्डलिनौ–२३

वामोरःस्थोत्ताननतलो व्यावृत्त्या पल्लवोभवेत् ॥२२८॥

पताकत्वाद् दक्षिणो[8]ऽसौ सकृत्पार्श्वप्रसारितः ।

तथैवारालतां नीत्वा वेष्टनेन ततः परम् ॥२२९॥

उरोमण्डलितां प्राप्य पार्श्व[9] व्यत्ययमाचरेत् ।

इत्युरःपार्श्वमण्डलिनौ–२४

आवेष्टितक्रियायुक्तः पाणिरेकस्त्वरालिकः ॥२३०॥

परो व्यावर्तितेनाल[10] पल्लवः स्वस्तिका[11]कृतिः ।

तौ कुर्यात् कटकावक्त्रौ[12] मुष्टिकस्वस्तिकौ[13] तथा ॥२३१॥

कपित्थौ शिखरौ मुष्टी[14] योज्यन्तां स्वस्तिके बुधैः ।

इति [15]मुष्टिस्वस्तिकौ–२५

व्यावृत्तिक्रियया पद्मकोशौ कुचपुरःस्थितौ ॥२३२॥

---

१. ०र्तिनिकेत्वेतौ
२. ०च्य०
३. ०का
४. ०पक्ष०
५. ०तो०
६. ०क्ष०
७. ०र्ति०
८. ०णासौ
९. ०प्र०
१०. ०श०
११. ०के कृतः
१२. क्रौ
१३. स्वस्तिकस्तथा
१४. ०ष्टि०
१५. स्वस्तिकहस्तः

व्यक्तौ[1] स्वस्तिकतां नीत्वा सकृद् विमुखतां गतौ ।
नलिनीपद्मकोशौ तावन्यथान्ये विदुर्बुधाः ॥२३३॥
अन्योन्याभिमुखत्वेन मणिबन्ध[2]समन्वितौ ।
पृथग्भूतौ पद्मकोशौ कृत्वा तस्माद् विलासतः ॥२३४॥
व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां क्रमाज्जान्वन्तिकं नयेत् ।

इति नलिनीपद्मकोशौ–२६

उ[3]द्वेष्टितक्रियापूर्वपल्लवौ नाभिपार्श्वतः ॥२३५॥
शनैः प्राप्य कुचाग्रस्थौ ततः स्कन्धान्तराद् बहिः ।
पार्श्वप्रसारितौ स्यातां प्र[4]सृतावलपल्लवौ ॥२३६॥

इत्यलपल्लवौ–२७

पद्मकोशौ चलच्छाखावन्तौ स्कन्धान्तवर्तिनौ ।
अलपद्माकृति[5]त्वेन भवेतामुल्वणौ तथा ॥२३७॥

इत्युल्वणौ–२८

लताकरौ समागत्य कूर्परस्वस्तिकाकृतिम् ।
शनैर्नीत्वा स्थितौ यत्र [6]वलिताविति कीर्तितौ ॥२३८॥
मुष्टिकस्वस्तिकौ यत्र लग्ना[7]ग्रौ कटकामुखौ ।
लग्ना[8]ग्रौ स्तो ललाटाग्रे तौ स्यातां लक्ष्य[9]वाहिकौ[?]॥२३९॥

[इति वलितौ] २९

अ[10]लपल्लवविख्यातौ हस्तौ कालान्त्यगामिनौ ।
[11]त्यक्त्वा तु चतुरश्रत्वं कृतौ तौ ललितौ मतौ ॥२४०॥

---

१. ता
२. ०न०
३. आ०
४. रातापल्ल०
५. ०त०
६. परीता०
७. ०नान्ये
८. ०ग्नौ ग्रस्तौ
९. क्ष्य बा०
१०. आ०
११. पक्वे पटुतरं श्रुत्वा श्रुतौ

अपरे त्वन्यथा प्राहु[2]र्लग्नाग्रौ कटकामुखौ।
मन्दगत्या शिरोदेशं सम्प्राप्य चतुरश्रतः ॥२४१॥
प्रयोक्तव्याविति करौ लक्ष्यलक्षणकोविदैः।

इति ललितौ–३०

इति त्रिशन्नृत्तहस्ताः[3]

[अथ मतान्तरोक्ताश्चत्वारो हस्ताः]

पताकस्य यदा[4]ङ्गुष्ठो मध्यमामूलसंस्थितः ॥२४२॥
निकुंचकः करः स स्यादसंयुतविशेषकः।
ईषदर्थे [5]क्रियादीनां स्थिरमु[6]द्रानिरूपणे ॥२४३॥

इति [नि]कुंचकः

यदि योगः शिखरयोस्तदा द्विशिखरो मतः।
अयं वधूजनैः प्रायः प्रयोगः क्रियतेऽधुना ॥२४४॥
नास्तीत्यर्थे त[7]था नम्र-योषितां भाषणेऽपि च।

इति द्विशिखरः

स्वस्वपार्श्वे नाभिसमावराल[8]ौ यौ पराङ्मुखौ ॥२४५॥
चतुरश्रमभजन्तौ तौ क्रमाद् वामदक्षिणौ।
स्यातामू[9]र्ध्वाधोवदनौ तौ पार्श्वसमकूर्परौ ॥२४६॥
वरदाभयहस्तौ तौ तदाभिनयसम्मतौ।

इति वरदाभयहस्तौ[10]

ऊर्ध्वास्यौ कटकावक्त्रौ वरदाभयलक्षणौ ॥२४७॥

---

१. ०गाः
२. ०हुः
३. ०तः
४. ०था०
५. क्रनाटीनां
६. ०मात्रानि०
७. तद्धेरण्डकाषहृन्द्रा०
८. ०ळौ
९. ०मध्वोंध्ववधनौ
१०. ०तः
११. ०क्रौ

स्थित्वा शिथिलकाङ्गुष्ठमणिबन्धौ[1] यथा करौ।
पूर्णदाविति विख्यातौ श्रीमद्विट्ठलसूनुना।
प्रदाने दानशूराणां प्रयोक्तव्यौ मनीषिभिः ॥२४८॥

इति पूर्णदौ

इत्येकाधिकसप्ततिस्समुदिता नृत्ते कराणां मया।
तेषां सन्निहितो[2]ऽन्ययोगविततिं सत्सम्प्रदायात्मिकाम्।
तेषामुत्तममध्यमाधमजनस्थाने[3]प्रचारक्रियां।
[4]कार्याद्यन्यसमाहृतौ च करणानामर्थभेदान् ब्रुवे ॥२४९॥

दृष्टिभ्रूमुखरागाद्यैरुपाङ्गैरुपबृंहिताः[5]।
प्रत्यङ्गैश्च कराः कार्या रसभावप्रदर्शकाः ॥२५०॥

केवलं [6]करोपयोगलक्षणम्

यतो हस्तस्ततो दृष्टि[7]र्यतो दृष्टिस्ततो मनः।
यतो मनस्ततो भावो यतो भावस्ततो रसः ॥२५१॥

इति पदवाक्यार्थाभिनय-लक्षणम्

अभिनेया नर्तक्यां[8] ह्युत्तमाः पुरुषादयः।
करा[10][श्चाऽथ]ललाटाग्रेऽभिनेतव्या मनीषिभिः ॥२५ ॥
मध्यमा [11]स्युस्तु हृद्देशे कटिजान्वन्तरेऽधमाः।

---

१. ०धा
२. ०तो सयो०
३. ०नापचारापरा
४. कादाशिन्यसमादरौ च करकायानार्थं०
५. ०तः
६. प०
७. ०ष्टिः य०
९. ०केयाद्युत्त०
१०. ०दा....
११. यद्यूरुदेशे

एवमुक्तस्संप्रदायो मुनिभिः कश्यपादिभिः ।।२५३।।

ब्रूमहे दत्तिलादीनां सम्प्रदायमतः परम् ।
उत्तमेष्वभिनेयेषु समीपगतयः कराः ।।२५४।।

मध्यमे मध्यसंचारास्त्वधमे दूरगाः कराः ।
विशेषसंप्रदायोऽस्ति प्रोक्तो[1] दूरसमीपयोः ।
प्रमाणमनतिक्रम्य संप्रदाये[2] न लक्ष्यताम् ।।२५५।।

।। इत्युत्तममध्यमा[3]धमप्राणिवस्तूनामभिनयसम्प्रदायः ।।

अतः परं समुद्गृह्यमर्थं करणवल्लभः ।
सन्तनोति, समुत्पन्ने प्रत्यक्षे जातसात्त्विके ।।२५६।।

करप्रचारः किंचित्कैः[4] परोक्षे[5] प्रचुरो मतः ।
[6]मध्यमे तूभयोर्भावान् करगत्या नियोजयेत् ।।२५७।।

।। इतिसात्त्विकादि-गुणत्रये[7]ऽपि प्रत्येकं त्रिविधत्वेन रसाभिनय-सम्प्रदायः ।।

अथ वक्षोभेदाः

वयं ब्रूमो मुनिमतादुर्[8]ः सोद्देशलक्षणम्[9] ।
सममाभुग्ननिर्भुग्ने कम्पितो[10] द्वाहिते परे ।।२५८।।

इति पंचविधं वक्षः प्रोच्यते शि[11]वनिर्मितम् ।
सौन्दर्यनिर्मितं वक्षश्चतुरश्राङ्गराजितम् ।।२५९।।

---

१. ०क्त०
२. ०यो न
३. मजन
४. ०सा
५. क्षः
६. समध्यमोभयोर्भावात् कररत्या
७. ०या०
८. ०रसो०
९. ०णे ।
१०. ०तो दाहि०
११. ०श्वरनि०

प्रकृत्या ललितं तच्चेत्समं[1] स्वस्थेऽभिनीयते ।

इति समम्

लसच्छिथिलतां प्राप्य निम्नमाभुग्नमुच्यते ॥२६०॥

गर्वलज्जाशी[2]तशोकमूर्च्छाहृच्छल्यभीतिषु ।

[3]विषादे संभ्रमे व्यॉधौ[4] प्रयोज्यं[5] भाववेदिभिः ॥२६१॥

इत्याभुग्नम्

किंचिदग्रगतं वक्षो [6]निम्नपृष्ठतयोन्नतम् ।

स्तब्धमप्यवि[7]लोलत्वं याति निर्भग्नमुच्यते ॥२६२॥

विस्मयालोकने [8]स्तम्भे सत्याल[9]प्तिषु गर्विते ।

तालाकारकुचे[10] स्त्रीणां परिरम्भे[11] च युज्यते ॥२६३॥

इति निर्भुग्नम्

कम्पने कम्पितं तत्स्यान्नैरन्तर्यो[12]र्ध्वंचालनैः ।

स्यात् कास[13]-हास[14]-हिक्का-भी[15]-समाख्यानेषु रोदने ॥२६४।

इति कम्पितम्

सकृत्सरलमुत्क्षिप्तं किंचित्कम्पनसंयुतम् ।

उद्वाहितं तदुत्तुङ्गालोकने स्याद् विजृम्भणे ॥२६५॥

ऊर्ध्वश्वासे[16] विजृम्भायामभिनेयमितीरितम् ।

इत्युद्वाहितम्[17]

[अथ पार्श्वभेदाः]

विर्वातितं चाप[18]सृतं नतं वाऽथ[19] समुन्नतम् ॥२६६॥

---

१. ०मस्वस्ति भि०
२. ०स्मितश्०
३. नि०
४. पादौ
५. ०या
६.....निच्छतया स्वयम् ।
७. ०तिलां नित्यं
८. डम्भे
९. लापि–,
१०. ०च०,
११. ०भं,
१२. ०र्यार्थचा०
१३. ०न०
१४. ०न०
१५. ०भिः०
१६. ०सि
१७. ०त-वक्षः
१८. ०च-प्र०
१९. ०ध०

प्रसारितं चेति पार्श्वस्थं प्राहुः पंचविधं बुधाः ।
विर्वाततं स्यात्त्रिकस्य[1] परावृत्त्या[2] समुद्भवम् ॥२६७॥

इति[वि]वर्तितम्

[3]निवृत्तभ्रमणान्तं स्यात्तदेवापसृतं[4] मतम् ।

इत्यपसृतम्[5]

शिथिलं सनितम्बं च नतं तत्[स्या]द्विसर्पणे ॥२६८॥

इति नतम्

नतस्थ विपरीतन्[6]तून्नतं स्यादुपसर्पणे ।

इत्युन्नतम्

पार्श्वद्वये प्रसारेण[7] स्यादुन्मादे प्रसारितम् ॥२६९॥

इति प्रसारितम्

इति पंचविधपार्श्वम्

[अथ कटीभेदाः]

विवृ[8]त्ता रेचिताच्छिन्ना कम्पितो[9]द्वाहिता तथा[10] ।
कटिः स्यात् पंचधा तासां लक्षणं ब्रूमहेऽधुना ॥२७०॥
पराङ्मुखात् पूर्ववे[11]क्त्रं यदा याति जनस्तदा ।
कटिर्विवृत्ता विख्याता विनियोज्या विवर्[12]त्तने ॥२७१॥

इति विवृत्ता

चक्रवद् भ्रमणा[13]ज्जाता कटिः स्याद्रेचिता मता ।

---

१. कयोः
२. या,
३. वि०,
४. ०प्र०
५. इति प्र०
६. तान्नोन्न०
७. हा
८. ०प्रत्तारे चि०
९. ०तोच्छ्वासिता
१०. ०दा,
११. ०वत्तं
१२. ०क०
१३. ०णी जा०

इति रेचिता

जने तिर्यङ्मुखे यत्रैच्छिन्ना[1] मध्यस्य चालनात् ।
सा त्विष्टा[2] स्यात् सम्भ्रमे च व्यायामे खेलने तथा[3] ॥२७२॥

इतिच्छिन्ना[4]

*पार्श्वयोः फुल्ल-संकाशौ क्रमेण दधती[5] द्रुतम् ।
कम्पिता सा भवेत्कुब्ज[6]-गमनादौ नियुज्यते ॥२७३॥

इति कम्पिता

मन्दमुच्चलिता[7] पार्श्वयुग्मेनोद्वाहिता तथा ।
स्त्रीणां विलासगमने [8]पीनाङ्गानां च धावने ॥२७४॥

[इत्युद्वाहिता]

अथ पादभेदाः

चारीणां[9] वक्ष्यमाणानां पाद[10]भेदानिह ब्रुवे ।
समोऽग्रगो मर्दितश्च कुंचितांचितपार्ष्णिगाः ॥२७५॥
घट्टितो घ[11]ट्टितोत्सेधसूचि-ताडित-पार्श्वगाः ।
उद्घट्टितस्तथा[12] चाग्रतलसंचर इत्यमी ॥२७६॥
त्रयोदशांघ्रयस्तेषां लक्षणं ब्रूमहे क्रमात् ।
अङ्गुष्ठपार्श्वगुल्फानां समता क्रियते यदा ॥२७७॥
समपादस्तदा प्रोक्तः स्वभावाभिनये भवेत् ।
इमं[13] प्रयुज्य प्रथमं ततश्च[14]लनमाचरेत् ॥२७८॥

---

* द्रुतं गतागते पार्श्वे दधती कम्पिता मता (सं० र ७।३०८)

१. छ०,
२. तदिष्टा
३. ०दा,
४. छ०
५. ०दति,
६. कुम्भ–
७. सुच्चरितापा०
८. वि०
९. ०रि०
१०. ०ट०
११. ०द्धट्टि०
१२. ०श्चो०
१३. ०दं
१४. ०चलिन०

इति समपादः—१

यदा द्रुतेन स्वपुरः प्रवृत्तस्सोऽग्रगो मतः ।
अस्य[1] प्रयोगः[2] प्रायः स्यात् क्षुद्रमार्गे वनान्तरे ॥२७९॥

इत्यग्रपादः—२

यदि पादतलेनो[3]र्वी[4] स्वबहिः पार्श्वसंस्थिताम् ।
प्रमज्जन्मर्दितो ज्ञेयस्तुच्छ-वस्त्[5]वपसारणे ॥२८०॥

इति मर्दितपादः—३

कुंचिताङ्गुलिभिर्भूमिं परिगृह्योर्ध्वगो भवेत्[6] ।
पार्ष्णि[7]: किंचित्कुंचि[ता]ग्रतलः कुंचित उच्यते ॥२८१॥
अतिक्रमे तुंग स्तुग्रहणे भावने भवेत् ।

इति कुंचितः—४

भूलग्न-पार्ष्णिरुत्क्षिप्त-प्रसारित-दलाङ्गुलिः ॥२८२॥
अंचितस्[8]स भवेत् स्त्रीणां भ्रमणे बालखेलने ।

इत्यंचितः[9]—५

लग्नाग्रस्य च पादस्य पार्ष्ण्या पश्चान्निपीडनम् ॥२८३॥
कृत्वा स्थितिर्भवेद् यत्र स पादः पार्ष्णिगः स्मृतः ।

इति पार्ष्णिगः—६

यदि केवलया पार्ष्ण्या धरणी[10] [11]ताड्यते तदा[12] ॥२८४॥

---

१. न्य
२. ०गप्रा०
३. ०र०
४. ०ले०
५. ०स्त्रा०
६. नयेत्,
७. र्णि०,
८. सं०
९. ०तपादः
१०. ०णे
११. वद्यते
१२. ०था

घट्टितश्चरणः सोऽधःपीडने[1] प्रेरणादिषु ।

इति घट्टितः—७

धरण्यलग्नमध्याभ्यां[2] पार्ष्णयग्राभ्यां क्रमाद् घनम् ।।२८५।।

ताडयन् घटितोत्सेधो[3][4] माने स्याद् विटसम्भवे ।

प्रभाकरकरोत्तप्तभूमिसंस्थे[5] नियुज्यते ।।२८६।।

इति घटितोत्सेधः[6]—८

एकः[7] स्वभावतः स्थित्वा परः पार्ष्णिस्समुन्नतः ।

तस्याङ्गुष्ठोऽग्रतो भूमिं स्पृशन्निव यदा स्थितः ।।२८७।।

सोंऽघ्रिस्सूचीति विख्यातो भवेन्नूपुरबन्धने ।

इति सूची[9]—९

बद्धपार्ष्णिनोत्तुंगतलेन चरणेन च[10] ।।२८८।।

धरणी[11] ताडिता यत्र स ताडित इतीरितः ।

इष्टप्राप्तौ विलासे च प्रयोज्यः[12] क्रोधग[13]वयोः ।।२८९।।

इति ताडित[14]:—१०

पादस्य करभेणैव स्थितो वाऽथ चरो[15]ऽपि वा ।

चरणः पार्श्वगः स स्यादस[16]ह्याभिनये मतः ।।२९०।।

इति पार्श्वगः—११

भूमौ पादतलाग्रेण स्थितः पार्ष्णिर्यदा भुवम् ।

ताडयत्यसकृद्वाथ[17] बहुधोद्घट्टितो भवेत् ।।२९१।।

---

१. ०प्रेरणे
२. ०यस्य पा०
३. ०ट्टि
४. धः
५. ०च्छा०
६. ०ट्टितः ।
७. ०क०
८. थास्थितम्,
९. ०चि-पादः
१०. या
११. णे
१२. ०ये०
१३. ०वर्ग०
१४. ०त-पादः
१५. ०रा०
१६. ०संत्याभि०
१७. बह्वोद्घ०

इत्युद्घट्टितः–१२

स्थितो[1] भूमौ तला[2]ङ्गुल्योर्मध्ये वा प्रसृताङ्गुलिः ।
उत्क्षिप्तपार्ष्णिभूर्त्वाऽथ स्थितो वा प्रसृतोऽपि वा ॥२९२॥

तलाग्रसंचरः प्रोक्तो[3] नृत्तविद्याविचक्षणैः ।
पीडने कुट्टने भूमिताडने प्रेरणे मदे ॥२९३॥

इत्यग्रतलसंचरः–१३

इति त्रयोदशचरणभेदाः

अङ्गषट्कमुदाहृत्य प्रत्यंगो[4]पांगयोरधः ।
कानिचित्पुनरुक्तानि निराकृत्य निरूप्यते ॥२९४॥

पुटतारागता भेदा नामतो व्यक्तलक्षणाः[5] ।
तथापि कारणं तेषां षट्त्रिंश[द्]दृष्टयः परम् ॥२९५॥

तथापि तेषां स्वातन्त्र्यं नास्त्यस्मिंल्लघुनर्तने ।
कपोलौ[6] मुखरागोत्थौ[7]वनिष्टेष्वपि सम्मतौ ॥२९६॥
वदनस्य शिरस्त्यक्त्वा स्वातन्त्र्यं नास्ति पूर्ववत् ।
तलाङ्गुल्यः पादपाण्योर्नाम्नैर्[8]व व्यक्तलक्षणाः[9] ॥२९७॥
त[10]त्रोक्तांघ्रिकरेष्वेव दृश्यन्ते[11] संगता[12]स्तथा ।
पार्ष्णिभेदास्तु [13]ग्मांघ्र्योरन्तर्भावितया मता[14]ः ॥२९८॥

---

१. ०ता
२. ल०
३. ०तः,
४. ०ग्रो०
५. णम्
६. ता,
७. ०था विन०
८. नोर–
९. णम्
१०. तदास्यांघ्रि०
११. ०त्र
१२. ०तौ
१३. चुयुयंर्घ्य–,
१४. तथा

तत्रापि[1] गुल्फावुत्पन्नौ [2]नामाभिव्यक्तलक्षणौ[3] ।
कर[4]प्रचारा गौणाः स्यु[5]र्ज्ञेया नाम्नै[6]व पूर्ववत् ।।२९९।।
तथापि बाहुभेदेन प्रोक्ता[7]ः पूर्वमनीषिभिः ।
विनियोगस्वरूपाणि करकर्माणि लक्षणे ।।३००।।
[8]प्रत्यङ्गानि पृथग् [9]वाक्ये विमुक्तानि पुराकृतैः ।
तस्माद् विभज्य तत्सर्वं ग्रन्थाधिक्यभिया मया ।।३०१।।
प्रयोज्याङ्गानि संगृह्य लोकानुग्रहबुद्धिना ।
लक्ष्मीनारायणेनाऽत्र सुलभेन निरूप्यते ।।३०२।।
ग्रीवायाः पूर्मवन्मौलावन्तर्भावेऽपि वर्त्तने ।
चतुरश्रक्रियायान्तु ग्रीवाप्राधान्यमिष्यते ।।३०३।।
तस्मादङ्गीकृता ग्रीवा श्रीमद्विट्ठलसूनुना ।

[अथ ग्रीवाभेदाः]

समांचिता कुंचिता च निवृत्ता रेचितोन्नता ।।३०४।।
नता च वलि[ता]त्र्यश्रो[10] ग्रीवा नवविधा मता ।
ग्रीवा समा स्यादन्वर्था विनियोज्या जपादिषु ।।३०५।।

इति समा–[१]

[11]प्रसृता सांचिता च स्यात्केशाकर्षेऽर्ध[12]वीक्षणे ।

इत्यंचिता [२]

आकुंचनात्कुंचिता स्याद्भारक्षण्णेऽङ्ग[13]गोपने ।।३०६।।

इति कुंचिता[14] [३]

१. ०थापिगुणमुत्पन्ना
२. वा०
३. ०णम्
४. ०पुच्छारगौ०
५. ०युः ज्ञे०
६. ०मैव०
७. ०ता०
८. अनङ्गा०
९. पाके०
१०. ०श्रेत्येतन्०
११. सप्रेरिता
१२. ०भ्र०
१३. ०णेग्र०
१४. ता–ग्रीवा

निवृत्ता स्यात्स्वभावाभिमुखके[1] परिवर्त्तने ।

[इति निवृत्ता–[४]

पार्श्वद्वन्द्वे धुते[2]-भ्रान्त्या रेचिता तूर्ध्वके[3] मता ॥३०७॥

इति रेचिता–[५]

ऊर्ध्वक्षेपादुन्नता स्याद् भवेद्भूषण-नन्दने ।

इत्युन्नता [६]

नम्रग्रीवा नताख्[4]या स्यात्कन्दमूलादि-वीक्षणे ॥३०८॥

इति नता [७]

पार्श्वोर्ध्ववक्त्रा व[5]लिता स्यात्पार्श्वे च निरीक्षणे ।

इति वलिता [८]

त्र्यश्रा भारनि[6]मग्ना स्यात् स्कन्धभागे नियोजिता ॥३०९॥

इति त्र्यश्रा [९]

इति नवविधग्रीवा

अथ बाहुभेदाः

अथोपाङ्गेषु बाहूनां चलनं वदनात्मकम् ।

बहुभेदसमायुक्तं नानाचित्रसमन्वितम् ॥३१०॥

दृ[7]ष्टच्युत्सव-समाख्यात-प्रसर्वां[8] लक्ष्यसन्ततिम् ।

सूत्रप्राये[9]णं वक्ष्या[10]मः षोडशत्वेन शास्त्रतः ॥३११॥

ऊर्ध्वस्थोऽधोमुखस्तिर्यगपविद्धः प्रसारितः ।

अंचितो [11]मण्डलगतिः स्वस्तिकोद्वे[12]ष्टितावपि ॥३१२॥

---

१. ०कः
२. ०ततो
३. ०मू
४. ०स्या
५. वृत्ता सा०
६. वि
७. वृ–
८. ०वं
९. ०यना
१०. ०क्षामा
११. ०ता
१२. ०द्विष्टि०

आविद्धः कुंचितो नम्रः सरलान्दोलितावपि ।
उत्सारितः *पश्चिमास्य[1] इत्येषां लक्षणं[2] ब्रुवे ॥३१३॥

अधो[3]मुखो धरागामी

॥ इत्यधोमुखः [१] ॥

तिर्यक् स्यात् पार्श्वदेशगः ।

॥ इति तिर्यक् [२] ॥

वक्षसो मण्डलाकारगम्यः[4]

स्यादपविद्धकः ॥३१४॥

॥इत्यपविद्धकः [३] ॥

चतुरश्रात्पुरोदेशं प्रसरन् सम्प्रसारितः ।

[इति प्रसारितः–४]

वक्षसो मौलिपर्यन्तं द्विवारं स्यात्स कुंचितः ॥३१५॥

[इति कुंचितः [५]]

प्रतिदिग्भ्रमणाद्बाहुः स म[5]ण्डलगतिर्भवेत् ।
प्रथि[6]तः स्यादसौ लोके खड्ग[7]-युद्धे च नर्तने ॥३१६॥

इति मण्डलगतिः [६]

स्वस्तिकाकारवान् मौलेरूर्ध्वं व्यत्यासतो भवेत् ।
स्वस्तिकः स्यात्सदा कार्यं[8] परिरम्भेऽभि[9]वादने ॥३१७॥

इति स्वस्तिकः [७]

निर्गच्छन् मणिबन्धस्थो[10] वर्तनाभूषितो यदा[11] ।

---

* 'पृष्ठानुसारीत्युदितौ बाहुर्दशविधो बुधैः' एवं 'संगीतरत्नाकरे' 'पृष्ठानुसारी इति पाठो वर्तते । (७-३३६)

१. ०न्यः
२. भु०
३. ०धी०
४. ०या
५. ०मन्दा च,
६. ०स्थि
७. ०गाभ्युद्धदे
८. ०र्यं प०
९. ०वि०
१०. ०थः
११. ०दि

उद्वेष्टितो[1] भवेद् गर्वे स्वव्रतावहितोक्तिषु[2][3] ॥३१८॥

इत्युद्वेष्टितः [८]

पश्चाद्भागतो बाहुः पश्चिमास्य इतीरितः ।
तूणाद् बाणाकर्षणे स्यात्ताम्बूलग्रहणादिषु ॥३१९॥

इति पश्चिमास्यः [९]

आविद्धश्चोद्वेष्टिताङ्कः प्रबन्धादिषु संमतः ।

इत्याविद्धः [१०]

वक्रः स्यात्कुंचितो ज्ञेयो बाहुः स्याद् बुद्धिपूर्वकः ॥३२०॥
प्रहारिते[4] जने खड्गग्रहणादौ नियुज्यते ।

इति कुंचितः [११]

किंचिद्वक्रतया नम्रः स्तुतौ स्यान्माल्यधारणे ॥३२१॥

इति नम्रः [१२]

सरलः स्यादूर्ध्वमधः पार्श्वयोश्च प्रसारितः ।
सगर्वस्थाननिर्देशे पक्षनिर्देशने क्रमात् ॥३२२॥

इति सरलः [१३]

आन्दोलितः स्यादन्वर्थो विलासगमनादिषु ।

॥इत्यान्दोलितः [१४]॥

अन्यत्र व्यापको बाहुः स्वपार्श्वं प्रति याति[5] यः ॥३२३॥
उत्सारितस्स विज्ञेयो रज्ज्वाद्या[6]कर्षणे मतः ।
उक्तषोडशबाहूनां समस्त-व्यस्तराशयः ॥३२४॥

---

१. ०सो
२. ०वि०
३. ०स्ति०
४. ०तो जने
५. ०स्यति
६. ०वान्या०

करणैः करसंघातै[1]र्द्रुतमध्यविलम्बितैः ।
नानाचित्रसमायुक्ताः प्रभवन्ति सहस्रशः ॥३२५॥

ते रेखामनतिक्रम्य लक्ष्यन्ते लक्ष्यकोविदैः ।
चा[2]लका इति तैरेव कथिताः पृथिवीतले ॥३२६॥

विनियोगस्थ[3]लोपेतान् चालकॉ[4]न् ब्रूमहेऽधुना ।
[5]ओतावत्सरिगोणीषु प[6]दमलपथोरपि ॥३२७॥

सालग[7]स्थ–ध्रुवाद्यन्ते य[8]त् स्यात् प्रहरणं तथा ।
तदन्त[9]खण्डेऽन्यत्राऽपि क[10]राले तुण्डकैशिके ॥३२८॥

पाटे कविते[11] योज्याः[12] स्युर्नटै[13]र्न्यत्र कुत्रचित् ।
॥इति षोडशविधो बाहुः॥

अथ दृष्टयः

कान्ता हास्या च क[14]रुणा रौद्री[15] वीरा भयानका ॥३२९॥

[16]बीभत्सा चाद्भुतेत्यष्टौ द्रष्टव्या रसदृष्टयः ।
दृश्यवस्तुरसं सम्यगा[17]*पिबन्तीव शोभिनी[18] ॥३३०॥

---

* 'आपिबन्तीव दृश्यं या सविकासातिनिर्मला' (सं० र० ७।३८३) इति लक्षणानुरोधात् पाठोऽयं प्रस्तावितः ।

१. ०तैः द्रु०
२. ०जा०
३. ०स्थलान्यत्र चल०
४. ०कां् ब्रू०
५. औ०
६. मलया वलयो०
७. गा स्याद्०
८. यः
९. ०न्यजन्तेन्य०
१०. कालवैतण्डिके सिके
११. ०त्वे
१२. ०या
१३. ०टै०
१४. तरु०
१५. ०द्रा
१६. भी०
१७. ०ग्विकरोतिविशो०
१८. नि०

उत्फुल्ला निर्मला[1] कान्ता सभ्रूक्षेप-कटाक्षिणी ।
सा स्यात्प्रियरसस्थाऽसौ स्मरतापविवर्धिनी ॥३३१॥
गतागतिलसन्मन्दचार्या[2] ताराविवर्तनम् ।
स्फुरद्वैचित्र्यलोलित्यो[3]त्कटाक्षं च विदुर्बुधाः ॥३३२॥
इति कान्तादृष्टिः [१]
किंचिदन्तः[3]स्फुरत्तारा स्तोकश्लथपुटांचिता ।
मध्यतीव्रतया मन्दहास्या वि[स्मा]पने मता ॥३३३॥
इति हास्या [२]
शिथिलोर्ध्वपुटा बाष्पपुटमन्थ[4]रतारका ।
नासाग्रचुम्बिनी दृष्टिः करुणेति निगद्यते ॥३३४॥
इति करुणा[5] [३]
स्फुरत्पुटद्वया तीक्ष्णतारा त्व[6]धिकलोहिता ।
क्रूरा भ्रूभंगभीमाग्रा रौद्री दृष्टिरितीरिता ॥३३५॥
इति [7]रौद्री [४]
[8]अचंचला समुत्फुल्ला गाढ[9]विश्रुततारका ।
[10]धीरा तु कुंचितापाङ्गा[11] वीरा धीरैरुदाहृता ॥३३६॥
इति वीरा—[५]
गाढोद्वृत्तपुटात्यन्तशोणा च सित[12]तारका ।
[13]दृश्यद्रुतनिवृत्ता या सा दृष्टिः स्याद् भयावहा ॥३३७॥
इति भयानका [६]

---

१. ०ल०
२. ०ता०
३. ०त०
४. ०द०
५. ०णा दृष्टिः
६. ०स्व०
७. तीक्ष्णदष्टिः
८. आ०
९. ०र०
१०. क्रू०
११. ०ङ्गवराधिक उ०
१२. शित०
१३. दृढा दृतनि०

यत्किंचित्कुंचितालोकपक्ष्मा[1] चंचलतारका ।
प्रयोजनोद्वेगगतिर्बी[2]भत्सापांगकुंचिता ॥३३८॥

इति बीभत्सा[3] [७]

प्रसादपूर्वशुक्लांशा[4] बहिर्व्यापिततारका ।
ईषत्कुंचितपक्ष्माग्रा[5] भावज्ञै[6]र्भाषितादभुता ॥३३९॥

इत्यद्भुता [८]

॥इत्यष्टौ रसदृष्टयः॥

[अथ भावदृष्टयः]

शृङ्गारवीरादिरसैः[7]पुष्टा कान्तिवयःक्रमात् ।
संयोज्य रसभावज्ञैः पदार्थसरसे रसे ॥३४०॥

रसदृष्टय एवात्र भवेयुर्भावदृष्टयः ।
तदनुबद्धभावस्था भवन्तीति विदुर्बुधाः ॥३४१॥

॥इति भावदृष्टयः॥

अथ स्थायिभावदृष्टयः

स्निग्धा हृष्टा तथा दीना क्रुद्धा दृप्ता भयान्विता ।
जुगुप्सिता विस्मितेति दृशोऽष्टौ स्थायिभावजाः ॥३४२॥

स्निग्धमाधुर्यसंफुल्ला भ्रूचातुर्यमनोहरा ।
साभिलाषकटाक्षा सा दृष्टिः स्निग्धा निगद्यते ॥३४३॥

इति स्निग्धा–[१]

---

१. ०क्षा
२. ०भी०
३. ०सा-दृष्टिः
४. ०का
५. ०क्षा०
६. ०ज्ञे
७. ०सोत्पु०
८. ०दा०

ईषदन्तर्विशत्तारा मध्योत्फुल्लकपोलिनी[1] ।
ईषत्कुंचितचांचल्या स्मिताकारा निमेषिणी[2] ॥३४४॥
हृष्टा दृष्टिरिति ज्ञाता भावज्ञैः पूर्वसूरिभिः ।

इति हृष्टा[3] [२]

दीनार्धपतितोद्वृत्तपुटासक्तकनीनिका ॥३४५॥
स्फुरद्बाष्पा[4]तिमन्दा च हृत्वलेश[5]शमनातुरा ।

इति दीना [३]

उत्फुल्ला चंचला रूक्षा भ्रुकुटी कुटिलोन्नता ॥३४६॥
पाटलीकृतगोला या सा क्रुद्धा परिकीर्तिता ।

इति क्रुद्धा [४]

वमत्पराक्रमोत्फुल्ला सा दृप्ता स्थिरतारका ॥३४७॥

इति दृप्ता [५]

गमनोद्युक्तदृङ्मध्या भीतिस्फुरितसम्पुटा ।
सर्वदिक्षु चलत्तारा सा दृष्टिः स्याद् भयानका ॥३४८॥

इति भयानका [६]

अव्यक्तालोकिनी [6]मीलत्तारा [?]कूँ[7]च्छ्राधसम्पुटा ।
दृश्यवस्तुन्य[रुचि]त्वात् स्थिता दृष्टिर्जुगुप्सिता ॥३४९॥

इति जुगुप्सिता[8] [७]

---

१. ता०
२. ०णा
३. ०टा दृष्टिः
४. ०भाषाति०
५. ०केशसम०
६. नीला तारा
७. कृष्ट्वोदसं०
८. ०ता दृष्टिः

दूराभिलाषभावोत्था[1] पुटद्वयविलासिनी[2] ।
अचंचला किंचिदूर्ध्व[3]-तारा सा विस्मिता मता ।।३५०।।

इति विस्मिता [८]

स्थाय्याख्या दृष्टयोऽष्टौ तु क्रमाद्रत्यादिभावगा[4]: ।

।।इत्यष्टौ स्थायिभावदृष्टयः।।

[अथ व्यभिचारिभावदृष्टयः]

श्रान्ता च मलिना शून्या लज्जिता मुकुला तदा ।।३५१।।
शंकिता कुंचिता ग्लाना [5]जिह्मार्धमुकुला[6] तथा ।
वितर्किता विषण्णा च विकोशा विप्लुता तथा ।।३५२।।
[7]आकेकराभितप्ता च विभ्रान्ता [8]ललिता तथा ।
त्रस्ता च मदिरेत्ये[9]ता व्यभिचारि[10]षु विंशतिः ।।३५३।।
समीपवर्तिनी[11] [12]म्लानपुटा मन्दविसर्पिणी ।
श्रान्तात्पकुंचितापांगा गलिताश्रुमुखी भवेत् ।।३५४।।

इति श्रान्ता [१]

[13]दृश्यादाकृष्य तारे द्वे ईषच्छ्लथपुटा त्वधः ।
असह्यपूरितापांगपक्ष्मा[14] ग्रस्प[15]न्दसंयुता ।।३५५।।
मलिना दृष्टिराख्याता सा स्त्री[णां][16]विहृते* भवेत् ।

---

* संलापोचिते काले प्राप्ते सत्यपि प्रियेण साकमसंलापो विहृत-मित्युच्यते––(सं० र० ७–४०५ सुधाकरटीकातः)

१. ०थं
२. ०नि
३. ०र्वं ता
४. ०र०
५. जिंहार्थं०
६. ०ळा
७. ओ०
८. च०
९. ०या०
१०. ०रे०
११. ०नि
१२. मनः
१३. दृष्ट्या राकृ०
१४. ०द्मा०
१५. ०वं०
१६. व्यवहृतो

अथ द्वितीययोगार्थमाहूतायां च लक्ष्यते ॥३५६॥

इति मलिना [२]

शून्य-वस्तुनि संसक्ता ह्यज्ञातगुणवर्त्तिनी[१] ।
अकम्पा धूसरालोका शून्या स्याद् विधुरे जने ॥३५७॥

इति शून्या [३]

सकृदग्रगपक्ष्मा[२]ग्राप्यध[३]:स्थलाल्पसाचिगा ।
शिथिलोर्ध्वपुटा सा स्याल्लज्जिता त्वर्ध[४]योगिनी ॥३५८॥

इति लज्जिता[५] [४]

ईषत्स्फु[६]रणसंश्लिष्टपक्ष्माग्र[७]स्पन्दतारका ।
मुकुला[८] स्यात्सुखानन्दे हृद्ये गन्धादिवस्तुनि ॥३५९॥

इति मुकुला[९] [५]

स्थिता ततश्चला तद्वत्स्थिरा साचिविलोकिनी ।
पुनर्बहिर्मुखदृक् स्यान् निवृत्ता शंकिता मता ॥३६०॥

इति शंकिता [६]

पक्ष्म[१०]णी चप[११]ले किञ्चित्कुञ्चिताग्रे, कनीनिका ।
प्रकुंचितभवा, दृष्टिः कुंचिताख्या निगद्यते ॥३६१॥
उत्तेजःप्रेक्षणे नेत्र-बाधासूयादिसूचिका[१२] ।

इति कुंचिता [७]

लीनमन्दचलत्तारा [१३]तथैव शिथिलोत्पुटा ॥३६२॥

---

१. ०नि
२. ०पद्मा०
३. ०प्यापस्थूलाल्पसूचि०
४. स्व०
५. ०ता दृष्टिः
६. ०कू०
७. ०क्षाग्र०
८. ०ळा
९. ०ळा दृष्टिः
१०. ०मानि च
११. पला
१२. ०ता
१३. तस्यै०

व्यस्तभ्रू[1]पुटपक्ष्माग्रा ग्लाना ग्लानि-निरूपिका ।

इति ग्लाना [८]

ईषत्कुंचत्पुटद्वन्द्वा लीनविश्लथतारका ॥३६३॥

तिर्यङ्मण्डलिनी गूढा[2] जिह्मा[3] दृष्टिर्नियुज्यते ।
शठे क्रूरग्रहे चोरे चासूयायां विचक्षणैः ॥३६४॥

इति जिह्मा[4] [९]

अर्धोत्फुल्लपुटा मन्दा भ्रमत्तारा स्फुरत्पुटा ।
तथार्धमुकुला या स्यादापूर्णसुखभोक्तरि ॥३६५॥

इत्यर्धमुकुला[5] [१०]

अतिभ्रान्तपुटोत्फुल्लतारा किंचिदवस्थिता ।
वितर्किताख्या दृष्टिः स्याद् वितर्के विनियुज्यते ॥३६६॥

इति वितर्किता[6] [११]

या दृष्टिः शिथिलापाङ्गा समुत्फुल्लपुटद्वया ।
ईषन्निमेषललिता विषण्णा स्तब्धतारका ॥३६७॥

इति विषण्णा[7] [१२]

उत्फुल्लपुटयुग्मा स्यादचलत्पक्ष्मसक्तिका ।
चित्रचंचलतारा स्याद् विकोशा वि[8]द्विषागमे ॥३६८॥

इति विकोशा[9] [१३]

---

१. ०पक्षभ्रूकलायां
२. ०ढ०
३. ०त्वांगिकाभि०
४. ०मा दृष्टिः
५. ०ळा
६. ०ता दृष्टिः
७. ०णा दृष्टिः
८. ०दि०
९. ०शा दृष्टिः

कम्पस्तम्भपुटा यस्याः क्रमशः परतो यदि ।
विप्लुता ज्ञोपने योज्या स्याद् गर्वोन्मादयोरपि ॥३६९॥

इति विलुप्ता[२] [१४]

अल्पसंकोचितापाङ्गा तथा[३] त्वर्धनिमेषिणी[४] ।
स्वस्व[समीपा][५] दन्यत्रा[६]लोकिनी चक्रवत्पुनः ॥३७०॥
विवर्तिनी स्याद् विच्छिन्नवस्तुन्याकेकराह्वया ।

इत्याकेकरा [१५]

तारे मन्दावलोकिन्यौ ग्लानिसंचारितौ[९] पुटौ ॥३७१॥
विचित्राभरणं यस्यास्साभितप्तेति कीर्तिता ।

इत्यभितप्ता [१६]

त्यक्तविश्रब्धविश्रान्तवीक्षणा भवति क्वचित् ॥३७२॥
उत्फुल्ला च चलत्फुल्लतारा सा दृष्टिरुच्यते ।
विभ्रान्ता विभ्रमावेगसंभ्रमादौ मनीषिभिः ॥३७३॥

इति विभ्रान्ता [१७]

कुंचितापांगमधुरा सस्मितभ्रूविलासिनी ।
कन्दर्प-दर्प-जननी सा दृष्टिर्ल[१०]लिता मता ॥३७४॥

इति ललिता [१८]

---

* अन्यशास्त्रानुरोधादिह ललितेति पाठो निर्धारितः। (ना० शा० ८/६७)

१. ०वा०
२. ०ता दृष्टिः
३. ०दात्वर्थनि०
४. ०षणे
५. ....तारद०
६. ०त्र
७. ०न०
८. ०येद्विच्छि०
९. ०ता पुटा
१०. ०श्चेरि०

भीतप्रकम्पनोत्फुल्लतारा त्रस्ता भ्रमत्पुटा ।

इति त्रस्ता [१९]

त्रिविधा मदिरा प्रोक्ता कोमला मध्यमाधमा ॥३७५॥

मदप्रयोगाभिमता तत्तल्लक्षणसंयुता ।

अत्युन्नतमदस्त्वत्र स्थितः स्यादधमे जने ॥३७६॥

उत्फुल्लापाङ्गललिता क्षामीभूतविलोकना ।

पाटलायततारा स्यात् कोमला तद्विदो जगुः ॥३७७॥

इति कोमलमदिरा दृष्टिः [२०क]

ईषन्निमीलत्पक्ष्माग्राप्यनवस्थिततारका ।

किंचिच्चंचलतारा सा मदिरा मध्यमा मता ॥३७८॥

इति मध्यममदिरा दृष्टिः [२० ख]

प्रज्ञानमदिरा तारा ईषद्दृष्टकनीनिका ।

अशक्योन्मेषणे दृष्टिरधमा परिभाषिता ॥३७९॥

इत्यधममदिरा दृष्टिः [२० ग]

दृङ्मार्गदर्शनार्थं तु षट्त्रिंशद्दृष्टयो मया ।

प्रोक्ताः पूर्वमसंख्याकास्सन्ति ब्रह्मादिनेरिताः ॥३८०॥

॥इति दृष्टिभेदाः समाप्ताः॥

[अथ भ्रू-भेदाः]

सहजा पतितोत्क्षिप्ता चतुरा रेचिता तथा ।

कुंचितेति षडेवात्र भ्रूचातुर्यवती क्रिया ॥३८१॥

❀ 'सङ्गीतरत्नाकरे' तु भ्रूः सप्तधा वर्णिता । यथा—

सहजा पतितोत्क्षिप्ता रेचिता कुंचिता तथा ।

भ्रुकुटी चतुरा चेति प्रोक्ता भ्रूः सप्तधा बुधैः ॥ (७-४३२)

१. ०मु०
२. ०ले
३. ०मन्दि
४. द्वात्रिंशदृ०
५. ०ता
६. ०ता०
७. ०नोक्तवान्

सहजा स्यात् स्वभावभ्रूर्विकाररहिता मुखे ।

इति सहजा [१]

अयुग्मपतनाद्युग्मपतनात्पतिता मता ॥३८२॥[1]

जुगुप्सायां विस्मये चाप्यसूयायां भवेदसौ ।[2]

इति पतिता [२]

एका वा सद्वितीया वा यद्युत्क्षिप्तवतीतरा ॥३८३॥

उत्क्षिप्ता सा भवेत्स्त्रीणां कोपे सत्यवचस्यथ ।

शृंगारभावे लीलायां भ्रूरेखा विनियुज्यते ॥३८४॥

इत्युत्क्षिप्ता [३]

द्वितीया सहिता स्तोकास्फुरितायतमन्थरा ।[3]

चतुरा सुखसंस्पर्शादुदयानन्दसंभ्रमे ॥३८५॥

इति चतुरा [४]

लावण्यमधुराक्षिप्ता यद्येका रेचिता मता ।

रहस्यश्रवणे साधु कविता-पद-वीक्षणे ॥३८६॥

इति रेचिता [५]

एका वा सद्वितीया[4] वा कुंचिताल्पनिबन्धिनी ।

मोट्टायिते कुट्टमिते विलासे किलिकिंचिते ॥३८७॥

इति कुंचिता [६]

भ्रुकुटिः[5] स्फुरिता चेति द्वे भ्रुवौ केचिदूचिरे ।

उत्क्षिप्तायास्तु यल्लक्ष्म भ्रुकुटी तद्भजत्यथ[6] ॥३८८॥

---

१. ०र०

२. च अ०

३. ०ध०

४. ०यानां कुं०

५. ०टि

६. ०जेत्यधः

भ्रुवः स्फुरणता पातसम्भवा पतितोद्भवा ।
तस्मात्ते तु विहायात्र षडेवेति निरूपिता ॥३८९॥

इति भ्रूलक्षणम्

[अथ मुखराग–प्रकरणम्]

वितनोति यतो भावं चतुर्विधरसाश्रयम् ।
अतो रसानां हेतुत्वान्मुखरागो निगद्यते ॥३९०॥

स्वाभाविकः प्रसन्नश्च रक्तः श्याम इतीरितः ।
चतुर्धा मुखरागोऽयं लक्ष्मीनारायणोदितः ॥३९१॥

मुखरागः पाटलाभोऽप्यस्तीत्यत्र निरूप्यते ।
स्वाभाविकः स्वभावस्थोऽप्यनन्यासक्तचित्तवान् ॥३९२॥

निजवैराग्यभावेषु विनियोज्यो मनीषिभिः ।

इति स्वाभाविकः [१]

प्रसन्नो [निर्मलोऽन्वर्थः कार्यः स्याददूभुते रसे] ॥३९३॥
श्रृङ्गारामोदयुक्तेषु हास्यालप्तिमनोरथे ।

इति प्रसन्नः [२]

जपाकुसुमसंकाशो रागो रक्त इतीरितः ॥३९४॥
सवीरे करुणे रौद्रेऽद्भुते च विनियुज्यते ।

इति रक्तः [३]

यथार्थलक्षणः श्यामो बीभत्से च भयानके ॥३९५॥

❋ पाठाधारस्तु—प्रसन्नो निर्मलो हास्ये श्रृंगारे चाद्भुते रसे
—[स० र० ७।२९]

१. ०व०
२. ० ा०
३. मदो
४. ०र्था
५. ०थोप्य०
६. प्रभाव'''
७. ०नस्
८. स्याद्०
९. ०णश्या०

गतद्रव्येषु मानेषु भावज्ञैरभिधीयते ।

इति श्यामः [४]

पाटलः पाटलाभः स्याद्वादहीनेऽपि मानसे ।।३९६।।
लक्ष्मीनारायणेनासौ मुखरागो निरूपितः ।

इति पाटलः

इति पंचविधो मुखरागः

[अथ कर-करणानि]

नानार्थं[1] वाचकान्यत्र पदानि बहवः कराः ।।३९७।।

स्वेच्छार्थाभिनयस्थाने करसम्बन्धकादि[2] दम् ।
यद्धस्तकरणं प्रोक्तं गं[3]णवर्येण तण्डुना ।।३९८।।

स्त्रीपुंसयोर्यथा याति करयोः करणं ननु ।
दूतिः [?] पृथग्भवेदर्थे करणेनापृथग्भवेत् ।।३९९।।

कथं दूतिवदित्युक्तं स्वामिना सर्वदर्शिना ।
साधु ब्रूमोऽत्र करणं कीर्तनेनाथ संयुतम् ।।४००।।

तत्पूर्वापरयोः पाण्योस्सम्बन्धेनैव कारणम् ।
प्रयोजनायोगभावं विचार्य समुदाहृतम् ।।४०१।।

आवेष्टितो[4] द्वे[5]ष्टितो च व्यावर्त्तितमतः परम् ।
परिवर्तितमित्येतच्चतुर्धा सूरिसम्मतम् ।।४०२।।

---

१. ०थ वा०
२. ०दय०
३. र०
४. ते वे०
५. ०रे व०

*स्वपार्श्वाद्वर्तुलारालो यत्र वक्षश्शनैर्गतः[1] ।
करोऽपि[2] करणं पाणेः स्यात्तदा[3]वेष्टिताह्वयम् ।।४०३।।
त[4]लात् पार्श्वतलं सम्यक् स्पृशन्निव बहिर्गतः[5] ।
वक्षस्यू[6]र्ध्वतलत्वे य[7]त्तदुद्वेष्टितमुच्यते ।।४०४।।
ते तलव्यत्ययेनैव व्यावृत्त-परिव[8]र्तिते[10] ।
किंचैतत्करणद्वन्द्वं क्रमाद् व्योममहीतलम् ।।४०५।।

।।इति चतुर्विधकरणम्।।

नृत्तांगयूथे[11] वक्तव्ये रचनासाम्प्रदायिकम् ।
उद्देशपूर्वकं लक्ष्म [12]प्रथमं प्रोच्यते पृथक् ।।४०६।।
सौष्ठवं चतुरश्रं च निषण्णं त्र्यश्रसंज्ञिकम् ।
समं तालं चान्तरालमिति सप्तविधं क्रमात् ।।४०७।।

---

* संगीतरत्नाकरस्य नर्तनाध्यायस्य निम्ननिर्दिष्टा अंशाः सन्दर्भेऽस्मिन् द्रष्टव्याः ।
तर्जन्याद्यंगुलीनां यद्भवेदावेष्टनं क्रमात् ।।५३९।।
तलसंमुखमावक्षः करोऽप्यायाति पार्श्वतः ।
तदावेष्टितमाख्यातं करस्य करणं बुधैः ।।५४०।।
यत्तु क्रमेण निर्याणमङ्गुलीनां तलाद्बहिः ।
वक्षःस्थलात्करस्यापि तदुद्वेष्टितमुच्यते ।।५४१।।
आवेष्टितप्रक्रियया कार्यं व्यावर्त्तितं करे ।
उद्वेष्टितेन व्याख्यातं करणं परिवर्तितम् ।।५४२।।
किन्त्वेतत्करणद्वन्द्वं कनिष्ठाद्यंगुलीकृतम् ।
—इति चत्वारि करणानि ।

---

१. ०तम्
२. ०विवर०
३. ०तोद्वे०
४. ताला भास्वतलं
५. ०ताः
६. ०सोर्ध्वं०
७. त०
८. ०तिः
९. ०को०
१०. ०ता
११. ०धे
१२. पृ०

उरःसमुन्नतं सन्नं गात्रं तत्सौष्ठवं भवेत् ।

इति सौष्ठवलक्षणम्

[वैष्णवं स्था] नकं यत्र कटि[1]नाभिचरौ करौ ॥४०८॥

पृथक् समुन्नतं वक्षश्चतुरश्रं तदुच्यते ।

इति चतुरश्र[2]-लक्षणम्

अचांचल्यस्थितिर्यत्र निषण्णं तदुदाहृतम् ॥४०९॥

इति निषण्ण[3]–[लक्षणम्]

[4]पक्षस्थितोऽसौ चरणो यः पार्श्वाभिमुखाङ्गुलिः ।

त्र्यश्रस्स एव किंचिच्चेत्पुरोदेशाभिवक्तृभाक् ॥४१०॥

इति त्र्यश्रलक्षणम्

समं स्वस्थानविश्रान्त--

॥इति समम्॥

मथ तालं निगद्यते ।

अङ्गुष्ठमध्यमाङ्गुल्यौ ये[5] हस्त[6]स्य प्रसारिते ॥४११॥

तदग्रयोर्मध्यदेशे तालमाहुर्मनीषिणः ।

॥इतिताललक्षणम्॥

त[7]न्मध्ये स्यादन्तरालं तूर्येण विनियोजयेत् ॥४१२॥

[इत्यन्तरालम्]

॥इति सम्प्रदायवचनानि॥

[अथ पुष्पाञ्जलिविधानम्]

[8]अथात्र प्रथमाङ्गत्वात्पुष्पाञ्जल्यंशसम्भव[9]म् ।

समस्तदेवताप्रीत्यै मुखचा[10]लं वदाम्यहम् ॥४१३॥

---

१. ०ठि०

२. ०श्रमलक्षितम्

३. णः

४. व०

५. यो

६. ०तः स्यात्

७. बिन्मध्या

८. कथं यत्०

९. ०वा०

१०. ०जाले

चतुर्धा[1] स भवेदत्र मतान्तरविभागतः ।
धृत्वा[2] यवनिकायुग्मं प्रीतिविस्रम्भभाजनम् ॥४१४॥

कृत्वा[3]ल्पित कालयो[4]ज्यां द्वितीया त्यज्यते ततः ।
तन्मध्यस्थाः स्त्रियस्तत्र हैरम्बं पाटबन्धनम् ॥४१५॥

'करितन्तां[5]' सदुच्चार्य नमस्कु[6]र्युर्विनायकम् ।
सप्रौढिदर्शनार्थन्तु पुनश्शब्दद्वयं भवेत् ॥४१६॥

रङ्गप्रत्यूहशान्त्यर्थं मृदङ्गै[7]र्मोहरिद्वयम् ।
वा[8]दयित्वाऽथाव्रजेच्च हस्तचे[9]लनकादिकम् ॥४१७॥

तथा यवनिका[10] पार्श्वद्वये वादकयोर्हिता[11] ।
······? तथालोच्यानन्तरं तत्तकारतः ॥४१८॥

नान्दिश्रीकं समुच्चार्य नाट्यधर्मानुसारतः ।
उतक्ष्यं [?] गीतमुच्चार्य तथाऽऽभोगांकितं मनः ॥४१९॥

पूर्वोक्तलक्षणेनैव कुर्यात्पुष्पांजलिं ततः ।
शान्ते[12] मार्दङ्गिके नादे तत्तकारा[13]वलिं वदेत् ॥४२०॥

स्थिताः स्युस्ततपरं शीघ्रं हृत्वा यवनिकान्तरम् ।
जतिं[14] कुर्यात्तत्तकारपूर्वां तत्रावधानतः ॥४२१॥

जतिकारा वैष्णवेन स्थानकेन विराजिताः ।
स्थित्वैकपदमानं[15] त्यं ततो [16]येडुपुमानतः ॥४२२॥

---

१. ०र्था सा
२. भू०
३. ०त्या०
४. ०न्यां
५. ०तास०
६. ०कुर्यात्वना०
७. पा०
८. ०वापावृजैश्च
९. ०छ
१०. ०कापा०
११. ०तम्
१२. ०तिर्मा०
१३. ०रांजलिं
१४. ०ति
१५. ०कण्यं
१६. यदुप०

द्वितीयपदमानर्त्य[1] तृतीयपदमुत्तमम् ।
पश्चात्पंचपदं गत्वा प्रसूनप्रतिपादितम् ।।४२३।।

गृहीत्वा प्रतिपात्रं तु व्यष्टीकृत्य[2] तदत्र तु ।
तद्दिशाधिपमापूज्य ततो बद्धांजलिर्यथा ।।४२४।।

भयानुकरणं तस्मादुपपात्रं तथैव च ।
चतुर्थेन पदेनाथ तस्मादग्रदिशं पुनः ।।४२५।।

व्रजन्नि[3]रन्तरायं च पूर्वमग्रदिशाधिपम् ।
सम्पूज्याथाम्बरे बद्ध्वा नमस्कृत्वा ततः पुनः ।।४२६।।

पंचमेन पदेनाथ नृत्यन् गच्छेत् तथाग्रतः ।
यथा सभाभिवक्त्री च प्रान्ते चा[4]न्योऽन्यदर्शनात् ।।४२७।।

त[5]त्प्रान्तं चापि सम्पूज्य षष्ठेनाग्रपदेन तु ।
ततोऽग्रदिग्भु[6]वं तस्मात्पूर्वाभिक्र[7]ममाव्रजेत् ।।४२८।

शनैर्नृत्यन्ततो गच्छेच्चतुर्था दिशि पूर्ववत् ।
सप्तमेन पदेनाथ रंगनृत्ये प्रदक्षिणम् ।।४२९।।

ततः पुष्पांजलिं रंगमध्ये कृत्वा यथोचितम् ।
नाटकादिप्रबन्धानां सुखदैः सुप्र[8]योक्तृभिः ।।४३०।।

नर्तव्यं[9] पुनरन्त्यान्तु क्रियाभागा[10]न् वदाम्यहम् ।
।। इति कार्या[?]मते पुष्पांजलिविधिः ।।
अथवा जातिनृत्तस्य क्रियान्तरमिदं पुनः ।।४३१।।

---

१. ०र्त्यं
२. ०त्वा
३. ०नर्तंनरायद्वत्०
४. चान्याप्यद०
५. तद्वन्तं नापि
६. ०भवं
७. ०सम०
८. ०प्रियोक्तिभिः
९. क्यां
१०. गां

द्वितीयपदमानर्त्य[1] तृतीयपदमुत्तमम् ।
पश्चात्पंचपदं गत्वा प्रसूनप्रतिपादितम् ।।४२३।।

गृहीत्वा प्रतिपात्रं तु व्यष्टीकृत्य[2] तदत्र तु ।
तद्दिशाधिपमापूज्य ततो बद्धांजलिर्यथा ।।४२४।।

भयानुकरणं तस्मादुपपात्रं तथैव च ।
चतुर्थेन पदेनाथ तस्मादग्रदिशं पुनः ।।४२५।।

व्रजन्नि[3]रन्तरायं च पूर्वमग्रदिशाधिपम् ।
सम्पूज्याथाम्बरे बद्ध्वा नमस्कृत्वा ततः पुनः ।।४२६।।

पंचमेन पदेनाथ नृत्यन् गच्छेत् तथाग्रतः ।
यथा सभाभिवक्त्री च प्रान्ते चा[4]न्योऽन्यदर्शनात् ।।४२७।।

त[5]त्प्रान्तं चापि सम्पूज्य षष्ठेनाग्रपदेन तु ।
ततोऽग्रदिग्भु[6]वं तस्मात्पूर्वाभिक्र[7]ममाव्रजेत् ।।४२८।

शनैर्नृ त्यन्ततो गच्छेच्चतुर्था दिशि पूर्ववत् ।
सप्तमेन पदेनाथ रंगनृत्ये प्रदक्षिणम् ।।४२९।।

ततः पुष्पांजलिं रंगमध्ये कृत्वा यथोचितम् ।
नाटकादिप्रबन्धानां सुख[8]ैः सुप्रयोक्तृभिः ।।४३०।।

नर्तव्यं[9] पुनरन्त्यान्तु क्रियाभागा[10]न् वदाम्यहम् ।

।। इति कार्या[?]मते पुष्पांजलिविधिः ।।

अथवा जातिनृत्तस्य क्रियान्तरमिदं पुनः ।।४३१।।

---

१. ०र्त्यं
२. ०त्वा
३. ०नर्तंनरायद्वत्०
४. चान्याप्यद०
५. तद्वन्तं नापि
६. ०भवं
७. ०सम०
८. ०प्रियोक्तिभिः
९. र्व्यां
१०. गां

स्थापना[1] मण्डलं जात्या गर्भत्वं [?] च पदानि तु ।
प्रतिशि[2]रः पदानि स्यु[3]रेकैकं नवधा पृथक् ॥४३२॥

बोधनात्रितयं [?] तद्वद् यदि स्याद्रुपपूर्ववत् ।
अन्यो वै नर्त्त[4]नस्यास्ति[क्र]मोऽयं नाट्यनृत्तयोः ॥४३३॥

॥ इति शार्दूलमते पुष्पांजलिविधिः ॥

अथवा जातिनृत्तस्य मतान्तरविधिं ब्रुवे ।
पूर्ववत्पदविन्यासैः पंचभिः पंचभिस्तथा ॥४३४॥

त[5]त्तद्दिशि तथा पुष्पांजलिं चैकेन जानुना ।
भूलग्नेन नमस्कुर्याच्चतुर्विधपदांजलि[6]ः ॥४३५॥

चतुर्विधासु जातीषु स्वानुभाववशानुगा[7]म् ।
गृहीत्वा नर्त्तने धीमान् शुद्धनृत्तप्रयोगवित् ॥४३६॥

॥इत्युमापतिप्रयुक्तपुष्पांजलिक्रिया तण्डुमते निरूपिता ॥

॥इति पुष्पांजलि-रूप-जाति-नर्त्तनम्॥

[अथ करण-प्रकरणम्]

अभिनेता शुद्धनृत्ते[8] समौ पादौ समौ क[9]रौ ।
लता[10]ख्यौ चतुरश्र[11]स्य सौष्ठ[12]वं प्राप्य यत्नतः ॥४३७॥

ततः परं दक्षिणांघ्रि[13]श्चा[14]र्याध्यर्धिकया व्रजन् ।
कर[15]-व्यावर्तनं कुर्याद्वामं तु परिवर्जनात् ॥४३८॥

---

१. ०नाम०
२. ०शीरा
३. ०यु: ए०
४. ०स्याशि
५. ० तत्तद्धिकस्मि
६. ०ली
७. ०गा०
८. ०त्तमामोपादौ
९. तरौ
१०. स्यौ
११. ०श्रा०
१२. ०ट०
१३. ०घ्रिः
१४. कार्याथैं विकया
१५. ०रौ

तेषु[1] पूर्वोक्तचार्याऽत्र स्थानकेन समांघ्रिणा ।
स्थित्वा पुष्पपुटं कृत्वा कुचाग्रेष्वंगुलिस्थले ॥४३९॥
ततः पादो भवेदग्र[2]तलसंचरनामकः ।
यदा स्यात् करुणा दृष्टिस्तलपुष्पपुटं भवेत् ॥४४०॥
पुष्पांजलिप्रयोगे[3]ऽयं लज्जायान्तु नियुज्यते ।
येन यत्करणं यत्र प्रथमन्तु प्रयुज्यते ॥४४१॥
तदुक्तलक्षणत्वेन [4]क्रिया स्यात्तदनन्तरम् ।
कर्तव्य[5]करणात्तत्र यो[6]ग्यहस्तसमन्वितम् ॥४४२॥
[7]तलपुष्पोत्तरेष्वेवं क[8]रणेषु नियोजयेत् ।
पुष्पांजलि-प्रयोगत्व[9]मस्त्यस्मिन् विशेषतः ॥४४३॥
पुष्पांजलि[10]–क्रिया पूर्व[11]व्यक्ताव्यक्ततयोदिता ।
अथवा करणैकेन सुव्यक्तं सा निरूपिता ॥४४४॥

॥[12]इति तलपुष्पपुटम्॥ (१)

प्रथमं समतारं सन्न्[13]ध्र्वमण्डलिनौ करौ ।
अथ निहञ्चितावंसावूर्ध्वमण्डलिनौ करौ ।
भवेतां, हृदया[14]ग्रे स्यादंजलिर्न्य[15]चितौ भुजौ ॥४४५॥
ग्रीवा नता स्यात्तल्लीनं भवेदन्योन्य-वन्दने ।

इति लीनम् (२)

वक्षोऽग्रे[16]स्वस्तिकौ[17]पद्मकोशौ न्यस्तौ सकृत्क्षणे ॥४४६॥

---

१. ०ष्व०
२. ०स्थ०
३. ०गोऽयमज्ञा यान्ति
४. कृतः
५. ०र्यं क०
६. द्योग०
७. शिते
८. का०
९. ०त्वा....मष्विरस्मि०
१०. ०लिः
११. ०र्वं:
१२. इत्येकतल०
१३. ०न् ऊर्ध्व०
१४. ०योग्र:
१५. ०न्यंजिता
१६. ०ग्र०
१७. ०का०

व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यामुत्तानावूरुमण्डलौ[१] ।
अधोमुखत्वेनानीतौ यदि तद्वर्तितं मतम् ॥४४७॥
पद्मकोशौ पताकौ[२] वा शुकतुंडावधोमुखौ ।
असूयाकोपयो[३]र्योज्यं विनियोगवशात्पुनः ॥४४८॥

इति वर्तितम् [३]

शुकतुण्डावुरोभागे[४] व्यावर्तिपरिवर्तितौ ।
कृत्वा क्षिप्ताख्यया चार्या सार्धं[५] तौ परिवर्तितौ ॥४४९॥
भूत्वा त[६]दोरुवक्रत्वे वलितोरु तदुच्यते ।
आकारगुप्तौ[७] प्रीतायामेकान्ते च नियुज्यते ॥४५०॥

इति वलितोरु[८] [४]

प्रथमं चतुर[९]श्रौ स्तस्ततःस्यात् किंच[१०] विच्यवा ।
कृत्वा तदो[११]द्वेष्टिताभ्यामूर्ध्वमण्डलिनौ करौ ॥४५१॥
त[१२]था स्वस्तिकतां[१३] नीत्वा ततो मण्डलमाचरेत् ।
मण्डलस्वस्तिकाख्यं तत् [१४]ख्यातं वस्तुनि[१५]रीक्षणे ॥४५२॥

इति मण्डलस्वस्तिकम्[१६] [५]

क्रमाद् विधाय व[१७]क्षोऽग्रे चतुरश्रौ च रेचितौ ।
ततो व्यावर्तिते[१८]नैवा[१९]भुग्ने वक्षसि संस्थितौ ॥४५३॥

---

१. मुद्वानां रूपमण्डलम्
२. ०का
३. ०र्या०
४. ०गौ
५. ०र्थं
६. ततोथो वक्रभे चेत्पति०
७. ०प्ता
८. ०रुकरणम्
९. ०रौ हस्तौ
१०. ०चिदुच्यताम्
११. ०तो द्वे०
१२. कृत्वा
१३. ०ता भित्वा
१४. स्यातां
१५. ०नि लक्ष०
१६. ०ककरणम् ।
१७. वक्राग्रे
१८. ०ता
१९. ०व

[करौ च] स्वस्तिकौ[1] पादौ[2] तद्वक्षः[3] स्वस्तिकं विदुः ।
तद् भवेदल्पभुग्नांसं[4] लज्जामन्मथतापयोः ॥४५४॥
इति वक्षःस्वस्तिकम् [६]

वक्षसो हंसपक्षाख्यौ रेचितौ[5] [6]ह्यूर्ध्वपार्श्वयोः ।
तदा व्यावर्त्तनेनैव तत्स्वस्तिकमधोमुखम् ॥४५५॥
सत्वरं प्रणतिं कृत्वा चान्येन[7] तद्वदभ्यसेत् ।
अङ्घ्रि[8]द्वन्द्वांचितौ सूच्यौ[9] भवेदाक्षिप्तरेचितम् ॥४५६॥
विनियोज्यं[10] मनस्येव[11] क्षमा[यां] वा विधौ बुधैः ।
इत्याक्षिप्तरेचितम् [७]

[12]करि-शुण्डादण्डपाणि[13]र्दक्षिणः [14]स्यादथापरः ॥४५७॥
हृदये कटकावक्त्रस्तदर्धस्वस्तिकं[15] मतम् ।
अर्धस्वस्तिकमेवैतदन्ये करिकरस्थले ॥४५८॥
प[16]क्षवंचितकं प्राहुः प[17]क्षप्रद्योतकं [18]परे ।
त[19]दर्धचन्द्रे कट्यां स्यादिति भेदत्रयम्मतम् ॥४५९॥
इत्यर्ध[20]स्वस्तिकम् [८]

*

* सङ्गीतरत्नाकरे तु 'अर्धस्वस्तिकानन्तरं दिक्स्वस्तिकं लक्षितमस्ति तद् यथा—पार्श्वयोरग्रतः पृष्ठे स्वस्तिकोऽत्रदिशं गतः ।
कराङ्घ्री रेचितौ यत्र तद्दिक्स्वस्तिकमुच्यते । (७-५८७.)

१. ०केन
२. ०दौ च
३. ०क्षः स्व०
४. ०नास्यं
५. ०ते०
६. ०रूर्ध्वं०
७. तदन्ये
८. ०घ्रिदन्ता०
९. ०चि
१०. ०यौ
११. ०वा
१२. करेण
१३. ०णिः द०
१४. स्यादभेदतः
१५. ०कौ मतौ
१६. प्र०
१७. प्र०
१८. ०पने
१९. ०दार्थचन्द्रकट्यां
२०. ०र्थं०

हृदयाद्धंसपक्षाख्यावुद्वेष्ट्याक्षिप्य पार्श्वयोः ।
कृत्वा चोरीमपक्रान्तां[2] कुर्वन् तत्रापवेष्टनम्[3] ।४६०।।

रेचयेदन्यचरणं सूचि[4][वि]भूषितस्य तु ।
चरणस्य बहिःपार्श्वे स्वस्तिकत्वं[5] निदर्शयेत् ।।४६१।।

नतोऽङ्घ्रिभ्यां कराभ्यां च पृ[6]ष्ठस्वस्तिकमाचरेत् ।
विसृष्टवस्तुग्रहणे सदन्वेषण-भाँषणे ।।४६२।।

इति पृष्ठस्वस्तिकम्–[९]

वक्षस्युद्वे[9]ष्टितो हस्तौ व्यस्तौ[10] वावेष्टितो ततः ।
उत्प्लुत्य स्वस्तिकं कुर्यादंघ्रिभ्यां च सकृत्समम् ।।४६३।।

स्वस्तिका[11]ख्यं नियोज्यं तच्चित्रयुक्तपरिक्रमे ।

इति स्वस्तिकम् [१०]

स्वचिह्नमनतिक्रम्य स्वपार्श्वे[12] वा मुखाग्रतः ।।४६४।।

करिहस्तः पल्लवत्वं यदा याति तदांचितम् ।
स्वकृते कौतुके योज्यं स्यात् सात्त्विक-विचक्षणः ।।४६५।।

इत्यंचितम्[13] [११]

व्यावृत्त्या पल्लवं हृत्वा दक्षिणं चतुरश्र[14]योः ।
परिवर्त्तन[तो बाह्यं व्यावृत्त्या] प्रापयन् शनैः ।।४६६।।

---

१. जारि०
२. ०प्रकान्तं
३. ०ग्र०
४. ०चि भूनितस्य
५. ०त्वे
६. घृष्ट०
७. ०भू०
८. दृष्टस्वस्तिककरणम्
९. ०सोद्वे०
१०. ०तौ वा०
११. ०ता०
१२. ०र्वा
१३. ०तकरणम्
१४. ०त्व०

कृत्वोक्षिप्तान्तरां[2] चारी[3]मूर्ध्वगः शुकतुण्डकः ।
स भवेद् दक्षिणो हस्तो वामो[4]रु-स्थानसंचितः ॥४६७॥
अपविद्धाह्वयं[5] तत्स्यादसू[6]यामर्षयोर्भवेत् ।

इत्यपविद्धम् [१२]

समं[7] शिरः समा दृष्टिस्समपादौ लताकरौ ॥४६८॥
यदा स्यातां समनखं[8] प्रयोज्यं प्रथमागमे ।

इसि समनखम् [१३]

आदावाविद्धचारी[9] स्यादंचितश्चरणस्ततः ॥४६९॥
पर्यायरेचितः पाणि[10]स्तदोन्मत्तं तदिष्यते ।
सौभाग्यसंभ्रमे गर्वे कलहे च नियुज्यते ॥४७०॥

इत्यु[11]न्मत्तम् [१४]

हंसपक्षौ करौ [यत्र च]तु[12]रश्रत्वमागतौ ।
व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यामू[13]र्ध्वा[ङ्गात्] सत्वरभ्रमौ ॥४७१॥
आविद्धवक्त्रौ[14] कृत्वाथ वक्षःस्वस्तिकमाचरेत् ।
ततस्तौ विप्रकीर्णौ[15] स्तोऽनन्तरं पक्षवंचितौ ॥४७२॥
पक्षप्रद्योतकौ[16] चाथ चा[17]री कार्यानुसारिणी ।
ततो[18]ऽवहित्थकस्थानं कुर्यात् स्वस्तिकरेचितम् ॥४७३॥

---

१. ०वा क्षि०
२. ०रा०
३. ०रे मूर्ध्वगे
४. हीमस्त्वे
५. ०द्धां ह्यां
६. ०नु०
७. ०वंश्शिरस०
८. ०खां
९. ०रे
१०. ०णि तदु०
११. ०युन्नत०
१२. कुर श्रमत्व०
१३. ०मुद्वा
१४. ०क्त्रा
१५. र्णस्थौ आन्०
१६. ०का
१७. जाति०
१८. ०तो व०

नृत्तमात्राभिनयने सन्तोषे[1] तत्प्रयुज्यते ।

इति स्वस्तिकरेचितम् [१५]

मण्डले चतुरश्रत्वात् करमुद्वेष्ट्य दक्षिणम् ॥४७४॥
नीत्वा स्कन्धशिरः[2]स्थानं हंसपक्षकरौ क्रमात् ।
कनिष्ठादित्रिशाखा[3]: स्युः पतनोत्पतनाश्रया[4]: ॥४७५॥
ततो[5]ऽलपल्लवं कुर्वन् कुट्टयेद् दक्षिणांघ्रिणा ।
करं[6] दक्षिणमाविद्धं कृत्वा हृदि निवेशयेत् ॥४७६॥

*[इति निकुट्टकम्–१६]

†इत्यर्धनिकुट्टकम् [१७]

एकजानुभ्रमरिकां कृत्वा मण्डलमाचरेत् ।
तदन्यपार्श्वदोर्मूले प[7]रहस्ते[8]न पल्लवम् ॥४७७॥
कट्या छिन्नाह्वया कु[9]र्यादेवमंगान्तरेषु च ।
त्रिचतुर्वारमभ्यस्तं[10] कटि[11]च्छिन्नाह्वयं भवेत् ॥४७८॥
सन्तोषविस्मयाख्याने विद्वद्भिर्विनियुज्यते ।

इति कटिच्छिन्नम् [१८]

विधाय [12]चारीमाक्षिप्तामपक्रान्तां ततः परम् ॥४७९॥

---

* प्राप्तपाण्डुपुस्तके 'निकुट्टकस्थले' अर्धनिकुट्टकमित्यङ्कितमस्ति । निकुट्टकलक्षणमपूर्णं वर्त्तते ।

† अर्धनिकुट्टकं तु पाण्डुलिपौ निर्दिष्टमपि लक्षितं नास्ति । तल्लक्षणं सङ्गीतरत्नाकरे—

तदेवार्धनिकुट्टं स्यादेकेनाङ्गेन चेत्कृतम् ।
अप्ररूढवचःप्रोक्ते तत्रैवार्थे नियुज्यते ॥ (७-६०७)

१. ०षं
२. ०व०
३. ०खा
४. ०यः
५. ०तोल०
६. ०रो
७. ०वी०
८. ०स्तिन
९. जा०
१०. ०त
११. ०ट०
१२. जा०

पादाभ्यां स्वस्तिकं कुर्यान्नाभिस्थकटकामुखः ।
दक्षिणोऽथ करो वामः[1] कटिशीर्षे[2]ऽर्धचन्द्रमाः ॥४८०॥
[3]स्यान्नताख्यं तदा पार्श्वमेवमं[4]ऽङ्कान्तरं भवेत् ।
कटीसमं तदाख्यातं [5]वैष्णवस्थानकान्वितम् ॥४८१॥
तत्कार्यं नटवर्येण [6]जर्जरावाहनादिषु ।

इति कटिसमम् [१९]

आदौ भुजंगत्रासाख्यां [7]चारीं कृत्वा ततः परम् ॥४८२॥
आक्षिप्तकुंचिताख्योरुकटिजानुविलोलनात् ।
त्र्यश्रमावर्त्तनं कुर्वन् जान्वग्रे कटकामुखम् ॥४८३॥
व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां कुंचितस्सन् विलोलितम् ।
दक्षिणस्तु पताकत्वं प्राप्य[8] डोलायते[9] यदा[10] ।४८४॥
भुजंगत्रासनं तत्स्याद् भुजङ्गग्रहणे मतम् ।

इति भुजंगत्रासितम् [२०]

कृत्वा चा[11]रीमलाताख्यां नितम्बा[12]ख्यं करं ततः॥४८५॥
चतुरश्रं विधायाथ वामेनोर्ध्वोर्ध्वजानुना ।
एवमेव विधातव्यं[13] सकृत्पर्यायवर्त्तितम् ॥४८६॥
तदालातमिति प्रोक्तं तत्स्यात्सां[14]ह्लादनर्त्तने ।[15]

इत्यलातम् [२१]

व्यावृत्तिसं[16]हिते[हस्ते][17] क्रियते सोऽङ्घ्रिः पुरस्सरः ॥४८७॥

---

१. ०म०
२. ०र्षोऽथ
३. स सताख्यां
४. ०मन्तान्त०
५. वृष्णि०
६. झर्झ०
७. जारिं०
८. ०प्यते
९. ०लयते
१०. ०था
११. जारिमराता०
१२. ०बत्वं क०
१३. ०व्या
१४. ०दा०
१५. ०नम्
१६. ०ताख्यां···
१७···कन्दर्पसांघ्रि०

चतुरश्रो[1] भवेदन्यस्ततो व्यावर्तितं[2] करम् ।
परिवृत्त्य पुरो गच्छेत् तस्यांघ्रिस्तत्तदग्रतः ।।४८८।।
एवमङ्गान्तरगतं विक्षिप्ताक्षिप्तकं भवेत् ।
गत्यागत्योर्भवेदेतदिति पूर्वैरुदीरितम् ।।४८९।।

इति विक्षिप्ताक्षिप्तकम् [२२]

अरालै[3]स्त्वाच्छिरोदेशे करणं [वृ]श्चि[4]काह्वयम् ।
विधाय तमरालन्तु भ्रूमध्ये *द्वितयं जवात् ।।४९०।।
नीत्वान्यमप्यरालं च क्रियेतेदं[5] निकुंचितम् ।

इति निकुंचितम् [२३]

व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां क्रमादूर्ध्वमधः करः ।।४९१।।
स्वपार्श्वे विभ्रमं लग्नं जंघास्वस्तिकमाश्रयेत् ।
अतः परमतिक्रान्तं[6]चारीगश्चरणो यदा[7] ।।४९२।।
वर्त्तनाकर[8]भागस्थपादस्सव्यकरस्तदा ।
डोलो भवेत्सूरयस्तत्करणं घूर्णितं विदुः ।।४९३।।

इति घूर्णितम्[9] [२४]

कृत्वोर्ध्वजानुकां [10]चारिं तत्रांघ्रिः कुंचितो भवेत् ।
[11]तज्जानुभाग[गः]पाणिः स्याद[12]रालोऽलपल्लवः ।।४९४।।
स्वभागवदनाग्रस्स्यात्ततस्तौ पक्षवंचितौ ।
हृदि वामस्थले वाऽथ मुखे यद्यूर्ध्वजानु तत् ।।४९५।।

---

* अन्यत्र तु 'नासाक्षेत्रार्जवेन तु' [सं० र० ७-६२२] इति पाठो वर्त्तते ।

१. ०श्रोथ वेदिन्य०
२. ०वृत्तितं
३. ०ळ०
४. ....श्छ०
५. ०यं
६. ०तं जारि०
७. ०था
८. ०भाग्रस्थ०
९. ०तकरणम्
१०. जालिं
११. तं
१२. ०द परालोथ प०

इत्यूर्ध्वजानु[1] [२५]

विधाय मण्डलं पूर्वं सव्यं[2] चैवापसव्यकम् ।
सूच्यास्यं[3] कटकावक्त्रं क्रमाद् वक्षःस्थलं नयेत् ॥४९६॥
ततः पार्श्वोद्‌घट्टितं[4] स्यात् पार्श्वोन्नतमिहानुगम्[5] ।
तदर्धरेचितं[6] तच्च प्रोक्तं दुर्व्यक्तलक्षणे ॥४९७॥

इत्यर्धरेचितम्[7] [२६]

स्वस्तिकांगुल्यसम्पृक्तं कृत्वांघ्रिसरणं[8] समम् ।
आवेष्टितोद्वेष्टिताभ्यां गमनागमने पुनः ॥४९८॥
करौ पादौ यदा स्यातां मतल्लिकरणं तदा ।
मदाहवमदोन्मत्ते[9] मतल्लिकरणं[10] स्मृतम् ॥४९९॥

इति मतल्लि[11] [२७]

[12]स्खलितापसृतावंघ्री [यत्र] पाणिस्तु दक्षिणः[13] ।
[नितम्बकेशबन्धादिवर्त्तनो वामकः पुनः] ॥५००॥
कटिशीर्षे[14]ऽर्धचन्द्रोऽर्धमतल्लिकरणं मतम्[15] ।
कटिरेचितमप्यत्र[16] किंचिदाहुः पुरातनाः ॥५०१॥

इत्यर्धमतल्लि[17] [२८]

....❀........

❀ 'सङ्गीतरत्नाकरे' तु
"रेचितो दक्षिणो हस्तः सोङ्घ्रिरुद्‌घट्टितो भवेत् । यत्र डोलाकरो वामस्तद्रेचकनिकुट्टकम्" ॥ (७।६३३)—इत्येवमर्धमतल्यनन्तरं 'रेचकनिकुट्टकम्' इति लक्षितम् ।

१. ॰नुः
२. ॰व्येच्छेवा॰
३. ॰जासांक॰
४. ॰द्‌घुट्टि॰
५. ॰र्वानन्त॰
६. यथार्थं किंचितं
७. ॰र्थरे॰
८. ॰घ्रिस्स॰
९. ॰वहमदोन्मत्त॰
१०. ॰योजितम्
११. ॰लिकरणम्
१२. आशाख्या....वत्रुतावंघ्रि॰
१३. किंचकः
१४. ॰र्षार्थचन्द्रार्थ॰
१५. ॰ते
१६. ॰किंचकम॰
१७. इत्यर्थमतल्लिकरणम्

नितम्बकेशबन्धाख्यवर्त्तनाभिस्तु दक्षिणः ।
भवेत् करिकरो वामः पुनः पुनरपि व्रजेत् ॥५०२॥
अङ्घ्रिरुद्घट्टितस्तत्र भवेदभ्यस्तपार्श्वयोः ।
पर्यायाल्ललितं तत्स्यात्प्रीतौ सानन्दनर्तने ॥५०३॥

इति ललितम् [२९]

सूचीमुखौ करौ यत्र हृदयादात्मपार्श्वगौ ।
तदा तच्चरणः सूचिर्भूत्वा तदग्रगो भवेत् ॥५०४॥
कृत्वाऽथ चारीं भ्रमरीं पर्यायेणाङ्घ्र्यो[र्द्वयोः] ।
वलितं स्यात् स्थिताङ्गाद्धि[?] ललिते च नियुज्यते॥५०५॥

इति वलितम् [३०]

ऊर्ध्वजान्वीं ह्वयां चारीं कृत्वा तत्र लताकरौ ।
वामं वा दक्षिणं हस्तं कुर्याज्जानुशिरःस्थले ॥५०६॥
पर्याया[त्] क्रियते चेत्तद्दण्डपक्षं निगद्यते ।
तपस्यत्युग्रविषये पूगौ विद्रुमदर्शने ॥५०७॥

इति दण्डपक्षम् [३१]

स्यातां तौ कटकावक्त्रौ नाभिपार्श्वद्वये कृतौ ।
तत्पराङ्मुखतां कृत्वा सूचिपादस्तदा भवेद् ॥५०८॥

---

१. ०बः
२. ०ख्या०
३. ०च्च किकरो
४. ०म
५. ०मुद्घट्टितं त०
६. ०दारस्ति पा०
७. ०यल०
८. ०पीवा०
९. ०व०
१०. ०ख्यौ
११. ०गः
१२. ०णं सूचि भू०
१३. ०द्रागगो
१४. जारि०
१५. ०याङ्ग''''गयोः
१६. ल०
१७. ०याच्छिखागाद्धि
१८. ०न्वां हयां जारि
१९. ०र०
२०. ०गा०
२१. दन्तपक्षः
२२. ०रि०
२३. तापस्यामु०

अपक्रान्ताख्यया युक्तं पर्यायेण ततो व्रजेत् ।
पादापविद्धकं तत्स्यात् सूक्ष्मवृत्त्या[२]ऽभिनीयताम् ॥५०९॥
इति पादापविद्धकम्[३] [३१]

अभ्यस्य भ्रमरीं चारीमथ[४] नूपुरपादिकाम्[५] ।
तत्तद्भागांघ्रिणा सार्धं स करो[६] रेचितो भवेत् ॥५१०॥
पार्श्वप्रसारितो वा स्यादन्यः[७] स्वस्थानदोलितः ।
यत्र तन्नूपुरं विद्यान्नुपूरालंकृतौ[९] मतम् ॥५११॥
इति नूपुरम्[१०] [३३]

आक्षिप्तचा[११]र्यामुत्क्षिप्तपादेन सह तद्गतम् ।
[१२]करमुद्वेष्टनं कुर्यान्नितम्बवलनं शनैः ॥५१२॥
ततः स्यात् स्वस्तिकः पादो द्वितीया[१३]ङ्घ्रं तथा भवेत् ।
तदैव[१४] युगपत्कार्यौ[१५] करौ तावुल्बणाह्वयौ ॥५१३॥
करणं भ्रमरं योज्यं तदुन्मत्तगतौ भवेत् ।
इति भ्रमरम्[१६] [३४]

पार्श्वे पार्श्वे कटिप्रान्तेऽलपद्मौ युगपत्तदा ॥५१४॥

---

* संगीतरत्नाकरोक्तनूपुरलक्षणे 'द्वितीयं तु लताहस्तं यत्र तन्नूपुरं विदुः' (७।६४०) इति वाक्यं तस्मिन्नेव ग्रन्थे पताकौ डोलितौ तिर्यक् प्रसृतौ तौ लताकरौ' (७।२४६) इति लताकरलक्षणञ्च समवलोक्य पाठोऽयं संशोधितः ।

१. ०क्षा०
२. ०य०
३. वश्याप०
४. जा०
५. मूपर०
६. ०रीति जितो
७. ०यस्वास्थानदोदितः
८. ०द्यानू०
९. ०ता मतः
१०. ०रकरणम्
११. ०का०
१२. श०
१३. ०यासे
१४. ०दे०
१५. ०र्या
१६. ०रः

छिन्ना कटिः स्याद् वैशाखं स्थानकं च[1] क्रमात्तथा ।
भवेच्छिन्नं तदा तालपातेने[2] चांगमर्दने ॥५१५॥
इतिच्छिन्नम्[3] [३५]
भुजंगत्रासिता चारी[4] नृत्ताख्यौ रेचितौ करौ ।
क्रियन्ते यत्र तत्प्रोक्तं [5]भुजंगत्रस्तरेचितम् ॥५१६॥
[इति भुजंगत्रस्तरेचितम्–३६]
रेचितो दक्षिणो[6] हस्तो वामो[7] डोलायते तथा ।
भुजंगांचितकं तत्स्यात् तुरंगारोहणे भवेत् ॥५१७॥
इति भुजंगांचितम्[8] [३७]
[9]दण्डपादाख्यया चार्या योजयेद्[10] दण्डपक्षकौ ।
नृत्तहस्तौ तदा दण्डरेचितं प्रोच्यते बुधैः ॥५१८॥
प्रयोज्यमु[11]द्धुरानन्दे पो[12]दैरुद्दण्डविभ्रमे ।
इति दण्डरेचितम्[13] [३८]
करौ दक्षिणवामाख्यौ [14]स्वस्वोरोजाग्रगौ यदि ॥५१९॥
चतुरश्राले[15]पघ्नत्वाद् यदि पादो[16] ह्यु द्घट्टितः ।
चतुरन्तद् विजानीयात्करणं चतुराश्रयम् ॥५२०॥
आश्चर्या[17]सूचके वाक्ये [18]विदूषकविमन्त्रिते* ।

---

* तुलनीयम्—'वैदूषिक्यां नियुज्यते' सं० र० ७।६४९ ।

१. चं०
२. ०द०
३. ०नकरणम्
४. ०रे नृत्तास्यौ रजिता०
५. क्रियते दक्षिणांघ्रिणा
६. ०णे हस्ते
७. ०मे
८. ०तकरणम्
९. दन्त०
१०. ०च्चण्ड०
११. ०यं तद्धुरा०
१२. पद्मै०
१३. ०तकरणम्
१४. स्वसरो०
१५. ०त्रप०
१६. दोत्थघ०
१७. ०र्यसूचके
१८. विदुषः कविमन्त्रिते

पृष्ठोन्नततलं पादं विधाय स्वस्तिकावथं[१]।
कुंचयित्वा शिरोदेशे विप्रकीर्णौं[२] सक्तृद्यथा [४५] ।।५३४।।

तौ करौ विच्युतौ स्यातां तदा[३] वृश्चिकरेचितम् ।
छिन्ने घने व्योमयाने वर्षणे[४] सिन्धुगर्जिते ।।५३५।।

इति वृश्चिकरेचितम् [४६]

कृत्वादौ वृश्चिकं पादं तथा[५] वामं लताकरम् ।
तदन्यं डोलितं कुर्यात् तल्लतावृश्चिकाह्वयम् ।।५३६।।
नदीपरिक्रमे हर्म्याद्यारोहणविधौ मतम् ।

इति लतावृश्चिकम्–[४७]

[६]चारीमाक्षिप्तिकां[७] कृत्वा कुंचयेत् कटकामुखम् ।।५३७।।
अग्रे वाथ[८] स्वपार्श्वे वा चतुरौ[९] वा करौ यदा[१०] ।
ते[११]दाक्षिप्तं मदो ध्वा[१२]न्ते नश्यतीति निरूपणे ।।५३८।।

इत्याक्षिप्तम् [४८]

वामपादबहिःपार्श्वे दक्षिणं विन्यसेत्ततः ।
सार्ध[१३]द्वितालान्तरालदक्षिणांघ्रि[१४] स्वपार्श्वगम् ।।५३९।।
कुर्यात्स[१५]तब्धं वामजानु तदा बाहू च तद्विधौ ।
पार्श्वगः पल्लवो वामो दक्षिणो[१६]ऽग्रे विसर्पितः ।।५४०।।

---

१. ०ता
२. ०र्णा
३. ०था
४. वर्षजासिन्धुरातिते
५. ०द्यागं किंच तत्कथम्
६. जालिमा०
७. ०प्तनां
८. वा धन्विपा०
९. ०रं
१०. ०था
११. कराक्षिप्तमुदो०
१२. ०ध्वन्तं
१३. ०धीतता०
१४. ०घ्रि०
१५. ०प्रस्तं
१६. ०णाग्रे

तदार्गलं स्यात्तद्योज्यं महावीरपराक्रमे ।

इत्यर्गलम् [४९]

स्वपार्श्वोर्ध्वांगुलितलो यदा पादः प्रसारितः ॥५४१॥

एवमंगान्तरं कुर्यात्तदा तलविलासितम्[1] ।

इति तलविलासितम् [५०]

वृश्चिकस्य यदांगुष्ठो[2][3] भालमध्यं[4] स्पृशत्यलम् ॥५४२॥

तदा[5] ललाटतिलकं गन्धर्वगतिसूचकम् ।

इति ललाटतिलकम् [५१]

प्रथमं स्वस्तिकौ[6] हस्तौ तथोर्ध्वाधोगतौ क्रमात् ॥५४३॥

तदा [7]क्रमेणांघ्रियुग्ममूर्ध्वस्थं च पुरानुगम् ।

उद्यत्संचारणे नृणां तत्स्यात् पार्श्वनिकुट्टनम् ॥५४४॥

इति पार्श्वनिकुट्टनम् [५२]

संविधार्योड्डितां[9] चारीं[10] तत्र डोलाकरौ[11] वथ ।

अ[12]न्तर्नतेन तनुषा[13] भ्राम्येते चक्रवद् यदा ॥५४५॥

तच्चक्रमण्डलं प्रोक्तं स्ववेंश्यानां परिक्रमे ।

इति चक्रमण्डलम् [५३]

चा[14]र्यौ ब[15]द्धास्थितावर्त्ते क्रमात् कृत्वा ततः परम् ॥५४६॥

वियायोरोमण्डलिनौ स्यादुरोमण्डलं तथा ।

इत्युरोमण्डलम् [५४]

चा[16]षगत्याख्यया चार्या करौ डोलाह्वयौ क्रमात् ॥५४७॥

---

१. द०
२. ०थां०
३. ०ष्ठ०
४. ०फा०
५. ०था
६. ०का
७. श्र०
८. ०वि०
९. ०योत्थिता०
१०. ०रे
११. ०रत्वह
१२. आन्तर्ग०
१३. ०ना भ्राम्यते
१४ स्थायि
१५. ०द्ध्वा स्थितादर्भा क्र०
१६. छा०

आवेष्टितोद्वेष्टिताभ्यां[1]मङ्गेन सह [2]डोलितौ ।
यदावर्त्तमिति प्रोक्तं सन्त्रा[3]सादपसर्पणे* ।।५४८।।

इत्यावर्त्तनम् [५५]

दक्षिणोऽ[4]ग्रे पल्लवोऽ[5]न्यः स्वपार्श्वे तूर्ध्वपल्लवः ।
दक्षिणश्चरणस्तत्र स्यादग्र[6]तलसंचरः ।।५४९।।
तत्कुंचितं स्यादमरा[7]भिनये संभ्रमोन्नतौ ।

इति कुंचितम् [५६]

ऊर्ध्वजानुस्ततो डोला[8]पादो डोलाकरौ यदा[9] ।।५५०।।
डोलापादं तदाख्यातं श्रवणे स्यात् परोन्नतेः[10] ।

इति डोलापा[11]दम् [५७]

विधाय चारी[12]माक्षिप्तां[13] तदंघ्रि च करावपि[14] ।।५५१।।
व्यावृत्तिपरिवृत्तिभ्यां भ्रमरीमाचरेत्ततः ।
भवेतां[15] रेचितौ हस्तौ विवृत्तं[16] विस्मये मतम् ।।५५२।।

इति विवृत्त[17]म् [५८]

सूच्यंघ्रिः[18] केवलं[19]स्त्वन्यपादपार्ष्णिगतो भवेत् ।
स्वस्तिकत्वेन पूर्वो[20]क्तवर्त्तनाभ्यां त्रिरुन्नयेत् ।।५५३।।

---

* तुलनीयम्—
उद्वेष्टेनापवेष्टेन यत्र डोलाभिधौ करौ ।।
चारी चापगतिस्तत्स्यादावर्त्तं भयसर्पणे ।।—(सं० र० ७।६७३-६७४)

१. ०भ्यां अं०
२. तो०
३. ०तोषाद०
४. ०णो ग्रे
५. ०वोन्या स्वपा०
६. ०त्र कल०
७. ०रा जनयोस्सं०
८. ०लं पादडो०
९. ०था
१०. ०ते
११. ०दः
१२. ०रि०
१३. ०प्तं
१४. न०
१५. कथितौ
१६. ०त्यं
१७. ०त्तिः
१८. ०घ्रिके०
१९. ०लं त्व०
२०. ०र्वेकव०

ततो बद्धाभिधां चारीं ततो पाणी तु रेचयेत् ।
विनिवृ[1]त्ताभिधं तत्स्याद[2]मन्दपरिवर्त्तने ॥५५४॥

इति विनिवृत्तम् [५९]

पार्श्वक्रान्ताह्वयां चारीं कृत्वा पादानुवर्त्ति[3]नौ ।
करौ यदि कृतौ स्यातां तत्पार्श्वक्रान्तमुच्यते ॥५५५॥
प्रयोज्यं भीम[4]सेनस्य भीषणोग्रपरिक्रमे ।

इति पार्श्वक्रान्तम् [६०]

एकांघ्रिपार्श्वदेशेन सूचिकुंचितमाचरेत् ॥५५६॥
उद्वाहितमुरीकुर्वत्[5] कटकामुखमध्यमां[6] ।
करोति भा[7]ले तिलकं यथावत् स्यान्निशुम्भितम् ॥५५७॥
केचिदाहुर्वृश्चिकं[8] हि नियोज्यश्चन्द्रशेखरः ।
नन्वत्र कटकावक्त्रैः[10] कथं तिलककृद् भवेत् ॥५५८॥
न स्यात्तद्द्वयेऽप्येषा क्रिया कथमुदीरिता ।
सत्यं पुरा महेशस्तु हत्वा दुष्टं गुहासुरम् ॥५५९॥
[11]सत्रिशूलकरेणैव ललाटे रुधिरं दधत् ।
सानन्दमकरोन्नृत्तं तस्मात्तत्प्रभुसम्मतम् ॥५६०॥
तथाभि[12]योज्यं स्यादस्मिन् कर्मण्ये[13]न्यत्र नैव तत् ।

इति निशुम्भितम् [६१]

स्थित्वा वृश्चिकपादेन भ्र[14]मदङ्घ्रिर्भवेत्तथा ॥५६१॥

---

१. ०त्तपदा०
२. ०दान०
३. ०र्त्तं०
४. ०वनेन्यस्य
५. ०न्
६. ०माम्
७. पाते
८. ०कुंचि०
९. ०कांघ्रि
१०. ०क्त्र
११. स त्रि०
१२. ०पि यो०
१३. ० ण्यत्र तु नै०
१४. भृशादङ्घ्रो भ०

तथा वृश्चिकपादस्य गुल्फभ्रमणमाचरेत्[1] ।
विद्युद्भ्रान्तं तदा[2] प्रोक्तमुद्धतानां[3] परिक्रमे ॥५६२॥

इति विद्युद्भ्रान्तम् [६१]

क्षिपेदपक्रान्तचारिपादमग्रे[4] करौ ततः ।
स्वप्रयोगवशस्थौ चेदतिक्रान्तं तदोदितम् ॥५६३॥

इत्यतिक्रान्तम् [६२]

विद्युद्भ्रान्तां विधायादौ दण्डपादां[5] ततः परम् ।
उद्वेष्टितापवेष्टाभ्यां[6] करौ कार्यवशानुगौ ॥५५४॥

तथा सहचरौ स्यातां चालितौ पार्श्वयोस्ततः ।
पुनः पश्चाच्च विक्षिप्तमुद्धतक्रमणे[7] भवेत् ॥५६५॥

इति विक्षिप्तम् [६३]

दक्षिणं वा यथा वामं युगपच्चरणं करम् ।
क्षिपेत्तदापरं पाणिं[8] रेचयेत्तद् विवर्तनम् ॥५६६॥

प्रयोज्यं बालवेश्यानां विलासे वर्णसंयुतम् ।

इति विवर्तितम् [६४]

चौर्या[9] डोलाख्यया स्थित्वा कर्णे[10] करिकरो भवेत्॥५६७॥

सव्यस्तदा क्रियाविष्टो गजे[11] विक्रीडितं तदा ।
गजविक्रमणे तत्स्यात् क्रियायोगाज्जनेष्वपि ॥५६८॥

इति गजविक्रीडितम् [६५]

---

१. ०भ०
२. ०था
३. ०तं उद्ध०
४. ०ग्रक०
५. ०नाथां
६. ०ष्टाभ्यामवेष्टाभ्यां
७. ०ति०
८. किं च ये तद्०
९. स जौर्या
१०. ०र्त्री
११. ०दविक्रमणं

विधाय पादं सूच्याख्यं[1] हृदये कटकामुखम् ।
*नतं पाश्वं तदा वामं गण्डस्थे[2]मलपल्लवम् ॥५६९॥

स्थितं तद् गण्डसूचि स्यादन्ये गण्डस्थले पुनः ।
सूचिपादं परे[3] प्राहुस्तदा सूचीमुखौ करौ ॥५७०॥

अत्रादिकारणं गण्डस्थलालंकारसूचनम्[4] ।

इति गण्डसूचि [६६]

आदौ लताकरौ पश्चाद्[5]चितौ च ततः परम् ॥५७१॥

विधाय वृश्चिकं पादं समुन्नततरं[6] तथा ।
गरुडप्लुतमित्युक्तं गमने स्याद् गरुत्मतः ॥५७२॥

इति गरुडप्लुतम् [६७]

अतिक्रान्तां[7][थ]वा दण्डपादचारी भवेत्तदा ।
क्षिप्रमुत्क्षिप्य पार्ष्ण्यंघ्रि[8] तद्धस्तसन्निपाततः ॥५७३॥

शब्दः[9], करणकं तत्स्यात्त[10]लसंस्फोटितौ[11]द्वयम् ।
गजरादिप्रबन्धानां देशजानान्तु नर्त्तने ॥५७४॥

---

* सन्दर्भेऽस्मिन्नसावंशोऽवलोकनीयः—
सूचीपादो नतं पाश्वं वक्षःस्थः खटकामुखः ।
वामोऽलपल्लवो गण्डक्षेत्रे चेद् गण्डसूचि तत् ॥
क्षेत्रेऽत्र केचिदिच्छन्ति सूचीपादं परे पुनः ।
सूचीमुखं नृत्तहस्तमन्येऽभिनयहस्तकम् ॥
करणेनाभिनेतव्या कपोलालङ्कृतिस्तदा । (सं० र० ७।६९०-६९२)

१. ०ख्यहृ०
२. ०था किल प०
३. ०रं कुर्यात्त०
४. ०क०
५. ०दौ०
६. ०रस्त०
७. ०ते
८. ०योंघ्रि तदोत्तस्स०
९. ०दौ
१०. ०करं सं०
११. ०का०

इति तलसंस्फोटितम् [६८]

स्वाभाविकोरुपृष्ठाङ्घ्रिः[1] [2] परं सूचीकृतं न्यसेत् ।
मुष्टि[3]र्वक्षस्यार्धचन्द्रैः[4] कट्यां स्यात्पा[5]र्श्वजानु तत् ॥५७५॥
द्वन्द्व-युद्धे[6] [नियुद्धे च] भूषणे [?] विनियोजयेत् ।

इति पार्श्वजानु [६९]

पृ[7]ष्ठे द्विताल-भूलग्नां[8]गुष्ठोऽङ्घ्रिः स्याल्लताकरौ ॥५७६॥
योज्यं गृ[9]ध्रावलीनं तद् वीरपक्ष्याहवे बुधैः ।

इति गृ[10]ध्रावलीनम् [७०]

कुंचितं[11] क्षिप्रमेकांघ्रिं स्वपार्श्वे पा[12]तयेत्परम् ।।५७७॥
उ[13]त्क्षिप्य धरणीं[14] हित्वा न्यसेत्तद्भागजं[15] करम् ।
हृदये कटकावक्त्रं[16] परं शिरसि प[17]ल्लवम् ।।५७८॥
भवेत्तथान्यभागे च सूचि स्याद् विस्मये मतम् ।

इति सूचि [७१]

यद्येकभागरचितं सूचि चेदर्ध[18]सूचि तत् ।।५७९॥

[इत्यर्धसूचि—७२]

पक्षवञ्चितकं पूर्वमर्धचन्द्रं ततः परम् ।
कट्यां विधाय कट[19]कामुखो वक्षोऽग्रगो भवेत् ।।५८०॥

---

१. स्वजाविको०
२. ०घ्रिप०
३. ०ष्टिप०
४. ०द्रं
५. ०ज्जानुपार्श्वं
६. ०द्धे ह
७. दृष्टिद्वि०
८. नां गुष्ठोंघ्रि
९. गु०
१०. गुध्रावलिन०
११. ०तो
१२. वाथवा प०
१३. धरण्यां
१४. भि०
१५. ०जःकरः०
१६. ०क्रं
१७. वल्लघु
१८. ०र्थं०
१९. ०टि०

परपार्ष्णिमुखोऽन्यांघ्रिस्सूचित्वेन यदा कदा ।
सूचिविद्धं तदाऽश्लिष्टमन्या[1]सक्तस्वनायकम् ॥५८१॥
शशिमुख्यां तदा श्रुत्वा स्थितायां विनियोजयेत् ।

इति सूचीविद्धम् [७३]

विधाय प्रथमं चा[2]रीं हरिणप्लुतका[3]भिधाम् ॥५८२॥
तदा डोलाकरौ कुर्यात्ततश्शीघ्रं मुखात्पुनः ।
रेचितौ[4] कटकावक्त्रौ[5] यथार्थं[6] हरिणप्लुतम् ॥५८३॥
योज्यं मृगप्लुतौ[7] सिंह-व्याघ्रादीनां तु लंघने ।

इति हरिणप्लुतम् [७४]

ऊर्ध्वमण्डलिनौ कुर्वन् हस्तौ सूच्यंघ्रिणा तथा ॥५८४॥
बद्धचारीयुतेनाथ[8] चारी[9] भ्रमरिका यदि ।
क्रियते, परिवृ[10]त्तं तत्स्याल्लयान्तरयोजने ॥५८५॥

इति परिवृ[11]त्तम् [७५]

कृत्वा नूपुरपादा[12]ख्यां दण्डपादां ततः परम् ।
सत्वरं करमुत्क्षिप्य स्थितं तद् दण्डपादकम् ॥५८६॥
सम्भ्रमाद्[13] द्रुतनृत्ये च परिहासे नियुज्यते ।

इति दण्डपाद[14]म् [७६]

स्वपार्श्वयोः करौ रेच्यौ[15] यत्किंचित्सूचिकां[16]घ्रिणा ॥५८७॥

---

१. ०य०
२. जारिं०
३. ०कं श्रुतम्
४. ०ता०
५. ०क्रौ
६. ०र्थं०
७. ०ता०
८. ०द्धाचारे यु०
९. ०रिभ्र०
१०. ०कृत्यं
११. ०वृत्तिः
१२. ०भ्यां
१३. ०द्रुत्यनित्येन परं हा०
१४. ०दः
१५. ०य
१६. ०ता०

वृश्चिकेन भ्रमरिका [1]भृंगादिभ्रमणेऽसकृत् ।
क्रियते यत्र तत्प्रोक्तं मयूरललिताह्वयम् ॥५८८॥
मयूरनर्त्तने योज्यं भवेद् भिल्लकशोभिते ।

इति मयूरललितम् [७७]

डोलै[2]पादाख्यया चार्या स्थितं पादं परांघ्रिणा ॥५८९॥
संयोज्य शीघ्रमुत्[3]प्लुत्या तालान्ते भ्रमरीं[4] तथा ।
❀
करोति यत्र तत्प्रेंखोलितमित्यभिधीयते ॥५९०॥

इति प्रेंखोलितम् [७८]

चारीं मृगप्लुतामादौ कृत्वा यत्र[5] करद्वये ।
स्वस्तिकत्वं विधायाग्रे तालमात्रं व्रजन् करौ ॥५९१॥
डोलौ[6] कुर्यात् सन्न[7]तं तद्वीरगमने मतम् ।

इति सन्नतम् [७९]

स्थितैकपादादन्याङ्घ्रिः[8] पूर्वं पश्चात् पतत्यसौ ॥५९२॥
ईषत्पार्श्वांचितौ हस्तौ यदा तत्सर्पितं मतम् ।
परभागेऽपि तद्वि[9]ज्ञैरुन्नतक्रमणे मतम् ॥५९३॥

इति सर्पितम् [८०]

कृत्वादौ कट[10]कावक्त्रं वामं वक्षसि दक्षिणम् ।
कर्ण[11]स्थं त्रिपताकत्वात्तदा सव्यां[12]घ्रिरे[13]ग्रतः ॥५९४॥

❀ मूलेऽत्र 'विधायाग्रे तालमात्रम्' इति निरर्थकमेत्र लिखितमस्ति ।

१. शृङ्गारभ्रमणे च तत्
२. ०ल०
३. ०द्भुत्यां तालाले
४. ०री
५.० स्यां वरद्वयम्
६. ०ला०
७. ०न्नि०
८. ०घ्रिपर्वं
९. ०द्भिद्यादुन्न०
१०. ०टि०
११. ०णस्थ
१२. ०ज्यां०
१३. ०रंघ्रितः

भूत्वा निष्क्रम्यते यत्र करिहस्तं तदिष्यते ।

इति करिहस्तम् [८२]

अग्रपादः स्वपार्श्वे स्याद्रेच्यमाने करे ततः[1] ॥५९५॥

[2]तद्दिक्स्थोऽन्यः क्रमेणाग्रे धरणिं घर्षयन्[3] व्रजेत् ।

शनैः शनैर्लतापाणिरन्य[4]ः स्यात् तत्प्रसर्पितम्[5] ॥५९६॥

गगनस्थलसंचारे[6] द्योतव्यञ्च विचक्षणैः ।

इति प्रसर्पितम् [८३]

आदौ बद्धामपक्रान्तां[7] क्रमात् कृत्वा करौ[8] तया[9] ॥५९७॥

अभिनेयवं[10]शौ स्याता[11]मपक्रान्तं तदुच्यते ।

इत्यपक्रान्तम् [८४]

पताकौ[12] दोलितौ कृत्वा परिवर्तनतः करौ ॥५९८॥

ललाटप्रान्तपर्यन्तमानीय[13]ांसोर्ध्वरेचि[14]तौ ।

सकृत्संमुखतां प्राप्य नितम्बौ भवतां यदि ॥५९९॥

अग्रे नितम्बशी[15]र्षस्थौ तन्नितम्बं जगुर्बुधाः ।

इति नितम्बम् [८५]

डोलापादगतागत्योरनुगो हंसपक्ष[16]कः ॥६००॥

क[17][रस्त]द्वत् परांगे च स्खलनं तदुदीरितम् ।

इति स्खलनम् [८६]

विधायालातचारीं तु[18] पुरः पादतलं घनम् ॥६०१॥

---

१. ०तः
२. तद्वित्यौर्धरकेनाग्रे
३. घट्टयन्
४. ०यस्यां
५. ०सारितम्
६. ०रं धौतार्यञ्च
७. वदाम०
८. ०तं
९. ०ता तरा
१०. ०दशा०
११. ०तां अप०
१२. ०कातोरितौ
१३. ०यादो०
१४. ०च०
१५. ०निर्षाग्रौ
१६. ०क्षितः०
१७. प''''द्यत्
१८. ०ताद''''पार्श्वतलंघनः

द्रुतं न्यस्य तथै[1]वान्यभागे यदि भवेत्तदा ।
सिंहविक्रीडितं तत्स्याद् यथार्थो[2]भिनये मतम् ॥६०२॥

इति सिंहविक्रीडितम् [८७]

विधाय वृश्चिकं पादं पद्मकोशौ करौ क्रमात् ।
[3]ऊर्णनाभौ करौ स्यातां तथा पार्श्वान्तरे यदि ॥६०३॥
तत्सिंहाकर्षि[4]तं प्रोक्तं सिंहाभिनयने मतम् ।

इति सिंहाकर्षितम् [८८]

स्यादादौ जनिता चारी[5] वामो वक्षसि पल्लवः ॥६०४॥
स्यात्परो[6]ऽरालको भाले करावभिमुखांगुली[7] ।
क्रमादुद्वेष्टितत्वेन व्यावृ[8]त्त्या पार्श्वमागतौ ॥६०५॥
परावृ[9]त्त्योद्वे[10]ष्टितेन वक्षः[11]प्रेत्य पुरोमुखौ ।
हृताव[12]पि तदा प्रोक्तमवहित्थं पुरातनैः ॥६०६॥
अति गोप्यतरे वाक्ये[13] सिंहोरुव्याघ्रयोरपि ।
एके[14]ऽवहित्थहस्तेन भवेदिति वदन्ति च ॥६०७॥
स[15] च्चिन्तादुर्बलत्वेन विशेषा[16]च्च निरूप्यते ।

इत्यव[17]हित्थम् [८९]

पुरोभागे करौ[18] यत्र कटकामुखसंज्ञकौ ॥६०८॥

---

१. दै०
२. ०र्हा०
३. पू०
४. ०र्ष०
५. ०रे०
६. ०रो रालताल स्यात्क०
७. ०लिः
८. ०कु०
९. ०कृ०
१०. ०पदिष्टेन
११. प्र०
१२. ०या०
१३. ०न्ये सिंहोरोव्या०
१४. ०केव०
१५. कच्०
१६. ०षश्चेन्नि०
१७. ०वक्षम्
१८. ०रो

मण्डलस्थानकौ स्यातां यदा तत्स्यान्निवेशितम् ।
सुखस्थिते सुखासीने संयोज्यं[1] [ग]जवाहने ।।६०९।।

इति निवेशितम्* [९०]

एडे[2]काक्रीडितां चारीं कृत्वाऽथ कटकामुखम् ।
विततं सं[3]न्नतं गात्रमीषच्चलनकृद् यदि ।।६१०।।
तदेडे[4]काक्रीडिताख्यं करणं कृपणे[5] मतम् ।

इत्येडे[6]काक्रीडितम् [९१]

प्रथमं जनितां चारीं कृत्वा मुष्टिमु[7]रःस्थले ।।६११।।
[8]परो लताकरो यत्र जायते जनितं[9] तदा ।

इति जनितम् [९२]

[†आक्षिप्तां वामतश्चारीं व्यावृत्तपरिवर्तितम् ।।६१२।।
करं कृत्वा नते पार्श्वे दक्षिणेऽरालतां नयेत् ।]
विनयातिशये[10] चोपसृतं तद्धि नियुज्यते ।।६१३।।

इत्यपसृ[11]तम् [९३]

कुर्वन् डोलापादचारी[12]मादौ संघट्टि[13]तौ करौ ।
पताकौ[14] रेचयित्वाथ वैष्णवं स्थानमाचरेत् ।।६१४।।

---

* —नाट्यशास्त्रे ना० शा० ४।१५६ संगीतरत्नाकरे (सं० र० ७।७२४) ~~च~~ निवेशितस्थले—निवेशाख्यं करणं वर्णितम् ।

† सङ्गृहीतमेतत् (सं० र० ७.७२७)

१ ०ज्यां''
२. ०ल०
३. सततं
४. ०ल०
५. ०णैर्मं०
६. ०त०
७. ०रस्थ०
८. शिरोलकौ करो
९. ०ता तथा
१०. ०येनोपश्रुतं
११. ०श्रु०
१२. ०र०
१३. ०टकाक०
१४. ०कं

कटिस्थो दक्षिणो वामो रेचितश्चेद् यदा[1] तदा ।
तलसंघट्टितं प्रोक्तं *[2]कृपायां विनियुज्यते ॥६१५॥

इति तलसंघट्टितम् [९४]

पूर्वं प्रसार्य पादौ च करौ च युगपत्तदा ।
समपादतया पादौ चतुरश्रतया करौ ॥६१६॥
कृत्वान्तरभ्रमरिकां य[3]द्युद्वृत्तं भवेत्तदा ।
तज्झञ्झामारुते वह्निशिखायां विनियुज्यते ॥६१७॥

इत्युद्वृ[4]त्तम् [९५]

कुंचितं पादमुत्क्षिप्य प्रसार्य च करौ क्रमात् ।
[5]भ्रमतः पार्श्वतश्चाग्रे मतं तत्करणं बुधैः[6] ॥६१८॥
विष्णुक्रान्तमिदं विष्णुक्रमणे विनियोजयेत् ।

इति विष्णुक्रान्त[7]म् [९६]

एकस्तु रेचितो[8] हस्तः परो वक्षसि पल्लवः ॥६१९॥
लोलिताख्यं शिरस्तत्र शैथिल्यं याति पार्श्वयोः ।
यत्र स्याद् वैष्णवं स्थानं लोलितं तदुदिष्यते ॥६२०॥

इति लोलितम् [९७]

पश्चात् पश्चाद्द्वित्रिपादं पादयोः स्वस्तिकस्ततः ।
अपसर्पन् यदा शीर्षं परिवाहितकं, करौ[10] ॥६२१॥

---

* पाठशोधनाधारस्तु—अनुकम्पाविधाने स्यात्तलसङ्घट्टितं तदा ।
—(सं० र० ७।७३०)

१. ०था तथा
२. प्र०
३. ०द्यद्भ्रुक्तं
४. ०द्भ्रुक्तम्
५. भ्रदत्पार्श्वे प्रदग्रेभ्यस्स्थितं
६. ०धः
७. ०तकरणम्
८. ०तोधस्तस्स्थिरो
९. ०रि०
१०. ०णः

डोलायितौ यदा स्यातां मदस्खलितकं[1] तदा ।
स्यान्मध्यम[म]दे चैतत्करणं परिभाषितम्[2] ॥६२२॥
इति मंदस्खलितम्[3] [९८]
ऊरुपृष्ठेऽलपद्माख्यकरो[4] निक्षिप्यते यदा ।
सम्भ्रान्तं करणं तत्स्यादुत्सवानन्दविक्रमे[5][6] ॥६२३॥
इति सम्भ्रान्तम् [९९]
निरस्य दक्षिणो[7] हस्तो वामं किंचिन्मृजेत्तथा[8] ।
दक्षिणो[9] नृत्तसूच्याख्यो[10] वामपादो निकुट्टितः[11] ॥६२४॥
हृदये वामपाणिः स्यादेवमंगान्तरात्परम् ।
सूचिं[12] कृत्वा दक्षिणांघ्रिमसव्यमलपल्लवम्[13] ॥६२५॥
एवं द्वित्रावृत्तियुतं[14] तद्विष्कम्भमुदीरितम्[15] ।
इति विष्कम्भम्[16] [१००]
पादमुद्घट्टितं कृत्वा पार्श्वं सन्नतमाचरेत् ॥६२६॥
उत्तानितौ[17] करावङ्गोद्वृत्तमुद्घट्टितं[18] मतम् ।
महाहासे महोल्लासे[19] मधुमत्ते नियुज्यते ॥६२७॥
इत्युद्घट्टितम् [१०१]
विधाय शकटास्याख्यां[20] चारीं तस्यांघ्रिणा सह ।
प्रसार्य पाणिमपरं वक्षःस्थं[21] कटकामुखम् ॥६२८॥

---

१. ०यावितकं तथा
२. ०वि०
३. ०स्वान्तम्
४. ०ठाल०
५. ०से०
६. ०चयं
७. ०णं यानं रामं
८. ०द्रुजेकधा
९. ०णैर्नृ०
१०. ०स्या
११. ०तम्
१२. ०चि०
१३. ०तत्वागम०
१४. ०क्रुत्तिद्रतं
१५. ०न्निष्कं भ०
१६. ०भः
१७. ०ते
१८. ०तंगं क्रुत्तमु०
१९. ०नो०
२०. ०वाख्या शारिं०
२१. ०क्षस्थं

[1]कृत्वाथ [श]कटास्[2]यं स्यात्तदङ्गं बालखेलने ।
इति शकटास्यम्[3] [१०२]
[4]ऊरूद्वृत्ताह्वयां चारीं कृत्वा स्वस्वोरुपृष्ठयोः ॥६२९॥
अरालकटकावक्त्रौ विधीयेते यदा[5] तदा ।
ऊरूद्वृत्तमिति प्रोक्त[6]मीर्ष्यायां प्रणयाहवे[7] ॥६३०॥
इत्यूरू[8]द्वृत्तम् [१०३]
[9]अलाताख्या भवेच्चारी[10] स्यातां हस्तौ तु रेचितौ[11] ।
व्यावर्त्य[ते][12]ह्युभौ [13]चालपल्लवौ[14] कुंचितौ यदा ॥६३१॥
[15]वृषभक्रीडितं तत्स्यात्तस्मिन्नेवाभिनीयते ।
इति [16]वृषभक्रीडितम् [१०४]
करद्वयं रेचितं स्यात्परिवाहितकं शिरः ॥६३२॥
अविहाय स्वस्तिकत्वं पादावपसृ[17]तौ तदा ।
नागापसर्पितं तत्स्यात् प्रयोज्यं[18] तरुणे मदे ॥६३३॥
इति नागापसर्पित[19]म् [१०६]
उत्क्षेपण-विनिक्षेपौ पादस्य[20] स्तो नतोन्नतौ ।
त्रिपताकौ करौ तद्वद्[21]ध्वांगं नतोन्नतम् ॥६३४॥

१. कुर्यादथ
२. ०ज्यं
३. ०ख्यम्
४. हिरु०
५. ०था तथा
६. ०तं ईर्षयो
७. ०रेः
८. ०रु०
९. आलकाख्या
१०. ०रि
११. ०तम्
१२. द्यु०
१३. प्राप्य
१४. ०वाकुं०
१५. कृषचक्रेडि०
१६. कृषचक्री०
१७. ०हृ०
१८. ०यस्तरुणैर्मदे
१९. ०तकरणम्
२०. ०यास्तोन्यतो०
२१. ०दितदुन्नतो०

गंगावतरणं तत्स्यात्तत्कर्मणि नियोजयेत् ।
इति गंगावतरणम् [१०६]
चारीं[1] दिगन्तरालाख्यां[2] पार्श्वगेनांघ्रिणा व्रजन् ॥६३५॥
शकटास्याख्यया चार्या धुतेन शिरसा ततः ।
शोभते वीरदृष्ट्या यत्किंचिदुत्प्लुतिपूर्वकम् ॥६३६॥
कृष्णावतरणं तत्स्याल्लक्ष्मणार्येण भाषितम्[3] ।
इतिकृष्णावतरणम् [१०७]
❀अष्टाधिकशतं प्रोक्तं करणं करणाग्रिमैः[4] ॥६३७॥

इति करणमुदीर्य प्रायशश्शुद्धरूपं
जगदधिकृत-देशी[5]-तालभूसर्वसाम्यम् ।
वितरति दिशि दत्वा प्राक्प्रवृ[6]त्तोत्प्लुताद्यं[7]
करणमथ जयी[8]न्द्रो वागलंकारनाथः[9] ॥६३८॥
[इत्यष्टोत्तरशतं करणानि]

[अथ षट्त्रिंशदुत्प्लुतिकरणानि]
समपादौ [10]विधायादावुत्प्लुत्य धरणीतले ।
स्थितं यदांचितं तत्स्यादुत्प्लुतावेव योजयेत् ॥६३९॥
इत्यंचितम् [१]

❀ सङ्गीतरत्नाकरोक्तदिक्स्वस्तिकरेचकनिकुट्टके नाऽत्र संस्मृते, किन्तु तत्रानुक्तस्य कृष्णावतरणस्य व्याख्यानमिह वर्त्तते । अतः सङ्कलनेन सप्तोत्तरशतं करणानि चर्चितानि परिलभ्यन्ते ।

१. ०रिं
२. ०ख्यं
३. भू०
४. गणाः
५. ०शी ता०
६. ०कृतो०
७. ०कं
८. ०यी वा
९. ०गेवमकारिनाथः
१०. यदि कथमुत्प्लु०

[यत्][1]स्यादेकांघ्रिणा सूच्यं[2] तदेकचरणांचितम् ।
[इत्येकचरणांचितम्–२]

ऊरुलग्नैकपादत्वादुत्प्लुतं [3]भैरवांचितम् ॥६४०॥
[इति भैरवांचितम्–३]

उत्प्लुत्य समपादेन खेलन् [4]दण्ड इव स्थितिम् ।
करोति यत्तदा दण्डप्रमाणांचितकं भवेत् ॥६४१॥
इति दण्डप्रमाणांचितम्[5] [४]

उद्गतं स्वस्तिकांघ्रिभ्यां कर्तर्य[6]-चितकं भवेत् ।
इति कर्तर्य[7]-चितम् [५]

उत्प्लुत्याधोमुखो भूत्वा [8]पुरः पतनमात्रतः ॥६४२॥

कुक्कुटासनमादाय स्थितं चेत्तदलग्नकम् ।
अलग्नांते कृते कूर्मासने कूर्मा[9]लगं तदा ॥६४३॥
इति कूर्मालग्नम् [७]

कूर्मालगात् पतित्वाधः शीघ्रमुत्थाय निश्चलम् ।
समपादस्थितं [10]यत्तदूर्ध्वालगमुदीरितम् ॥६४४॥
इत्यूर्ध्वालगम् [८]

अलग्नं करणं कृत्वा निपत्य धरणीतले ।
नाभिं नभोमुखं कृत्वा श्रोणिस्पृष्टशिरो यदि ॥६४५॥

---

१. ···यिवैकां०
२. ०ये
३. भूरवाङ्घ्रि०
४. ०नग्रेऽधुना स्थितम्
५. ०तकरणम्
६. ०र्व्यं चितकं
७. ०र्याञ्चितकरणम्
८. घनः
९. ०र्मं०
१०. युक्तम्०

तदन्तरालगं प्रोक्तं नृत्तविद्याविचक्षणैः ।

इत्यन्तरालगम् [९]

भूमौ समांघ्रिणा स्थित्वा समुत्पत्य विवर्त्तनात् ॥६४६॥

तिर्यक् पतेद् यदा तत्स्याल्लोहडी लुठितं च तत् ।

इति लोहडी [१०]

तदेव स्वस्तिकांघ्रित्वात् कर्तरीलोहडी भवेत् ॥६४७॥

इति कर्तरीलोहडी [११]

एकांघ्रिणा तदेव स्यादेकपादाख्यलोहडी ।

इत्येकपादलोहडो [१२]

विष्णुसम्बन्धिनः स्थाने स्थित्वा पार्श्वोत्पतेद् भुवि ॥६४८॥

तद् दर्पसरणं प्रोक्तं करणं नाट्यवेदिभिः ।

इति दर्पसरणम् [१३]

तदेव धरणीनद्धं यदा स्याज्जलशायि तत् ॥६४९॥

इति जलशायिकरणम् [१४]

जलशायि ना [ग] बन्धासनं याति यदा तदा ।
करणं नागबन्धाख्यं वदन्ति भरतादयः ॥६५०॥

इति नागबन्धम् [१५]

भूलग्नसमपादेन भूलग्नेन च मौलिना ।
निवर्त्तनं च भजते चतुरश्रौ करौ तदा ॥६५१॥

---

१. पदं कराळंगं
२. ०पंक्य
३. ०डिप्रस्थिरं भवेत्
४. ०डि
५. वं भवेद्भु०
६. ०णकरणम्
७. ····बद्धा०
८. ०धः

कपालचूर्णनं तत्स्यादौ[1]त्प्लवं करणं मतम् ।
इति कपालचूर्णनम्[2] [१६]
कपालचूर्णनं प्रोक्तं विधाय [च] चलासनम्[3] ॥६५२॥

उद्वाहितमुरो यत्र नैतपृष्ठं[4] तदुच्यते ।
इदमेव परैः प्रोक्तमङ्कोलमिति सूरिभिः ॥६५३॥
इति नैतपृष्ठम्[5] [१७]

गत्वा त्रिविक्रमं तस्मादुत्प्लुत्यावर्त्य[6] मत्स्यवत्[7] ।
क्रियते वामपार्श्वेन तत्स्यान्मत्स्याख्यमुत्प्लुतम् ॥६५४॥
इति मत्स्यकरणम् ॥१८॥

यत्रालगाख्यकरणं[8] करमग्रे भुवि न्यसेत् ।
तदंगवर्तुलं गच्छेत्करस्पर्शनमुत्तमम् ॥६५५॥
इति करस्पर्शनम् [१९]

समपादादेकपादं सूचीं[9] कृत्वा खमुत्पतेत् ।
पुरःस्थित्वासनं तस्मादुत्तिष्ठति यत्तदा ॥६५६॥

एणप्लुतमिति प्रोक्तं यथार्थाभिनये मतम् ।
इत्येणप्लुतम् [२०]
उत्प्लुत्य तिर्यगेके[10]न पादेनानेन संस्थितम् ॥६५७॥
भजते यत्तदा तिर्यक्करणं कीर्तितं बुधैः ।
इति तिर्यक्करणम् [२१]
तदेव समपादेन तिर्यगुत्प्लुत्य संस्थितम् ॥६५८॥

---

१. ०च्छौण्डवं
२. ०र्णः
३. ०लनात्
४. नाकपृष्टं
५. नाकपृष्टम्
६. ०न०
७. ०र्त्यं०
८. चत्रं ल०
९. ०चोक्त०
१०. ०ते०

धरण्यां कुंचितं यत्तत्तिर्यगंचितमुच्यते ।
इति तिर्यगंचितम् [२२]

शिरोभ्रमरिकामेणप्लुतं कृत्वा ततःपरम् ॥६५९॥

कराभ्यामवनिं धृत्वा घनभ्रान्त्या पुनस्तदा[1] ।
उत्प्लुत्य स्वस्तिकत्वेन पार्श्वभूमौ तु पादयोः ॥६६०॥

करभाग्रस्थितिर्यत्र तत्तिर्यक्स्वस्तिकं मतम् ।
इति तिर्यक्स्वस्तिकम् [२३]

सूचिपादो भवेदन्ते[2] करणानां यदा तदा ॥६६१॥

समाद्यन्यतमा[3] सूची सूच्यन्तानि जगुर्बुधाः ।
इति सूच्यन्तानि [२४]

दक्षिणांघ्रितलाग्रेण[4] स्थित्वा वामांघ्रिकुंचनात् ॥६६२॥

या[5] स्यातप्रदक्षिणोद्वृत्ता सा बहिर्भ्रमरी[6] तदा ।
इति बहिर्भ्रमरी [२५]

प्रदक्षिणाव्युत्क्रमदान्तर्भ्रमरी[7] मता[8] बुधैः ॥६६३॥
इत्यन्तर्भमरी [२६]

विधाय मोटितं[9] स्थानं प्रदक्षिणवदाचरेत् ।
तदा छत्रभ्रमरिका[10] विख्याता भट्टतण्डुना ॥६६४॥
इति [च्छत्र]भ्रमरिका [२७]

---

१. घनस्तदा
२. ०द्दन्ति०
३. समताविषमासूचि०
४. ०कराग्रे०
५. सा
६. ०भ्र०
७. ससृवांक
८. ग०
९. ०दि०
१०. तत्र भ्र०

विधाय तिर्यक्चरणं भ्रामयेत् स्वस्तिकत्वतः ।
*तिरुपभ्रमरी सा स्यादित्याहुर्भरतादयः ॥६६५॥
इति तिरुपभ्रमरी [२८]
स्थित्वादौ वैष्णवस्थाने वामांघ्र्यग्रेण[1] च स्थिता ।
[2]देहकम्पनया सा स्यादलग्नभ्रमरी तदा ॥६६६॥
इत्यलगभ्रमरी [२९]
अर्ध[3] सूचिर्यदा वामावर्त्तभ्रमरी[4] चक्रवत् ।
सा[5] चक्रभ्रमरी ज्ञेया देश्यां दे[6]-शिविचक्षणैः ॥६६७॥
इति चक्रभ्रमरी [३०]
ऊ[7]र्ध्वाङ्गं भ्रमयेदष्टदिगन्तस्पृष्टमौलिवत् ।
समपादाश्रये[8] सा स्या†दुचितभ्रमरी भवेत् ॥६६८॥
इत्युचितभ्रमरो [३१]
अवष्टभ्य भुवं मौलिमध्येनोर्ध्वसमांघ्रिणा ।
भ्रमणं कुरुते या सा स्याच्छि[9]रोभ्रमरी तदा ॥६६९॥
इति शिरोभ्रमरी [३२]
एवं चतु[10]र्दिशासु स्याद् भ्रा[11]न्त्या दि[12]ग्भ्रमरी मता ।
इति दिग्भ्रमरी [३३]
अंचितं करणं पूर्वं विधायाथ ततः परम् ॥६७०॥

❋ सङ्गीतरत्नाकरे तु 'तिरिपभ्रमरी' लक्षिता (७।७७७)
† सङ्गीतरत्नाकरे 'उचितभ्रमरी' 'अञ्चितभ्रमरी' (७।७८०) **चेति** द्विधा पाठो वर्त्तते ।

१. ०ग्यग्रणचद्रितम्
२. वेदान्तहितया
३. ०र्थं०
४. ०रिच०
५. हच०
६. दिशि
७. घार्त्रा०
८. स
९. ०द्धोरो
१०. ०र्विधास्यत्वात्
११. श्रुत्वा
१२. दिभ्र०

भुजमेकं[1] भुवि न्यस्य पादाभ्यां लंघयेत् परम् ।
समपादांचितं तत्स्यात् फलश्रमविभासुरम् [?] ॥६७१॥

इति समपादांचितम् [३४]

चक्रवद् दक्षिणं पादं भ्रामयित्वा ततः परम् ।
वामजंघातलेनास्य किंचिदाचार्य कुंचितम्[2] ॥६७२॥
स्कन्धद्वयेन[3] धरणिं[4] संस्पृश्य परिवर्त्तयन् ।
चरणौ[5] कर्तरीयोगावुल्लोलौ[6] समाचरेत् ॥६७३॥
एवं कृतं[7] यदि तदा भ्रान्तपादांचितं मतम् ।

इति भ्रान्तपादांचितम् [३५]

उत्कटं स्थानकं कृत्वा भुव्यंचितभुजौ न्यसेत् ॥६७४॥
ततश्शोर्षे[8] कृताचारे व्योम्[9]न्यङ्गानि भवन्त्यथ ।
पाणिभ्यां धरणीं स्पृष्ट्वा भ्रमरीमाचरेत्ततः ॥६७५॥
क्रमात्परिदिगास्यत्वात् स्थित्वा स्थित्वा पुनर्भ्रमेत् ।
स्कन्धभ्रान्तं तदा प्रोक्तं नृत्तविद्भिर्बुधैरिदम् ॥६७७॥

इति स्कन्धभ्रान्तम् [३६]

एतेषां बहुभेदत्वं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
विदुषा लक्ष्मणार्येण ग्रन्थविस्तरभीरुणा ॥६७७॥
तान्येवालमितिप्रोक्तं पूर्वशास्त्रानुसारतः ।

॥इति षट्त्रिंशदुत्प्लुतिकरणा[10]नि॥

[अथाङ्गहार-निरूपणम्]

ब्रूमोऽङ्गहारान् बहुधा कीर्तितान् लघुमार्गतः ॥६७८॥

---

१. ०ति०
२. ०तात्
३. स्तम्भ०
४. तरणं
५. ०णे
६. ०लवालोल
७. ०ते
८. ०षं कृ०
९. ०म स्यान्नि भ०
१०. ०णम्

पूर्वरंगे प्रयोक्तव्योनैहिकामुष्मिकालयान्[1] ।
लक्ष्मणा नामयोगेन भरतादिमतागतान् ॥६७९॥

यः शिरः[2]प्रमुखादीनां प्रत्यं[3]गोपांगयोगतः ।
हारवद् दृश्यते सोऽपि मातृकादिसमूहवान् ॥६८०॥

तस्मादसावंगहार इत्युक्तः पूर्वसूरिभिः ।
अनङ्गहारहारत्वं प्रतिपाद्यरसे विदुः ॥६८१॥

तथा चेदंगहारस्य गौणनाम न विद्यते ।
मातृकाख्यो[4]ऽगहारः स्यात् करणद्वययोगतः ॥६८२॥

त्रिभिः कलापो विज्ञेयश्चतुर्भिः खण्डको भवेत् ।
संघा[5]तः पंचभिः स्यादित्येवं संघविशेषतः ॥६८३॥

भवन्ति बहुधा तस्मादि[6]यत्ता यदि तद् वृथा ।
युग्मै[7]त्रिसंख्यया ब्रूमो रेचकैः[करणैः ?]परिपूरितान् ॥६८४॥

¶स्थिरहस्तोऽथ पर्यस्तस्सूचिविद्धो[8]ऽपराजितः ।
वैशाखरेचि[9]तः पार्श्व[10]स्वस्तिको[11] भ्रमरो[12]ऽपरः ॥६८५॥

आ[13]क्षिप्तकः परिच्छिन्नो[14] मदाद्विलसितस्ततः ।
आली[15]-ढाच्छुरितौ पार्श्वच्छे[16]दसंज्ञो[17]ऽपसर्पितः ॥६८६॥

¶ प्रायेणाऽत्र अक्षरशः सङ्गीतरत्नाकरस्यानुकरणं वर्त्तते (७।७९४-७९९)

१. ०व्या नै०
२. ०र०
३. कृत्य०
४. ०याङ्गहारस्य
५. ०सू०
६. ०दियं भा
७. ०मोजसं०
८. ०धो प०
९. ०जि०
१०. ०वः
११. ०का०
१२. ०रो प
१३. उत्०
१४. ०नः
१५. ०पीडारचिता०
१६. ०भे०
१७. ०ज्ञासस०

मत्तो[1]क्रीडस्तथा[2] विद्युद्भ्रान्तोऽमी षोडशोदिताः ।
एते[3] स्युश्चतुरश्रस्य मानेन परिपूरिता:[4] ॥६८७॥
*विष्कम्भाप[5]सृ[तो मत्तस्खलि]तो गतिमं[6]डलः ।
अपविद्धश्च विष्कम्भो[7] द्घट्टिताक्षिप्तरेचिताः[8] ॥६८८॥
रेचितो[9]ऽ[10]-र्धनिकुट्टश्च [11]वृश्चिकाप[12]सृतस्ततः ।
अ[13]लातकः परावृत्तः परिवृ[14]त्तादिरेचितः ॥६८९॥
उद्वृत्तश्चाऽथ[15] सम्भ्रान्त[16]-संज्ञः[17] स्वस्तिकरेचितः ।
षोडशेति त्र्य[18]श्रमाना द्वात्रिंशदु[19]भये मताः ॥६९०।
करणानां क्रमाभावाद्[20]-नन्तास्त्वङ्गहारकाः ।
द्वात्रिंशदेव तेषूक्ता लोकांगविनियोगतः ॥६९१॥
एकेन गुरुकालेन प्रत्येकं करणं नटैः ।
कर्तव्यं सम्प्रदायेन लक्ष्मणार्यनिरूपितम् । ६९२॥
पूर्वलीनं समनखं [21]ऽयंसितं चा[22]ऽत्र विच्युतौ ।
करौ स्थित्वा स्थितालीढा[23]त् प्रत्यालीढं व्रजेत्तदा ॥६९३।

---

* पाठाधारस्तु—'विष्कम्भापसृतो मत्तस्खलितो गतिमण्डलः ।' (सं० र० ७।७९७)

१. ०त्तः
२. ०थाविद्या भ्रा०
३. ०तेभ्यश्च०
४. ०ता
५. ०त्रसौ…
६. ०मन्ता….
७. ०विष्कम्भ०
८. ०भो गटिता०
९. ०ता
१०. ०तोर्ध्वनि०
११. प्र०
१२. ०प्रच्युत०
१३. विलातकवराप्रीतः
१४. ०प्रत्ता०
१५. ०नलभ्रा०
१६. ०तस्०
१७. ०ज्ञा०
१८. त्र्यश्यामा नाट्वा
१९. ०त् चतुरश्रकैः
२०. ०दवतास्वङ्गकारकाः
२१. त्यंसि०
२२. पातविच्युता
२३. ०ढा प्र०

निकुट्टकोरुद्[1]वृत्ता[2]ख्य[3]स्वस्तिकाक्षिप्तकान्यथ ।
नितम्बं[4] कटिहस्तं[5] च कटिभिन्नमितिक्रमात् ॥६९४॥
करणैः[6] स्थिरहस्तः[7] स्याद् दशभिर्मुनिसंमतः[8] ।
अंगहारेषु सर्वेषु प्र*त्यालीढं प्रयत्नतः ॥६९५॥
प्रथमं का[10]र्यमित्येवं प्राहुः केचिन्मुनीश्वराः ।

इति स्थिरहस्तः [१]

तले[11] पुष्पपुटं पूर्व[12]मपविद्धं च [व]र्त्ति[13]तम् ॥६९६॥
निकुट्टकोरु[14]द्वृत्ताख्[15]याक्षि[16]प्तोरोमंडला[17]-न्यथ ।
निर्त[18]म्बं करिहस्तं च कटिभिन्नमिति क्रमात् ॥६९७॥
सं [ख्यातैः] करणैरेभिः प्रोक्तः पर्यस्तको बुधैः ।

इति पर्यस्तकः [२]

अर्ध[19] सूच्यथ[20] विक्षिप्तमावर्त्तं [च निकुट्ट]क[21]म् ॥६९८॥
ऊरूद्वृत्तम[22]थाक्षिप्तमुरोमंडलसंज्ञकम् ।
करिहस्तं[23] कटीभिन्नं नवभिः करणैरिति ॥६९९॥

---

* सङ्गीतरत्नाकरे तु 'प्रत्यालीढान्तमादितः' इति पाठो वर्त्तते । (७।८०५)

१. ०कुटको०
२. ०रुद्वृ०
३. ०त्तकाख्या
४. ०ब०
५. ०टि नस्त०
६. ०णे
७. ०तस्य
८. ०तम्
९. गर्वे०
१०. काव्य०
११. ०ले पु०
१२. ०वँ अपविद्धश्च
१३. ....तिनम्
१४. ०रु०
१५. ख्यात्०
१६. ०क्षीरो म०
१७. ०ला न्यथ
१८. ०कुम्भक०
१९. ०र्थं०
२०. ०याप्र वि०
२१. ०नम्
२२. ०पदाक्षि०
२३. ०त०

सूचिविद्ध इति प्रोक्तोऽ[1]ङ्गहारो भरतादिभिः ।

इति सूचिविद्धः[2] [३]

दण्डपादं[3] [4]व्यंसितं च प्रसर्पितकसंज्ञितम्[5] ॥७००॥

निकुट्टार्धं[6] निकुट्टं[7] चाक्षिप्तोरोमंडले तथा ।

करिहस्तं[8] कटीभिन्नमिति [लक्ष्मापराजिते] ॥७०१॥

[करणैर्नव–] भिर्युक्तमुक्तं ताण्डववेदिभिः ।

इत्यपराजितः[9] [४]

वैशाखरेचितं द्वाभ्यां[10] मंगाभ्या[मथ नूपुरम्] ॥७०२॥

[भुजंगत्रासितो] न्मत्तमंडलस्वस्तिकान्यथ ।

निकुट्टकोरूद्वृत्ताख्याक्षिप्तोरोमण्डलानि च ॥७०३॥

करिहस्तं[11] कटीभिन्नमित्येकादशभिः क्रमात् ।

करणैरंगहारः स्यान्नाम्ना वैशाखरेचितः ॥७०४॥

इति वैशाखरेचितः [५]

*दिक्स्वस्तिकं ततस्त्वांगेने[12] केनार्ध[13]-निकुट्टकम् ।

अपविद्धोरु[14]द्वृत्ताख्ये[15] तथाक्षिप्तं[16] नितम्बकम् ॥७०५॥

---

* सङ्गीतरत्नाकरे 'दिक्स्वस्तिकमित्यादि'—पङ्क्तेरनन्तरं 'पुनर्दिक्स्वस्तिकमथान्याङ्गेनार्धनिकुट्टकम्' इत्यपराऽपि—(७।८१५) पङ्क्तिर्विद्यते ।

१. ०ताङ्ग०
२. ०द्धम्
३. ०साध्यं
४. न्यंसि०
५. ०तिसर्पति सं०
६. ०र्थं०
७. ०टार्थो क्षि०
८. ०त०
९. ०याचितः
१०. ०भ्यां अङ्गा०
११. ०त०
१२. ०ने०
१३. ०र्थं नि०
१४. ०रु०
१५. ०ख्यौ
१६. ०प्त०

करिहस्तं[1] कटीभिन्नमष्टभिः करणैरिति ।
स्यात्पार्श्वस्वस्तिको[2]ऽभ्यासा[3]त्त्वाद्ययो[4]र्दशभिर्भवेत् ॥७०६॥

इति पार्श्वस्वस्तिकः[5] [६]

नूपुराक्षिप्तकं[6]छिन्नसूची[7]न्यथ नितम्बकम् ।
करिहस्तं च करणमुरोमंडलकं ततः ॥७०७॥

कटिभिन्नमितिप्रोक्तं[8] करणैर्भ्रमरोऽष्टभिः ।

इति भ्रमरः [७]

कृत्वा[10] नूपुरविक्षिप्ता[11]लाता [न्या] क्षिप्तकं ततः ॥७०८॥

उरोमंडलसंज्ञं च नितम्बं[12] करिहस्तकम् ।
कटि[13]भिन्नं च करणै[14]रेभिराक्षिप्तकोऽष्टभिः ॥७०९॥
❀

[इत्याक्षिप्तकः–८]

कृत्वा[15] समनखं छिन्नं[16] सम्भ्रान्तमथ वाम[17]तः ।
भ्रमरं[18] वामकच्छार्धसूच[19]यंघ्रिक्रान्तसं[20]ज्ञकम् ॥७१०॥

❀ सङ्गीतरत्नाकरे त्वत्र 'विक्षिप्तालातकाक्षिप्तप्रयोगं द्विः परे जगुः'—(७।८१९)—इति पङ्क्तिरपि वर्तते ।

१. ०त०
२. ०काभ्या०
३. ०सावा०
४. ०थोधः करो भ०
५. ०कम्
६. ०कं चिह्नं
७. ०चि०
८. ०कः
९. ०तं करिणीभ्र०
१०. ०ता नू०
११. ०प्ता लता....
१२. ०बं०
१३. ०रि०
१४. ०णमभि०
१५. ०वासनमुखं
१६. ०न०
१७. ०ततः
१८. पामकच्छार्थं
१९. ०यतिक्रा०
२०. ०पञ्चकम्

भुजंगत्रासितौदूर्ध्वं करिहस्तं विधीयते ।
*[कटोछिन्नं परिच्छिन्नो नवभिः करणैरिति] ॥७११॥

इति परिच्छिन्नः (९)

मदस्खलितमत्त[2]ल्लिलत[3]लसंस्फो[4]टितानि[5] च ।
बहुश[6]श्चित्रगुम्फानि निकुट्ट[7]कमतः परम् ॥७१२॥

ऊरू[8]द्वृत्तं च करणं करिहस्तसमाह्वयम् ।
कटिभिन्नं च [9]सप्तेति मदाद्विलसिते जगुः ॥७१३॥

करणानि त्रयाणां तु त्रिरभ्यासा[10]त्त्रयोदश ।
अभ्यासा[11]स्त्रिषु [12]वांछन्ति चतुष्पंचादिकानपि ॥७१४॥

[इति मदविलसिते[13]ः [१०]

[14]व्यंसितं सनिकु[15]ट्टं स्यान्नूपुर[16] वामतो[17]-ऽघ्रितः ।
अन्यतो[18]ऽलातकाक्षिप्ते उरोमण्डलकं ततः ॥७१५॥

करिहस्तं कटिच्छिन्नमित्येभिः करणैः क्रमात् ।
भवेदष्टभिरा[19]लीढाङ्गहारो मुनिसंमतः ॥७१६॥

[इत्यालीढः—११]

---

* सङ्गीतरत्नाकरतः (७।८२२)।

१. ०तं मार्थं
२. ०मत्तालो०
३. ०करसं०
४. ०थापिता
५. इति
६. ०तश्चक्रगुल्पा सि०
७. कुञ्चगम०
८. ०रु०
९. निस्तीति
१०. ०सा त्र०
११. ०सा भ्रि०
१२. वा सन्ति
१३. ०तम्
१४. न्यं०
१५. ०कुक्षं
१६. ०रा
१७. ०थोंघ्रि०
१८. ०तो लादिका०
१९. ०वा०

[भ्रमरं] नूपुरं चाथ [1]व्यंसितालातके ततः ।
नितम्बं सूचिसंज्ञं च करिहस्त[2]मतः परम् ॥७१७॥

कटिभिन्नं च कर[3]णान्यष्टेत्याच्छुरिते विदुः ।

इत्याच[4]छुरितः [१२]

[5]वृश्चिकाद्यं कुट्टित[6] स्यादूर्ध्वजानु ततः परम् ॥७१८॥

आक्षिप्तस्वस्तिकं[7] [कृ] त्वा त्रिकस्य परिवर्त्तनम् ।
उरोमण्डलसंज्ञं च नितम्बं[8] करिहस्तकम् ॥७१९॥

कटिभिन्नं च करणं पार्श्वभेदेऽष्टकं मतम् ।

इति पार्श्वभेदः [१३]

अपक्रा[9]न्तं व्यंसित[10]स्य केवलं करयोः क्रि[11]या ॥७२०॥

करिहस्तं चार्ध[12]सूचि विक्षिप्ताख्यं कटीयुतम् ।
छिन्नमू[13]द्वृत्तसंज्ञमाक्षिप्तं करिहस्तकम् ॥७२१॥

कटिच्छिन्नं च सप्ते[14]ति करणान्यपसर्पिते ।
[15]सार्धानि द्विः[16] कटीभिन्न[17]करिहस्त[18]कृतेर्नव ॥७२२॥

इत्यपसर्पितः [१४]

---

१. मंसि
२. ०तस्ततः
३. ०णैर्यष्टा वाच्युतिते
४. ०द्रारितकम्
५. प्र०
६. ०कं
७. ०क
८. ०ब०
९. ०काण्डं
१०. ०तञ्च कोव०
११. क्रमात्
१२ ०र्थं०
१३. ०रु०
१४. ०ती च
१५. ०र्था०
१६. द्वि०
१७. ०ने करे
१८. ०ते कृते नव

भ्रमरं नूपुराख्यं च भुजंगत्रासिताभिधम् ।
दक्षिणाङ्गेनैव कृत्वा कुर्याद् वैशाखरेचितम् ।।७२३।।

आक्षिप्तच्छिन्नकरणे[1] भ्रमरं व्यंसितं[2] ततः ।
उरोमण्डलसंज्ञं च नितम्बं करिहस्तकम् ।।७२४।।

कटिच्छिन्नं च करणै[3] रेभि [र्द्वा] दशभिः क्रमात् ।
एकादशभिरभ्यासगणने भ्रमरस्य च ।।७२५।।

मत्तक्रीडाभिधानः[4] स्यादंगहारो हरप्रियः ।
इति मत्तक्रीडः[5] [१५]

वामांगेनार्धसूचि[6] स्याद् विद्युद्भ्रान्तं च दक्षिणे ।।७२६।।

पुनरंगविपर्यासाद्[7] द्वयं[8] छिन्नमतः परम् ।
अतिक्रान्तं वामतोऽथ लतावृश्चिकमाचरेत्[9] ।।७२७।।

कटिच्छिन्नं च षडिति द्वयोरभ्यासतः पुनः ।
करणान्यष्टसंख्यानि विद्युद्भ्रान्ते विदुर्बुधाः ।।७२८।।

इति विद्युद्भ्रान्तः [१६]

।।इति चतुरश्रमाने षोडशांगहाराः।।

निकुट्टकाख्यं करणं विधायार्ध[10]-निकुट्टकम् ।
भुजंगत्रासितादूर्ध्वं भुजंगत्र[11]स्तरेचितम् ।।७२९।।

---

१. ०णं
२. ०तस्
३. ०णै इत्येभिर्दश०
४. ०नं
५. ०डा
६. ०र्थ०
७. ०सद्व०
८. ०चिह्न०
९. कलता०
१०. ०र्थं
११. ०त्रस०

आक्षिप्तोरोमण्डले च क्रमात्कृत्वा[1] लता[करम्] ।
कटिच्छिन्नं सप्तमं तु विष्कम्भापसृ[2]ते भवेत् ।।७३०।।

इति विष्कम्भापसृ[3]तः [१]

मत्तल्लिगंडसूच्याख्ये[4] लीनमप्यप[5]विद्धकम् ।
त[द्]द्रुतं[6]त्वेन कर्तव्यं[7] तलसंस्फोटितं ततः ।।७३१।।

करिहस्तं[8] कटीभिन्नं करणानि क्रमादिति ।
सप्तांगहारे प्रोक्तानि मत्तस्खं[9]लितसंज्ञके ।।७३२।।

इति मत्तस्खलितः [२]

मंडलस्व[10]स्तिकादूर्ध्वं निवेशोन्मत्तसंज्ञ[11]के ।
उद्घट्टिताख्यं मत्तल्लि स्यादाक्षिप्तमतः परम् ।।७३३।।

उरोमण्डलकं छिन्नं कट्यादि[12] गतिमंडले ।
इत्यष्टौ करणानि [स्यु][13]रिति पूर्वैरुदाहृतम् ।।७३४।।

इति[14] गतिमण्डलः [३]

*[अपविद्धं] प्र[15]थमतस्सूचिविद्धमथो[16] [करौ] ।
उद्वेष्टिते समं चार्या बद्धया वल ये[17] त्रिकम् ।।७३५।।

---

* पाठाधारस्तु 'अपविद्धं प्रथमतः सूचीविद्धमथो करौ' (सं० र० ७।८४५) इति

१. ०दादत्तलता
२. ०स्नु०
३. ०स्नु०
४. ०ख्या
५. ०वहित्थकम्
६. ०श०
७. ०यकल०
८. ०तः
९. ०स्थितिकसंज्ञिके
१०. ०स्खलितादू०
११. ०ज्ञि०
१२. ०दिग०
१३. ०इ०
१४. ०ति मण्डलं । इत्यवहित्थं ।
१५. पृथङ्मतः
१६. ०थोद····
१७. ०यत्रि०

ऊरूद्[१]वृत्तं च करणमुरोमंडकं ततः ।
कटिच्छिन्नं पंचमं चेदप[२]विद्धस्तदा भवेत् ॥७३६॥

इत्यपविद्धः [४]

निकुट्टकाख्यं करणं स्यान्निकुंचितमंचितम् ।
ऊरू[३]द्वृत्तं ततोऽप्यर्ध[४]निकुट्टकरणं ततः ॥७३७॥

❀[भुजंगत्रासितं हस्तोद्वेष्टने भ्रमरं ततः ।
करिहस्तं कटीछिन्नं विष्कम्भे नवमं भवेत् ॥७३८॥

इति विष्कम्भः [५]

उद्घट्टिते निकुट्टाख्यमुरोमंडलकं ततः ।]
नितम्बं करिहस्त[५] स्यात् कटिच्छिन्नं च पंचमम् ॥७३९॥

इत्यु[६]द्घट्टितः [६]

स्वस्तिकाद्यं[७] रेचितं च पृष्ठस्वस्तिकसंज्ञितम् ।
दिक्स्वस्तिकं[८] कटीपूर्वं समं घूर्णितनामकम् ॥७४०॥

भ्रमरं वृश्चिकाद्यं च रेचितं पाश्र्वपूर्वकम् ।
निकुट्टकमुरःपूर्वं म[९]ण्डलं सन्नतं ततः ॥७४१॥

सिंहाकर्षितकं नागाप[१०]सर्पितसमाह्वयम् ।
अथ व[११]क्षःस्वस्तिकं तु केचिदिच्छन्ति सूरयः ॥७४२॥

❀ सङ्गीतरत्नाकरतः (७।८४८।८४९) ।

१. ०रु०
२. ०सद्वि०
३. ०रु०
४. ०र्थं०
५. ०त.
६. ०त्कुट्टि०
७. ०ख्यं
८. कुट्टपू०
९. कुंड०
१०. ०व०
११. पक्ष–

दंडपक्षं च करणं ललाटतिलकाह्वयम् ।
[1]वृश्चिकं तु लताद्यं च भवेदर्थं[2] निशुम्भितम् ॥७४३॥

विद्युद्भ्रान्ताभिधाद्[3]ूर्ध्वं गजक्रीडितकं ततः ।
नितम्बविष्[4]णुक्रान्ताख्योरूद्वृत्ताक्षिप्तकानि च ॥७४४॥

उरोमंडलसंज्ञं च नितम्बं[5] करिहस्तकम् ।
वैकल्पिकं कटीभिन्नमिच्छन्त्याक्षिप्तरेचिते ॥७४५॥

पंचविंशतिसंख्यानि करणानि पुरातना[6]ः ।
नितम्बोरो[7]मण्डलयोस्त्वा[वृ]त्त्या सप्तविंशतिः ॥७४६॥

ये वक्ष[8]ःस्वस्तिकं नात्र कटीच्छिन्नं च मन्वते[9] ।
पंचविंशतिरेव स्यादावृत्तावपि तन्मते ॥७४७॥

[इत्याक्षिप्तरेचितः–७]

स्वस्तिकाद्यं रेचितं स्यादर्धरेचितकं ततः ।
[10]वक्षःस्वस्तिकमुन्मत्तसंज्ञमाक्षिप्तरेचितम् ॥७४८॥

अर्ध[11]मत्तल्लिकरणं स्याद्रेच[क]निकुट्टकम् ।
भुजंगत्रस्तपूर्वं च रेचितं नूपुरं ततः ॥७४९॥

वैशाखरेचितं कृत्वा भुजंगांचितमाचरेत् ।
दंडरेचितकं चक्रमंडलं वृश्चिकादिकम् ॥७५०॥

---

१. विलासितं ततौद्यं च
२. ०वनिकुंचनम्
३. भवे०
४. ०ध्न०
५. ०ब०
६. ० ना
७. ०रू०
८. पक्ष०
९. ०न्वते
१०. पक्ष०
११. ० र्थं०

रेचितं [1]वृश्चिकादूर्ध्वं विवृ[त्त]विनिवृत्तके ।
विवर्त्तितं च गरुडप्लुतकं ललितं भवेत् ।।७५१।।
मयूराद्यं सर्पितं च स्खलिताख्यं प्रसर्पितम् ।
तलसंघट्टित[2]मथो वृषभक्रीडितं ततः ।।७५२।।
लोलितं षड्विशतिर्या करणानामितीरिता ।
तां कृत्वा विषमैर्भागै[3]श्चतुर्धा दिक्चतुष्टये ।।७५३।।
परिवृत्तिप्रकारेण प्रयुज्यान्ते समाचरेत् ।
उरोमण्डलकं यत्र कटिच्छि[5]न्नं स रेचितः ।।७५४।।

[इति रेचितः–८]

नूपुराख्यं विवृत्तं च निकुट्टार्धनिकुट्टके ।
अर्ध[7]रेचितकादूर्ध्वं स्याद्रेचकनिकुट्टकम् ।।७५५।।
ललिताख्यं च वैशाखरेचितं चतुरं ततः ।
दंडरेचितकादूर्ध्वं भवेद् वृश्चिककुट्टितम् ।।७५६।।
निकुट्टकं पार्श्वपूर्वं सम्भ्रान्तोद्घट्टिते ततः ।
उरोमंडलकादूर्ध्वं करिहस्तसमाह्वयम् ।।७५७।।
कटिच्छिन्नं सप्तदश[8] भवेदर्धनिकुट्टके ।

इत्यर्ध[9]निकुट्ट[10]कः [९]

लतावृश्चिकमादौ स्यान्निकुंचितमतः परम् ।।७५८।।
मत्तलि च नितम्बाख्यं करणं हस्तसंज्ञकम् ।
कटिच्छिन्नं स्मृतं षष्ठं वृश्चिकापसृ[11]ते बुधैः ।।७५९।।

---

१. व्यासिता दू०
२. ०क०
३. ०वैः
४. ०र्थादिच०
५. ०नस्०
६. ०र्थं०
७. ०र्थं०
८. ०श
९. ०र्थं०
१०. ०कम्
११. ०स्रुतैर्बु०

अस्मिन् स्थाने नितम्बस्य भ्रमरं केचिदूचिरे ।

इति वृश्चिकापसृ[1]तः [१०]

स्वस्तिकं व्यंसितं[च]द्वि[2]रला[3]ताख्योर्ध्वजानुनी[4] ।।७६०।।

निकुंचितार्ध[5]सूच्याख्यविक्षि[6]प्तोद्वृत्तकान्यथ ।

आक्षिप्तं करिहस्तं स्यात्कटिच्छिन्नमलातके ।।७६१

एकादश स्युः करणान्येकं[7]द्विर्व्यंसि[8]तेऽधिकम् ।

इत्य[9]लातकः [११]

दक्षिणांगेन जनितं शकटास्य[10]मलातकम् ।।७६२।।

भ्रमरं वाममंगं च निकुट्टि[त]कै[11]रान्वितम् ।

करिह[12]स्तं कटिच्छिन्नं करणानि क्रमादिति ।।१६३।।

प[13]रावृत्ते षडुक्तानि मुनिना नय[14]दर्शिना ।

नमनोन्नमनं त[15]ज्ज्ञैरंगस्योक्तं[16] निकुट्टकम् ।।७६४।।

इति परावृत्तः [१२]

नितम्बं करणं कृत्वा कुर्यात्स्वस्तिकरेचितम् ।

विक्षिप्ताक्षिप्तकमथो लतावृश्चिकसंज्ञितम् ।।१६५।।

[17]उन्मत्तं करिहस्तं च भुजंगत्रासितं ततः ।

आक्षिप्तकं नितम्बं च नितम्बो[18]न्तान्यमून्यथ ।।७६६।।

---

१. ०स्रु०
२. द्वे
३. ०हि०
४. ०नि
५. ०र्थ०
६. ०क्षपो द्रुततान्यथ
७. ०कर्द्वि०
८. ०शितद्रुतम्
९. ०याहितः
१०. ०ख्यम०
११. ०समन्वि०
१२. ०त०
१३. तलावृत्ति०
१४. ०वद०
१५. तज्ज्ञै०
१६. ०क्त०
१७. उन्नतं
१८. ०बाता०

नवंभ्रमरिकाख्येन[1] परिवृत्तं समाचरेत् ।
दिगन्तरमुखैः[2] स्थित्वा[3] व्यावृत्त्या परयोर्दिशोः[4] ॥७६७॥

करिहस्तं कटिच्छिन्नं कुर्यादाद्यदिशि स्थितः ।
यत्र[5] तं प्राहुराचार्याः परिवृत्तकरेचितम् ॥७६८॥

परिवृत्तिविधिश्चायं त्यक्त्वान्त्यं[6] करणद्वयम् ।
सर्वेषामंगहाराणां लक्ष्मणार्येण धीमता ॥७६९॥

भट्टाभिनवगुप्तादिमतज्ञै[7]नाभिधीयते ।

इति परिवृत्त[क]रेचित[8]ः [१३]

नूपुरात्करणादूर्ध्वं भुजंगांचितमाचरेत् ॥७७०॥

गृंध्रावलीनकं[9] द्वे च विक्षिप्तोद्[10]घट्टिताभिधे ।
उद्वृत्तकाभिधमथो नितम्बमथ वृश्चिकम् ॥७७१॥

लतापूर्वं[11] कटिच्छिन्नं नवभिः करणैरिति ।
उद्वृत्तको द्वि[12]विक्षिप्तोद्वृत्ताख्ये[13]मधिकं द्वयम् ॥७७२॥

इत्युद्वृत्त[14][कः][१४]

विक्षिप्तमंचितं गंडसूचि सर्वान्तिमं ततः ।
अर्ध[15] सूचि ततो दण्डपादं वामांगसाधितम् ॥७७३॥

---

१. ०व०
२. ०ख०
३. ०वेत्यादृत्या
४. ०जाः
५. तद्रतं
६. त्यस्त्वान्तं
७. ०ज्ञैरभिः०
८. ०तम्
९. गृधावलिनतं
१०. ०तोद्रुस्तकाभिषैः
११. ०र्वं०
१२. ०द्विर्ति०
१३. ०या०
१४. ०त्तः
१५. ०र्थं०

चतुरं[1] भ्रमरं चाथ नूपुराक्षिप्तनामके ।
अर्ध[2]स्वस्तिकसंज्ञं च नितम्बं[3] करिहस्तकम् ॥७७४॥

उरोमंडलसंज्ञं च कटिच्छिन्नमिति क्रमात् ।
करणैः पंचदशभिः सम्भ्रान्तमवदन् बुधाः ॥७७५॥

इति संभ्रान्तः [१५]

वैशाखरेचितादूर्ध्वं वृश्चिकं द्विं[4]रिदं द्वयम् ।
निकुट्टकाभिधादू[5]र्ध्वं क्रमात् प्रा[6]प्तलताकरम् ॥७७६॥

कटिच्छिन्नं चतुर्थं चेत्तदा स्वस्तिकरेचितम्[7] ।
ज्ञेयमाद्यद्वयाभ्यासादधिकं करणद्वयम् ॥७७७॥

इति स्वस्तिकरेचितः [१६]

॥ इति त्र्यश्रमाने[न]षोडशांगहाराः ॥

मृदंगैर्गोमुखैर्भ[8]म्भाभेरीपटहडिंडिमैः ।
प्र[9]णवैर्दर्दुराद्यैश्च वाद्यस्तोमै[10]र्लयानुगैः ॥७७८॥

वर्धमानासारितेषु पाणिकादिषु गीतिषु ।
पूर्व[11]रंगस्य चांगेषु धी[12]रैरुत्थापनादिषु ॥७७९॥

अंगहाराः प्रयोक्तव्याः श्रेयस्करमभीप्सुभिः ।
विनियोगोंऽ[13]गहारेषु करणानामि[14]तीरितः ॥७८०॥

---

१. ०र०
२. ०र्थं०
३. ०ब०
४. ०वि०
५. ०मू०
६. प्रोत्पलकारकम्
७. तः
८. र्दण्डाख्यैः प०
९. सरणैः
१०. ०भधिया०
११. ०वं रङ्ग०
१२. वीर्यैकुद्दाप०
१३. ०गाङ्ग०
१४. ०मित्यपीलतः

आहुः पृथक् प्रयोगेऽपि करणानां महाफलम् ।
॥ इति द्वात्रिंशदंगहारलक्षणं समाप्तम् ॥

[अथ चतुर्विधरेचकनिरूपणम्]

चतुर्विधा रेच[1]काः स्युः पाद[2]जाः करजास्ततः ॥७८१॥
ग्रीवाभवाः कटीजा[3] वा कथ्य[4]न्ते लक्षणान्यथ ।
पादस्य करभांगुष्ठपा[5]र्ष्ण्यन्तः पार्श्वरेचितः ॥७८१॥
नमनोन्नमनोपेतः कथ्यते पादरेचकः ।
*पार्श्वप्रभ्रमणं शीघ्रमुभयोर्हंसपक्षयोः ॥७८३॥
उद्वेष्टनापवेष्टाभ्यां च[6]लनात् कररेचकः ।
भवेदेवं नृत्तविद्याशोभां प्रायस्तनोति हि ॥७८४॥
तिर्यक्क्रमेण विततौ करौ प्रसृ[7]तशाखिनौ ।
बोधते यत्र च ग्रीवाभ्रान्तिस्तत्र मिता भवेत् ॥७८५॥
स कण्ठरेच[9]कः प्रोक्तः कट्यो[10]ः सर्वत्र चालनम् ।
कटिरेचकसंज्ञः स्याच्चत्वारः कथिता बुधैः ॥७८६॥
एते भावविशेषत्वादंगहारांगतां यदि ।
भजन्तेऽ[11]त्राभिनेयेषु जनयन्ति पृथक् फलम् ॥७८७॥
॥ इति चतुर्विधरेच[12]कलक्षणं समाप्तम् ॥

---

* सङ्गीतरत्नाकरे तु 'परितो भ्रमणं तूर्णं हस्तयोर्हंसपक्षयोः ।
यत्पर्यायेण रचितं स भवेत्कररेचकः ॥ (७।८२४)
इति लक्षणं वर्तते ।

१. ०चिताः
२. ०दोदाः
३. ०जो
४. ०यते लक्ष्मणस्तथा
५. ०पाण्यन्तःपा०
६. जालनातररे०
७. ०स्रुत०
८. ०मिदं त०
९. ०चितः
१०. ०या
११. ०ष्टाभि०
१२. ०चित०

अथ चारीप्रकरणम्

चारी[1] स्यादंघ्रिजंघोरुकटिकर्मसमन्विता[2] ।
अथवा चरगत्यर्थ[3]धातो[4]र्व्युत्पत्तिरिष्यते ।।७८८।।

[5]चार्यते ह्यनयेत्येवं करणेऽर्थे विव[6]क्षिते ।
[7]चरेरिञ्प्रत्ययान्तत्वाद्[8] इञ्वपादिभ्य इत्यतः ।।७८९।।

औणादिके कृते चारिमात्रं भवति तत्पुनः ।
[9]कृदिकाराद[10] क्तिनो वा ङीष् वक्तव्य इति क्रमात् ।।७९०।।

ङी[11]बन्तत्वाद् भवे[12]च्चारीत्येवं रूपं निरूप्यते ।
अभिनेतुर्हस्तपादं [13]यथोत्पन्नं भवेत्तदा ।।७९१।।

[14]चारी तस्यानुसारं स्यात्तच्चा[15]र्यनुसरापरा ।
एवमन्योन्यसम्बन्धनियमेन गतिर्भवेत् ।।७९२।।

सो[16] चार्येव चतुर्धा[17] स्यादिति भेदविराजिता ।
चारी च करणं खण्डो[18] मण्डलं चेति तत्र तु ।।७९३।।

पादेनैकेन चरिता चारी[19] सैवादिसम्भवा ।
पादाभ्यां करणं चोक्तं[20] नृत्तशब्दविवर्जितम् ।।७९४।।

---

१. ०रिस्०
२. ०तः
३. ०त्याख्ये धा०
४. ०ता व्यु०
५. च०
६. ०च०
७. चेत्कटिप्रोत्य०
८. ०दिग्मादिभ्यमितीति वै
९. गीतिका०
१०. ०क्ति०
११. ञबन्त०
१२. ०वेच्छारी०
१३. यत्रोत्प०
१४. शरीरस्यानुसारी
१५. ०चर्यानु०
१६. आचार्यव०
१७. ०र्था
१८. डा
१९. ०रे
२०. ०त

[1]स्यात्त्रिभिः करणैः खण्डस्त्रिभिः खण्डैस्तु[2] मण्डलम् ।
खण्डैश्चतुर्भिरथवा क्रमात्ताले[3] नियोजयेत् ।।७९५।।

त्र्यश्रे चाचपुटे योज्यं त्रिखण्डान्वितमण्डलम् ।
चंचत्पुटे चतुष्खण्डात्मकं मण्डलमुच्यते ।।७९६।।

चार्येषा द्विविधा प्रोक्ता भौ[4]मी चाकाशि[5]की तथा ।
तत्र भौ[6]मी षोडशधा प्रोच्यते विष्णुसूनुना ।।७९७।।

समपादा[7] स्थितावर्त्ता[8] शकटास्या च[9] विच्युता* ।
अध्य[10]र्धिका चाषगतिरे[11]डकाक्रीडिता तथा ।।७९८।।

समो[12]त्सरितमत्तल्ली मत्तल्यु[13]त्स्पन्दितांकिता ।
स्पन्दितावे[14]स्पन्दिता स्याद् ब[15]द्धा च जनिता तथा ।।७९९

ऊरूद्वृत्तेत्यथ[16] ब्रूमः षोडशाकाशलोलितो[17]ः ।

[इति भूमिचारीणामुद्देशः]

पादौ समनखत्वेन श्लि[18]ष्टपार्ष्णिसमाकृतौ[19] ।।८००।।

---

* सङ्गीतरत्नाकरे तु 'विच्यवा' इति पाठो वर्त्तते (७।९०२)

१. ०कर्तृभिः
२. कण्डैः तु
३. ०रे
४. भूमा
५. ०शकीर्तिता
६. भूमौ
७. ०द०
८. ०र्ता०
९. ०दिवि०
१०. ०द्यर्थिका
११. ०रेचका कीर्तिता
१२. ०मो स०
१३. ०त्सण्डिताडिता
१४. ०र०
१५. ०च्चद्धा
१६. ०ध्वता
१७. ०मा
१८. शिष्ट०
१९. ०ताः

वितस्तिमात्रविश्लिष्टस्वस्थानेन समांघ्रिणा ।
स्थिता चारी[1] तदा प्रोक्ता समपादेति[2] सूरिभिः ॥८०१॥

इति समपादा [१]

स्थित्वाध[3]: समपादेन कृत्वाग्रतलसंचरम्[4] ।
[5]आजानुस्वस्तिकत्वं च नीत्वा संचरणं ततः ॥८०२॥

विश्लिष्य स्थापयेदात्मपार्श्वेऽग्रतलसंचरम्[6] ।
तथा[7] दिगन्तरालत्वात् स्थितावर्ता तदो[8]दिता ॥८०३॥

इति स्थितावर्ता [२]

[9]पादमाबद्धपूर्वांगद्रुताग्रतलसंचरम् ॥८०२॥

पूर्वं चोद्वाहि[10]तं वक्त्रं प्रसार्य च पुरोगतिः ॥८०४॥

शकटास्ये[11]ख्या चारी स्यात्सान्वर्था कथिता बुधैः ।

इति शकटास्या [३]

विधाय समपादाख्यां पादावु[12]द्धृत्य मेदिनीम् ॥८०५॥

विताडयेत्तदा चारी[13] विच्युता प्रोच्यते बुधैः ।

इति विच्युता [४]

वामांघ्रिर्दक्षिणांघ्रिस्थे[14] पार्ष्णिदेशे स्थितो भवेत् ॥८०६॥

---

१. ०रे
२. ०न
३. ०धो
४. ०चितम्
५. अ०
६. ०त्
७. ०दा
८. ०तो०
९. पवनाब०
१०. पि०
११. ०ख्यास्य
१२. ०वृ०
१३. ०रि०
१४. ०ते

अपसव्यैस्त्वपसृत्य पार्श्वे त्र्य[1][श्र][2]स्थितो यदा ।
सार्ध[3]तालान्तरत्वेन पर[4]भागं[5] तदा न्यसेत् ॥८०७॥
अर्ध्या[6]धिकाह्वया चारी[7] पुष्पांजलिविधौ मता[8] ।

[9]इत्यर्ध्याधिका [५]

दक्षिणेनाग्रे[10] धरणी तालमात्रा[11]न्तरे ततः ॥८०८॥
पृष्ठतो[12] द्विगुणं गत्वा किंचिदुद्गतिपूर्वकम् ।
समपादं न्यसेदग्रे पुरः[13] पश्चात् पुनः पुनः ॥८०९॥
सभ[14]ये चलने योज्या [15]सैषा चाषगतिर्ध्रुवा ।

इति चाषगतिः [६]

अंघ्रिभ्यां किंचिदुत्प्लुत्य कृत्वाग्रतलसंचरम् ॥८१०॥
क्रमेण पठ्यते यत्र [16]सैडकाक्रीडिता[17] भवेत् ।

[18]इत्येडकाक्रीडिता [७]

अंचितस्यैकपादस्य गर्भे भूत्वा पर[19]स्तथा ॥८११॥
घूर्णनाद्भ्रुवतो यस्यामुपसर्पापसर्पणे ।
समो[20]त्सरितमत्तल्ली स्याच्चा[21]री मध्यमे मदे[22] ॥८१२॥

इति स[23]मोत्सरितमत्तल्ली [८]

---

१. ०योपनृत्यस्थे
२. त्व····
३. ०र्थ०
४. ०लं करं योत्वा
५. ०रि०
६. ०त्यर्थिका०
७. ०रे
८. ०ता:
९. इत्यर्द्यर्थिका
१०. ०ग्रधरणे
११. ०त्रपुटे
१२. ०तः
१३. ०नः
१४. भवेच्चलनो
१५. स्वर्धा
१६. शैलका०
१७. ०तो
१८. इत्यलकाक्री०
१९. ०रोचितम्
२०. ०नोप तित०
२१. ०न्नाडिर्म०
२२. ०ता
२३. ०नोपतित०

पृथिवीलग्नाखिलतलौ जंघायास्स्वस्तिकत्वतः ।
विदिङ्मुखे कृतौ पादौ घूर्णनाद्[2]पसर्पणात् ॥८१३॥
अपसर्पणतो[3] वा स्यान्मत्तल्ली[4] तरुणे मदे ।

इति मत्तल्ली [९]

कनिष्ठांगुष्ठदिग्भागरेचकश्[5]चरणो यदि ॥८१४॥
विलिखेद्धरणौ[6] बाले चन्द्रके[7] द्वित्रिर्वर्तिनि[8] ।
सा स्यादुत्[9]स्पन्दिता नाम चार्यन्वर्थे[10]ति कीर्तिता[11] ॥८१५॥
औदा[12]सीन्यप्रच्युतिस्तु स्प[13]न्द इत्यभिधीयते ।
❀
रेचिताख्यं नृत्तहस्तं चोचुः केचिन्मनीषिणः ॥८१६॥

इ[14]त्युत्स्पन्दिता [१०]

समस्थितस्थ पादस्य परोऽग्रत[15]लसंचरः ।
[16]निघृष्टांगुष्ठपार्ष्णिभ्यां चा[17]री स्याद[18]ड्डिता मता ॥८१७॥

इ[19]त्यड्डिता [११]

वामो[20] नितम्बसंस्पृष्टपार्ष्णित्वेन समो भवेत् ।
सव्य[21]संहरणा[22]तिर्यक्[23] पंचतालान्तरं तदा ॥८१८॥

❀ अत्र भ्रान्तित्वात् 'इत्युसण्डिता' इत्युल्लेखः पाण्डुपुस्तके वर्त्तते ।

१. ०दला
२. ०वु०
३. ०तावास्या म०
४. ०लित०
५. ०चाकञ्चरयो
६. ०णे बाला
७. ०क०
८. ०तः
९. ०यण्डिता
१०. ०र्धे०
११. ०तः
१२. ०सि०
१३. स्थण्ड
१४. ०इति त्स्यण्डिता
१५. ०तत स०
१६. चोद्घु०
१७. ०रि
१८. ०धिता
१९. इत्यण्डिता
२०. ०मे
२१. ०त्यं
२२. ०यत्ति०
२३. ०ग्यच्छतालाकरं तथा

[1]स्पन्दिताख्या भवेच्चारी[2] सान्वर्था परिभाषिता ।

इति स्पन्दिता [१२]

सैव सव्य[3]विपर्यासात् स्यादव[4]स्पन्दिता तदा ॥८१९॥

इत्यव[5]स्पन्दिता [१३]

कुर्यादूर्व[6]पवलनं जंघास्वस्तिकरेचितम् ।
विभज्य[7] स्वस्तिकं यद्वा भ[8]क्त्वैकांघ्रितलाग्रतः ॥८२०॥

स्व-स्वपार्श्वयुगायाते तथा बद्धा बुधैः स्मृता ।

इति बद्धा [१४]

सा भवेज्जनिता यस्यां पादाग्रतलसंचरः ॥८२१॥

हस्तो वक्षसि मुष्टिः स्यात् परशोभान्वितो मतः ।
प्राधान्यं पाद[10]योरिष्टमितिकर्तव्यते[11]तरा ॥८२२॥

इति जनिता [१५]

तलसंचरपार्ष्णी[12] द्वे चान्योन्याभिमुखत्वतः ।
करोति जंघावलनं नतजानुर्यदा तदा ॥८२३॥

ऊरूद्वृत्ता भवेच्चारी ह्रीक्रोशादौ नियुज्यते ।

इत्यूरूद्वृत्ता [१६]

नृत्ते नियुद्धनाट्ये च लास्ये चैता[13]ः प्रतिष्ठिताः ॥८२४॥

---

१. स्पण्डिता०
२. ०रि
३. ०त्य०
४. ०पस्यण्डिता
५. ०पस्यन्दिता
६. ०र्वाप०
७. ०जौ
८. भांत्वे०
९. ०ताः
१०. ०र्श्वयोरिष्टिरिति०
११. ०ता तयोः
१२. ०र्ष्णि
१३. ०ता

अनादिदेवमूलत्वान्नाट्ये वेदे विदुर्बुधाः ।
॥ इति षोडश[1] भौम्यश्चार्यः ॥

[अथ षोडशाकाशिक्यश्चार्यः]

अतिक्रान्ता[2]प्यपक्रान्ता पार्श्वक्रान्ता मृगप्लुता ॥८२५॥

ऊर्ध्वजानुरलाता च सूची[3] नूपुरपा[4]दिका ।
डोलापादा[5] दण्डपादा[6] विद्युद्भ्रान्ता भ्रमर्य[7]थ ॥८२६॥

भुजंगत्रासिताक्षिप्ता [8]विद्धोद्वृत्तेति कीर्तिता[9]ः ।
भूस्थिताङ्घ्रि[10] गुल्फभाजं[11] मन्याङ्घ्रि कुञ्चनात्मकम् ॥८२७॥

उद्धृ[12]त्य विन्यसेदग्रे चतुस्तालान्तरत्वतः ।
तथातिक्रान्तचारीति[13] कथिता करणाधि[14]पैः ॥८२८॥

इत्यतिक्रान्ता [१]

चारीं[15] बद्धां विधायाथ पादमेकं प्रकुंचितम् ।
स्वपार्श्वे निक्षिपेच्चारीमपक्रान्तां[16] विदुर्बुधाः ॥८२९॥

इत्यपक्रान्ता [२]

उरोजाग्रसरं[17] जानु स्वं प्राप्याथ स्वपार्श्वकम् ।
स्वपार्श्वं विन्यसेद् भूमौ पार्श्वक्रान्ता तदा[18] भवेत् ॥८३०॥

---

१. ०शमो चायुः
२. ०तव्यति०
३. ०चि०
४. ०ताडिता
५. ०दौ
६. ०दौ
७. ०स्य च
८. वृद्धाद्यप्तेति
९. ०ता
१०. ०घ्रि
११. ०त्वं भुजांघ्रीकु०
१२. ०वृ०
१३. ०तिः
१४. निच
१५. ०रिं
१६. ०तं
१७. ०रो
१८. ०था

सा[1] पार्श्वदण्डपादेति पर्यायेण[2] निगद्यते ।
ऊ[3]रोरुत्थानपर्यन्तं नीत्वाङ्घ्रिं[4] भुवि निक्षिपेत् ।।८३१।।
तथापि पार्श्वक्रान्ता स्यादित्याहुरपरे बुधाः ।

इति पार्श्वक्रान्ता[5] [३]

पादं कुंचितमुन्नी[6]योत्प्लुत्य निक्षिप्य [7]भूतले ।।८३२।।
पर[8]जंघासक्तपादं [9]पृष्ठभागे विनिक्षिपेत् ।
तदा मृगप्लुता चारी स्या[10]द्विदूषकसंभवा ।।८३३।।

इति मृगप्लुता [४]

ऊर्ध्वोत्क्षिप्तनिपातेन कुचाग्रगतजानुना ।
स्तब्धोऽन्यो लक्षिते[11]:पाद ऊर्ध्वजानुस्तदा[12] भवेत् ।।८३४।।

इत्यूर्ध्वजानुः [५]

पादं पश्चात् प्रसार्याथ परोर्व[13]भिमुखं तलम् ।
विधाय पादं स्वपार्श्वे[14] न्यस्तपार्ष्णिर्भवेद् भुवि ।।८३५।।
तदालाता भवेच्चारी बालशिक्षानिरूपणे ।

इत्यलाता [६]

जानूर्ध्वं[15] वोरुपर्यन्तमुद्धृत्यांघ्रिं निकुंचनात् ।।८३६।।
मेदिन्यां विन्यसेदग्रे यस्यां सूचीति सा मता ।

इति सूची [७]

आस्फि[16]जं पादमुद्धृत्य न्यसेदग्रेऽचिताह्वयम् ।।८३७।।

---

१. स्व०
२. श्याये०
३. सरो०
४. ०घ्रौ
५. ०ता चारी
६. ०नीत्वो०
७. मूर्धनि
८. ०र०
९. हृष्टपादे
१०. व्यविभूषक०
११. ०यस्य मूर्ध्व०
१२. ०था
१३. ०र्ध्वोभि०
१४. र्वेन्ये स्त....
१५. ०र्वोत्तव्यप०
१६. ०स्थि०

भू[१]सावग्रतं[२]लत्वेन तदा[३] स्यान्नूपुरांघ्रिका ।

इति नूपुरपादिका [८]

*पादं कुंचितमुद्धृत्य तिर्यग्डोलां समाचरेत् ॥८३८॥

भूस्पृष्टान्तर्ग[४]तपार्ष्ण्या न्यसेच्छीघ्रं[५] [स्वपार्श्व]र्वतः ।

तदा निगद्यते चारी डोलापादा मनीषिभिः ॥८३९॥

इति डोलापादा [९]

विधाय नूपुरां चारीं[६] तत्पादं परपार्ष्णिगम् ।

कृत्वा द्रुतं क्षिपेदग्रे यथामुखसमोन्नखम्[७] [?] ॥८४०॥

यदा स्याद् दण्डपादे[८]ति कथ्यते विष्णुसूनुना ।

वलयित्वा पूर्वकायं शिरः पार्ष्ण्यां[९] स्पृशन्निव ॥८४१॥

शिरसो मंडलाकारात्पादमेकं प्रसार्य च ।

क्रियते यो[१०]ऽत्र सा प्रोक्ता विद्युद्भ्रान्ता विचक्षणैः ॥८४२॥

इति विद्युद्भ्रान्ता [११]

अतिक्रान्तं द्रुतं पादं त्र्यश्रोरुपरिवर्त्तनम् ।

कृत्वा तदन्यपादाग्रतलेन भ्रमणं शिरः† ॥८४३॥

---

* 'संगीतरत्नाकरे' तु 'डोलापादा' एवं निरूपिता—पादं कुञ्चितमुद्धृत्य डोलयित्वा च पार्श्वयोः । न्यसेत् पार्ष्ण्या स्वपार्श्वे चेड्डोलापादा तदोच्यते ॥(७।९५४) ।

† सङ्गीतरत्नाकरे 'तनुः' इति पाठो वर्त्तते (७।९५८) ।

१. ०भ्र०
२. ०करत्वे०
३. ०था
४. ०र्जानुपार्ष्णिन्यं०
५. ०त''''त्व०
६. ०रिं
७. ०ख:०
८. ०णीति०
९. ०र्ष्णिं०
१०. यत्र

करोति यत्र सा चारी भ्रमरी कीर्तिता बुधैः ।

इति भ्रमरी[१] [१२]

परो[२]रुमूलपर्यन्तं कुंचितं पादमानयेत् ॥८४४॥
ततो[३] नितम्बाभिमुखीं पार्ष्णिं[४] पार्श्वाख्यजानुकम् ।
कृत्वोत्तानतलत्वेन वलनं क्रियते यदा ॥८४५॥
कटे[५]र्जानोः समानत्वाद्भुजंगत्रासिता मता ।

इतिभुजंगत्रासिता [१३]

त्रिताल[६]ान्तरमुत्क्षिप्तं कुंचितांघ्रि[७] ततः परम् ॥८४६॥
कुर्वन् जंघास्वस्तिकत्वं तत्पार्श्वांघ्रि निपातयेत् ।
य[८]दा धरण्यां पार्ष्णित्वात्तदाऽऽक्षिप्ता निगद्यते ॥८४७॥

[इत्याक्षिप्ता–१४]

विख्यातस्वस्तिकं कृत्वा जंघयो[९]: पादमस्य तु ।
पार्ष्ण्या[१०] द्वितीयाभिमुख्या परो[११]ङ्घ्रिस्पृष्टभूमिग[१२]म्[?] ॥८४८॥
विधायाथ स्वपार्श्वे च विपरीतोरुकं नयेत् ।
तदाविद्धा भवेच्चारी नाट्ये युद्धे च कीर्तिता ॥८४९॥

इत्याविद्धा [१५]

आविद्धांघ्रिनिभो[१३]ऽन्योरुस्थानमंडितपार्ष्णिकम् ।
विधाय किंचिदुत्प्लुत्य भ्रामयित्वा तनुं ततः ॥८५०॥

---

१. ०री चारी
२. ०दो०
३. तोङ्घ्रिकं नाभिमुखं
४. ०र्ष्णि०
५. ०रिजानु समाना स्याद्०
६. ०रा०
७. ०घ्रि
८. ०था
९. ०या
१०. ०र्ष्णि०
११. भ०यो रुस्पृ०
१२. ०कम्
१३. ०भोभ्यो०

पार्श्वे निपातयेदंघ्रिमन्यं तद्वत्समाचरेत् ।
उद्‌वृत्ताख्या तदा चारी भवेदिति विदुर्बुधाः ॥८५१॥
॥इति षोडशाकाशचार्यः[1]॥

उक्ता युद्धनियुद्धस्थाश्चार्यः[2] सौभाग्यसंभवाः ।
गतावेव[3] च युक्तास्ताः कराभिनयवर्जिताः ॥८५२॥
नाट्ये नृत्ते च कर्तव्याः प्रायः संघट्टसूरिभिः ।
पादस्य नृत्ते[4] प्राधान्यं नाट्ये[5] हस्तस्य कीर्तितम् ॥८५३॥
एकस्मिन्नुभयोर्यद्वा प्रयोगे तु क्रमाद् ब्रुवे ।
हस्तौ[6] वा यदि वा पादैः[7] प्राधान्यं भजते यदा ॥८५४॥
प्रथमं संप्रयोक्तव्यस्तदन्यस्तदनन्तरम्[8] ।
समप्राधान्यविषये समेनाभिनयो भवेत् ॥८५५॥
यथा समप्रधानत्वं तथात्र नियमं ब्रुवे ।
यतः पादस्ततो हस्तौ[9] यतो हस्तस्ततस्त्रिकम्[10] ॥८५६॥
चरणानुच[11][रा]ण्याहुरंगोपांगानि सूरयः ।
इत्थं चार्याः प्रधानत्वं यत्र तत्रांगयोजनात् ॥८५७॥
यथा करस्य प्राधान्यं तमुपांगोन्युपासते[12] ।
चारी विधाय बहुधा पादो विश्रमति क्षितौ ॥८५८॥
तथा बहूनभिनयान् कृत्वा हस्तैः[13] कटीतटे ।
नृत्ताभिनयविश्रान्तौ[14] पक्षप्रद्योतको भवेत् ॥८५९॥

१. ०श आका०
२. नृत्तनि०
३. भूतमेव चतुर्था सा क०
४. नाट्ये
५. नृत्ते
६. ०ता
७. ०दाः
८. ०यः त०
९. ०तः
१०. ०तः त्रि०
११. ०चा०
१२. ०गो न्यु०
१३. ०तक०
१४. ०ता लक्ष्यप्र०

पक्षवंचितको वाथ प्रयोज्यो बुधसत्तमैः ।
॥इति द्वात्रिंशच्चारीनिरूपणम्॥

[अथ देशीचारीनिरूपणम्]

रथचक्रा परावृत्ततला[2] नूपुरविद्धका ॥८६०॥
तिर्यङ्मुखा[3] मराला[4] च करिहस्ता कुलीरिका ।
विश्लिष्टा[5] कातरा पार्ष्णिरेचिता[6]प्यूरुताडिता ॥८६१॥

ऊरुवेणी तलो[7]द्वृत्ता हरिणत्रासिका[8] परा ।
अर्ध[9]मंडलिका[10] ति[11]र्यक्कुंचिता च[12] मदालसा[13] ॥८६२॥

संचारितोत्कुंचिता च स्त[14]म्भक्रीडनिका तथा ।
चारी[15] लंघितजंघाख्या स्फुरिताप्यवकुंचिता ॥८६३॥

अपि संघट्टिता खुत्ता स्वस्तिका[16] तलदर्शिनी ।
पुराट्[17]यर्धपुराटी च सरिका स्फुरिका[18] ततः ॥८६४॥

निकुं[19]ट्टिका लताक्षे[20]पाप्यड्डस्खलिति[21]का परा ।
समस्खलिति[22]का भौम्यः पंचत्रिंशदितीरिताः ॥८६५॥

---

१. ०शमस्थमाकाशस्य चार्यः
२. ०त्ताकला०
३. विद्युन्मु०
४. कराली
५. ०शिष्टा
६. ०पूर्यधुता०
७. ०थो०
८. ०ता
९. ०र्थं०
१०. ०ता०
११. तीर्यः
१२. स०
१३. ०स:
१४. नभ्रकदनिता
१५. ०रि०
१६. ०कस्तलवर्धनी
१७. ०प्यर्थपुराती
१८. ०ता
१९. सितकुट्टिको
२०. ०क्षिप्तोप्याड०
२१. ०तका
२२. ०तका

विधाय चतुरश्राख्यं[1] स्थानं पादापसर्पतः। ।
अग्रत[2]ः पृष्ठतो वा च रथचक्रा तथा भवेत् ॥८६६॥
इति रथचक्रा[3] [१]

पश्चाद् व्योमतलत्वेन तद्बहिः प्रसृता यदि ।
सा सप्तधा भवेच्चारी परावृत्ततलाभिधा ॥८६७॥
इति परावृत्ततला[4] [२]

स्वस्ति[5]कस्थानके स्थित्वा सारणे[6] पादपार्ष्णिजे ।
[7]रेच्येते चरणौ यत्र सा स्यान्नूपुरविद्धका ॥८६८॥
इति नूपुरवि[8]द्धका [३]

वर्त्तमानाभिधे स्थाने स्थितौ पादौ तु पार्श्वयोः ।
द्रुतमानेन सरतस्तदा[10] तिर्यङ्मुखा भवेत् ॥८६९॥
इति तिर्यङ्मुखा [४]

[11]नन्द्यावर्ताह्वये स्थाने स्थित्वांघ्री रेचितौ ततः ।
प्रसारितौ क्रमेणाग्रे मराला [12]चेति संभवेत् ॥८७०॥
इति मराला[13] [५]

स्थित्वा स्थाने [14]संहताख्ये घर्ष[15]तश्चरणौ भुवम् ।
[पार्श्वाभ्यां तु यदा सा स्यात्] करिहस्ता तदा मता ॥८७१॥
इति करिहस्ता [६]

न[16]न्द्यावर्त्तांचितौ पादौ यदि तिर्यक्प्रसारितौ ।
तदा कुलीरिका नाम चारो व्यक्ता मनीषिभिः ॥८७२॥
इति कुलीरिका [७]

---

१. ०यः
२. ०भापृष्टतोवाच०
३. ०क्रः
४. ०लम्
५. ०स्थिक०
६. ०जे
७. रज्येते चरणा
८. ०वृद्धिका
९. ०वृद्धिका चारी
१०. ०था
११. संव्या०
१२. ०यति
१३. ०लः
१४. स्यन्दिता०
१५. ०र्षश्चरणकात्रयम्
१६. संव्या

विश्लिष्य पार्ष्णिविद्धाख्यस्थानात् पादौ पुरो[1]ऽथवा [2] ।
पश्चात्प्रसर्पतो यस्यां विश्लि[3]ष्टाख्या तदा भवेत् ॥८७३॥

इति विश्लिष्टा [८]

नै[4]न्द्यावर्त्तस्थितांघ्रिभ्यां पृष्ठ[5]तोऽपसृतिर्यदा ।
क्रियते चेत्तदा चारी कातराख्या निगद्यते ॥८७४॥

इति कातरी[6] [९]

पार्श्वपार्ष्णिगतं स्थानं कृत्वा पार्ष्णि तु रेचयेत् ॥
तदा सा प्रोच्यते नृत्तवेदिभिः पार्ष्णिरेचिता ॥८७५॥

[इति पार्ष्णिरेचिता–१०]

एक[7]पादाभिधे स्थाने स्थित्वा तेनैव ताड्यते ।
[8]परोरुर्यदि सा प्रोक्ता नृत्तज्ञैरूरुताडिता ॥८७६॥

इत्यूरुताडिता [११]

यत्र तु स्वस्तिकौ[9] पादौ करभाभ्यां परावृतौ[10] ।
संघट्टि[11]तस्तदा सद्भिरू[12]रुवेणीति कीर्तिता ॥८७७॥

इत्यूरुवेणी [१२]

पृष्ठभागेनांगुलीनां चरणावुपसर्पतः ।
द्रुतं यत्र तदा प्रज्ञै[13]स्तलोद्वृत्तेति कीर्तितो[14] ॥८७८॥

इति तलो[15]द्वृत्ता[16] [१३]

---

१. ०सिद्धाख्या
२. ०राथ०
३. ०शिष्टा०
४. संख्या०
५. ०ट०
६. ०री
७. ०कापाताभि०
८. स०
९. ०कापा०
१०. ०तम्०
११. ०ट्टित०
१२. कुरुवीणेति
१३. ०ज्ञास्ततोद्०
१४. ०ताः
१५. ०तो०
१६. ०त्तः

कुंचितस्थानके पादौ प्रेत्य[1] स्वस्तिकतां[2] गतौ ।
वलितान्ततलत्वेन[3] समुत्प्लुत्य पुरो यदि ॥८७९॥
[4]पततो यत्र हरिणत्रासिका सा भवेत्ततः ।

इति हरिणत्रासिका [१४]

पार्श्वयोरुभयोः पादौ क्ष्मामुद्घर्षतश्शनैः[5] ॥८८०॥
व्यावर्त्तेते[6] तदा चारी सार्धमण्डलिका भवेत् ।

इत्यर्धमण्डलिका [१५]

तिर्यक् पादः कुंचितस्सन् उत्क्षिप्याक्षिप्यते भुवि ॥८८१॥
यस्यां तिर्यक्कुंचिताख्या चारीति परिकीर्तिता ।

तिर्यक्कुंचिता [१६]

अलक्षितधरित्रीकौ[7] पादौ तु [8]स्खलतो यदि ॥८८२॥
ततो मत्तवदन्यत्र तदा सा स्यान्मदालसा ।

इति मदालसा [१७]

*संकुंचितांघ्रिमुन्नीतः[9] स्थितो[10]न्यचरणे य[11]दा ॥८८३॥
प्रयुक्त[12]: स्थितपाद[13]श्च पार्श्वतः प्रसृ[14]तो भवेत् ।
तदाकार[15]बलेनासौ तिर्यक्संचारिता मता ॥८८४॥

इति तिर्यक्संचारिता [१८]

---

* लक्षितैवं तिर्यक्सञ्चारिता सङ्गीतरत्नाकरे—
आकुञ्चितोऽङ्घ्रिरुत्क्षिप्योत्क्षिप्यान्येनाङ्घ्रिणा यदा ।
युज्यतेऽन्यस्तु संसर्पेत्तिर्यक्सञ्चारिता तदा ॥—(७।९८८)

१. प्रत्य०
२. ०ता ततः
३. ०रल०
४. पतितो
५. क्षात्रमोद्गर्ष०
६. ०त
७. ०का
८. स्वरसौ
९. ०य
१० ०त्वास्यचरणौ
११. त०
१२. ०ज्य
१३. ०दस्थः
१४. ०क्रुतो
१५. ०रा हलेन्ना०

पर्यायेणांघ्रियुगलं[1] किंचिदुत्क्षिप्य कुंचनात् ।
न्यसेदग्रे तदा चारी भवेदुत्कुंचिता मता ॥८८५॥

इत्युत्कुंचिता [१९]

सूचीप्रसृतपादस्य पार्श्वं परतलेन चेत् ।
पुनः पुनः स्पृशेत्तस्यां स्तम्भक्रीडनिका तदा ॥८८६॥

इति स्तम्भक्रीडनिका [२०]

खंडसूच्यभिधे स्थाने पादस्थित्या तु शीघ्रतः ।
आकृष्यान्येन सहितो द्रुतमानेन लंघनम् ॥८८७॥

कुरुते यत्र सा ख्याता जंघा लंघितपूर्विका ।

[2]इति लंघितजंघा [२१]

अन्योन्यघर्षणादत्र गतिश्चरणपार्श्वयोः ॥८८८॥

सत्वरं सा भवेच्चारी नाम्ना स्फुरितसंज्ञया ।

इति स्फुरिता [२२]

ईषत्कुंचितपादाभ्यां पृष्ठतोऽनुसरं[3]क्रमात् ॥८८९॥
[4]प्रवर्तिता तु या चारी सा विख्याताव[5]कुंचिता ।

※इत्यव[6]कुंचिता [२३]

उत्प्लुत्य विषमात्सूचिस्थानाद् भुवि विवर्ततः ॥८९०॥

※ 'क्रमादाकुञ्चिताङ्घ्रिभ्यां पश्चाद्गत्यावकुञ्चिता'
—(सं० र० ७।९९२) इति पाठसंशोधनाधारः ।

१. ०ळं
२. इति जंघालंघितजंघा
३. ०रन्क्र०
४. नर्तयेद् यत्र या
५. ०प०
६. ०प०

पादौ संघट्टतो यत्र तदा संघट्टिता मता ।

इति संघट्टिता [२४]

क्षोण्यां पादतलाग्रेण पातः[१] खुत्तेति कीर्तिता ॥८९१॥

इति खुत्ता [२५]

स्वस्तिकाकारतः सूतः पादैः[२][सा]स्वस्तिको[३]च्यते ।

इति स्वस्तिका [२६]

संहतस्थानकात्पादौ साचितालान्तरस्थितौ ॥८९२॥

स्थितौ चेत् करभाभ्यां सा प्रोच्यते तैलदर्शिनो ।

इति तैलदर्शिनी [२७]

सकृदुद्वृत्तयोरंघ्र्योः[६] कुट्टनात्स्यात्पुराटिका ॥८९३॥

इति पुराटिका [२८]

❀[उद्वृत्तेन निकुट्टेन चरणेन निकुट्टनम् ।
उद्वृत्तस्यान्यपादस्य यत्र सार्धपुराटिका ॥८९४॥

इत्यर्धपुराटिका [२९]

चरणोऽग्रे सरत्येको यत्र सा सरिका मता ।]

[इति सरिका–३०]

पुरः समांघ्रिगमनं यत्र सा स्फुरिका मता ॥८९५॥

[इति स्फुरिका–३१]

❀ (सं० ७।९९६-९६)

१. ०तः कुत्तेति
२. ०दै०
३. ०क उच्यते
४. क०
५. क०
६. ०घ्रिकट्टना स्या०

अंघ्रिणा कुंचिताग्रेण स्थीयते चेन्निकुट्टिका[1]।

इति निकुट्टिका[2] [३२]

प्रचार्य चरणं पश्चाद्विन्यस्य पुरतः स्थितः ॥८९७॥

तेन क्ष्मा[3] कुटचते यत्र[4] लताक्षेपो भवेत्तदा।

इति लताक्षेपः [३३]

❀ ....

... ...

... ...

स्खलितं चरणं[5] साचि कृत्वा[6]र्धः[7]स्खलिता भवेत् ॥८९७॥

†इत्यर्धःस्खलिता [३४]

पुर[9][तः पृष्ठ]तः[10] पादौ स्खलतो युगपद्यदा।

निगद्यते तदा चारी समस्खलितिकाभिधा ॥८९८॥

इति समस्खलिता [३५]

॥इति पंचत्रिंशद्भौमचार्यः॥

❀ अत्र पाण्डुपुस्तके तिस्रः पङ्क्तयः प्रयोजनं विनैव अङ्किताः सन्ति ता इमाः—
इति पञ्चत्रिंशद्भौमचार्यः।
ता पुरुक्षेपा विक्षेपा हरिणप्लुता।
जंघालंघनिकालाता जंघावर्ति च वेष्टना।

† सङ्गीतरत्नाकरे तु 'स्खलिते चरणे तिर्यगड्डस्खलितिका भवेत्' (७।१०००) एवम् अड्डस्खलितिकेति' पाठो वर्त्तते।

१. ०ट्टकः
२. ०कुट्टकः
३. क्षा
४. प०
५. श०
६. क्रु०
७. ०ध स्ख०
८. ०ध स्ख०
९. पुरं····
१०····ता निपादौषलतौ

[अथ देशीचारीष्वाकाशिक्यः]

विद्युद्भ्रान्ता पुरः[1]क्षेपा विक्षेपा हरिणप्लुता ।
अपक्षेपा च भ्रमरी च दंडपादांघ्रिताडिता ॥८९९॥
जंघालंघ[2]निकालाता जंघाव[3]र्त्ता च वेष्टना ।
उद्वेष्टनमथो[4]त्क्षेपः [5]पृष्ठो[त्क्षेपश्च] सूचिका ॥९००॥
[6]विद्धा च प्रॉंवृतोल्लोलाविति [8]चैकोनविंशतिः ।
[9]व्योमगा[स्ता उ]भाभ्यां तु चतुःपंचाशदूचिरे ॥९०१॥
मार्गदेशग[10]ताश्चार्यष्षडे[11]शीतिरिति स्मृताः ।
अग्रभागे समुद्दिश्य पादमेकं शिरस्समम् ॥९०२॥
भ्रामयित्वा भौ[12]लदेशे जंघावक्रं[13] क्षितौ द्रुतम् ।
विन्यसेद् यदि सा चारी विद्युद्भ्रान्तेति कथ्यते ॥९०३॥

इति विद्युद्भ्रान्ता [१]

कुंचितं[14] पादमुत्क्षिप्य पुरश्शीघ्रं प्रसार्यते ।
धरण्यां स्थापयेत् साधु पुरःक्षिप्ता तदा भवेत् ॥९०४॥

इति पु[15]रःक्षिप्ता [२]

व्योमोन्मुखि[16]तलं पादं प्रसार्य सहसा पुनः ।
करोति कुंचनं यत्र विक्षेपा सा निगद्यते ॥९०५॥

इति विक्षेपा [३]

---

१. ०र०
२. ०घितका०
३. ०लावर्तिवेष्ठना
४. ०धोक्षेप
५. उद्धो····
६. उद्धा
७. उत्तम लोल इति
८. वै०
९. विराम····
१०. ०ताचा
११. ०ड्विंशति०
१२. फा०
१३. ०क्रमिति स्मृतम्
१४. ०ता०
१५. ०र०
१६. ०खितलः

पुरोऽङ्घ्रिभ्यां समुत्प्लुत्य[ग]मेनाद्धरिणप्लुता ।

[इति हरिणप्लुता–४]

पादस्य[2] करभाग्रेणान्योरुपृष्ठं तु संस्पृशेत् ॥९०६॥

ततो नितम्ब[3]गः पादः सापक्षे[4]पा निगद्यते ।

*इत्यपक्षेपा [५]

कुंचितांघ्रेः[5] पार्श्वयुग्मभ्रमणा[6][द्] भ्रमरी भवेत् ॥९०७॥

इति †भ्रमरी [६]

पादौ स्वस्तिकमावर्त्य युगपत्तिर्यगुत्क्षिपेत् ।

तदा[7] हि दंडपादेति कथ्यते नृत्यकोविदैः ॥९०८॥

इति दंडपादा [७]

तालत्रयान्तरत्वेन विश्लिष्यांघ्री समुत्पतेत् ।

अन्योन्यतलसंयोगाद्[8] ध्वनिं कृत्वा भुवि न्यसेत् ॥९०९॥

तदांघ्रिताडिता नाम चारी प्रोच्यते बुधैः ।

इत्यंघ्रिताडिता [८]

पादेनाकुंचितं पादं संयोज्योत्प्लुत्य खे[9] ततः ॥९१०॥

स्थितिर्यदा[10] भवेद् भूमौ जंघालंघनिका ततः ।

इति जंघालंघनिका [९]

एकः पश्चाद्गतः पादः तूत्प्लुत्य[स] च वेगतः ॥९११॥

---

* सङ्गीतरत्नाकरे 'अपक्षेपा' इति पाठो वर्त्तते (७।१००५) अतः पाठोऽयं संशोधितः ।

† सङ्गीतरत्नाकरे तु 'डमरो' इति पाठो विद्यते यथा—
'डमर्याकुञ्चितस्याङ्घ्रेर्वामदक्षिणतो भ्रमात्' (७।१००६)

१. ···व०

२. अन्योन्यपृष्टपादस्य करजाग्रेण संस्पृशेत् ।

३. ०जल्पितं पादं

४. ०व०

५. घ्रिः

६. ०ण०

७. ०दाह

८. ०द्दर्नि

९. ०के

१०. ०था

स्थितो[1] यदा[प]रो यत्र, सालाता परिकीर्तिता ।

इत्यलाता [१०]

अन्तर्भ्रमाख्यपादस्य[2] जानुपृष्ठे[3] तलं न्यसेत् ।।९१२।।

ततो बहिर्भ्रमणके[4] जानुपार्श्वे तलं न्यसेत् ।

जंघावर्त्ता[5] तदा चारी भवेदिति विदुर्बुधाः ।।९१३।।

इति जंघावर्ता [११]

आवेष्टयेदंघ्रिणांघ्रि[6] सा चारी वेष्टनं भवेत् ।

इति वेष्टनम् [१२]

वेष्टितोऽयं पृष्ठतोऽङ्घ्रिर्यदि[7] स्यात् सम्प्रसारितः ।।९१४।।

उद्वेष्टनं नाम चारी भवेदिति विदुर्बुधाः ।

इत्युद्वेष्टनम् [१३]

कुंचितं पादमुत्क्षिप्य पूर्वं पश्चात्समालिखेत् ।।९१५।।

आजानु[8] नृत्तशास्त्रज्ञैरुत्क्षेपः परिकीर्तितः ।

इत्युत्क्षेपः [१४]

केवलं पृष्ठभागोत्थः पृष्ठोत्क्षेप[9] इतीरितः ।।९१६।।

इति [10]पृष्ठोत्क्षेपः [१५]

*[11]तीक्ष्णाग्रपादमन्योरः[12] प्रान्तभागं §स्पृशन्निव ।

पुरः प्रसारयेच्चारी तदा सूचीति कथ्यते ।।९१७।।

इति सूची [१६]

---

* सङ्गीतरत्नाकरस्य सूचीलक्षणं प्रसङ्गेऽस्मिन्नवलोकनीयम् ।
यथा—उरःपार्श्वेन विन्यस्य पदं यत्र प्रसारयेत् ।
तीक्ष्णाग्रीकृत्य तामाह सूचीं श्रीकृष्णवल्लभः ।। (७।१०१४)

§ 'स्पृशन्' इति नर्त्तकस्यैव विशेषणं भवितुमर्हति ।

१. ०तिर्यथा
२. अन्तःभ्रमाख्ये करणे
३. ०मृद्धतले
४. परभ्र०
५. ०र्पिता
६. ०पिष्ट०
७. स च वांघ्रिर्यदि प्रसारितः
८. ०नुनृत्तं शा०
९. ०टोलाप
१०. पृष्टो०
११. क्षीणाग्र०
१२. ०रोरन्तर्भागं

नरस्थानानि षट् स्त्रीणां सप्त[1] देशगतान्यथ[2] ।
त्रयोविं[3]शतिरेवासनस्थानि नव, षट् तथा ॥१२४॥
सु[4]प्तस्थानानि, तेषां तु क्रमं लक्ष्माभिदध्महे ।
वैष्णवं समपादं च वैशाखं मण्डलं तथा ॥१२५॥
स्यात्प्रत्यालीढमालीढं स्थानान्येतानि षड् नृणाम् ।
समस्थितांघ्रिरन्यं तु त्र्यश्रं कृत्वा विनिक्षिपेत् ॥१२६॥
सा[5]र्धद्वितालां[6]न्तरा[लि] नै[7]ता जंघाल्पगामिनी[8] ।
एवं यदि भवेत्स्थानं वैष्णवं विष्णुसंभवम् ॥१२७॥
स्वाभाविकी[9] क्रिया सा[10] स्यात्संलापे बहुकार्यगे ।
नटे[11]न विष्णुदेवेन सूत्रधारेण वा ततः ॥१२८॥
श्रावणं [क्रियते चात्र] पात्रैरुत्तममध्यमैः ।

इति वैष्णवस्थानकम् [१]

चरणौ स[12]-ष्ठत्वेन तालान्तरगतौ समौ ॥१२९॥
क्रियते तत्र यत्स्थानं समपादं तदुच्यते ।
आशीर्वादस्वीकृतौ तन्मध्यर्व[13]क्षिनिरीक्षणे ॥१३०॥
[14]वरकन्याविनोदे च स्य[15]न्दनस्थे च लिंगिनि ।

इति समपादस्थानम् [२]

भूमौ निषण्णौ चरणौ सार्धतालत्रयान्तरे ॥१३१॥

---

१. ०तदे०
२. ०था
३. ०दशतिरेवाष्टनिष्ठानि
४. स्तुत०
५. पार्श्वद्वि०
६. ०लां तदा...
७. तना
८. ०ता
९. ०का
१०. सास्यात्तालवै बहु०
११. ०तेन
१२. ०सोष्ठ०
१३. ०मक्षितिरी०
१४. वीरकं स्याद्विनो०
१५. चन्दनं स्फीत पिनि

पादयोः संहतं तत्स्यात्पुष्पांजलिसमर्पणे ।।९६७।।

इति संहत[स्थानकम्–४]

स्वाभाविकमृजुत्वे[2] च वितस्त्यन्तरितौ[3] यदा ।
चरणौ समपादाख्यं[4] स्थानकं तदुदाहृतम् ।।९६८।।

इति समपादस्थानकम् [५]

समस्थितस्य पादस्य जानुभ्याण्वे परस्य तु ।
अङ्[घ्रेः पार्श्वक–] संयोगादेकपादं[5] विदुर्बुधाः ।।९६९।।

इत्येकपाद[6][स्थानकम्–६]

एकः पुरः स्थितः पादः पश्चादन्यस्तु भूतले ।
संश्लि[7]ष्टांगुलि [पृ][8]ष्ठत्वान्नी[9]यते यत्र तत्तदा ।।९७०।।

पृष्ठो[10]त्तानतलं नाम स्थानकं कथ्यते बुधैः ।

इति पृष्ठो[11]त्तानतलस्थानकम् [७]

नन्द्यावर्त्ताह्वयस्यात्र स्थानस्य च[12]रणौ खलु ।।९७१।।

अष्टादशांगुलं[13] मध्ये विहाय वसतो यदि ।
स्थानकं चतुरश्राख्यं तदा स्यादिति कीर्त्यते ।।९७२।।

इति चतुरश्रस्थानकम्–८

अंगुष्ठ[14]स्पृष्टपाणित्वात्पार्ष्णिविद्धं तदुच्यते ।

---

१. ०नर्मणि
२. ०मनुत्वे
३. ०तो यथा
४. करणं
५. ०श्वं
६. ०दम्
७. ०सृतेष्टा
८. ०ष्टत्वा०
९. ०दुगी०
१०. ०टोत्थान०
११. ०ष्ठोत्थान
१२. च गणा यदि
१३. ०लौ
१४. ०ट०

※अंचितांघ्री[1] प्रविस्तार्य [यत्रोरः] किञ्चिदुन्नतम्[2] ।
कृत्वा करावूरुकटिन्यस्[3]तौ चेत्स्वस्थमुच्यते ।।१९१।।

इति स्वस्थस्थानकम् [१]

एकः[4] किंचिद्गतस्त्वन्यः किंचिदग्रप्रसारितः ।
तदा शिरः पार्श्वगतं[5] क्रियते चेन्मदालसम् ।।१९२।।

मदे [6]वियोगे निर्वेदे शोके तत्स्याद् विपद्यपि ।

इति मदालसस्थानकम्[7] [२]

हस्तौ चिबुकविन्यस्तौ[8] शिरः स्याद् भुजसन्नतम् ।।१९३।।

नयने क[वोष्ण]युक्ते तदा तत्क्रान्तमुच्यते[9] ।
निगृहीते निद्रिते च दुःखाश्लि[10]ष्टे [11]इतीर्यते ।।१९४।।

इति [12]क्रान्त[स्थानकम्—३]

ऊरू बाहू च पादौ च ईषद्विस्ता[13]रितौ यदा[14] ।
तदा निमीलिते नेत्रे तद् विष्कम्भमुदीरितम् ।।१९५।।

※ पाठसंशोधनाधारः—
विस्तारिताञ्चितावङ्घ्री यत्रोरः किञ्चिदुन्नतम् ।
करावूरुकटिन्यस्तौ स्वस्थं स्थानं तदुच्यते ।।
—(सं० र० ७/१०९५)

१. ०घ्रि
२. ०मद्भुतम्
३. ०सो
४. एकत्रिंशद्०
५. ०तः
६. नियोग०
७. ०कानि
८. एकस्०
९. ०प्रा०
१०. ०श्लिष्य०
११. ०मि०
१२. कान्तम्
१३. ०त०
१४. ०था,

संफेटकश्चेति[1] भिदश्चत्वारः परिकीर्तिताः ।
कैशिक्यां नर्मसंज्ञोऽथ नर्मस्फुंजस्ततः परम् ॥१०१२॥

नर्मस्फोटो नर्मगर्भश्चे[2]ति भेदचतुष्टयम् ।
उदाहरणमेतेषां काव्यालंकारलक्षणे ॥१०१३॥

वीक्ष्यतां ग्रन्थविस्तारभयान्नोक्तं मयाधुना ।

॥इति वृत्तिलक्षणम्॥

तिर्यङ्मुखौ च चरणावेकतालान्तरत्वतः ॥१०१४॥

तै[3]लसंस्पृष्टधरणि[4]र्व्योम्नि जानूपमा कटिः ।
समं शिरस्समा दृष्टिर्जा[5]न्वोः पृष्ठतलौ करौ ॥१०१५॥

वक्षस्समं समौ स्कन्धौ यत्र तन्मण्डलं मतम् ।
इन्द्रादिदैवतं प्रोक्तं मुनिभिर्भरतादिभिः ॥ १०१६॥

कश्यपादिमुनीन्द्रास्तु चतुस्तालान्तरं जगुः ।

॥इति मण्डललक्षणम्॥

आनन्दस्याश्रया भावा भावानां[6] नर्त्तनं तदा ॥१०१७॥

नर्त्तनस्य तु पात्रं स्यात्तस्मात्पात्रस्य लक्षणम् ।
प्रविमुग्धं मध्यमं च प्रगल्भमिति तत्त्रिधा ॥१०१८॥

इति यद्वृत्तिवादेन गुणाधिकतमं क्रमात् ।
माधुर्याधरवक्षोजै[7]कपोलोरुकटीतटम् ॥१०१९॥

---

१. संपीठकश्चेति शिदा०
२. ०चि०
३. ता०
४. ०णे०
५. जा०
६. भ्यां
७. ०जे

नानादेशसमुद्भूतं लक्षणं यन्मनोहरम् ।
देशीति कथ्यते तज्ज्ञै[1]स्तत्साधारणलक्षणम् ॥१०२९॥

दशधा ब्रूमहे भावललितं तत्सुशोभितम् ।
चा[2]लिश्चालि[3]वडश्चापि[4] लढिः सूकमुरो[6]ङ्गणम् ॥१०३०॥

धँसकश्चांग[हारः स्यादोयारो] विर्हसी मनः ।
लास्यांगानि बुधैः सम्यग् भाषितानि पुरातनैः ॥१०३१॥

कैशिकीवृत्तिसम्पन्नं सविलासं मनोहरम् ।
सतालललितं स्निग्धं लयत्रयविभूषितम् ॥१०३२॥

अतिद्रु[9]तविलम्बाभ्यां न कुर्यादिति[10] वा लयौ ।
पादोरुकटिबाहूनां[11] चलनं युगपद् भवेत् ॥१०३३॥

चलनं चतुरश्रं वा त्र्यश्रं वा [चारु] चारतः ।
[एवं][12] चरेत्तदा[ख्याता] चालि[13]श्चारी त्वियं भवेत् ॥१०३४॥

इति चालिः [१]

स[14]वात्राभि[मुखप्राया चालिश्चालिवडो] भवेत् ।

[इति चालिवडः—२]

सुकुमारक्रियायु[15]क्तं तिर्यक्चालिसमन्वितं[16]म् ॥१०३५॥

---

१. ०ज्ञैः० तः०
२. शात०
३. ०तिपद०
४. ०कि
५. ०लस्तुक०
६. ०रोग०
७. लस्ति०
८. ०हारो
९. ०ध्रु०
१० ०दितवाद्ययोः
११. व०
१२. चारेतकदा''''
१३. ०लि चारीरिदं
१४. स एवा०
१५. ०मुक्तां
१६. ०ताम्०

[इत्योयारकः—८]

भवे[1]त्स्मितेन विहसी शृंगाररसपूरितः ।

*प्रैं[2]त्यग्रभङ्गिभाक्स्तोको भवेन्नृ[3]त्तादिषु क्रमात् ॥१०४१॥

इति विहसो [९]

स्थैं[4]यांगलयनिष्पन्नश्रिया चतुरता मनः[5] ।

इति मनः [१०]

॥इति देशीदशलास्याङ्गानि॥

[अथ रेखालक्षणम्]

शिरोमुखानामंगानां लक्षणक्रमयोजने ॥१०४२॥

सत्यं का[6]यस्थितिस्तत्र मनोनेत्रापहारिणी ।

भवेद्यदि तदा रेखे[7]त्युच्यते नृत्यकोविदैः ॥१०४३॥

॥इति रेखालक्षणम्॥

[अथ सभापति—लक्षणम्]

मान्यामान्यविचारज्ञः सद्गुणग्रहणाग्रणीः ।

वाग्मी निर्मत्सरश्शान्तः [8]श्रीमान् वितरणाश्रयः ॥१०४४॥

गम्भीरः कीर्तिमांश्चाथ मेधावी धारणान्वितः ।

नानाकलासु कुशलः सुशीलस्सर्वरीतिषु ॥१०४५॥

पदवाक्यप्रमाणज्ञः परचित्तप्रमाणवित् ।

तूर्यत्रितयजोवज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥१०४६॥

---

* सङ्गीतरत्नाकरे—

स्मितं स्याद् विहसी यस्तु शृङ्गाररसनिर्भरः ।

अभ्यस्तादन्य एवातिसूक्ष्मप्रत्यग्रभङ्गिभाक् ॥ (७।१२१४-१५½)

१. दभयेन रहसि

२. प्रत्यंगरविगस्तोको

३. निता""दिषु

४. स्थेया०

५. ०ता

६. नास्य

७. ०भे०

८. ०श्रमान् विकरणा०

प्राप्य रंगस्थलं साम्यदायिकास्तदनन्तरम्[1] ।
कृतपक्रमयोगेन स्थित्वा श्रुतिसमन्विताः[2] ॥१०५५॥
मेलापकं वादयेयुः प्रथमं गंजराह्वयम्[3] ।
ततो यवनिकामध्ये गृहीत्वा कुसुमांजलिम् ॥१०५६॥
पात्रं तिष्ठतु समागत्य स्थानं सौ[4]ष्ठवसंयुतम् ।
ततः [5]परं हि वाद्यान्ते पटाक्षेपे प्रसारिते ॥१०५७॥
यत्या प्रविश्य[6] रंगं च भावज्ञैः [सुष्ठु] सूचितम् ।
तदनूपर्शमाख्ये सत्प्रबन्धे बोधिते सति ॥१०५८॥
उक्तलक्ष्माश्रिते रंगमध्ये पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।
यतस्सुरेशो रंगस्थः तस्य प्रीतिकरो मतः ॥१०५९॥
तदनूपर्शमाख्येन वाद्येन सह केवलम् ।
नृत्तांगैरेव यत्पात्रं नृत्ये (द्) धर्ममनोऽन्वितम् ॥१०६०॥
पदमोता[10] च कवितं[11] मलपा[12] वत्सकावपि ।
[13]रिगोणी [14]तुडि[केत्ये]भिः प्रबन्धैः शास्त्रभाषितैः ॥१०६१॥
यद्वा[15] नवकविप्रोक्तप्रबन्धैर्वाद्यजातिजैः ।
अथवा चतुरश्रांगैस्त्र्यश्राङ्गैर्वोभयाङ्गकैः ॥१०६२॥
कुर्यादुक्तं तदा शुद्धप्रबन्धैर्धातुसंभवैः ।
पात्रं विधाय ललितं नाट्यादित्रितयं ततः ॥१०६३॥

---

१. सान्द्रदा०
२. ०ता
३. जग०
४. ०ष्ट०
५. परम वा०
६. रङ्गभूमि भावज्ञसूचितम्
७. ०समा०
८. ०समा०
९. नाट्येन
१०. ०रा
११. ०लि०
१२. ०या मत्सकादपि
१३. गोणीतो
१४. ''''रूस''''
१५. ०दा

[अथ कुतपलक्षणम्]

[1]कुतप–रूपमित्याहु[2]स्त्रिधा गुणविभेदतः ।
[3]ततावनद्धनाट्यानां संबन्धत्वेन लक्ष्यते ॥१०७३॥
[4]ततसंबन्धैश्च कृतस्तथोक्तो भरतादिभिः ।
वराट-लाट-कर्णाट-मगध-मद्रादि-देशजैः ॥१०७४॥
नानाभिनयरूपज्ञैः ततश्चारीविशारदैः ।
आलीढादिस्थानकेषु सुघटैः परिपूरितः ।
समूहः कथ्यते [5]नाट्य–कुतपश्चेति तद्विदैः ॥१०७५॥

॥इति कुतपत्रयलक्षणम्॥

इति श्रीमद्विप्रकुलवर्य–भट्टार[6] [क]–
विट्ठ[7]लेश्वरनन्दनसूक्ष्मभरताचार्य-रायनयकार–
तोडरमल्लाभिनव–भरताचार्य-श्रीलक्ष्मीनारायणविरचिते
संगीतसूर्योदये नृत्ताध्यायो द्वितीयस्समाप्तः ॥

इति सङ्गीतसूर्योदयप्राच्यां द्वितीयो नृत्ताध्यायः ॥

---

१. चित्रन्तु
२. तथा नवत्वं वाद्यानां
३. ततः सम्बन्धैश्च कृतः सनोच्य
४. वाद्यैः
५. रू०
६. ०विटले०

*एवं वीणाद्वयं कुर्यात्तत्रैका ध्रुवसंज्ञिका ।
अन्या चलाह्वया तस्यां[2] च्युतास्तन्त्रीस्तु कारयेत् ॥८॥
उपान्त्यश्रुतिसाध्येन[3][4] चतुर्वारं पुनः पुनः ।
कुर्यात्तदा स्वरा सप्तौचलायां यान्ति[5] लीनताम् ॥९॥
द्वितीयस्यां[7] सारणायां निगावुक्तौ ततः परम् ।
[10]तृतीयस्यां रिधौ[11] तद्वच्चतुर्थ्यां समपाः क्रमात् ॥१०॥
ततः परं रक्तिहीना न कार्या सारणा बुधैः ।
[12]अवस्थिता क्रिया तत्र इयत्तेति च या मतिः ॥११॥
[13]श्रुतीनां दृश्यते तज्ज्ञै[14] ध्रुवायां व्यक्तिलक्षणम् ।
एवं स्थानत्रयं कुर्य्यात् षट्षष्टिश्रुतिसम्मतम् ॥१२॥

[इति सारणाचतुष्टयम्]

[अथ मन्द्रसप्तकश्रुतिनामानि]

तासां श्रुतीनां नामानि पूर्वोक्तानि क्रमाद् ब्रुवे ।
†मन्द्रा चैवा§नुमन्द्रा च घोरा घोरतरा तथा ॥१३॥

---

* एवं वीणाद्वयमित्यारभ्य 'ध्रुवायां व्यक्तिलक्षणम्' एतावान् भागः आदर्शपुस्तके भ्रान्त्या अग्रे 'स्याद्द्वाविंशतिका तत्रे निषादस्वरवादिनी' —इति श्लोकानन्तरमङ्कितस्तथापि प्रसङ्गानुरोधेनात्रैव संगृह्यते ।

† प्रायेणाऽत्रत्यानि षट्षष्टि-श्रुति-नामानि "संगीतसमय-सारं" पुरस्कृत्योपनिबद्धानि विद्यन्ते ।

§ 'सङ्गीतसमयसारे' (१-१९) अतिमन्द्रेति पाठो वर्त्तते ।

१. अस्या
२. प्रधृती तन्त्रिस्तु
३. उत्पत्या
४. ०योन
५. ०प्त
६. नी
७. ०यास्यां
८. ०णीयां
९. विशालुप्ता
१०. त्रितयस्यां
११. ०दौ
१२. अनसूया
१३. श्रुतिना
१४. ०ज्ञैः द्रुता०

*भोगादित्या मनोरामा सुस्निग्धा च तथा परा ।
†दिव्यदेहा सुललिता [१]विद्रुमा च तथा परा ॥२०॥

महार्का[२] शंकिनी रौका[३] लज्जा चैव तथा परा ।
[४]काली सूक्ष्मातिसूक्ष्मा च ¶पुष्पा चैव सुपुष्पिका ॥२१॥

विस्पष्टा काकली चैव कराली च तथा परा ।
विस्फोटा[५]न्तर्भेदिनी च इत्येतास्तारसप्तके ॥२२॥

[इति तार-सप्तकश्रुतीनां द्वाविंशतिर्नामानि]

[अथ स्वर-स्थानानि]

श्रुत्यन्तरास्स्वरास्तस्मात् स्वरस्थानानि वच्म्यथ ।
तत्र [६]षड्जस्य तुर्या स्यात्सप्तमी ऋषभस्वरा[७] ॥२३॥

ततो गान्धारसंस्थाना नवमी स्यात्ततः परम् ।
त्रयोदशी श्रुति[८]स्तत्र मध्यम-स्वरवादिनी ॥२४॥

पंचमस्य[९] सप्तदशी ध[१०]स्य विंशतिका श्रुतिः ।
स्याद् द्वाविंशतिका तत्र निषादस्वरवादिनी ॥२५॥

[इति स्वर-स्थानानि]

---

* 'संगीतसमयसारे' (१-२६) 'दिव्याङ्गा'—इति पाठोऽस्ति ।
† 'सङ्गीतसमयसारे (१-२५) 'भोगवीर्य्या—इति पाठो विद्यते ।
¶ 'पुष्टा चैव सुपुष्टिका'—इति पाठः (सं० स० सा० १-२७)

१. दि०
२. ०काशी शाङ्किनी
३. च कालजाता
४. राममाक्षालिसूक्ष्मा
५. ०टकान्त०
६. षष्ठश्चतुर्था
७. ० राः
८. ०ती०
९. ०मः स्यात्
१०. न स्याद्०

चतुःश्रुतित्वमायाति स्वाधारश्रुति-संश्रयात् ।
इति द्विधा मध्यमः[2] स्यात्पंचमस्तु निगद्यते ॥३५॥

ग्रामे मध्यम-संज्ञे तु पंचमस्त्रि[3]श्रुतिर्भवेत् ।
साधारणे मध्यमे तु स पुनः[4] स्याच्चतुःश्रुतिः[5] ॥३६॥

इति पंचमभेदौ द्वौ धैवतस्तु[6] कदा भवेत् ? ।
[7]धैवतो मध्यमग्रामे पंचमोच्चारणां श्रुतिम् ॥३७॥

गृहीत्वा प्रोच्यते तेन चतुःश्रुतिरितीरितः ।
निषादस्[तु त]तो द्वेधा षड्ज-साधारणे पुनः ॥३८॥

षड्जस्याद्यां श्रुतिं प्राप्य त्रिश्रुतिः, काकली [10]स्मृतः ।
चतुःश्रुतिर्भवेदेवं द्वादशस्वरयोजना ॥३९॥

[इति विकृतस्वराः]

[अथ षड्जग्राममध्यमग्रामलक्षणम्]

पंचमस्तु चतुर्थ्यां[11] तु श्रुतौ वसति चेत्तदा ।
षड्जग्राम इति ज्ञेयः, [12]स्वोपान्त्यायां श्रुतौ यदि ॥४०॥
सपंचमस्वरो, ग्रामो मध्यमाख्यः प्रकीर्तितः ।

॥ इति षड्जग्राम-मध्यमग्रामलक्षणम् ॥

[अथ मूर्छनाप्रकरणम्]

ग्रामयोरनयोश्शुद्धा[13]ः प्रत्येकं सप्तमूर्च्छनाः ॥४१॥

---

१. स्याधा०
२. ०मा०
३. ०मश्रुतिभिर्भ०
४. एतत्०
५. ०तेः
६. दै०
७. दै०
८. ०दो....
९. ०ङ्क्तं
१०. श्रुते
११. ०र्थां तु
१२. सोपा०
१३. ०धौ

❀नन्दा वि[शाला सु]मुखी चित्रा चित्रवती शुभा ।
आलापा चेति गान्धार[6]-ग्रामे स्युः सप्त मूर्च्छना[7]: ॥५६॥

[इति गान्धारग्राम-सप्तमूर्च्छनानामानि]

अस्याऽपि मध्यगान्धारमूला प्रथम-मूर्च्छना ।
ततष्षण्मूर्च्छनाः पूर्व-क्रमेण परिभाषिताः ॥५७॥

॥ अथ गान्धारग्राम-सप्तमूर्च्छना-मण्डलम् ॥

ग	म	प	ध	नि[1]	स	रि
रि	ग	म	प	ध	नि	स
स	रि	ग	म	प	ध	नि
नि	स	रि	ग	म	प	ध
ध	नि	स	रि	ग	म	प
प	ध	नि	स	रि	ग	म
म	प	ध	नि	स	रि	ग[10]

॥इति गान्धारग्राम-सप्तमूर्च्छना-मण्डलम्॥

[अथ-स्वर-प्रस्तार-लक्षणम्]

येन केनाऽपि चोद्दिष्टं क्रमं पूर्वं लिखेत्ततः ।
तत्क्रमापेक्षया [1]पूर्व-पूर्वभूतस्वरं[2] परात् ॥५८॥
अथ स्थाप्यः स[3] पूर्वस्थस्ततो [मूल]क्रमे यदि ।
वर्त्तते चेत्तं विहाय तत्पूर्वं त्व[4]परादधः ॥५९॥
न्यसेत्तं दक्षिणे शेषं यथोपरि लिखेत्ततः ।
षष्ठमूलक्रमेणैव न्यसेल्लक्ष्यविचक्षणः ॥६०॥

❀ इमान्येव गान्धारग्राममूर्च्छनानामानि 'संगीतमकरन्दे ( ) 'संगीत-समयसारे' ( ) चाङ्कितानि सन्ति ।

१. ....मन्वा
२. ०रे
३. मूर्छिताः
४. ०श्रुतिमण्डलं लिख्यन्ते एतदेव ।
५. द
६. सा
७. वं
८. ०रो परान्
९. ०सुपूर्वस्तु तत....
१०. ....क्षणे
११. स्व०

मूलादेकैककोष्ठोनतयाऽधो दक्षिणावधि ।
षट् पंक्तयो भवन्त्येवं लिखिते सति, पंक्तयः ॥६८॥
सप्त स्युस्तत्रपूर्वस्यां पङ्क्तौ प्रथममन्दिरे ।
एकांकं विलिखेत्तस्यां शेषकोष्ठेषु खं लिखेत् ॥६९॥
ततः पङ्क्तौ द्वितीयायां [वामाद्ये] स्यादधःस्थिते ।
मन्दिरे पूर्वमेकांकं विलिखेत्तदधः पुनः ॥७०॥
कोष्ठाभावाद् द्वितीयस्यां शून्यस्याध[2]ःस्थमन्दिरे ।
वामान्त्याङ्कात् समाहृत्या द्यङ्कं कृत्वा लिखेत्ततः ॥७१॥
तदधः कोष्ठसद्भावाद् द्वितीयत्वाद् गुणद्वयम् ।
चतु[3]रङ्कं लिखेदे[त्र] पुनरित्थं च संस्थितान् ॥७२॥
अङ्कान् संयोज्य शून्याधःकोष्ठे विन्यस्य पूर्ववत् ।
तदन्ते तदधोऽधस्तात् कोष्ठे संख्यागुणान्न्यसेत् ॥७३॥
अष्टाविंशतिकोष्ठेषु लिखेत्तेषु क्रमादिति ।
स मेरुः खण्डसंज्ञः स्यात् स मेरुर्लिख्यतेऽधुना ॥७४॥

तद्यथा— [अथ खण्डमेरुः]

❀						
स	रि	ग	म	प	ध	नि
१	०	०	०	०	०	०
	१	२	६	२४	१२०	७२०
		४	१२	४८	२४०	१४४०
			१८	७२	३६०	२१६०
				९६	४८०	२८८०
					६००	३६००
						४३२०

॥इति स्वरप्रस्तारखण्डमेरुः॥

❀ आदर्शपुस्तके यद्यपीदं चक्रमग्रेंकितं वर्त्तते तथापि प्रसंगतोऽत्रैव संयोजितम् एवमस्ति मूलस्थं चक्ररूपम् ।

१	०	०	०	०	०	०	
		१	२	६	२	१२	७२
		४	१२	२८	१४	१४४	
			११	१२	३६४		
				९६	४२०		
				९६			

१. कोष्ठेन तयाधो २. ०ध० ३. ०रन्तं ४. ०द्वि…

क्रमं विलिख्य चान्त्यो यो लोष्टो[1] यावतिथे गृहे ।
निवसत्यथ मूलान्त्यात्पूर्वं तावतिथः[2] स्वरः ॥८२॥
नष्टस्यान्त्यो भवेदेवमवशिष्टस्वराः क्रमात् ।
स्वरानेवं समुद्धृत्य तत्र पूर्वस्वरक्रमात् ॥८३॥
[3]न्यसेन्नष्टस्य तानस्य दृश्यते रूपमद्भुतम् ।

॥इति नष्टम्॥

[अथ काकल्यन्तरलक्षणम्]

यदा निषादष्षड्जस्य श्रुतिद्वन्द्वं समाश्रयेत् ॥८४॥
स काकली[4] स्याद् गान्धारो मध्यमस्य श्रुतिद्वयम् ।
स्वीकरोति यदा तन्नामान्तरस्वर उच्यते ॥८५॥

॥इति काकल्यन्तरलक्षणम्॥

[अथ साधारणम्]

साधारणं द्विधा तत्र स्वराद्यं जातिपूर्वकम् ।
स्वरसाधारणं तत्र चतुर्विधमितीरितम् ॥८६॥
काकल्यन्तरषड्जाश्च मध्यमश्च क्रमादमी ।
साधारणविशेष्यत्वेनोच्यन्ते भरतादिभिः ॥८७॥
तत्र साधारणं नाम काकली स्यान्निषड्जयोः[5] ।
साधारणत्वं तस्यातो विदुः साधारणं बुधाः ॥८८॥
अन्तरस्याऽपि गमयोस्तथा साधारणं भवेत् ।
काकल्यन्तरयोस्तत्र लक्षणं ब्रूमहेऽधुना ॥८९॥
प्रथमं षड्जमुच्चार्य काकलीधै[6]वतं ततः ।
क्रमादुच्चारयेदेवं मध्यमं च ततः परम् ॥९०॥

---

१. ०ष्ठो
२. ०थ०
३. तथा नष्ट०
४. ०ल:
५. ०षण्णयोः
६. ०दै०

[अथालङ्कारप्रकरणम्]

अलंकरोति यो रागं मूर्च्छना–जाति-वर्णगैः ।
स्वरैश्शुद्धैश्च विकृतैः षा[1]डवौडु[2]वभूषितैः ॥१००॥
नानाचित्रकलायोगे [3]सोऽलंकारोऽभिधीयते ।
यथा लोके मनुष्याणां किरीटकटकादयः ॥१०१॥
तथैव सर्वरागाणामलङ्कारो[4]ऽभिभूषणम् ।
तस्मादस्मिन्नलङ्कारलक्षणं व्याहरामहे ॥१०२॥
अलंकारस्वरूपं स्याद् विशिष्टं वर्णगुम्फनम् ।
तस्य भेदास्तु बहवस्तेषु स्थायिगता दश ॥१०३॥
सलक्ष्यं ब्रूमहे, तावत्तस्य संज्ञाविधं ब्रुवे ।
मृदुप्रसन्नमन्द्रा[5]श्च पर्या[6]या इति कीर्तिताः ॥१०४॥
दीप्तस्तारस्य पर्यायो मन्द्रो[7] मण्डलमस्तकः ।
तारस्वरस्तु[8] दिव्योर्ध्वरेखाराजितमस्तकः ॥१०५॥
प्लुतस्त्रि[9]स्स्वरसंज्ञातो लिपिरेषा निरूपिता ।
अस्मिन् प्रकरणे मन्द्रो[10] मूर्च्छनाप्रथमस्वरः ॥१०६॥
लिखेत् प्रतिकलायां तु मूलस्वरवियोगतः ।
प्रसन्ना[11]दिः प्रसन्ना[12]न्तः प्रसन्नाद्य[13]न्तभूषितः ॥१०७॥

---

१. क्षा०
२. ०ड०
३. सोलं०
४. ०रोभि०
५. ०द्र०
६. ०य
७. ०द्र०
८. स्य
९. ०त्रिस्वरसंज्ञावलिर्येषां
१०. ०द्रा
११. नधीः
१२. ०नांकः
१३. ०द्यंक०

ऋषभादिस्वराः सर्वे दीप्ताः स्युः स्थायिनं विना ।
[1]सं रिं सं । सं गं मं सं । सं [पं] धं निं सं ।

इति *प्रस्तारः–[६]

मन्द्र[2]तारविपर्यासात् तं प्रसादं विदुर्बुधाः ॥११४॥

स[3] रि सं [संगमसं । संपधनिसं]

[इति प्रसादः–७]

॥ इति स्थायिगतालंकारा[4]ः ॥

अथारोहिगतेष्वाद्यो विस्तीर्णः स्यात्ततः परम् ।
निष्कर्षो गात्रवर्ण[5]श्च बिन्दुरभ्युच्चयस्ततः ॥११५॥
हसितप्रेङ्खिताक्षिप्तसन्धिप्र†च्छादितास्तथा ।
उद्गीतोद्वाहितौ[6] तद्वत् त्रिवर्णो[7] वेणिरित्यमी ॥११६॥
द्वादशारोहिवर्णस्थालंकाराः परिकीर्तिताः ।
यत्[8] षड्जादिनिषादान्तं क्रमादारोहणं भवेत् ॥११७॥
प्रतिस्वरेण दीर्घेण विस्तीर्णः[9] कथ्यते बुधैः ।

सा री[10] गा मा पा धा नी[11]

इति विस्तीर्णः–[१]

---

* 'सङ्गीतरत्नाकरे' तु प्रस्तारलक्षणमेवं निरूपितम्—दीप्तान्तश्चेत्प्रतिकलं प्रस्तारः सोऽभिधीयते ।
सं रि सं संगमसं संपधनिसं (१–१३)

† सङ्गीतरत्नाकरे—'प्रच्छादन' (१-१४) इति पाठो वर्त्तते ।

१. सरिस । सगमस । सधनिस
२. मद्र०
३. सिं रिं सिं
४. ०रः
५. ०र्णा०
६. ०तस्त०
७. ०र्णा
८. यं
९. ०र्णं
१०. नी
११. नि

स्वरद्वयं समुच्चार्य पूर्वमेकं परं तथा ।
क्रमादारोहयेत्तन्त्र्यां प्रेंखितं[1] प्रेंखितो मतः ॥१२३॥

सरि । रि ग । गम । मप । पध । धनि

इति प्रेंखितः [६]

एकान्तरस्वरयुगं पूर्ववत्[2] पूर्वयोगतः ।
उच्चार्यते चेदारोहिवर्ण[3] आक्षिप्त उच्यते ॥२४॥

सगग । गपप । पनिनि

[4]इत्याक्षिप्तः [७]

त्रिभिः स्वरैः प्रबन्धस्त्वं पूर्वैकस्वरयोगतः ।
क्रमादारोहणं यत्र तदा प्रच्छादितो मतः ॥१२५॥

[सरिग । गमप । पधनि ।]

[इति सन्धिप्रच्छादितः–८]

मूर्च्छनायां कलायुग्मं कुर्यात्त्रित्रिस्वरात्मकम् ।
तस्य[5] चाद्यस्त्रिवारं चेत्तदोद्गीतः प्रकीर्तितः ॥१२६॥

सससरिग । मममपध ।

इत्युद्गीतः [९]

उद्गीतकलयोरादिस्वरस्या[6]म्रेडितं यदा ।
स्वीकरोति द्वितीयो यस्तदोद्वाहित उच्यते ॥१२७॥

स रि रि रि ग । म प प प ध ।

[7]इत्युद्वाहितः [१०]

---

१. द्रेंखिता
२. ०तत्
३. ०र्णः प्रेंखित, उ०
४. इति प्रेंखितः
५. तयोराद्य०
६. ०था०
७. इत्युद्दाहितः

प्रथमस्वरमारभ्य तत्तृतीयद्वितीयकम् ।
क्रमादुच्चारयेत्तेनै[1]ककला तदनन्तरम् ॥१३४॥

पूर्वं पूर्वं विहायान्त्ययोगेनात्र पुनः पुनः ।
क्रियते विधिनानेन यो मन्द्रादिर्निगद्यते ॥१३५॥

स[2]गरि । रिमग । गपम । मधप । पनिध ।

इति मन्द्रादिः [१]

कलायामिति[3] मन्द्रादे[4]र्मन्द्रो मध्यगतो भवेत् ।
स मन्द्रमध्य इत्युक्त[5]—

गसरि । म[6]रिग । पगम । ध[7]मप । निपध ।

इति मन्द्रमध्यः [२]

—स्तत्र मन्द्रस्वरो यदि ॥१३६॥

भवेन्मन्द्र[8]स्ततो[9]ऽन्यौ तु तद्विपर्यासभाविनौ ।
भूत्वा तत्पूर्वगौ स्यातामेवं प्रतिकलं यदा[10] ॥१३७॥

भवेत्तदा स्यान्मन्द्रान्तः ॥१३७½॥

रिगस । गमरि । मपग । पधम[11] । [धनिप]

इति मन्द्रान्तः [३]

---

१. ०न कंकालात्त०
२. सगरि । रिगम । सपम । धनिस ।
३. ०मे०
४. ०देः म०
५. ०तो त०
६. स
७. धनिस
८. ०दन्यस्त०
९. ०तोन्यत्तु
१०. ०था
११. नि

गपमध धमपग । मधपनि निपधप ।

इति स्खलित [७]

[क्रमात् स्वरत्रये यत्र] त्यक्त्वा त्यक्त्वा द्वितीयकम् ॥१४४॥

पुनस्त्यक्तं समारभ्य चतुरावृत्तिशोभितः ।

यदा भवेत्तदा सोऽत्र परिवर्त्त[1] इति स्मृतः ॥१४५॥

सगम । रिमप । गपध । मधनि ।

इति परिवर्त्तः[2] [८]

कला[3] तु त्रिस्वरा तत्र पूर्वं त्यक्त्वा तदुत्तरम् ।

परिगृह्य पुनस्तद्वत् कुर्यादाक्षिप्तकः[4] क्रमात् ॥१४६॥

सरिग[5] । रिगम[6] । गमप । मपध[7] । पधनि ।

इत्याक्षिप्तः [९]

त्रिस्वरायां [कलायां]तु प्रथमः प्लुतसंज्ञितः ।

[8]ततो द्वितीयो द्रुता[9]र्धकालस्पर्शी[10] भवेदथ[11] ॥१४७॥

स्वरमुच्चारयेत्पूर्वं तदासौ बिन्दुरुच्यते ।

[12]ससससरिस । रिरिरिगरि । ग[13]गगमग ।

[14]मममपम । [15]पपपधप । [16]धधधनिध ।

इति बिन्दुः [१०]

त्रिस्वरां[17] कलामुक्त्वा पुनरुक्त्वा द्वितीयकम् ॥१४८॥

पूर्वकैकवियोगेनोच्चारितोद्वाहितो[18] भवेत् ।

सरिगरि । रिगमग । गमपम । [19]मपधप ।

इत्युद्वाहितः [११]

---

१. ०वृत्त
२. ०वृत्तः
३. ०लात्रि०
४. ०के
५. गा
६. मा
७. धा
८. इति द्वि
९. ०थार्थ०
१०. ०र्शः
११. ०धः
१२. सासासारिसा
१३. गागागामग
१४. मामामापमा
१५. पापापपदपा
१६. धाधाधानीधा
१७. ०गि०
१८. ०ता
१९. पधनिध

स्थितो[1] यदा[प]रो यत्र, सालाता परिकीर्तिता ।

इत्यलाता [१०]

[2]अन्तर्भ्रमाख्यपादस्य जानुपृ[3]ष्ठे तलं न्यसेत् ॥९१२॥
ततो [4]बहिर्भ्रमणके जानुपार्श्वे तलं न्यसेत् ।
जंघाव[5]र्त्ता तदा चारी भवेदिति विदुर्बुधाः ॥९१३॥

इति जंघावर्ता [११]

आवे[6]ष्टयेदंघ्रिणांघ्रि सा चारी वेष्टनं भवेत् ।

इति वेष्टनम् [१२]

वेष्टितोऽयं [7]पृष्ठतोऽङ्घ्रिर्यदि स्यात् सम्प्रसारितः ॥९१४॥
उद्वेष्टनं नाम चारी भवेदिति विदुर्बुधाः ।

इत्युद्वेष्टनम् [१३]

कुंचितं पादमुत्क्षिप्य पूर्वं पश्चात्समालिखेत् ॥९१५॥
आजानु[8] नृत्तशास्त्रज्ञैरुत्क्षेपः परिकीर्तितः ।

इत्युत्क्षेपः [१४]

केवलं पृष्ठभागोत्थः पृष्ठो[9]त्क्षेप इतीरितः ॥९१६॥

इति [10]पृष्ठोत्क्षेपः [१५]

❀ [11]तीक्ष्णाग्रपादमन्योरः[12]प्रान्तभागं §स्पृशन्निव ।
पुरः प्रसारयेच्चारी तदा सूचीति कथ्यते ॥९१७॥

इति सूची [१६]

❀ सङ्गीतरत्नाकरस्य सूचीलक्षणं प्रसङ्गेऽस्मिन्नवलोकनीयम् ।
यथा—उरःपार्श्वेन विन्यस्य पदं यत्र प्रसारयेत् ।
तीक्ष्णाग्रीकृत्य तामाह सूचीं श्रीकृष्णवल्लभः ॥ (७।१०१४)

§ 'स्पृशन्' इति नर्त्तकस्यैव विशेषणं भवितुमर्हति ।

१. ०तिर्यथा
२. अन्तःभ्रमाख्ये करणे
३. ०मृद्धतले
४. परभ्र०
५. ०र्पिता
६. ०पिष्ट०
७. स च वांघ्रिर्यदि प्रसारितः
८. ०नुनृत्तं शा०
९. ०टोलाप
१०. पृष्टो०
११. क्षीणाग्र०
१२. ०रोरन्तर्भागं

नरस्थानानि षट् स्त्रीणां सप्त[1] देशगतान्यथ[2] ।
त्रयोविं[3]शतिरेवासनस्थानि नव, षट् तथा ॥९२४॥

[4]सुप्तस्थानानि, तेषां तु क्रमं लक्ष्माभिदध्महे ।
वैष्णवं समपादं च वैशाखं मण्डलं तथा ॥९२५॥

स्यत्प्रत्यालीढमालीढं स्थानान्येतानि षड् नृणाम् ।
समस्थितांघ्रिरन्यं तु त्र्यश्रं कृत्वा विनिक्षिपेत् ॥९२६॥

[5]सार्धद्वितालां[6]न्तरा[ले] न[7]ता जंघाल्पगामिनी[8] ।
एवं यदि भवेत्स्थानं वैष्णवं विष्णुसंभवम् ॥९२७॥

स्वाभाविकी[9] क्रिया सा[10] स्यात्संलापे बहुकार्यगे ।
नटे[11]न विष्णुवेषेण सूत्रधारेण वा ततः ॥९२८॥

भाषणं [क्रियते चात्र] पात्रैरुत्तममध्यमैः ।

इति वैष्णवस्थानकम् [१]

चरणैस्सौ[12]-ष्ठवत्वेन तालान्तरगतौ समौ ॥९२९॥

क्रियते तत्र यत्स्थानं समपादं तदुच्यते ।
आशीर्वादस्वीकृतौ तन्मध्यप[13]क्षिनिरीक्षणे ॥९३०॥

[14]वैरकन्याविनोदे च स्य[15]न्दनस्थे च लिंगिनि ।

इति समपादस्थानम् [२]

भूमौ निषण्णौ चरणौ सार्धतालत्रयान्तरे ॥९३१॥

---

१. ०तदे०
२. ०था
३. ०दशेतिरेवाष्टनिष्ठानि
४. स्तुत०
५. पार्श्वद्वि०
६. ०लां तदा...
७. तंना
८. ०ता
९. ०का
१०. सास्यात्तालवै बहु०
११. ०तेन
१२. ०सोष्ठ०
१३. ०मक्षितिरी०
१४. वीरकं स्याद्विनो०
१५. चन्दनं स्फीत पिनि

तदेव विपरीतं च प्रत्यालीढमुदीर्यते ।।९३९।।

❀

प्रत्यालीढमिदं शस्त्रमोचनेषु प्रयुज्यते ।

अस्य[1] [रुद्रो देवता तु] स्यादित्याहुर्मुनीश्वराः ।।९४०।।

इति प्रत्यालीढस्थानकम् [६]

वैष्णवादीनि चत्वारि युज्यन्ते[2] नाट्यनृत्तयोः ।

आलीढादिद्वयं नाट्ये नाऽन्यत्रेति परे विदुः ।।९४१।।

[3]नाट्ये नृत्ये च नृत्ते च लास्येऽथ ताण्डवे च षट्¶ ।

इत्याहुः केचिदाचार्याः स्त्रीणां स्थानान्यथ ब्रुवे ।।९४२।।

स्यादायतं चावहित्थ[4]मश्वक्रान्तं गतागतम् ।

वलितं मोटि[5]तं चाथ सप्तमं विनिवर्त्तितम् ।।९४३।।

वैशाखा[6]दि त्रयं स्त्रीणां [स्थानकं च] विदुर्बुधाः ।

समो[7]ऽस्थो दक्षिणः पादः स्वपार्श्वे [8]तालतः परः ।।९४४।।

त्र्यश्रः[9], प्रसन्नवदनं किंचिदुद्वाहितत्वतः ।

समं वक्षः कटित[10]टे नतो[11] हस्तो नितम्बगः[12] ।।९४५।।

ह[13]स्तस्त्वन्यो लतो[14]न्नेयो यत्र स्यादायतं तदा ।

[15]अस्य स्या[द् देव]ता लक्ष्मी[16] ज्योतिष्टोमस्य [17]सत्फलम् ।।९४६।।

❀ मूलेऽत्रैव 'इति प्रत्यालीढस्थानकम्' इति लिखितमस्ति ।

¶ 'तत्र नाट्यनृत्यनृत्तलास्यताण्डवभेदेन नर्तनस्य पूर्वोक्तं पञ्चविधत्वम्' [सं० र० ७।१०५४ कलानिधिः]—इत्येवास्ति पाठसंशोधनाधारः ।

१. ०या···
२. ०यते
३. नाट्ये नृत्ते च लास्ये च नाट्ये षट् ताण्डवच षट्
४. ०थं अश्व०
५. ०चि०
६. ०ख्या०
७. ०मधो
८. तां ततः परम्
९. ०श्र०
१०. ततो
११. ०वा हस्तनि०
१२. ०कम्
१३. सत्यस्वन्यो
१४. ०तान्नोयो
१५. त्रिस्या···
१६. ०म ज्यो०
१७. यत्०

इत्यश्वक्रान्तम् [३]

गमनोद्यतचित्तस्य पात्रस्य चरणो यदि ।
[एकः समुत्थितश्चान्यो भूमिस्थ] इति नर्तने[२] ॥९५५॥
तदा [गतागतं ना]म स्थानं स्थानविदो विदुः ।
गतिस्थितिनिरोधे[३] स्यान्नारदादीश्वरै[४]र्मतम् ॥९५६॥

[इति गतागत[५]स्थानकम् [४]

[६]स्तोकांगवलनात्पादं वलयं[७]न्त्या कनिष्ठया ।
[श्लिष्टा भूमिस्तथा चान्य-]पादांगुष्ठस्य सा[८] स्थितिः ॥९५७॥
धरण्यां व[९]लितं तस्मिन्नभिलाषावलोकने ।

इति वलितम् [५]

पादौ[१०] [यदा समोऽन्यस्तु कुंचितोऽर्धतलांगुलिः] ॥९५८॥
[ऊर्ध्वस्थितौ] करौ स्यातां[११] कर्कटौ मोटितं [तदा] ।
*[कामावस्थासु सर्वासु चैतत्] प्राज्ञैर्नियुज्यते ॥९५९॥

इति मोटि[१२][तम्-६]

विवर्त्तितं तदे[१३]व स्यात्पृष्ठतोंऽगविवर्त्तनात् ।

इति विवर्तितम् [७]

॥ इति सप्त[१४] स्त्रीस्थानकानि ॥

॥ अथ[१५] त्रयोविंशतिर्देशिस्थानकानि ॥

---

* सङ्गीतरत्नाकरे यथा—'कामावस्थासु सर्वासु विनियोगोऽस्य कीर्तितः' (७।१०७२)

१. ०द्युक्त०
२. ०के
३. ०धैः
४. ०रं
५. ०ति०
६. सौधांगगल०
७. ०यत्सा
८. या
९. फ०
१०. ०दा
११. स्यात्तर्तटा भवतस्त
१२. दि०····
१३. ०दान
१४. ०प्ततिस्था०
१५. अथ देशिस्थानकानि त्रयोविंशति सूच्यत्र।

पादयोः संहतं तत्स्यात्पुष्पांजलिसमर्पणे[1] ।।९६७।।

इति संहत[स्थानकम्–४]

स्वाभाविकमृजुत्वे[2] च वितस्त्यन्तरितौ[3] यदा ।
चरणौ समपादाख्यं [4]स्थानकं तदुदाहृतम् ।।९६८।।

इति समपादस्थानकम् [५]

समस्थितस्य पादस्य[5] जानुव्याप्ये परस्य तु ।
अङ्[घ्रेः पार्श्वक–] संयोगादेकपादं[6] विदुर्बुधाः ।।९६९।।

इत्येकपाद[स्थानकम्–६]

एकः पुरः स्थितः पादः पश्चादन्यस्तु भूतले ।
संश्लिष्टांगुलि[7] [पृ][8]ष्ठत्वान्नी[9]यते यत्र तत्तदा ।।९७०।।

पृष्ठो[10]त्तानतलं नाम स्थानकं कथ्यते बुधैः ।

इति पृष्ठो[11]त्तानतलस्थानकम् [७]

नन्द्यावर्त्ताह्वयस्यात्र स्थानस्य च[12]रणौ खलु ।।९७१।।

अष्टादशांगुलं[13] मध्ये विहाय वसतो यदि ।
स्थानकं चतुरश्राख्यं तदा स्यादिति कीर्त्यते ।।९७२।।

इति चतुरश्रस्थानकम्–८

अंगुष्ठे[14]स्पृष्टपार्ष्णित्वात्पार्ष्णिविद्धं तदुच्यते ।

---

१. ०नर्मणि
२. ०मनुत्वे
३. ०तो यथा
४. करणं
५. ०श्वं
६. ०दम्
७. ०सृतेष्टा
८. ०ष्टत्वा०
९. ०द्गी०
१०. ०टोत्थान०
११. ०ष्टोत्थान
१२. च गणा यदि
१३. ०लौ
१४. ०ट०

※अंचितांघ्री[1] प्रविस्तार्य [यत्रोरः] किञ्चिदुन्नतम्[2] ।
कृत्वा करावूरुकटिन्यस[3] तौ चेत्स्वस्थमुच्यते ।।९९१।।

इति स्वस्थस्थानकम् [१]

एँ[4]कः किंचिद्गतस्त्वन्यः किंचिदग्रप्रसारितः ।
तदा शिरः पार्श्वगतं[5] क्रियते चेन्मदालसम् ।।९९२।।

मदे [6]वियोगे निर्वेदे शोके तत्स्याद् विपद्यपि ।

इति मदालसस्थानकँ[7]म् [२]

हस्तौ चिबुकविन्यस्तौ[8] शिरः स्याद् भुजसन्नतम् ।।९९३।।

नयने क[वोष्ण]युक्ते तदा तत्क्रा[9]न्तमुच्यते ।
निगृहीते निद्रिते च दुःखाश्लि[10]ष्ट [11]इतीर्यते ।।९९४।।

इति [12]क्रान्त[स्थानकम्–३]

ऊरू बाहू च पादौ च ईषद्विस्ता[13]रितौ यदा[14] ।
तदा निमीलिते नेत्रे तद् विष्कम्भमुदीरितम् ।।९९५।।

※ पाठसंशोधनाधारः—
विस्तारिताञ्चितावङ्घ्री यत्रोरः किञ्चिदुन्नतम् ।
करावूरुकटिन्यस्तौ स्वस्थं स्थानं तदुच्यते ।।
—(सं० र० ७/१०९५)

१. ०घ्रि
२. ०मद्भुतम्
३. ०सो
४. एकत्रिंशद्०
५. ०तः
६. नियोग०
७. ०कानि
८. एकस्०
९. ०प्रा०
१०. ०श्लिष्य०
११. ०मि०
१२. कान्तम्
१३. ०त०
१४. ०था,

नानादेशसमुद्भूतं लक्षणं यन्मनोहरम् ।
देशीति कथ्यते तज्ज्ञै[1]स्तत्साधारणलक्षणम् ॥१०२९॥

दशधा ब्रूमहे भावललितं तत्सुशोभितम् ।
[2]चौलिश्चालि[3]वडश्चापि[4] लढि[5]ः सूकमुरो[6]ङ्गणम् ॥१०३०॥

[7]धँसकश्चांग[हारः स्यादोयारो] विर्हंसी मनः ।
लास्यांगानि बुधैः सम्यग् भाषितानि पुरातनैः ॥१०३१॥

कैशिकीवृत्तिसम्पन्नं सविलासं मनोहरम् ।
सताललतितं स्निग्धं लयत्रयविभूषितम् ॥१०३२॥

अतिद्रु[9]तविलम्बाभ्यां न कुर्यादिति[10] वा लयौ ।
पादोरुकटिबाहूनां[11]चलनं युगपद् भवेत् ॥१०३३॥

चलनं चतुरश्रं वा त्र्यश्रं वा [चारु] चारतः ।
[एवं][12]चरेत्तदा[ख्याता] चालि[13]श्चारी त्वियं भवेत् ॥१०३४॥

इति चालिः [१]

सै[14]वात्राभि[मुखप्राया चालिश्चालिवडो] भवेत् ।

[इति चालिवडः—२]

सुकुमारक्रियायु[15]क्तं तिर्यक्चालिसमन्वितं[16]म् ॥१०३५॥

---

१. ०ज्ञैः० तः०
२. शात०
३. ०तिपद०
४. ०किं
५. ०लस्तुक०
६. ०रोग०
७. लस्ति०
८. ०हारो
९. ०ध्रु०
१० ०दितवाद्ययोः
११. व०
१२. चारेत्कदा''''
१३. ०लिं चारीरिदं
१४. स एवा०
१५. ०मुक्तां
१६. ०ताम्०

[इत्योयारकः—८]

भवे[1]त्स्मितेन विहसी शृंगाररसपूरितः ।
❀प्रत्यग्रभङ्गिभाक्[2]स्तोको भवेन्नृ[3]त्तादिषु क्रमात् ॥१०४१॥

इति विहसो [९]

स्थ[4]ायांगलयनिष्पन्नश्रिया चतुरता मनः[5] ।

इति मनः [१०]

॥इति देशीदशलास्याङ्गानि॥

[अथ रेखालक्षणम्]

शिरोमुखानामंगानां लक्षणक्रमयोजने ॥१०४२॥
सत्यं क[6]ायस्थितिस्तत्र मनोनेत्रापहारिणी ।
भवेद्यदि तदा रेखे[7]त्युच्यते नृत्यकोविदैः ॥१०४३॥

॥इति रेखालक्षणम्॥

[अथ सभापति—लक्षणम्]

मान्यामान्यविचारज्ञः सद्गुणग्रहणाग्रणीः ।
वाग्मी निर्मत्सरश्शान्तः [8]श्रीमान् वितरणाश्रयः ॥१०४४॥
गम्भीरः कीर्तिमांश्चाथ मेधावी धारणान्वितः ।
नानाकलासु कुशलः सुशीलस्सर्वरीतिषु ॥१०४५॥
पदवाक्यप्रमाणज्ञः परचित्तप्रमाणवित् ।
तूर्यत्रितयजीवज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥१०४६॥

❀ सङ्गीतरत्नाकरे—
स्मितं स्याद् विहसी यस्तु शृङ्गाररसनिर्भरः ।
अभ्यस्तादन्य एवातिसूक्ष्मप्रत्यग्रभङ्गिभाक् ॥ (७।१२१४-१५½)

१. दभयेन रहसि
२. प्रत्यंगरविगस्तोको
३. निता''''दिषु
४. स्थेया०
५. ०ता
६. नास्य
७. ०भे०
८. ०श्रमान् विकरणा०

प्राप्य रंगस्थलं सौ[1]म्यदायिकास्तदनन्तरम् ।
कृतपक्रमयोगेन स्थित्वा श्रुतिसमन्विताः[2] ॥१०५५॥
मेलापकं वादयेयुः प्रथमं गं[3]जराह्वयम् ।
ततो यवनिकामध्ये गृहीत्वा कुसुमांजलिम् ॥१०५६॥
पात्रं तिष्ठत् समागत्य स्थानं सौ[4]ष्ठवसंयुतम् ।
ततः [5]परं हि वाद्यान्ते पटाक्षेपे प्रसारिते ॥१०५७॥
यत्या प्रविश्य[6] रंगं च भावज्ञैः [सुष्ठु] सूचितम् ।
तदनूपश[7]माख्ये सत्प्रबन्धे बोधिते सति ॥१०५८॥
उक्तलक्ष्माश्रिते रंगमध्ये पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।
यतस्सुरेशो रंगस्थः तस्य प्रीतिकरो मतः ॥१०५९॥
तदनूपर्श[8]माख्येन वा[9]द्येन सह केवलम् ।
नृत्तांगैरेव यत्पात्रं नृत्ये (द्) धर्ममनोऽन्वितम् ॥१०६०॥
पदमोता[10] च कवितं[11] मलपा[12] वत्सकावपि ।
[13]रिगोणी [14]तुडि[केत्ये]भिः प्रबन्धैः शास्त्रभाषितैः ।१०६१।
यद्वा[15] नवकविप्रोक्तप्रबन्धैर्वाद्यजातिजैः ।
अथवा चतुरश्रांगैस्त्र्यश्राङ्गैर्वोभयाङ्गकैः ॥१०६२॥
कुर्याद्युक्तं तदा शुद्धप्रबन्धैर्धातुसंभवैः ।
पात्रं विधाय ललितं नाट्यादित्रितयं ततः ॥१०६३॥

---

१. सान्द्रदा०
२. ०ता
३. जग०
४. ०ष्ट०
५. परम वा०
६. रङ्गभूमिं भावज्ञसूचितम्
७. ०समा०
८. ०समा०
९. नाटयेन
१०. ०रा
११. ०लि०
१२. ०या मत्सकादपि
१३. गोणीतो
१४. ....रूस....
१५. ०दा

[अथ कुतपलक्षणम्]

[1]कुतप–रूपमित्याहु[2]स्त्रिधा गुणविभेदतः ।
[3]ततावनद्धनाट्यानां संबन्धत्वेन लक्ष्यते ।।१०७३।।
[3]ततसंबन्धैश्च कुतस्तथोक्तो भरतादिभिः ।
वराट-लाट-कर्णाट-मगध-मद्रादि-देशजैः ।।१०७४।।
नानाभिनयरूपज्ञैः ततश्चारीविशारदैः ।
आलीढादिस्थानकेषु सुघटैः परिपूरितः ।
समूहः कथ्यते [5]नाट्य–कुतपश्चेति तद्विदैः ।।१०७५।।

।।इति कुतपत्रयलक्षणम्।।

इति श्रीमद्विप्रकुलवर्य–भट्टार [क]–
विट्ठ[6]लेश्वरनन्दनसूक्ष्मभरताचार्य-रायनयकार–
तोडरमल्लाभिनव–भरताचार्य-श्रीलक्ष्मीनारायणविरचिते
संगीतसूर्योदये नृत्ताध्यायो द्वितीयस्समाप्तः ।।

इति सङ्गीतसूर्योदयप्राच्यां द्वितीयो नृत्ताध्यायः ।।

१. चित्रन्तु
२. तथा नवत्वं वाद्यानां
३. ततः सम्बन्धैश्च कुतः सनोच्य
४. वाद्यैः
५. रू०
६. ०विटले०

*एवं वीणाद्वयं कुर्यात्तत्रैका ध्रुवसंज्ञिका ।
अन्या[1] चलाह्वया तस्यां [2]च्युतास्तन्त्रीस्तु कारयेत् ॥८॥
उपान्त्य[3]श्रुतिसाध्ये[4]न चतुर्वारं पुनः पुनः ।
कुर्यात्तदा स्वरा सप्ता[5]चलायां यान्ति [6]लीनताम् ॥९॥
द्वितीय[7]स्यां सारणायां[8] निगावुक्तौ[9] ततः परम् ।
[10]तृतीयस्यां रिधौ[11] तद्वच्चतुर्थ्यां समपाः क्रमात् ॥१०॥
ततः परं रक्तिहीना न कार्या सारणा बुधैः ।
[12]अवस्थिता क्रिया तत्र इयत्तेति च या मतिः ॥११॥
[13]श्रुतीनां दृश्यते तज्ज्ञै[14] ध्रुवायां व्यक्तिलक्षणम् ।
एवं स्थानत्रयं कुर्य्यात् षट्षष्टिश्रुतिसम्मतम् ॥१२॥

[इति सारणाचतुष्टयम्]

[अथ मन्द्रसप्तकश्रुतिनामानि]

तासां श्रुतीनां नामानि पूर्वोक्तानि क्रमाद् ब्रुवे ।
†मन्द्रा चैवाऽ§नुमन्द्रा च घोरा घोरतरा तथा ॥१३॥

---

* एवं वीणाद्वयमित्यारभ्य 'ध्रुवायां व्यक्तिलक्षणम्' एतावान् भागः आदर्शपुस्तके भ्रान्त्या अग्रे 'स्याद्द्वाविंशतिका तत्रे निषादस्वरवादिनी' —इति श्लोकानन्तरमङ्कितस्तथापि प्रसङ्गानुरोधेनात्रैव संगृह्यते ।

† प्रायेणाऽत्रत्यानि षट्षष्टि-श्रुति-नामानि "संगीतसमय-सारं" पुरस्कृत्योपनिबद्धानि विद्यन्ते ।

§ 'सङ्गीतसमयसारे' (१-१९) अतिमन्द्रेति पाठो वर्त्तते ।

१. अस्या
२. प्रधृती तन्त्रिस्तु
३. उत्पत्या
४. ०योन
५. ०प्त
६. नी
७. ०यास्यां
८. ०णीयां
९. विशालुप्ता
१०. त्रितयस्यां
११. ०दौ
१२. अनसूया
१३. श्रुतिना
१४. ०ज्ञैः द्रुता०

*भोगादित्या मनोरामा सुस्निग्धा च तथा परा ।
†दिव्यदेहा सुललिता [1]विद्रुमा च तथा परा ॥२०॥

महार्का[2] शंकिनी [3]राका लज्जा चैव तथा परा ।
[4]काली सूक्ष्मातिसूक्ष्मा च ¶पुष्पा चैव सुपुष्पिका ॥२१॥

विस्पष्टा काकली चैव कराली च तथा परा ।
विस्फोटा[5]न्तर्भेदिनी च इत्येतास्तारसप्तके ॥२२॥

[इति तार-सप्तकश्रुतीनां द्वाविंशतिर्नामानि]

[अथ स्वर-स्थानानि]

श्रुत्यन्तरास्स्वरास्तस्मात् स्वरस्थानानि वच्म्यथ ।
तत्र [6]षड्जस्य तुर्या स्यात्सप्तमी ऋषभस्वरा[7] ॥२३॥

ततो गान्धारसंस्थाना नवमी स्यात्ततः परम् ।
त्रयोदशी श्रुतिस्तत्र मध्यम-स्वरवादिनी ॥२४॥

पंचम[9]स्य सप्तदशी धै[10]स्य विंशतिका श्रुतिः ।
स्याद् द्वाविंशतिका तत्र निषादस्वरवादिनी ॥२५॥

[इति स्वर-स्थानानि]

---

* 'संगीतसमयसारे' (१-२६) 'दिव्याङ्गा'—इति पाठोऽस्ति ।
† 'संङ्गीतसमयसारे (१-२५) 'भोगवीर्य्या—इति पाठो विद्यते ।
¶ 'पुष्टा चैव सुपुष्टिका'—इति पाठः (सं० स० सा० १-२७)

१. दि०
२. ०काशी शाङ्किनी
३. च कालजाता
४. राममाक्षालिसूक्ष्मा
५. ०टकान्त०
६. षष्ठश्चतुर्था
७. ० राः
८. ०ती०
९. ०मः स्यात्
१०. न स्याद्०

चतुःश्रुतित्वमायाति स्वाधार[1]श्रुति-संश्रयात् ।
इति द्विधा मध्यमः[2] स्यात्पंचमस्तु निगद्यते ॥३५॥

ग्रामे मध्यम-संज्ञे तु पंचमस्त्रिश्रुतिर्भवेत्[3] ।
साधारणे मध्यमे तु स पुनः[4] स्याच्चतुःश्रुतिः[5] ॥३६॥

इति पंचमभेदौ द्वौ धैवतस्तु[6] कदा भवेत् ? ।
[7]धैवतो मध्यमग्रामे पंचमोच्चारणां श्रुतिम् ॥३७॥

गृहीत्वा प्रोच्यते तेन चतुःश्रुतिरितीरितः ।
निषाद[8]स[तु त]तो द्वेधा षड्ज-साधारणे पुनः ॥३८॥

षड्जस्याद्यां[9] श्रुतिं प्राप्य त्रिश्रुतिः, काकली [10]स्मृतः ।
चतुःश्रुतिर्भवेदेवं द्वादशस्वरयोजना ॥३९॥

[इति विकृतस्वराः]

[अथ षड्जग्राममध्यमग्रामलक्षणम्]

पंचमस्तु चतुर्थ्यां[11] तु श्रुतौ वसति चेत्तदा ।
षड्जग्राम इति ज्ञेयः, [12]स्वोपान्त्यायां श्रुतौ यदि ॥४०॥

सपंचमस्वरो, ग्रामो मध्यमाख्यः प्रकीर्तितः ।

॥ इति षड्जग्राम-मध्यमग्रामलक्षणम् ॥

[अथ मूर्छनाप्रकरणम्]

ग्रामयोरनयोश्शुद्धाः[13] प्रत्येकं सप्तमूर्च्छनाः ॥४१॥

---

१. स्याधा०
२. ०मा०
३. ०मश्रुतिभिर्भ०
४. एतत्०
५. ०तेः
६. दै०
७. दै०
८. ०दो····
९. ०ङ्गं
१०. श्रुते
११. ०र्थां तु
१२. सोपा०
१३. ०धौ

मध्यमे स्यात्तु सौवी[1]री हरिणी स्यात्ततः परा ।
स्यात्क[2]लोपनता शुद्ध[3]मध्या मा[4]र्गी च पौरवी ॥४९॥

हृष्यके[5]ति —

[इति मूर्च्छनानामानि]

[मूर्च्छनामण्डलानि]

ततस्तासां मण्डलानि प्रचक्ष्महे ।
अष्टौ रेखा लिखेदूर्ध्वं तिर्यगष्टौ तथा मताः ॥५०॥

तथा चैकोनपंचाशत्कोष्ठवत्यो भवन्ति हि ।
कोष्ठैकवर्णमार्गेण विलिखेत्सप्तमूर्च्छनाः ॥५१॥

अथास्य लक्ष्यं दर्शयति । तद् यथा—

स	रि	ग	म	प	ध[6]	नि
नि	स	रि	ग	म	प	ध
ध	नि	स	रि	ग	म	प
[7]प	[8]ध	नि	स	रि	ग	म
म	प	ध	नि	स	रि	ग
ग	म	प	ध	नि[9]	स	रि
रि	[10]ग	म	प	ध	नि	स

[इति षड्जग्राम-सप्तमूर्च्छना-मण्डलम्]

---

१. ०वित्री
२. ०त्तुशोभनता
३. ०धा मध्य०
४. ०मास्याच्च
५. ०ते०
६. द
७. स
८. स
९. सि
१०. रि

*नन्दा वि[शाला सु]मुखी चित्रा चित्रवती शुभा ।
आलापा चेति गान्धार-ग्रामे स्युः सप्त मूर्च्छनाः ।।५६।।

[इति गान्धारग्राम-सप्तमूर्च्छनानामानि]

अस्याऽपि मध्यगान्धारमूला प्रथम-मूर्च्छना ।
ततष्षण्मूर्च्छनाः पूर्व-क्रमेण परिभाषिताः ।।५७।।

।। अथ गान्धारग्राम-सप्तमूर्च्छना-मण्डलम् ।।

ग	म	प	ध	नि[1]	स	रि
रि	ग	म	प	ध	नि	स
स	रि	ग	म	प	ध	नि
नि	स	रि	ग	म	प	ध
ध	नि	स	रि	ग	म	प
प	ध[2]	नि	स	रि	ग	म
म	प	ध	नि	स	रि	ग[10]

।।इति गान्धारग्राम-सप्तमूर्च्छना-मण्डलम्।।

[अथ-स्वर-प्रस्तार-लक्षणम्]

येन केनाऽपि चोद्दिष्टं क्रमं पूर्वं लिखेत्ततः ।
तत्क्रमापेक्षया [1]पूर्व-पूर्वभूतस्वरं[2] परात् ।।५८।।
अथ स्थाप्यः स[3] पूर्वस्थस्ततो [मूल]क्रमे[4] यदि ।
वर्त्तते चेत्तं विहाय तत्पूर्वं त्व[5]परादधः ।।५९।।
न्यसेत्तं दक्षिणे शेषं यथोपरि लिखेत्ततः ।
षष्ठमूलक्रमेणैव न्यसेल्लक्ष्यविचक्षणः ।।६०।।

---

* इमान्येव गान्धारग्राममूर्च्छनानामानि 'संगीतमकरन्दे ( ) 'संगीत-समयसारे' ( ) चाङ्कितानि सन्ति ।

१. ''''मञ्चा
२. ०रें
३. मूर्छिताः
४. ०श्रुतिमण्डलं लिख्यन्ते एतदेव ।
५. द
६. सा
७. वं
८. ०रो परान्
९. ०सुपूर्वस्तु तत''''
१०. ''''क्षणे
११. स्व०

मूलादेकैकंकोष्ठोनतयाऽधो दक्षिणावधि ।
षट् पंक्तयो भवन्त्येवं लिखिते सति, पंक्तय: ।।६८।।
सप्त स्युस्तत्रपूर्वस्यां पङ्क्तौ प्रथममन्दिरे ।
एकांकं विलिखेत्तस्यां शेषकोष्ठेषु खं लिखेत् ।।६९।।
ततः पङ्क्तौ द्वितीयायां [वामाद्ये] स्यादधःस्थिते ।
मन्दिरे पूर्वमेकांकं विलिखेत्तदधः पुनः ।।७०।।
कोष्ठाभावाद् द्वितीयस्यां शून्यस्याधःस्थमन्दिरे ।
वामान्त्याङ्कात् समाहृत्या द्यङ्कं कृत्वा लिखेत्ततः ।।७१।।
तदधः कोष्ठसद्भावाद् द्वितीयत्वाद् गुणद्वयम् ।
चतुरङ्कं लिखेद्[त्र] पुनरित्थं च संस्थितान् ।।७२।।
अङ्कान् संयोज्य शून्याधःकोष्ठे विन्यस्य पूर्ववत् ।
तदन्ते तदधोऽधस्तात् कोष्ठे संख्यागुणान्न्यसेत् ।।७३।।
अष्टाविंशतिकोष्ठेषु लिखेत्तेषु क्रमादिति ।
स मेरुः खण्डसंज्ञः स्यात् स मेर्रुलिख्यतेऽधुना ।।७४।।

तद्यथा— [अथ खण्डमेरुः]

❀

स	रि	ग	म	प	ध	नि
१	०	०	०	०	०	०
	१	२	६	२४	१२०	७२०
		४	१२	४८	२४०	१४४०
			१८	७२	३६०	२१६०
				९६	४८०	२८८०
					६००	३६००
						४३२०

।।इति स्वरप्रस्तारखण्डमेरुः।।

❀ आदर्शपुस्तके यद्यपीदं चक्रमग्रेंकितं वर्त्तते तथापि प्रसंगतोऽत्रैव संयोजितम् एवमस्ति मूलस्थं चक्ररूपम् ।

१	०	०	०	०	०	०	
		१	२	६	२	१२	७२
		४	१२	२८	१४	१४४	
			११	१२	३६४		
				९६	४२०		
				९६			

१. कोष्ठेन तयाधो २. ०ध० ३. ०रन्तं ४. ०द्वि…

क्रमं विलिख्य चान्त्यो यो लोष्टो[1] यावतिथे गृहे ।
निवसत्यथ मूलान्त्यात्पूर्वं तावतिथः[2] स्वरः ॥८२॥
नष्टस्यान्त्यो भवेदेवमवशिष्टस्वराः क्रमात् ।
स्वरानेवं समुद्धृत्य तत्र पूर्वस्वरक्रमात् ॥८३॥
[3]न्यसेन्नष्टस्य तानस्य दृश्यते रूपमद्भुतम् ।

॥इति नष्टम्॥

[अथ काकल्यन्तरलक्षणम्]

यदा निषादष्षड्जस्य श्रुतिद्वन्द्वं समाश्रयेत् ॥८४॥
स काकली[4] स्याद् गान्धारो मध्यमस्य श्रुतिद्वयम् ।
स्वीकरोति यदा तन्नामान्तरस्वर उच्यते ॥८५॥

॥इति काकल्यन्तरलक्षणम्॥

[अथ साधारणम्]

साधारणं द्विधा तत्र स्वराद्यं जातिपूर्वकम् ।
स्वरसाधारणं तत्र चतुर्विधमितीरितम् ॥८६॥
काकल्यन्तरषड्जाश्च मध्यमश्च क्रमादमी ।
साधारणविशेष्यत्वेनोच्यन्ते भरतादिभिः ॥८७॥
तत्र साधारणं नाम काकली स्यान्निषड्जयोः[5] ।
साधारणत्वं तस्यातो विदुः साधारणं बुधाः ॥८८॥
अन्तरस्याऽपि गमयोस्तथा साधारणं भवेत् ।
काकल्यन्तरयोस्तत्र लक्षणं ब्रूमहेऽधुना ॥८९॥
प्रथमं षड्जमुच्चार्य काकलीधै[6]वतं ततः ।
क्रमादुच्चारयेदेवं मध्यमं च ततः परम् ॥९०॥

---

१. ०ष्ठो
२. ०थ०
३. तथा नष्ट०
४. ०लः
५. ०षण्णयोः
६. ०दै०

[अथालङ्कारप्रकरणम्]

अलंकरोति यो रागं मूर्च्छना–जाति-वर्णगैः ।
स्वरैश्शुद्धैश्च विकृतैः षा[1]डवौडु[2]वभूषितैः ॥१००॥
नानाचित्रकलायोगे [3]सोऽलंकारोऽभिधीयते ।
यथा लोके मनुष्याणां किरीटकटकादयः ॥१०१॥
तथैव सर्वरागाणामलङ्कारो[4]ऽभिभूषणम् ।
तस्मादस्मिन्नलङ्कारलक्षणं व्याहरामहे ॥१०२॥
अलंकारस्वरूपं स्याद् विशिष्टं वर्णगुम्फनम् ।
तस्य भेदास्तु बहवस्तेषु स्थायिगता दश ॥१०३॥
सलक्ष्यं ब्रूमहे, तावत्तस्य संज्ञाविधं ब्रुवे ।
मृदुप्रसन्नमन्द्रा[5]श्च पर्याया[6] इति कीर्तिताः ॥१०४॥
दीप्तस्तारस्य पर्यायो मन्द्रो[7] मण्डलमस्तकः ।
तारस्वरस्तु[8] दिव्योर्ध्वरेखाराजितमस्तकः ॥१०५॥
प्लुतस्त्रि[9]स्स्वरसंज्ञातो लिपिरेषा निरूपिता ।
अस्मिन् प्रकरणे मन्द्रो[10] मूर्च्छनाप्रथमस्वरः ॥१०६॥
लिखेत् प्रतिकलायां तु मूलस्वरवियोगतः ।
प्रसन्ना[11]दिः प्रसन्ना[12]न्तः प्रसन्नाद्य[13]न्तभूषितः ॥१०७॥

---

१. क्षा०
२. ०ड०
३. सोलं०
४. ०रोभि०
५. ०द्र०
६. ०य
७. ०द्र०
८. स्य
९. ०त्रिस्वरसंज्ञावलिर्येषां
१०. ०द्रा
११. नधीः
१२. ०नांकः
१३. ०द्यंक०

ऋषभादिस्वराः सर्वे दीप्ताः स्युः स्थायिनं विना ।
[1]संरिसं । सं गं मं सं । सं [पं] धं निं सं ।

इति ❀प्रस्तारः–[६]

मन्[2]द्रतारविपर्यासात् तं प्रसादं विदुर्बुधाः ॥११४॥

सं[3] रि सं [संगमसं । संपधनिसं]

[इति प्रसादः–७]

॥ इति स्थायिगतालंकाराः[4] ॥

अथारोहिगतेष्वाद्यो विस्तीर्णः स्यात्ततः परम् ।
निष्कर्षो गात्रवर्णः[5]श्च बिन्दुरभ्युच्चयस्ततः ॥११५॥
हसितप्रेङ्खिताक्षिप्तसन्धिप्र†च्छादितास्तथा ।
उद्गीतोद्वाहितौ[6] तद्वत् त्रिवर्णो[7] वेणिरित्यमी ॥११६॥
द्वादशारोहिवर्णस्थालंकाराः परिकीर्तिताः ।
य[8]त् षड्जादिनिषादान्तं क्रमादारोहणं भवेत् ॥११७॥
प्रतिस्वरेण दीर्घेण विस्तीर्णः[9] कथ्यते बुधैः ।

सा री[10] गा मा पा धा नी[11]

इति विस्तीर्णः–[१]

❀ 'सङ्गीतरत्नाकरे' तु प्रस्तारलक्षणमेवं निरूपितम्—दीप्तान्तश्चेत्प्रतिकलं प्रस्तारः सोऽभिधीयते ।
सं रि सं संगमसं संपधनिसं (१–१३)

† सङ्गीतरत्नाकरे—'प्रच्छादन' (१-१४) इति पाठो वर्त्तते ।

१. सरिस । सगमस । सधनिस
२. मद्र०
३. सिं रिं सिं
४. ०रः
५. ०र्णा०
६. ०तस्त०
७. ०र्णा
८. यं
९. ०र्णं
१०. नी
११. नि

स्वरद्वयं समुच्चार्य पूर्वमेकं परं तथा ।
क्रमादारोहयेत्तन्त्र्यां प्रें[1]खितं प्रेंखितो मतः ।।१२३।।

सरि । रि ग । गम । मप । पध । धनि

इति प्रेंखितः [६]

एकान्तरस्वरयुगं पूर्वं[2]वत् पूर्वयोगतः ।
उच्चार्यते चेदारोहिवर्णे[3] आक्षिप्त उच्यते ।।२४।।

सगग । गपप । पनिनि

[4]इत्याक्षिप्तः [७]

त्रिभिः स्वरैः प्रबन्धत्वं पूर्वैकस्वरयोगतः ।
क्रमादारोहणं यत्र तदा प्रच्छादितो मतः ।।१२५।।

[सरिग । गमप । पधनि ।]

[इति सन्धिप्रच्छादितः–८]

मूर्च्छनायां कलायुग्मं कुर्यात्त्रित्रिस्वरात्मकम् ।
त[5]स्य चाद्यस्त्रिवारं चेत्तदोद्गीतः प्रकीर्तितः ।।१२६।।

ससससरिग । मममपध ।

इत्युद्गीतः [९]

उद्गीतकलयोरादिस्वरस्या[6]म्रेडितं यदा ।
स्वीकरोति द्वितीयो यस्तदोद्वाहित उच्यते ।।१२७।।

स रि रि रि ग । म प प प ध ।

इ[7]त्युद्वाहितः [१०]

---

१. द्रोंखिता
२. ०तत्
३. ०र्णः प्रेंखित, उ०
४. इति प्रेंखितः
५. तयोराद्य०
६. ०था०
७. इत्युद्दाहितः

प्रथमस्वरमारभ्य तत्तृतीयद्वितीयकम् ।
क्रमादुच्चारयेत्तेनै[1]ककला तदनन्तरम् ॥१३४॥

पूर्वं पूर्वं विहायान्त्ययोगेनात्र पुनः पुनः ।
क्रियते विधिनानेन यो मन्द्रादिर्निगद्यते ॥१३५॥

सगरि[2] । रिमग । गपम । मधप । पनिध ।

इति मन्द्रादिः [१]

कलायामि[3]ति मन्द्रादे[4]र्मन्द्रो मध्यगतो भवेत् ।
स मन्द्रमध्य इत्युक्त[5]—

गसरि । म[6]रिग । पगम । ध[7]मप । निपध ।

इति मन्द्रमध्यः [२]

——स्तत्र मन्द्रस्वरो यदि ॥१३६॥

भवेन्मन्द्रस्ततो[8]ऽन्यौ[9] तु तद्विपर्यासभाविनौ ।
भूत्वा तत्पूर्वगौ स्यातामेवं प्रतिकलं यदा[10] ॥१३७॥

भवेत्तदा स्यान्मन्द्रान्तः ॥१३७½॥

रिगस । गमरि । मपग । पधम[11] । [धनिप]

इति मन्द्रान्तः [३]

---

१. ०न कंकालात्त०
२. सगरि । रिगम । सपम । धनिस ।
३. ०मे०
४. ०देः म०
५. ०तो त०
६. स
७. धनिस
८. ०दन्यस्त०
९. ०तोन्यत्तु
१०. ०था
११. नि

गपमध धमपग । मधपनि निपधप ।

इति स्खलित [७]

[क्रमात् स्वरत्रये यत्र] त्यक्त्वा त्यक्त्वा द्वितीयकम् ।।१४४।।

पुनस्त्यक्तं समारभ्य चतुरावृत्तिशोभितः ।

यदा भवेत्तदा सोऽत्र परिवर्त्त[1] इति स्मृतः ।।१४५।।

सगम । रिमप । गपध । मधनि ।

इति परिवर्त्तः[2] [८]

कला[3] तु त्रिस्वरा तत्र पूर्वं त्यक्त्वा तदुत्तरम् ।

परिगृह्य पुनस्तद्वत् कुर्यादाक्षिप्तकः[4] क्रमात् ।।१४६।।

सरिग[5] । रिगम[6] । गमप । मपध[7] । पधनि ।

इत्याक्षिप्तः [९]

त्रिस्वरायां [कलायां]तु प्रथमः प्लुतसंज्ञितः ।

[8]ततो द्वितीयो द्रुता[9]र्धकालस्पर्शी[10] भवेदथ[11] ।।१४७।।

स्वरमुच्चारयेत्पूर्वं तदासौ बिन्दुरुच्यते ।

[12]ससससरिस । रिरिरिरिगरि । ग[13] गगमग ।

[14]मममपम । [15]पपपधप । [16]धधधनिध ।

इति बिन्दुः [१०]

त्रिस्वरां[17] कलामुक्त्वा पुनरुक्त्वा द्वितीयकम् ।।१४८।।

पूर्वैकैकवियोगेनोच्चारितोद्वाहितो[18] भवेत् ।

सरिगरि । रिगमग । गमपम । [19]मपधप ।

इत्युद्वाहितः [११]

---

१. ०वृत्त
२. ०वृत्तः
३. ०लात्रि०
४. ०के
५. गा
६. मा
७. धा
८. इति द्वि
९. ०थार्थं०
१०. ०शंः
११. ०धः
१२. सासासारिसा
१३. गागागामग
१४. मामामापमा
१५. पापापपदपा
१६. धाधाधानीधा
१७. ०गि०
१८. ०ता
१९. पधनिध

ऋषभादिस्वराः सर्वे दीप्ताः स्युः स्थायिनं विना ।

[1]सं रि सं । सं गं मं सं । सं [पं] धं निं सं ।

इति ※प्रस्तारः—[६]

मन्द्र[2]तारविपर्यासात् तं प्रसादं विदुर्बुधाः ॥११४॥

स[3] रि सं [संगमसं । संपधनिसं]

[इति प्रसादः—७]

॥ इति स्थायिगतालंकारा[4]ः ॥

अथारोहिगतेष्वाद्यो विस्तीर्णः स्यात्ततः परम् ।

निष्कर्षो गात्रवर्ण[5]श्च बिन्दुरभ्युच्चयस्ततः ॥११५॥

हसितप्रेङ्खिताक्षिप्तसन्धिप्र†च्छादितास्तथा ।

उद्गीतोद्वाहितौ[6] तद्वत् त्रिवर्णो[7] वेणिरित्यमी ॥११६॥

द्वादशारोहिवर्णस्थालंकाराः परिकीर्तिताः ।

[8]यत् षड्जादिनिषादान्तं क्रमादारोहणं भवेत् ॥११७॥

प्रतिस्वरेण दीर्घेण विस्तीर्णः[9] कथ्यते बुधैः ।

सा री[10] गा मा पा धा नी[11]

इति विस्तीर्णः—[१]

※ 'सङ्गीतरत्नाकरे' तु प्रस्तारलक्षणमेवं निरूपितम्—दीप्तान्तश्चेत्प्रतिकलं प्रस्तारः सोऽभिधीयते ।
सं रि सं संगमसं संपधनिसं (१–१३)

† सङ्गीतरत्नाकरे—'प्रच्छादन' (१-१४) इति पाठो वर्त्तते ।

१. सरिस । सगमस । सधनिस
२. मद्र०
३. सिं रिं सिं
४. ०रः
५. ०र्णा०
६. ०तस्त०
७. ०र्णा
८. यं
९. ०र्णं
१०. नी
११. नि

स्वरद्वयं समुच्चार्य पूर्वमेकं परं तथा ।
क्रमादारोहयेत्तन्त्र्यां प्रें[1]खितं प्रेंखितो मतः ॥१२३॥

सरि । रि ग । गम । मप । पध । धनि

इति प्रेंखितः [६]

एकान्तरस्वरयुगं पूर्व[2]वत् पूर्वयोगतः ।
उच्चार्यते चेदारोहिवर्ण[3] आक्षिप्त उच्यते ॥२४॥

सगग । गपप । पनिनि

[4]इत्याक्षिप्तः [७]

त्रिभिः स्वरैः प्रबन्धस्त्वं पूर्वैकस्वरयोगतः ।
क्रमादारोहणं यत्र तदा प्रच्छादितो मतः ॥१२५॥

[सरिग । गमप । पधनि ।]

[इति सन्धिप्रच्छादितः–८]

मूर्च्छनायां कलायुग्मं कुर्यात्त्रित्रिस्वरात्मकम् ।
त[5]स्य चाद्यस्त्रिवारं चेत्तदोद्गीतः प्रकीर्तितः ॥१२६॥

सससरिग । मममपध ।

इत्युद्गीतः [९]

उद्गीतकलयोरादिस्वरस्या[6]म्रेडितं यदा ।
स्वीकरोति द्वितीयो यस्तदोद्वाहित उच्यते ॥१२७॥

स रि रि रि ग । म प प प ध ।

इ[7]त्युद्वाहितः [१०]

---

१. द्रेंखिता
२. ०तत्
३. ०र्णः प्रेंखित, उ०
४. इति प्रेंखितः
५. तयोराद्य०
६. ०था०
७. इत्युद्दाहितः

प्रथमस्वरमारभ्य तत्तृतीयद्वितीयकम् ।
क्रमादुच्चारयेत्तेनै[1]ककला तदनन्तरम् ॥१३४॥

पूर्वं पूर्वं विहायान्त्ययोगेनात्र पुनः पुनः ।
क्रियते विधिनानेन यो मन्द्रादिर्निगद्यते ॥१३५॥

स[2]गरि । रिमग । गपम । मधप । पनिध ।

इति मन्द्रादिः [१]

कलायामि[3]ति मन्द्रादे[4]र्मन्द्रो मध्यगतो भवेत् ।
स मन्द्रमध्य इत्युक्त[5]—

गसरि । म[6]रिग । पगम । ध[7]मप । निपध ।

इति मन्द्रमध्यः [२]

—स्तत्र मन्द्रस्वरो यदि ॥१३६॥

भवेन्म[8]न्द्रस्ततो[9]ऽन्यौ तु तद्विपर्यासभाविनौ ।
भूत्वा तत्पूर्वगौ स्यातामेवं प्रतिकलं यदा[10] ॥१३७॥

भवेत्तदा स्यान्मन्द्रान्तः ॥१३७½॥

रिगस । गमरि । मपग । पधम[11] । [धनिप]

इति मन्द्रान्तः [३]

---

१. ०न कंकालात्त०
२. सगरि । रिगम । सपम । धनिस ।
३. ०मे०
४. ०देः म०
५. ०तो त०
६. स
७. धनिस
८. ०दन्यस्त०
९. ०तोन्यत्तु
१०. ०था
११. नि

गपमध धमपग । मधपनि निपधप ।

इति स्खलित [७]

[क्रमात् स्वरत्रये यत्र] त्यक्त्वा त्यक्त्वा द्वितीयकम् ॥१४४॥

पुनस्त्यक्तं समारभ्य चतुरावृत्तिशोभितः ।

यदा भवेत्तदा सोऽत्र परिवर्त्त[1] इति स्मृतः ॥१४५॥

सगम । रिमप । गपध । मधनि ।

इति परिवर्त्त[2]ः [८]

कला[3] तु त्रिस्वरा तत्र पूर्वं त्यक्त्वा तदुत्तरम् ।

परिगृह्य पुनस्तद्वत् कुर्यादाक्षिप्तकं[4] क्रमात् ॥१४६॥

सरिग[5] । रिगम[6] । गमप । मपध[7] । पधनि ।

इत्याक्षिप्तः [९]

त्रिस्वरायां [कलायां]तु प्रथमः प्लुतसंज्ञितः ।

[8]ततो द्वितीयो द्रुता[9]र्धकालस्पर्शी[10] भवेदथ[11] ॥१४७॥

स्वरमुच्चारयेत्पूर्वं तदासौ बिन्दुरुच्यते ।

[12]ससससरिस । रिरिरिगरि । ग[13]गगमग ।

[14]मममपम । [15]पपपधप । [16]धधधनिध ।

इति बिन्दुः [१०]

त्रिस्वरां[17] कलामुक्त्वा पुनरुक्त्वा द्वितीयकम् ॥१४८॥

पूर्वैकैकवियोगेनोच्चारितोद्वाहितो[18] भवेत् ।

सरिगरि । रिगमग । गमपम । [19]मपधप ।

इत्युद्वाहितः [११]

---

१. ०वृत्त
२. ०वृत्तः
३. ०लात्रि०
४. ०के
५. गा
६. मा
७. धा
८. इति द्वि
९. ०थार्थ०
१०. ०र्शः
११. ०थः
१२. सासासारिसा
१३. गागागामग
१४. मामामापमा
१५. पापापपदपा
१६. धाधाधानीधा
१७. ०गि०
१८. ०ता
१९. पधनिध

स्थितो[1] यदा[प]रो यत्र, सालाता परिकीर्तिता ।

इत्यलाता [१०]

अ[2]न्तर्भ्रमाख्यपादस्य जानुपृ[3]ष्ठे तलं न्यसेत् ॥९१२॥
ततो ब[4]हिर्भ्रमणके जानुपार्श्वे तलं न्यसेत् ।
जंघाव[5]र्त्ता तदा चारी भवेदिति विदुर्बुधाः ॥९१३॥

इति जंघावर्ता [११]

आवे[6]ष्टयेदंघ्रिणांघ्रि सा चारी वेष्टनं भवेत् ।

इति वेष्टनम् [१२]

वेष्टितोऽयं [7]पृष्ठतोऽङ्घ्रिर्यदि स्यात् सम्प्रसारितः ॥९१४॥
उद्वेष्टनं नाम चारी भवेदिति विदुर्बुधाः ।

इत्युद्वेष्टनम् [१३]

कुंचितं पादमुत्क्षिप्य पूर्वं पश्चात्समालिखेत् ॥९१५॥
आजानु[8] नृत्तशास्त्रज्ञैरुत्क्षेपः परिकीर्तितः ।

इत्युत्क्षेपः [१४]

केवलं पृष्ठभागोत्थः पृष्ठो[9]त्क्षेप इतीरितः ॥९१६॥

इति [10]पृष्ठोत्क्षेपः [१५]

❀ [11]तीक्ष्णाग्रपादमन्योरः[12]प्रान्तभागं §स्पृशन्निव ।
पुरः प्रसारयेच्चारी तदा सूचीति कथ्यते ॥९१७॥

इति सूची [१६]

❀ सङ्गीतरत्नाकरस्य सूचीलक्षणं प्रसङ्गेऽस्मिन्नवलोकनीयम् ।
यथा—उरःपार्श्वेन विन्यस्य पदं यत्र प्रसारयेत् ।
तीक्ष्णाग्रीकृत्य तामाह सूचीं श्रीकृष्णवल्लभः ॥ (७।१०१४)

§ 'स्पृशन्' इति नर्त्तकस्यैव विशेषणं भवितुमर्हति ।

१. ०तिर्यथा
२. अन्तःभ्रमाख्ये करणे
३. ०मूद्धतले
४. परभ्र०
५. ०र्पिता
६. ०पिष्ट०
७. स च वांघ्रिर्यदि प्रसारितः
८. ०नुनृत्तं शा०
९. ०टोलाप
१०. पृष्टो०
११. क्षीणाग्र०
१२. ०रोरन्तर्भागं

नरस्थानानि षट् स्त्रीणां सप्त[1] देशगतान्यथ[2] ।
त्रयोविं[3]शतिरेवासनस्थानि नव, षट् तथा ॥९२४॥
सु[4]प्तस्थानानि, तेषां तु क्रमं लक्ष्माभिदध्महे ।
वैष्णवं समपादं च वैशाखं मण्डलं तथा ॥९२५॥
स्यत्प्रत्यालीढमालीढं स्थानान्येतानि षड् नृणाम् ।
समस्थितांघ्रिरन्यं तु त्र्यश्रं कृत्वा विनिक्षिपेत् ॥९२६॥
सा[5]र्धद्वितालां[6]न्तरा[ले] नं[7]ता जंघाल्पगामिनी[8] ।
एवं यदि भवेत्स्थानं वैष्णवं विष्णुसंभवम् ॥९२७॥
स्वाभाविकी[9] क्रिया सा[10] स्यात्संलापे बहुकार्यगे ।
नटे[11]न विष्णुवेषेण सूत्रधारेण वा ततः ॥९२८॥
भाषणं [क्रियते चात्र] पात्रैरुत्तममध्यमैः ।

इति वैष्णवस्थानकम् [१]

चरणैस्सौ[12]-ष्ठवत्वेन तालान्तरगतौ समौ ॥९२९॥
क्रियते तत्र यत्स्थानं समपादं तदुच्यते ।
आशीर्वादस्वोकृतौ तन्मध्यप[13]क्षिनिरीक्षणे ॥९३०॥
[14]वैरकन्याविनोदे च स्य[15]न्दनस्थे च लिंगिनि ।

इति समपादस्थानम् [२]

भूमौ निषण्णौ चरणौ सार्धतालत्रयान्तरे ॥९३१॥

---

१. ०तदे०
२. ०था
३. ०दशेतिरेवाष्टनिष्ठानि
४. स्तुत०
५. पार्श्वद्वि०
६. ०लां तदा...
७. तंना
८. ०ता
९. ०का
१०. सास्यात्तालवै बहु०
११. ०तेन
१२. ०सोष्ठ०
१३. ०मक्षितिरी०
१४. वीरकं स्याद्विनो०
१५. चन्दनं स्फीत पिनि

तदेव विपरीतं च प्रत्यालीढमुदीर्यते ।।९३९।।

❀

प्रत्यालीढमिदं शस्त्रमोचनेषु प्रयुज्यते ।
अस्य[1] [रुद्रो देवता तु] स्यादित्याहुर्मुनीश्वराः ।।९४०।।

इति प्रत्यालीढस्थानकम् [६]

वैष्णवादीनि चत्वारि युज्यन्ते[2] नाट्यनृत्तयोः ।
आलीढादिद्वयं नाट्ये नाऽन्यत्रेति परे विदुः ।।९४१।।
[3]नाट्ये नृत्ये च नृत्ते च लास्येऽथ ताण्डवे च षट्¶ ।
इत्याहुः केचिदाचार्याः स्त्रीणां स्थानान्यथ ब्रुवे ।।९४२।।
स्यादायतं चावहित्थं[4]मश्वक्रान्तं गतागतम् ।
वलितं मोटि[5]तं चाथ सप्तमं विनिवर्त्तितम् ।।९४३।।
वैशाखा[6]दि त्रयं स्त्रीणां [स्थानकं च] विदुर्बुधाः ।
समो[7]ऽस्थो दक्षिणः पादः स्वपार्श्वे[8] तालतः परः ।।९४४।।
त्र्यश्रः[9], प्रसन्नवदनं किंचिदुद्वाहितत्वतः ।
समं वक्षः कटित[10]टे नतो[11] हस्तो नितम्बगः[12] ।।९४५।।
ह[13]स्तस्त्वन्यो लतो[14]न्नेयो यत्र स्यादायतं तदा ।
[15]अस्य स्या[द् देव]ता लक्ष्मी[16] ज्योतिष्टोमस्य [17]सत्फलम् ।।९४६।।

❀ मूलेऽत्रैव 'इति प्रत्यालीढस्थानकम्' इति लिखितमस्ति ।

¶ 'तत्र नाट्यनृत्यनृत्तलास्यताण्डवभेदेन नर्तनस्य पूर्वोक्तं पञ्चविधत्वम्' [सं० र० ७।१०५४ कलानिधिः]—इत्येवास्ति पाठसंशोधनाधारः ।

१. ०या...
२. ०यते
३. नाट्ये नृत्ते च लास्ये च नाट्ये षट् ताण्डवच षट्
४. ०थं अश्व०
५. ०चि०
६. ०ख्या०
७. ०मधो
८. तां ततः परम्
९. ०श्र०
१०. ततो
११. ०वा हस्तनि०
१२. ०कम्
१३. सत्यस्वन्यो
१४. ०तान्नोयो
१५. त्रिस्या...
१६. ०म ज्यो०
१७. यत्०

इत्यश्वक्रान्तम् [३]

गमनोद्यतचित्तस्य[1] पात्रस्य चरणो यदि ।
[एकः समुत्थितश्चान्यो भूमिस्थ] इति नर्तने[2] ॥९५५॥
तदा [गतागतं ना]म स्थानं स्थानविदो विदुः ।
गतिस्थितिनिरोधे[3] स्यान्नारदादीश्वरै[4]र्मतम् ॥९५६॥

[इति गतागत[5]स्थानकम् [४]

[6]स्तोकांगवलनात्पादं वलयन्[7]त्या कनिष्ठया ।
[श्लिष्टा भूमिस्तथा चान्य-]पादांगुष्ठस्य सा[8] स्थितिः ॥९५७॥
धरण्यां व[9]लितं तस्मिन्नभिलाषावलोकने ।

इति वलितम् [५]

पादो[10] [यदा समोऽन्यस्तु कुंचितोऽर्धतलांगुलिः] ॥९५८॥
[ऊर्ध्वस्थितौ] करौ स्यातां[11] कर्कटौ मोटितं [तदा] ।
*[कामावस्थासु सर्वासु चैतत्] प्राज्ञैर्नियुज्यते ॥९५९॥

इति मोटि[12][तम्-६]

विवर्त्तितं तदे[13]व स्यात्पृष्ठतोंऽगविवर्त्तनात् ।

इति विवर्तितम् [७]

॥ इति सप्त[14] स्त्रीस्थानकानि ॥

॥ अथ[15] त्रयोविंशतिर्देशिस्थानकानि ॥

---

* सङ्गीतरत्नाकरे यथा—'कामावस्थासु सर्वासु विनियोगोऽस्य कीर्तितः' (७।१०७२)

१. ०द्युक्त०
२. ०के
३. ०धैः
४. ०रं
५. ०ति०
६. सौधांगगल०
७. ०यत्सा
८. या
९. फ०
१०. ०दा
११. स्यात्तर्तटा भवतस्त
१२. दि०····
१३. ०दान
१४. ०प्ततिस्था०
१५. अथ देशिस्थानकानि त्रयोविंशति सूच्यत्र ।

पादयोः संहतं तत्स्यात्पुष्पांजलिसमर्पणे[1] ॥९६७॥

इति संहत[स्थानकम्–४]

स्वाभाविकमृजुत्वे[2] च वितस्त्यन्तरितौ[3] यदा ।
चरणौ समपादाख्यं[4] स्थानकं तदुदाहृतम् ॥९६८॥

इति समपादस्थानकम् [५]

समस्थितस्य पादस्य[5] जानुव्याप्ये परस्य तु ।
अङ्[घ्रेः पार्श्वक–] संयोगादेकपादं[6] विदुर्बुधाः ॥९६९॥

इत्येकपाद[6][स्थानकम्–६]

एकः पुरः स्थितः पादः पश्चादन्यस्तु भूतले ।
संश्लिष्टांगुलि[7] [पृ][8]ष्ठत्वान्नी[9]यते यत्र तत्तदा ॥९७०॥

पृष्ठो[10]त्तानतलं नाम स्थानकं कथ्यते बुधैः ।

इति पृष्ठो[11]त्तानतलस्थानकम् [७]

नन्द्यावर्त्ताह्वयस्यात्र स्थानस्य च[12]रणौ खलु ॥९७१॥

अष्टादशांगुलं[13] मध्ये विहाय वसतो यदि ।
स्थानकं चतुरश्राख्यं तदा स्यादिति कीर्त्यते ॥९७२॥

इति चतुरश्रस्थानकम्–८

अंगुष्ठं[14] स्पृष्टपार्ष्णित्वात्पार्ष्णिविद्धं तदुच्यते ।

---

१. ०नर्मणि
२. ०मनुत्वे
३. ०तो यथा
४. करणं
५. ०श्वं
६. ०दम्
७. ०सुतेष्टा
८. ०ष्ठत्वा०
९. ०द्गी०
१०. ०टोत्थान०
११. ०ष्टोत्थान
१२. च गणा यदि
१३. ०लौ
१४. ०ट०

※अंचितांघ्री[1] प्रविस्तार्य [यत्रोरः] किञ्चिदुन्नतम्[2] ।
कृत्वा करावूरुकटिन्यस[3] तौ चेत्स्वस्थमुच्यते ॥९९१॥

इति स्वस्थस्थानकम् [१]

एकः[4] किंचिद्गतस्त्वन्यः किंचिदग्रप्रसारितः ।
तदा शिरः पार्श्वगतं[5] क्रियते चेन्मदालसम् ॥९९२॥

मदे[6] वियोगे निर्वेदे शोके तत्स्याद् विपद्यपि ।

इति मदालसस्थानकम्[7] [२]

हस्तौ चिबुकविन्यस्तौ[8] शिरः स्याद् भुजसन्नतम् ॥९९३॥
नयने क[वोष्ण]युक्ते तदा तत्क्रान्तमुच्यते ।
निगृहीते निद्रिते च दुःखाश्लिष्ट[10] इतीर्यते[11] ॥९९४॥

इति[12] क्रान्त[स्थानकम्-३]

ऊरू बाहू च पादौ च ईषद्विस्तारितौ[13] यदा[14] ।
तदा निमीलिते नेत्रे तद् विष्कम्भमुदीरितम् ॥९९५॥

※ पाठसंशोधनाधारः—
विस्तारिताञ्चितावङ्घ्री यत्रोरः किञ्चिदुन्नतम् ।
करावूरुकटिन्यस्तौ स्वस्थं स्थानं तदुच्यते ॥
—(सं० र० ७/१०९५)

१. ०ङ्घ्रि
२. ०मद्‌भुतम्
३. ०सो
४. एकत्रिंशद्०
५. ०तः
६. नियोग०
७. ०कानि
८. एकस्०
९. ०प्रा०
१०. ०श्लिष्य०
११. ०मि०
१२. कान्तम्
१३. ०त०
१४. ०था,

नानादेशसमुद्भूतं लक्षणं यन्मनोहरम् ।
देशीति कथ्यते तज्ज्ञै[1]स्तत्साधारणलक्षणम् ॥१०२९॥

दशधा ब्रूमहे भावललितं तत्सुशोभितम् ।
चौ[2]लिश्चालि[3]वडश्चापि[4] लढिः[5] सूकमुरो[6]ङ्गणम् ॥१०३०॥

धँ[7]सकश्चांग[हारः स्यादोयारो] विहँसी मनः ।
लास्यांगानि बुधैः सम्यग् भाषितानि पुरातनैः ॥१०३१॥

कैशिकीवृत्तिसम्पन्नं सविलासं मनोहरम् ।
सतालललितं स्निग्धं लयत्रयविभूषितम् ॥१०३२॥

अतिद्रु[9]तविलम्बाभ्यां न कुर्यादिति[10] वा लयौ ।
पादोरुकटिबाहूनां[11]चलनं युगपद् भवेत् ॥१०३३॥

चलनं चतुरश्रं वा त्र्यश्रं वा [चारु] चारतः ।
[एवं][12]चरेत्तदा[ख्याता] चालि[13]श्चारी त्वियं भवेत् ॥१०३४॥
इति चालिः [१]

सै[14]वात्राभि[मुखप्राया चालिश्चालिवडो] भवेत् ।
[इति चालिवडः—२]
सुकुमारक्रियायु[15]क्तं तिर्यक्चालिसमन्वितं[16]म् ॥१०३५॥

---

१. ०ज्ञैः० तः०
२. शात०
३. ०तिपद०
४. ०किं
५. ०लस्तुक०
६. ०रोग०
७. लस्ति०
८. ०हारो
९. ०ध्रु०
१० ०दितवाद्ययोः
११. व०
१२. चारेत्कदा''''
१३. ०लिं चारीरिदं
१४. स एवा०
१५. ०मुक्तां
१६. ०ताम्०

[इत्योयारकः–८]

भवे[१]त्स्मितेन विहसी शृंगाररसपूरितः ।

❀प्र[२]त्यग्रभङ्गिभाक्स्तोको भवेन्नृ[३]त्तादिषु क्रमात् ॥१०४१॥

इति विहसो [९]

स्थ[४]ायांगलयनिष्पन्नश्रिया चतुरता मनः[५] ।

इति मनः [१०]

॥इति देशीदशलास्याङ्गानि॥

[अथ रेखालक्षणम्]

शिरोमुखानामंगानां लक्षणक्रमयोजने ॥१०४२॥

सत्यं क[६]ायस्थितिस्तत्र मनोनेत्रापहारिणी ।

भवेद्यदि तदा रेखे[७]त्युच्यते नृत्यकोविदैः ॥१०४३॥

॥इति रेखालक्षणम्॥

[अथ सभापति–लक्षणम्]

मान्यामान्यविचारज्ञः सद्गुणग्रहणाग्रणीः ।

वाग्मी निर्मत्सरश्शान्तः [८]श्रीमान् वितरणाश्रयः ॥१०४४॥

गम्भीरः कीर्तिमांश्चाथ मेधावी धारणान्वितः ।

नानाकलासु कुशलः सुशीलस्सर्वरीतिषु ॥१०४५॥

पदवाक्यप्रमाणज्ञः परचित्तप्रमाणवित् ।

तूर्यत्रितयजोवज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥१०४६॥

❀ सङ्गीतरत्नाकरे—

स्मितं स्याद् विहसी यस्तु शृङ्गाररसनिर्भरः ।
अभ्यस्तादन्य एवातिसूक्ष्मप्रत्यग्रभङ्गिभाक् ॥ (७।१२१४-१५½)

१. दभयेन रहसि
२. प्रत्यंगरविगस्तोको
३. निता''''दिषु
४. स्थेया०
५. ०ता
६. नास्य
७. ०भे०
८. ०श्रमान् विकरणा०

प्राप्य रंगस्थलं [1]साम्यदायिकास्तदनन्तरम् ।
कुतपक्रमयोगेन स्थित्वा श्रुतिसमन्विताः[2] ।।१०५५।।
मेलापकं वादयेयुः प्रथमं [3]गंजराह्वयम् ।
ततो यवनिकामध्ये गृहीत्वा कुसुमांजलिम् ।।१०५६।।
पात्रं तिष्ठत् समागत्य स्थानं सौ[4]ष्ठवसंयुतम् ।
ततः [5]परं हि वाद्यान्ते पटाक्षेपे प्रसारिते ।।१०५७।।
यत्या प्रविश्य[6] रंगं च भावज्ञैः [सुष्ठु] सूचितम् ।
तदनूपश[7]माख्ये सत्प्रबन्धे बोधिते सति ।।१०५८।।
उक्तलक्ष्माश्रिते रंगमध्ये पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।
यतस्सुरेशो रंगस्थः तस्य प्रीतिकरो मतः ।।१०५९।।
तदनूपश[8]माख्येन [9]वाद्येन सह केवलम् ।
नृत्तांगैरेव यत्पात्रं नृत्ये (द्) धर्ममनोऽन्वितम् ।।१०६०।।
पदमोता[10] च कवितं[11] मलपा[12] वत्सकावपि ।
[13]रिगोणी [14]तुडि[केत्ये]भिः प्रबन्धैः शास्त्रभाषितैः ।१०६१।
यद्वा[15] नवकविप्रोक्तप्रबन्धैर्वाद्यजातिजैः ।
अथवा चतुरश्रांगैस्त्र्यश्राङ्गैर्वोभयाङ्गकैः ।।१०६२।।
कुर्याद्युक्तं तदा शुद्धप्रबन्धैर्धातुसंभवैः ।
पात्रं विधाय ललितं नाट्यादित्रितयं ततः ।।१०६३।।

---

१. सान्द्रदा०
२. ०ता
३. जग०
४. ०ष्ट०
५. परम वा०
६. रङ्गभूमिं भावज्ञसूचितम्
७. ०समा०
८. ०समा०
९. नाट्येन
१०. ०रा
११. ०लि०
१२. ०या मत्सकादपि
१३. गोणीतो
१४. ''''रूस''''
१५. ०दा

[अथ कुतपलक्षणम्]

[1]कुतप–रूपमित्याहु[2]स्त्रिधा गुणविभेदतः ।
[3]ततावनद्धनाट्यानां संबन्धत्वेन लक्ष्यते ।।१०७३।।
ततसंबन्धैश्च कुतस्तथोक्तो भरतादिभिः ।
वराट-लाट-कर्णाट-मगध-मद्रादि-देशजैः ।।१०७४।।
नानाभिनयरूपज्ञैः ततश्चारीविशारदैः ।
आलीढादिस्थानकेषु सुघटैः परिपूरितः ।
समूहः कथ्यते [4]नाट्य–कुतपश्चेति तद्विदैः ।।१०७५।।

।।इति कुतपत्रयलक्षणम्।।

इति श्रीमद्विप्रकुलवर्य–भट्टार[5] [क]–
विट्ठ[6]लेश्वरनन्दनसूक्ष्मभरताचार्य-रायनयकार–
तोडरमल्लाभिनव–भरताचार्य-श्रीलक्ष्मीनारायणविरचिते
संगीतसूर्योदये नृत्ताध्यायो द्वितीयस्समाप्तः ।।

इति सङ्गीतसूर्योदयप्राच्यां द्वितीयो नृत्ताध्यायः ।।

---

१. चित्रन्तु
२. तथा नवत्वं वाद्यानां
३. ततः सम्बन्धैश्च कृतः सनोच्य
४. वाद्यैः
५. रू०
६. ०विटले०

*एवं वीणाद्वयं कुर्यात्तत्रैका ध्रुवसंज्ञिका ।
अन्या[1] चलाह्वया तस्यां[2] च्युतास्तन्त्रीस्तु कारयेत् ॥८॥
उपा[3]न्त्यश्रुतिसाध्ये[4]न चतुर्वारं पुनः पुनः ।
कुर्यात्तदा स्वरा सप्तां[5]चलायां यान्ति [6]लीनताम् ॥९॥
द्वितीय[7]स्यां सारणायां निगावुक्तौ ततः परम् ।
[10]तृतीयस्यां रिधौ[11] तद्वच्चतुर्थ्यां समपाः क्रमात् ॥१०॥
ततः परं रक्तिहीना न कार्या सारणा बुधैः ।
[12]अवस्थिता क्रिया तत्र इयत्तेति च या मतिः ॥११॥
[13]श्रुतीनां दृश्यते तज्ज्ञै[14] र्ध्रुवायां व्यक्तिलक्षणम् ।
एवं स्थानत्रयं कुर्य्यात् षट्षष्टिश्रुतिसम्मतम् ॥१२॥

[इति सारणाचतुष्टयम्]

[अथ मन्द्रसप्तकश्रुतिनामानि]

तासां श्रुतीनां नामानि पूर्वोक्तानि क्रमाद् ब्रुवे ।
†मन्द्रा चैवा§नुमन्द्रा च घोरा घोरतरा तथा ॥१३॥

---

* एवं वीणाद्वयमित्यारभ्य 'ध्रुवायां व्यक्तिलक्षणम्' एतावान् भागः आदर्शपुस्तके भ्रान्त्या अग्रे 'स्याद्द्वाविंशतिका तत्रे निषादस्वरवादिनी' —इति श्लोकानन्तरमङ्कितस्तथापि प्रसङ्गानुरोधेनात्रैव संगृह्यते ।

† प्रायेणाऽत्रत्यानि षट्षष्टि-श्रुति-नामानि "संगीतसमय-सारं" पुरस्कृत्योपनिबद्धानि विद्यन्ते ।

§ 'सङ्गीतसमयसारे' (१-१९) अतिमन्द्रेति पाठो वर्त्तते ।

१. अस्या
२. प्रधृती तन्त्रिस्तु
३. उत्पत्या
४. ०योन
५. ०प्त
६. नी
७. ०यास्यां
८. ०णीयां
९. विशालुप्ता
१०. त्रितयस्यां
११. ०दौ
१२. अनसूया
१३. श्रुतिना
१४. ०ज्ञैः द्रुता०

*भोगादित्या मनोरामा सुस्निग्धा च तथा परा ।
†[1]दिव्यदेहा सुललिता [2]विद्रुमा च तथा परा ।।२०।।

महार्का[2] शंकिनी रांका[3] लज्जा चैव तथा परा ।
[4]काली सूक्ष्मातिसूक्ष्मा च ¶पुष्पा चैव सुपुष्पिका ।।२१।।

विस्पष्टा काकली चैव कराली च तथा परा ।
विस्फोटान्त[5]र्भेदिनी च इत्येतास्तारसप्तके ।।२२।।

[इति तार-सप्तकश्रुतीनां द्वाविंशतिर्नामानि]

[अथ स्वर-स्थानानि]

श्रुत्यन्तरास्स्वरास्तस्मात् स्वरस्थानानि वच्म्यथ ।
तत्र [6]षड्जस्य तुर्या स्यात्सप्तमी ऋषभस्वरा[7] ।।२३।।

ततो गान्धारसंस्थाना नवमी स्यात्ततः परम् ।
त्रयोदशी श्रुतिस्तत्र मध्यम-स्वरवादिनी ।।२४।।

पंचमस्य[9] सप्तदशी धै[10]स्य विंशतिका श्रुतिः ।
स्याद् द्वाविंशतिका तत्र निषादस्वरवादिनी ।।२५।।

[इति स्वर-स्थानानि]

---

* 'संगीतसमयसारे' (१-२६) 'दिव्याङ्गा'—इति पाठोऽस्ति ।
† 'संङ्गीतसमयसारे (१-२५) 'भोगवीर्य्या—इति पाठो विद्यते ।
¶ 'पुष्टा चैव सुपुष्टिका'—इति पाठः (सं० स० सा० १-२७)

१. दि०
२. ०काशी शाङ्किनी
३. च कालजाता
४. राममाक्षालिसूक्ष्मा
५. ०टकान्त०
६. षष्ठश्चतुर्था
७. ० राः
८. ०ती०
९. ०मः स्यात्
१०. न स्याद्०

चतुःश्रुतित्वमायाति स्वाधारश्रुति-संश्रयात्[1] ।
इति द्विधा मध्यमः[2] स्यात्पंचमस्तु निगद्यते ॥३५॥
ग्रामे मध्यम-संज्ञे तु पंचमस्त्रिश्रुतिर्भवेत्[3] ।
साधारणे मध्यमे तु स पुनः[4] स्याच्चतुःश्रुतिः[5] ॥३६॥
इति पंचमभेदौ द्वौ धैवतस्तु[6] कदा भवेत् ? ।
[7]धैवतो मध्यमग्रामे पंचमोच्चारणां श्रुतिम् ॥३७॥
गृहीत्वा प्रोच्यते तेन चतुःश्रुतिरितीरितः ।
निषादस[तु त]तो[8] द्वेधा षड्ज-साधारणे पुनः ॥३८॥
षड्जस्याद्यां[9] श्रुतिं प्राप्य त्रिश्रुतिः, काकली [10]स्मृतः ।
चतुःश्रुतिर्भवेदेवं द्वादशस्वरयोजना ॥३९॥

[इति विकृतस्वराः]

[अथ षड्जग्राममध्यमग्रामलक्षणम्]

पंचमस्तु चतुर्थ्यां[11] तु श्रुतौ वसति चेत्तदा ।
षड्जग्राम इति ज्ञेयः, [12]स्वोपान्त्यायां श्रुतौ यदि ॥४०॥
सपंचमस्वरो, ग्रामो मध्यमाख्यः प्रकीर्तितः ।

॥ इति षड्जग्राम-मध्यमग्रामलक्षणम् ॥

[अथ मूर्छनाप्रकरणम्]

ग्रामयोरनयोश्शुद्धा[13]ः प्रत्येकं सप्तमूर्च्छनाः ॥४१॥

---

१. स्याधा०
२. ०मा०
३. ०मश्रुतिभिर्भ०
४. एतत्०
५. ०तेः
६. दै०
७. दै०
८. ०दो....
९. ०ज्ञं
१०. श्रुते
११. ०र्थां तु
१२. सोपा०
१३. ०धौ

मध्यमे स्यात्तु सौवीरी[1] हरिणी स्यात्ततः परा ।
स्यात्कलोपनता[2] शुद्धमध्या[3] मार्गी[4] च पौरवी ॥४९॥

हृष्यकेति[5] —

[इति मूर्च्छनानामानि]

[मूर्च्छनामण्डलानि]

ततस्तासां मण्डलानि प्रचक्ष्महे ।
अष्टौ रेखा लिखेदूर्ध्वं तिर्यगष्टौ तथा मताः ॥५०॥

तथा चैकोनपंचाशत्कोष्ठवत्यो भवन्ति हि ।
कोष्ठैकवर्णमार्गेण विलिखेत्सप्तमूर्छनाः ॥५१॥

अथास्य लक्ष्यं दर्शयति । तद् यथा—

स	रि	ग	म	प	ध[6]	नि
नि	स	रि	ग	म	प	ध
ध	नि	स	रि	ग	म	प
[7]प	[8]ध	नि	स	रि	ग	म
म	प	ध	नि	स	रि	ग
ग	म	प	ध	नि[9]	स	रि
रि	[10]ग	म	प	ध	नि	स

[इति षड्जग्राम-सप्तमूर्च्छना-मण्डलम्]

---

१. ०वित्री
२. ०त्तुशोभनता
३. ०धा मध्य०
४. ०मास्याच्च
५. ०ते०
६. द
७. स
८. स
९. सि
१०. रि

*नन्दा वि[शाला सु]मुखी[५] चित्रा चित्रवती शुभा ।
आलापा चेति गान्धार[६]-ग्रामे स्युः सप्त मूर्च्छना[७]: ॥५६॥

[इति गान्धारग्राम-सप्तमूर्च्छनानामानि]

अस्याऽपि मध्यगान्धारमूला प्रथम-मूर्च्छना ।
ततष्षण्मूर्च्छनाः पूर्व-क्रमेण परिभाषिताः ॥५७॥

॥ अथ गान्धारग्राम-सप्तमूर्च्छना-मण्डलम् ॥

ग	म	प	ध	नि[१]	स	रि
रि	ग	म	प	ध	नि	स
स	रि	ग	म	प	ध	नि
नि	स	रि	ग	म	प	ध
ध	नि	स	रि	ग	म	प
प	ध[२]	नि	स	रि	ग	म
म	प	ध	नि	स	रि	ग[१०]

॥इति गान्धारग्राम-सप्तमूर्च्छना-मण्डलम्॥

[अथ-स्वर-प्रस्तार-लक्षणम्]

येन केनाऽपि चोद्दिष्टं क्रमं पूर्वं लिखेत्ततः ।
तत्क्रमापेक्षया [१]पूर्व-पूर्वभूतस्वरं[२] परात् ॥५८॥
अथ स्थाप्यः स[३] पूर्वस्थस्ततो [मूल]क्रमे[४] यदि ।
वर्त्तते चेत्तं विहाय तत्पूर्वं त्व[५]परादधः ॥५९॥
न्यसेत्तं दक्षिणे शेषं यथोपरि लिखेत्ततः ।
षष्ठमूलक्रमेणैव न्यसेल्लक्ष्यविचक्षणः ॥६०॥

---

* इमान्येव गान्धारग्राममूर्च्छनानामानि 'संगीतमकरन्दे ( ) 'संगीत-समयसारे' ( ) चाङ्कितानि सन्ति ।

१. ····मञ्चा
२. ०रें
३. मूर्छिताः
४. ०श्रुतिमण्डलं लिख्यन्ते एतदेव ।
५. द
६. सा
७. वं
८. ०रो परान्
९. ०सुपूर्वस्तु तत····
१०. ····क्षणे
११. स्व०

मूलादेकै[1]कंकोष्ठोनतयाऽधो दक्षिणावधि ।
षट् पंक्तयो भवन्त्येवं लिखिते सति, पंक्तयः ॥६८॥
सप्त स्युस्तत्रपूर्वस्यां पङ्क्तौ प्रथममन्दिरे ।
एकांकं विलिखेत्तस्यां शेषकोष्ठेषु खं लिखेत् ॥६९॥
ततः पङ्क्तौ द्वितीयायां [वामाद्ये] स्यादधःस्थिते ।
मन्दिरे पूर्वमेकांकं विलिखेत्तदधः पुनः ॥७०॥
कोष्ठाभावाद् द्वितीयस्यां शून्यस्याधः[2]स्थमन्दिरे ।
वामान्त्याङ्कात् समाहृत्या द्यङ्कं कृत्वा लिखेत्ततः ॥७१॥
तदधः कोष्ठसद्भावाद् द्वितीयत्वाद् गुणद्वयम् ।
चतुर[3]ङ्कं लिखेद[4][त्र] पुनरित्थं च संस्थितान् ॥७२॥
अङ्कान् संयोज्य शून्याधःकोष्ठे विन्यस्य पूर्ववत् ।
तदन्ते तदधोऽधस्तात् कोष्ठे संख्यागुणान्न्यसेत् ॥७३॥
अष्टाविंशतिकोष्ठेषु लिखेत्तेषु क्रमादिति ।
स मेरुः खण्डसंज्ञः स्यात् स मेरुर्लिख्यतेऽधुना ॥७४॥

तद्यथा— [अथ खण्डमेरुः]

स	रि	ग	म	प	ध	नि
१	०	०	०	०	०	०
	१	२	६	२४	१२०	७२०
		४	१२	४८	२४०	१४४०
			१८	७२	३६०	२१६०
				९६	४८०	२८८०
					६००	३६००
						४३२०

॥इति स्वरप्रस्तारखण्डमेरुः॥

❀ आदर्शपुस्तके यद्यपीदं चक्रमग्रेंकितं वर्त्तते तथापि प्रसंगतोऽत्रैव संयोजितम् एवमस्ति मूलस्थं चक्ररूपम् ।

१	०	०	०	०	०	०	
		१	२	६	२	१२	७२
		४	१२	२८	१४	१४४	
			११	१२	३६४		
				९६	४२०		
				९६			

१. कोष्ठेन तयाधो २. ०ध० ३. ०रन्तं ४. ०द्वि…

क्रमं विलिख्य चान्त्यो यो लोष्टो[1] यावतिथे गृहे ।
निवसत्यथ मूलान्त्यात्पूर्वं तावतिथः[2] स्वरः ॥८२॥
नष्टस्यान्त्यो भवेदेवमवशिष्टस्वराः क्रमात् ।
स्वरानेवं समुद्धृत्य तत्र पूर्वस्वरक्रमात् ॥८३॥
[3]न्यसेन्नष्टस्य तानस्य दृश्यते रूपमद्भुतम् ।

॥इति नष्टम्॥

[अथ काकल्यन्तरलक्षणम्]

यदा निषादष्षड्जस्य श्रुतिद्वन्द्वं समाश्रयेत् ॥८४॥
स काकली[4] स्याद् गान्धारो मध्यमस्य श्रुतिद्वयम् ।
स्वीकरोति यदा तन्नामान्तरस्वर उच्यते ॥८५॥

॥इति काकल्यन्तरलक्षणम्॥

[अथ साधारणम्]

साधारणं द्विधा तत्र स्वराद्यं जातिपूर्वकम् ।
स्वरसाधारणं तत्र चतुर्विधमितीरितम् ॥८६॥
काकल्यन्तरषड्जाश्च मध्यमश्च क्रमादमी ।
साधारणविशेष्यत्वेनोच्यन्ते भरतादिभिः ॥८७॥
तत्र साधारणं नाम काकली स्यान्निषड्जयोः[5] ।
साधारणत्वं तस्यातो विदुः साधारणं बुधाः ॥८८॥
अन्तरस्याऽपि गमयोस्तथा साधारणं भवेत् ।
काकल्यन्तरयोस्तत्र लक्षणं ब्रूमहेऽधुना ॥८९॥
प्रथमं षड्जमुच्चार्य काकलीधै[6]वतं ततः ।
क्रमादुच्चारयेदेवं मध्यमं च ततः परम् ॥९०॥

---

१. ०ष्ठो
२. ०थ०
३. तथा नष्ट०
४. ०लः
५. ०षण्णयोः
६. ०दै०

[अथालङ्कारप्रकरणम्]

अलंकरोति यो रागं मूर्च्छना–जाति-वर्णगैः ।
स्वरैश्शुद्धैश्च विकृतैः षा[1]डवौडु[2]वभूषितैः ॥१००॥
नानाचित्रकलायोगे [3]सोऽलंकारोऽभिधीयते ।
यथा लोके मनुष्याणां किरीटकटकादयः ॥१०१॥
तथैव सर्वरागाणामलङ्कारो[4]ऽभिभूषणम् ।
तस्मादस्मिन्नलङ्कारलक्षणं व्याहरामहे ॥१०२॥
अलंकारस्वरूपं स्याद् विशिष्टं वर्णगुम्फनम् ।
तस्य भेदास्तु बहवस्तेषु स्थायिगता दश ॥१०३॥
सलक्ष्यं ब्रूमहे, तावत्तस्य संज्ञाविधं ब्रुवे ।
मृदुप्रसन्नमन्द्रा[5]श्च पर्या[6]या इति कीर्तिताः ॥१०४॥
दीप्तस्तारस्य पर्यायो मन्द्रो[7] मण्डलमस्तकः ।
तारस्वरस्[8]तु दिव्योर्ध्वरेखाराजितमस्तकः ॥१०५॥
प्लुतस्त्रि[9]स्स्वरसंज्ञातो लिपिरेषा निरूपिता ।
अस्मिन् प्रकरणे मन्द्रो[10] मूर्च्छनाप्रथमस्वरः ॥१०६॥
लिखेत् प्रतिकलायां तु मूलस्वरवियोगतः ।
प्रसन्ना[11]दिः प्रसन्ना[12]न्तः प्रसन्नाद्य[13]न्तभूषितः ॥१०७॥

---

१. क्षा०
२. ०ड०
३. सोलं०
४. ०रोभि०
५. ०द्र०
६. ०य
७. ०द्र०
८. स्य
९. ०त्रिस्वरसंज्ञावलिर्येषां
१०. ०द्रा
११. नधीः
१२. ०नांकः
१३. ०द्यंक०

ऋषभादिस्वराः सर्वे दीप्ताः स्युः स्थायिनं विना ।
[1]संरिसं । सं गं मं सं । सं [पं] धं निं सं ।

इति *प्रस्तारः–[६]

मन्द्र[2]तारविपर्यासात् तं प्रसादं विदुर्बुधाः ॥११४॥

सं[3] रि सं [संगमसं । संपधनिसं]

[इति प्रसादः–७]

॥ इति स्थायिगतालंकारा[4]ः ॥

अथारोहिगतेष्वाद्यो विस्तीर्णः स्यात्ततः परम् ।
निष्कर्षो गात्रवर्ण[5]श्च बिन्दुरभ्युच्चयस्ततः ॥११५॥
हसितप्रेङ्खिताक्षिप्तसन्धिप्र†च्छादितास्तथा ।
उद्गीतोद्वाहितौ[6] तद्वत् त्रिवर्णो[7] वेणिरित्यमी ॥११६॥
द्वादशारोहिवर्णस्थालंकाराः परिकीर्तिताः ।
य[8]त् षड्जादिनिषादान्तं क्रमादारोहणं भवेत् ॥११७॥
प्रतिस्वरेण दीर्घेण विस्तीर्णः[9] कथ्यते बुधैः ।

सा री[10] गा मा पा धा नी[11]

इति विस्तीर्णः–[१]

---

* 'सङ्गीतरत्नाकरे' तु प्रस्तारलक्षणमेवं निरूपितम्—दीप्तान्तश्चेत्प्रति-कलं प्रस्तारः सोऽभिधीयते ।
सं रि सं संगमसं संपधनिसं (१–१३)

† सङ्गीतरत्नाकरे—'प्रच्छादन' (१-१४) इति पाठो वर्त्तते ।

१. सरिस । सगमस । सधनिस
२. मद्र०
३. सिं रिं सिं
४. ०रः
५. ०र्णा०
६. ०तस्त०
७. ०र्णा
८. यं
९. ०र्णं
१०. नी
११. नि

स्वरद्वयं समुच्चार्य पूर्वमेकं परं तथा ।
क्रमादारोहयेत्तन्त्र्यां प्रें[1]खितं प्रेंखितो मतः ॥१२३॥

सरि । रि ग । गम । मप । पध । धनि

इति प्रेंखितः [६]

एकान्तरस्वरयुगं पूर्वं[2]वत् पूर्वयोगतः ।
उच्चार्यते चेदारोहिवर्णे[3] आक्षिप्त उच्यते ॥२४॥

सगग । गपप । पनिनि

[4]इत्याक्षिप्तः [७]

त्रिभिः स्वरैः प्रबन्धत्वं पूर्वैकस्वरयोगतः ।
क्रमादारोहणं यत्र तदा प्रच्छादितो मतः ॥१२५॥

[सरिग । गमप । पधनि ।]

[इति सन्धिप्रच्छादितः–८]

मूर्च्छनायां कलायुग्मं कुर्यात्त्रित्रिस्वरात्मकम् ।
त[5]स्य चाद्यस्त्रिवारं चेत्तदोद्गीतः प्रकीर्तितः ॥१२६॥

ससससरिग । मममपध ।

इत्युद्गीतः [९]

उद्गीतकलयोरादिस्वरस्या[6]म्रेडितं यदा ।
स्वीकरोति द्वितीयो यस्तदोद्वाहित उच्यते ॥१२७॥

स रि रि रि ग । म प प प ध ।

इ[7]त्युद्वाहितः [१०]

---

१. द्रोंखिता
२. ०तत्
३. ०र्णः प्रेंखित, उ०
४. इति प्रेंखितः
५. तयोराद्य०
६. ०था०
७. इत्युद्दाहितः

प्रथमस्वरमारभ्य तत्तृतीयद्वितीयकम् ।
क्रमादुच्चारयेत्तेनै[1]ककला तदनन्तरम् ।।१३४।।

पूर्वं पूर्वं विहायान्त्ययोगेनात्र पुनः पुनः ।
क्रियते विधिनानेन यो मन्द्रादिर्निगद्यते ।।१३५।।

सं[2]गरि । रिमग । गपम । मधप । पनिध ।

इति मन्द्रादिः [१]

कलायामि[3]ति मन्द्रादे[4]र्मन्द्रो मध्यगतो भवेत् ।
स मन्द्रमध्य इत्युक्त[5]—

गसरि । मं[6]रिग । पगम । धँ[7]मप । निपध ।

इति मन्द्रमध्यः [२]

——स्तत्र मन्द्रस्वरो यदि ।।१३६।।

भवेन्[8]मन्द्रस्ततो[9]ऽन्यौ तु तद्विपर्यासभाविनौ ।
भूत्वा तत्पूर्वगौ स्यातामेवं प्रतिकलं यदा[10] ।।१३७।।

भवेत्तदा स्यान्मन्द्रान्तः ।।१३७½।।

रिगस । गमरि । मपग । पधम[11] । [धनिप]

इति मन्द्रान्तः [३]

---

१. ०न कंकालात्त०
२. सगरि । रिगम । सपम । धनिस ।
३. ०मे०
४. ०देः म०
५. ०तो त०
६. स
७. धनिस
८. ०दन्यस्त०
९. ०तोन्यत्तु
१०. ०था
११. नि

गपमध धमपग । मधपनि निपधप ।

इति स्खलित [७]

[क्रमात् स्वरत्रये यत्र] त्यक्त्वा त्यक्त्वा द्वितीयकम् ॥१४४॥

पुनस्त्यक्तं समारभ्य चतुरावृत्तिशोभितः ।

यदा भवेत्तदा सोऽत्र परिवर्त्त[1] इति स्मृतः ॥१४५॥

सगम । रिमप । गपध । मधनि ।

इति परिवर्त्तः[2] [८]

कला[3] तु त्रिस्वरा तत्र पूर्वं त्यक्त्वा तदुत्तरम् ।

परिगृह्य पुनस्तद्वत् कुर्यादाक्षिप्तकः[4] क्रमात् ॥१४६॥

सरिग[5] । रिगम[6] । गमप । मपध[7] । पधनि ।

इत्याक्षिप्तः [९]

त्रिस्वरायां [कलायां]तु प्रथमः प्लुतसंज्ञितः ।

[8]ततो द्वितीयो द्रुता[9]र्धकालस्पर्शी[10] भवेदथ[11] ॥१४७॥

स्वरमुच्चारयेत्पूर्वं तदासौ बिन्दुरुच्यते ।

[12]सससरिस । रिरिरिगरि । ग[13] गगमग ।

[14]मममपम । [15]पपपधप । [16]धधधनिध ।

इति बिन्दुः [१०]

त्रिस्वरां[17] कलामुक्त्वा पुनरुक्त्वा द्वितीयकम् ॥१४८॥

पूर्वैकैकवियोगेनोच्चारितोद्वाहितो[18] भवेत् ।

सरिगरि । रिगमग । गमपम । [19]मपधप ।

इत्युद्वाहितः [११]

---

१. ०वृत्त
२. ०वृत्तः
३. ०लात्रि०
४. ०के
५. गा
६. मा
७. धा
८. इति द्वि
९. ०धार्थ०
१०. ०र्शः
११. ०धः
१२. सासासारिसा
१३. गागागामग
१४. मामामापमा
१५. पापापपदपा
१६. धाधाधानीधा
१७. ०गि०
१८. ०ता
१९. पधनिध

मूर्च्छनादिस्वरात्तुर्यस्वरः[1] स्यात्[2] प्लुतसंज्ञितः ॥१४९॥
ततः क्रमात्पूर्वतुर्यौ गायेत्तद्वत्पुनः कलाः ।
पूर्वैकैकवियोगेन तदा सा ह्यूर्मिरुच्यते ॥१५०॥
स[3]मममसम । रिपपपरिप । गधधधगध ।
मनिनिनिमनि ।

इत्यूर्मिः [१२]

समस्वरश्चतुःस्वरः स्यां[4]दारोहावरोहवान् ।
द्वितीयाद्याः कलास्तत्र पूर्वैकैकं पुनः पुनः ॥१५१॥
तत्काः कलाश्चस्त्रः स्युः—
सरिगम[5]मगरिस[6] । रिगमप[7]पमगरि । गमपध[8]धपमग ।
म[9]पधनिनिधपम ।

इति समः [१३]

... ... प्रेंखिते तु स्वरद्वयम् ।
नीत्वावरोहयेत् सैका कला स्यादिति षट् कलाः ॥१५२॥
यथापूर्वं पूर्वपूर्वस्वरं त्यक्त्वा व्रजेत् पुनः ।
ताः कलाश्चैव तान्ताः ? स्युः—
सरिरिस[10] । रिग[11]गरि[12] । गम[13]मग । मप[14]पम ।
पध[15]धप । धनि[16]निध ।

इति प्रेंखः [१४]

—भवेन्निष्कूजित[17]स्ततः ॥१५३॥

१. ०न् कुर्यान्
२. ०द्द्रुत०
३. समामामा समा । रिपापापारिपा दधादादागदा । मनीनीनीमनि ।
४. स्यात्स्यादारोह०
५. माम
६. सा ।
७. पा ।
८. ध ।।
९. मधनिपधनी ।
१०. सा
११. गा
१२. री
१३. ०भामपा
१४. पापमा
१५. धाधपा
१६. ०नीनिधा
१७. तसतः

प्रसादस्य कलामुक्त्वा[1] ततो मूलक्रमं प्रति ।
[2]तृतीयं स्वरमुच्चार्य ततो मन्द्रं व्रजेत्पुनः ॥१५४॥
एवं गीते सति तथा कलाः पंच भवन्ति ताः ।

सरिस[3]गस । रिगरिमरि । गमग[4]पग । मपम[5]धम ।
पधप[6]निप ।

इति निष्कूजितः [१५]

श्येनो भवेत्स्वरद्वन्द्वं[7]-कलाभ्यस्त्रिकलात्मकः ॥१५५॥
आदौ सपंचमौ नीत्वा पूर्वपूर्ववियोगतः ।
तथान्ये[8] तु कले स्याताम[9]ेवं संवादियुग्मकाः ॥१५६॥
कलाः स्युः [कीर्तिताः सद्भिः]

स प । रि ध । गनि ।

इति श्येनः [१६]

—[10]ततश्च क्रम उच्यते ।
पुनर्मन्द्रं समारभ्य क्रमाद् द्वित्रिचतुःस्वराः ॥१५७॥
गीय[11]न्ते चेत्तदास्यै[12]का कला स्यात्तद्वदुत्तरा ।
प्रथमै[13]कैकहीनत्वाच्चतस्रः स्युः कलाः क्रमात् ॥१५८॥

सरि[14] सरिग सरिगम । रिग रिगम रिगमप ।
गम[15] गमप गमपध । मप[16] मपध मपधनि ।

इति क्रमः [१७]

---

१. ०मुका ।
२. त्रितयं
३. ०सा ग सा
४. ०पा प गा
५. ०माधमा
६. ०पानिपा
७. ०द्वं कलास्यै त्रिक०
८. येक कला
९. ०तां एवं
१०. याः क्रमोच्यते
११. ०यते
१२. ०येका
१३. ०मेक्येक०
१४. रि । सरिगा । सरिगमा । रिगा । रिगमपा ।
१५. मा गमपा । गमपधा ।
१६. ०पा । मपधा । म०

मूलात् स्वरद्वयं नीत्वा पञ्चमोद्यवरोहिजाः[1] ।
[2]ऋषभान्ताः प्रणीयन्ते यदास्यै[3]का कला तथा ॥१५९॥
तिस्रः कलाः स्युः स[4] नाम्नोद्‌घट्टान्तः परिकीर्तितः ।
[5]सरिपमगरि । रिगधपमग । गमनिधपम ।

इत्युद्‌घट्टान्तः [१८]

प्रथमं मन्द्रमुच्चार्य प[6]रारोह्यवरोहिणौ ॥१६०॥
ए[7]वं द्विवारमुक्त्वाथ पुनर्मन्द्र[8]श्रुतिस्तदा ।
भवेद्का कला तत्र प्रथमे[9] कैकहीनतः ॥१६१॥
रंजितोऽसौ[10] भवेत्पंचकलात्वेन विराजित[11]ः ।
सगरि[12] सगरिस । रिमगरिमगरि । गपमगपमग[13] ।
मध[14] पमधप[15] म । प[16] निधपनिधप ।

इति रंजितः [१९]

❀

सन्निवृत्तप्रवृत्ते तु गीत्यादौ मन्द्रपंचमौ ॥१६२॥
ततो मध्यत्रयं चावरोहणाय निगीयते ।
तदा कला भवेदेका त[17]थैवाद्याद्यहीनतः ॥१६३॥
नीयते चेत्तदा तिस्रः कला एव भवन्ति ताः ।

❀ आदर्शपुस्तकेऽत्र (समवृत्तप्रवृत्तकः) इत्यङ्कितोऽस्ति ।

१. ०म्याद्य० ९. ०मे०
२. वृष० १०. ०तोसो
३. ०येका ११. ०ते
४. सन्नामोद्० १२. ०रीसा०
५. सरि सम गरि । रिगधमध गा । गमनि धपमा । १३. ०गा
६. सत्वरारोहावरोहणा १४. ०द०
७. एकद्वि० १५. ०सभा
८. ०ते० १६. सनिदपनिधपा
१७. तदैवाद्यौद्य०

सपमगरि । रिधपमग[1] । गनिधपम[2] ।

इति सन्निवृत्तप्रवृत्तक[3]ः [२०]

[4]मन्द्रद्वयं द्वितीयं तु गीतादौ तत्पुरस्सरौ ॥१६४॥

स्वरौ च विपरीतेन गीये[5]ते चेत्तदा कला ।

एवमेकैकहीनत्वाच्चतस्रः स्युः कलाः क्रमात् ॥१६५॥

अयं वेणुरसो नामालंकारः परिकीर्तितः ।

[6]ससरिमग । रिरिगपम । गगमधप । ममपनिध ।

इति वेणुरसावलिः [२१]

चतुःस्वरं तृतीयेन विना नीत्वा समूहयेत् ॥१६६॥

त[7]थान्त्यं स्वरमुत्सृज्य द्वितीयादिद्वयं क्रमात् ।

तद[8]ैका स्यात्कला तद्वच्चतस्रः स्युः कलाः क्रमात् ॥१६७॥

भवेदसावलंकारो ललितस्वरनामकः ।

सरिमरिस[9] । रिगप[10]गरि । [गमधमग] मपनिपम[11] ।

इति ललितस्वरः [२२]

उच्चारये[न्मन्द्र]मेकं तदा सैका कला मता ॥१६८॥

द्वितीयाद्याः कलास्तत्र स्वरेष्वेकैकमु[12]त्थिताः ।

नीत्वा नीत्वा [पुनःषड्ज]पर्यन्तमवरोहयेत् ॥१६९॥

कला[13]ः सप्त भवन्तीति हुंकारेऽस्मिन् विदुर्बुधाः ।

स । सरिस । स[14]रिगरिस । सरिगमगरिस[15] ।

सरिगमप[16]मगरिस ।

[सरिगमपधपमगरिस] सरिगमपधनि[17]धपमगरिस ।

इति हुंकारः [२३]

---

१. ०गा
२. ०मा
३. ०त्तिकः
४. मन्त्रद्व०
५. ०यते
६. सा सरिमगा । रि रि गमपा । गसमधपमा । मसनिधा ।
७. न चान्त्यं
८. ०थैका
९. ०सा
१०. ०स०
११. ०मा
१२. उत्थितः
१३. ०ला
१४. गरिगर सा
१५. ०सा
१६. ०पदसमगरिसा
१७. ०नि । धनम०

मूलस्वरं समुच्चार्य [1]तृतीयं विन्यसेत् पुरः ॥१७०॥

ततः प्रसन्नमूलं स्यादियमेका कला मता ।
एवं पंचकलात्वेन [2]ह्रादमानो निगद्यते ॥१७१॥

सगरिस[3] । रिमगरि । गपमग । मधपम[4] । पनिधप ।

इति [5]ह्रादमानः [२४]

चतुःस्वरकलां कृत्वा चारोहे चावरोहणे ।
स्वस्वद्वितीयं सन्त्यज्य गीते चैककला मता ॥१७२॥

चतस्रः स्युः कलाः सर्वा[6]स्तदा स्यादवलोकितः ।

सँगममरिस[7] । रिमपपगरि । गपधधमग । मधनिनिपम ।

इत्यवलोकितः [२५]

एते संचार्यलंकाराः ❀कीर्तिताः पञ्चविंशतिः ॥१७३॥

अवरोहेर्णाप्येषां तु संचारित्वं सतां मतम् ।

॥इति संचार्य[8]लंकाराः॥

पुनश्च सप्तालंकारा मतंगाद्यैर्निरूपिताः ॥१७४॥

❀ आदर्शपुस्तके 'पञ्चविंशति कीर्तिताः' इति पाठो वर्तते । शब्दशास्त्रं छन्दः शास्त्रञ्च समीक्ष्य संशोधितोऽत्र 'कीर्तिताः पञ्चविंशतिरिति ।

१. विन्यसेत् पुरतः स्थिरम्
२. हृद्यमानो
३. सा । सरि । गमापगा ।
४. मा । सनिधगा ।
५. हृद्यमानम्
६. ०र्वे त०
७. स ग म । मरिस । रिमप पगरि । गसम । मपग । मधनि । नि
८. ०पि ते स्युः सं०

तार[1]मन्द्रप्रसन्नश्च मन्द्रतारप्र[2]सन्नकः ।
आवर्त्तकः सम्प्रदानो[3] विधूतोऽप्यवलोलकः ॥१७५॥
उ[4]ल्लासितश्चेति तेषां लक्षणं कथ्यते क्रमात् ।
क्रमात्सप्त स्वरान् तार[5]षड्जं मन्द्रं पुनः पुनः ॥१७६॥
तार[6]मन्द्रप्रसन्नाख्यालंकारः परिकीर्तितः ।

संरिगमपधनिस[7] [सं] ।

इति तार[8]मन्द्रप्रसन्नः [१]

मन्द्रं[9] प्रथममुच्चार्य तारं[10] तस्याष्टमं व्रजेत् ॥१७७॥
तथैवारोहयेन्मन्द्रपर्यन्तं तान् क्रमात् स्वरान् ।
मन्द्रतारं[11]प्रसन्नाख्योऽलंकारोऽयं निरूपितः ॥१७८॥

[12]सं सं नि ध प म ग रि सं[13] ।

इति मन्द्रतारप्र[14]सन्नः [२]

मूलस्वरद्वयं द्विद्विवारमुक्त्वा ततः पुनः ।
मन्द्रद्वयं द्वितीयं च प्रसन्नं[15] प्रथमस्वरम् ॥१७९॥
गीयते चेत्कला सैका मे[16]ता तद्वत्कलाश्च षट् ।
पूर्वैकैकवि[17]योगेन भवेदावर्त्तको मतः ॥१८०॥

---

१. ०लमन्द्रः प्र०
२. ०लप्रसन्नतः
३. ०ना विमतोप्य०
४. उदासीनश्चेति
५. ०लषड्जमन्द्रं
६. ०मन्त्रप्र०
७. ०सा
८. ०ल०
९. मन्द्रप्रसन्नमु०
१०. ०लं
११. ०ल०
१२. सां सा नि०
१३. ०सां
१४. ०ल०
१५. ०न्ना
१६. कला
१७. ०नियो०

[स]सरिरिससरिस[1] । रिरिग[2]गरिरिगरि ।
गगममगगमग[3] । ममप[4]पममपम ।
पपधधपप[5]धप । धधनिनिध[6]धनिध ।

इत्यावर्त्तकः [३]

आवर्त्तककलायां तु विहायान्त्यं स्वर[7]द्वयम् ।
प्रोच्यते सा कला चैकाकारा षट् सम्प्रदानके ॥१८१॥

स[9]सरिरिसस । रिरिगगरिरि । गगममगग ।
ममपपमम । पपधधपप । धधनिनिधध ।

इति संप्रदा[10]नकः [४]

स्वरत्रयं च कृत्वाथ तत्र त्यक्त्वा द्वितीयकम् ।
स्वरद्वयं द्विरुक्तं च तथा सैका कला मता ॥१८२॥

एवमाद्याद्यविरहात् पंच स्यु[11]र्विधुते कलाः ।
स[ग]सग[12] । रिमरिम । ग[13]पगप । मधमध[14] । पनिपनि[15] ।

इति विधुतः [५]

क्रमात्स्वरद्वयं वारद्वयमुच्चार्य सात्परम् ।
स्वरद्वयं व्युत्क्रमेण गीयते चेत्कला तदा ॥१८३॥

---

१. ०सां ।
२. ०रि०
३. ०गरि ।
४. ०ससममपमा ।
५. ०दधसां ।
५. ०दधनिधा ।
७. ०कं द्व०
८. ०धा०
९. संपरिरिरिससस । रिरि । गग- रिरि । गगगमगग । ममससमम । पपधपप । दधनिनिदधा ।
१०. धानकः
११. स्युः वि०
१२. ०गा
१३. गसगसा ।
१४. ०धा
१५. ०नी

तथाविधाः कलाः पंच पूर्ववत् पूर्वहीनतः ।
उपलो[1]लाह्वयो[2] नामालंकारः परिकीर्तितः ।।१८४।।
सरिसरिगरिगरि । रिगरिगमगमग । गं[3]मगमपमं[4][प]म ।
मपमपधं[5]पधप । पं[6]धपधनिधनिध ।।
इत्युपलोलँ[7]ः [६]
मन्द्रद्वयं समुच्चार्य तृतीयस्य द्वयं तं[8]तः ।
तथा तृतीययोर्मध्ये न्यसेन्मन्द्रं तदा कला ।।
एवं पंचकलारूपो[9]ल्लासितः परिकीर्तितः ।।१८५।।
ससगसगं[10] । रिरिमरिमं[11] । गगपगपं[12] ।
ममधमधं[13] । पप[नि]पं[14]नि ।
इत्युल्लासितः [७]
इति सप्तालंकाराः
।। इति स्वरगताध्याये[15] वर्णालंकारलक्षणं समाप्तम् ।।

श्रीः

।।अविघ्नमस्तु।।

[अथ वाग्गेयकारलक्षणम्]

अथ गीतादियो[16]गत्वात्प्रकीर्ण[क]समुद्भवम् ।
लक्षणं चात्र वक्ष्यामि प्रयोगललितं परम् ।।१८६।।

---

१. ०डो०
२. ०यं
३. स०
४. ०स०
५. ०ध । पधम ।
६. सधपसनिधनिध
७. ०डो०
८. तथा
९. ०पोला०
१०. ०गा
११. ०मा
१२. ०पा
१३. ०धा
१४. ०धनि
१५. ०यव०
१६. ०यागत्वा....

गीते पदादिरचना[रूपं वागिति] वक्ष्यते ।
स्वरादिबन्धसम्भूततानं गेयमितीरितम् ॥१८७॥

वाचं गेयं यः करोति स स्याद्[1] वाग्गेयकारकः ।
स्थितेऽस्मिन्, वाङ्[2]मातुरिति गेयो[3] धातुरितीर्यते ॥१८८॥

स त्रेधा लक्ष्यते तज्ज्ञै[4]रुत्तमादिगुणैः पृथक् ।
सत्कुलीनो गुणमणिः सुमुखो धर्ममार्गगः ॥१८९॥

औदार्य-स्थैर्य-गाम्भीर्यभूमिर्भुवनवन्दितः ।
शब्दानुशासनविज्ञैः[5] पर्याय-पदचारधीः ॥९०॥

उ[6]पमादिष्वलंकारनिपुणो रसभाववित् ।
छन्दोभेदपरिज्ञानी कुशलो देशवृत्तिषु ॥१९१॥

समस्तभाषा[7]विज्ञश्च तालशास्त्रविचक्षणः ।
तूर्यत्रितययोगज्ञश्चतुरोऽनेककाकुषु ॥१९२॥

[8]उच्छिष्टोक्तौ च विद्वेषी भीतः स्याद् ग्राम्यमातु[9]षु ।
प्रौढः प्रबन्धनिर्माणे कलान्तरविचक्षणः ॥१९३॥

नवधा[10]तु विनिर्माता रम्य-[गेयै]र्मनोहरः ।
त्रिस्थानगमकाभिज्ञो नानाले[11]प्तिषु भेदवित् ॥१९४॥

एवमुक्तगुणै[12]: श्रेष्ठो भवेद् वाग्गेयकारकः ।
धातुप्रौढो मातु[13]हीनः स मध्यम इतीरितः ॥१९५॥

---

१. ०दाङ्गेय०
२. वाग्धातुरिति
३. ०या
४. ०ज्ञैः उत्तमापिगुणैः
५. धिपर्यये
६. असमादि०
७. ०वादेकश्च
८. उद्दिदष्टोक्तामविद्वेषी
९. तृषु
१०. ०धा तु
११. ०लिपिषु
१२. ०णश्रे०
१३. ०तृ०

[1]योऽथ प्रबन्धरहितो [धा]तुमातु[2] विचक्षणः ।
स च मध्यम एव स्यात् [3]सुमातुर्धातुहीनकः ॥१९६॥

अधमः[4] स्यात्, कवीनां तु [5]त्रैविध्यं ब्रूमहेऽधुना ।
आदौ वस्तुकविर्वर्ण[6]कविः स्यात् कुट्टि[7]कारकः ॥१९७॥

श्रेष्ठो वस्तुकविर्वर्ण[8]कविर्मध्यम उच्यते ।
कुट्टिका[9][रोऽधमश्चान्य]धा[10]त्वधिष्ठितगीतकः ॥१९८॥

॥इति वाग्गेयकारलक्षणं समाप्तम्॥

मार्गे[11] देश्यां च यः प्रौढः[12] स गान्ध[13]र्वं इतीरितः ।

॥इति गान्धर्वलक्षम्॥

वेत्ति यः केवलं मार्गं स्वरादिः सोऽभिधीयते ॥१९९॥

॥इति स्वरादिः॥

[अथ गायकलक्षणम्]

सुस्वरस्सुमुखस्सौम्यशारीरश्श्रुतितन्त्रगः ।
ग्रहमोक्षादिभेदज्ञः स्वरद्वय[?]विशेषवित् ॥२००॥

रागरागांगादिचतुर्विधज्ञस्तालनिश्चयः ।
गमकेषु निरायासो नानाल[14]प्तिविशेषवित् ॥२०१॥

---

१. यथा
२. ०तृ०
३. ०तु मा०
४. ०मस्तत्कुलीनां
५. त्रिविधं
६. ०ण्यः
७. कुटि०
८. ०र्यः कः
९. कुटिका····
१०. ····समातुर्युतगी०
११. ०र्गे०
१२. ०ढिः
१३. ०धार
१४. ०लिपिवि०

प्रबन्धगानललितः[1] सावधानो जितश्रमः ।
अशेषस्थायैः[2] सुघटः सर्वकाकुविभेदवित् ॥२०२॥

क्रियासु चतुरश्छायालँगभेदविचक्षणः[3] ।
अविघ्नवेगवान् रहैः[4]कृद् भवेद् गायकोत्तमः ॥२०३॥

एवमुक्तगुणेष्वत्र हीनः कतिपयैर्यदि ।
निर्दोषश्चेति[मध्यम–][5]स्त्वधमो दोषसंयुतः ॥२०४॥

गायकः पंचधा तत्र शिक्षाकारोऽनुकारकः ।
भावको रसिकः सर्वरंजकश्चेति कथ्यते ॥२०५॥

पूर्वलक्षणदक्षो यश्शिक्षाकारःस उच्यते ।
परोक्तगी[6]तं तदनु वक्ति यँस्सोऽनुकारकः ॥२०६॥

ज्ञात्वा [8]श्रोतुरभिप्रायं यो गायेत्स तु भावकः ।
पुनस्त्रिधा गायकः स्याद् योगायोगविशेषतः ॥२०७॥

यो गायेदेक एवाथै[9] कलो गायनहेतुकः ।
आत्मद्वितीयो यमलो वृ[10]न्दयुक्तः स वृन्दकः ॥२०८॥

गाय[11]न्यश्च वयोरूपशालिन्यो [12]गातृवन्मताः ।

॥ इति गायकलक्षणम् ॥

---

१. ०धा
२. ०यि०
३. ०लिङ्गभे०
४. ०हृ०
५.''''स्याधमो
६. ०तालं त०
७. यस्योनु०
८. गातु०
९. ०थ एकतो गा०
१०. बृ०
११. ०यन् य०
१२. गात्रव०

[अथ गानदोषाः]

शंकितः कम्पितो भीतः [1]सूत्कारी करभोन्नतः ॥२०९॥
सन्दष्टो[2] विकलः काकी करालो [3]हीनतालकः ।
प्रसारी[4] तुम्बकी वक्री [5]झोम्बको विनिमीलकः ॥२१०॥
अव्यक्तो विरसो[6] द्घुष्टो स्थानभ्रष्टोऽथ [7]मिश्रकः ।
[8]उद्धृटोऽनवधानश्च ततोऽन्यः सानुनासिकः ॥२११॥
अव्यवस्थितकश्चापस्वरश्च भरतादिभिः ।
पंचविंशतिरित्युक्ता दोषा गायकसम्भवाः ॥२१२॥
यो गाता सत्वरं गायेत्स[9] शंकित इतीरितः ।
शरीरकम्पनाद्[10] गाता यदि गायेत्स कम्पितः ॥२१३॥
गेयं गायति भीत्या यः स भीत इति भाषितः ।
सूत्कारसहितो गाता सूत्कारीति निगद्यते ॥२१४॥
कृतोर्ध्वकन्धरो यस्तु करभः प्रोच्यते बुधैः ।
संयुक्ताधो※र्ध्वदंशनः[11] सन्दष्टः परिकीर्तितः ॥२१५॥
[12]श्रुतिक्रममतिक्रम्य स्वरान् न्यूनाधिकत्वतः ।
यो गायति स दोषज्ञै[13]र्विकलः परिकीर्तितः ॥२१६॥
सरेफध्वनिना का[14]की [कराल] वि[15]वृतोन्मुखः ।

※ 'सान्ता अदन्ता अपि भवन्ति' इति नियमेनात्र सन्धिः प्रतीयते ।

१. सूचाकक०
२. ०टः कपिलः
३. केलिता०
४. ०दी
५. झाम्ब०
६. ०सोदृष्टस्था०
७. विंश्रकः
८. उद्गण्डो नवध रश्च
९. ०सशं०
१०. ०त् गा०
११. ०रसनः
१२. क्रममेलनमाक्रम्य
१३. ०ज्ञैः कपिलः
१४. स्तोकी····
१५. ···प्रमुखोन्मु०

कराली[1] गदितः सद्भि[2]र्वितालस्तालविच्युतः ।।२१७।।

प्रसारी[3] तु स विज्ञेयः स्वांगगीतप्रसारणात् ।
अ[4]थ तुम्बकवत्फुल्लगल्लो भवति तु[5]म्बकी ।।२१८।।

यो गाता वक्रितग्रीवः स वक्री विनिगद्यते ।
समुत्सन्न[शिराला]स्यो[6] झोम्बकः परिकीर्तितः ।।२१९।।

निमीलकस्स विज्ञेयो [7]नेत्रपक्ष्म[10]निमीलनात् ।
यो गद्गदध्वनिक्षामाक्षरो ऽव्यक्तस्स उच्यते ।।२२०।।

विरसो[8] रक्तिरहित उद्घुष्टस्स्[9]यादरंजकः ।
उच्चस्थाने[10][न] गेयं वा[11][गायेत्]स्थानान्तरे यदि।।२२१।।

[12]स स्थानभ्रष्ट इत्युक्तो दोषज्ञैः पूर्वसूरिभिः ।
[13]शुद्धसालगरागं च मिश्रयन् मिश्रकः स्मृतः ।।२२२।।

[14]तत्र संकीर्ण-रागं च मिश्रयन् बहुमिश्रकः ।
[15]उद्भटश्छागवत्कम्पस्वरवानधमाधमः ।।२२३।।

[16]त्यक्त्वा स्थायादिकं योऽत्र स्खलितोऽनवधानक[17]ः ।

---

१. ०लगावित०
२. ०भिः वि०
३. ०रितस्स
४. आह कुञ्जिकवत्तल्ल०
५. ०म्बिकी
६. स्योयाम्बकः
७. पुनः पद्मविताडनात्
८. सोर।क्तरहितोद्
९. ०स्तारेत्सरञ्जकः
१०. ०न····
११. व
१२. स्वस्था०
१३. शुद्धासु साङ्गरागञ्च
१४. तदा
१५. उद्दण्डस्थानगम्भीर
१६. ज्ञात्वा रागादिकं
१७. ०तः

[1]नासास्वरयुतो गाता कथ्यते सानुनासिकः ॥२२४॥

यस्त्वव्य[2]वस्थितस्थानस्सोऽव्यवस्थित उच्यते ।
गीतौ[3] वर्ज्यस्वरं गाता [4]ह्युच्यते[5]ऽपस्वरो बुधैः ॥२२५॥

॥इति गानदोषाः॥

[अथ शारीरभेदाः]

शरीरजो भवेच्छब्दः शारीर[6] इति कथ्यते ।
स चतुर्धा बुधैः प्रोक्तः खाहु[7]लो नार[8]टस्तथा ॥२२६॥

[9]बोम्बको मिश्रकश्चेति तेषां लक्ष्माणि वच्महे ।
ना[10]दो यः कफसम्भूतः स्निग्धो मा[11]धुर्यपूरितः ॥२२७॥

प्रारम्भात् फलपर्यन्तं सौकुमार्य-समन्वितः ।
स एव खा[12]हुलो* नाम प्रौढ[13]श्चेन्मन्द्रमध्ययोः ॥२२८॥

आडि[14]ल्ल इति तद्विद्भिः प्रोच्यते खा[15]हुलध्वनिः ।
नारा[16]टः पित्तसम्भूतः स्थानत्रयघनस्वरः ॥२२९॥

गम्भीरः स्पन्दरहितः श्रोतृचित्तसुखावहः ।
वातजो [17]बोम्बको नादस्त्वन्तर्निस्सारसंयुतः ॥२३०॥

[18]स्थौल्यकार्कश्यपारुष्यकल्पितोच्चतरस्वरः ।

---

* अस्मिनपुस्तके क्वचित् "खाहुलः" क्वचित् काहुलश्चेति पाठौ स्तः ।

१. गाढस्व०
२. ०ह्यव०
३. ०त्वा
४. उच्य०
५. सोस्वरो भवेत्
६. ०रमिति
७. ०दितो
८. ०द०
९.
१०. बदिरं कण्ठसम्भूत०
११. मधुरपू०
१२. कामिलो
१३. ०ढमन्द्रस्यमध्य०
१४. ०नेल
१५. कारल०
१६. ०टपि०
१७. चाम्ब०
१८. स्थानकर्कशपा०

एतत्त्रययुतो[यः सं]निपातो मिश्रकः स्मृतः ॥२३१॥
नन्वत्र मिश्रशब्देन मिश्रत्वं[१] युक्तमेव हि ।
नास्त्यत्र रक्तमिश्रत्वं[२] रूक्षबोम्बस्य योगतः ॥२३२॥
[३]नैवं बोम्बः किञ्चिदत्र रूक्षैक[५]गुणहीनतः ।
रंजकत्वं प्रयातीति प्रोक्तं पूर्वमनीषिभिः ॥२३३॥
मिश्रस्य भेदा उ[६]च्यन्ते यथा ना[७]राटखाहुलः ।
तथा नारा[८]टबोम्बश्च तद्वत्खाहु[९]लबोम्बकः ॥२३४॥
उक्ता[१०]स्त्रयोऽथ भेदास्स्यु[११]श्चतुर्थः प्रोच्यतेऽधुना ।
रूक्षनिःसारतो[१२]नस्य कामचारित्रयस्य तु ॥२३५॥
मिश्रो[१३] वरतमः प्रोक्तः सुकृतैर्ना[१४]रदादिभिः ।
[१५]नारटध्वनिना चात्र युक्तः खाहुल उत्तमः ॥२३६॥
स ए[१६]वाथ बोम्बयुक्तो[१७] मध्यमः परिकीर्तितः ।
नाराटबो[१८]म्बयोगेना[१९]धमश्च कर्कशध्वनिः ॥२३७॥
[२०]रथवाजिनां ध्वनयः श्रूयन्ते बहुधा जनैः[२१] ।
[२२]न ते शारीर-भेदाः स्युस्तस्मात्त्यक्ता मयाधुना ॥२३८॥
॥ एवमुक्तं शा[२३]रीरलक्षणम् ॥

---

१. ०दाधी
२. ०श्रत्वं
३. ०त्ये क्रूरमेम्ब०
४. नव्यं ब्रूमो कुब्जिकस्य
५. रूक्ष्यैक०
६. भूताथो
७. वा राटिकाभिजा
८. यें चा च
९. ०मिलबोञ्जका
१०. ०क्तस्तन्त्रीति भे०
११. ०यु: च०
१२. ०सोन०
१३. ०श्रं वरमिति प्रो०
१४. ०ते० ना०
१५. नारबेजोम्बके यत्र युक्तश्चेत्खामलोत्तमः
१६. वारोथ जोम्ब०
१७. ०क्तः म०
१८. ०जो म्ब०
१९. ०न निजानि च करध्वनिः
२०. रथजिनानां
२१. ०ने
२२. तथा चारीति भेदाः
२३. चारिल०

अत्रैकवाक्यरूपेणा*व्यक्तं लक्षयति ।

चतुर्विधो भवेच्[1]छब्दः। खा[2]हुलो नारटो[3] बोम्बको मिश्रक इति ।

[अथ खाहुलः]

तत्र खा[4]हुलस्तु क[5]फजः स्निग्धः[6] सौकुमार्ययुक् । स एव मन्द्रमध्यम[7]यो: [8]प्रौढश्चेदा[9]डिल्लक इत्युच्यते ।

इति खा[10]हुलः [१]

॥ अथ नार[11]टः ॥

त्रिस्थानघनगम्भीर[12]लीनः पि[13]त्तोद्भवो [नारटः]

इति नारटः[14] [२]

[अथ] बोम्बकः

अन्तर्निस्सारतायुक्तः प[15]रुष उच्चै[16]स्तरः स्थूलो

वातजो[17] [बोम्बकः [३]

[अथ मिश्रकः]

अथैतेषां त्रयाणां मिश्रणा[18]न्मिश्र[क]इत्युक्तः ।

---

* पूर्वं यदव्यक्तं तल्लक्षयतीत्यर्थः। 'व्यक्तं लक्षयति' इति वा पाठो भवितुमर्हति ।

१. ० त् सद्यः
२. रेखां मिलनार० ।
३. ०टः । इति जोम्बकः ।
४. भामिल०
५. खपजः
६. ०धः । सौ०
७. ०मौ
८. क्राधश्चे०
९. ०त्/आदेल्लक
१०. भावुलः
११. ०टो ध्वनिः ।
१२. ०र....रिन०
१३. ०पीतो०
१४. टः जोम्बकः ।
१५. पू०
१६. ०च्चैः स्तवस्थूलः ।
१७. ०जः ।
१८. णां मि०

स तु [सान्]निपातिकः[1] ।

इति मिश्रकः [४]

ननु रूक्ष[2]गुणो बोम्बः[3], स्निग्धतायुतः [खाहुलः]

कथं तयोर्मिश्रणं स्याद् विरुद्धगुणयोगिनोः ।

अत्रोच्यते, विरोधिनः [4]पारुष्यस्य परित्यागात् ।

अविरुद्धस्य [5]खाहुलस्य वा अविरुद्धस्य नाराटस्य वा ।

माधुर्यस्थौल्यगुणमिश्रणान्[6] मिश्र इति मतम् ।

[7]एतेन एवमुक्तेन घन[8]त्वनिःसारत्वगुणयुक्तयो[र्नाराटबोम्बयो]

र्विरुद्धगुणताक्षेपसमाधाने निवेदिते भवतः ।

अथ चतुर्थ[9] [स्त्रयाणां मिश्रणान्] मिश्रस्य चत्वारो भेदा भवन्ति।

तत्कथम् ?

ना[10]राटखाहुलौ युक्तावेको भेदः । नाराटबोम्बकौ युक्तौ द्वितीयो भेदः । बोम्बक[11]खाहुलौ [युक्तौ] तृतीयो भेदः । अतो[12] निस्सारता[13]-रूक्षताभ्यां हीनस्सन् गुणत्रयमिश्रणान्मिश्रकोध्वनिः[14] ❀सुराणां शंकर इव[15] उत्तमोत्तमश्चतुर्थः ।

यदि नाराटः खाहुलेन[16] मिश्रश्चेत् स उत्तमः[17] ।

यदि खाहु[18]लो बोम्ब[19]कयुतश्चेत् त मध्यमः ।

❀ निस्सारतारूक्षताभ्यां हीनस्त्रितयमिश्रणात् ।
उत्तमोत्तम इत्युक्तः सुराणामिव शङ्करः ॥
इति सङ्गीतरत्नाकरस्य (३।४७) एवानुकृतिः ।

१. ०त इति मिश्रः
२. सूक्ष्मतरो बोम्बः ।
३ पुरु०
४. पौरुषस्य
५. बाहु०
६. ०त् नामिश्र
७. ०केन एव मुक्तेन
८. ०ने हरगुणयुक्तयोः
९. ०र्थो....कयस्य मिश्रस्य
१०. नाटकाकुलायुक्ता एको
११. ०काकुलौ
१२. ०तः
१३. ०ता रू०
१४. ०निः ।
१५. ०ति
१६. ०कुलेन
१७. ०मः पञ्चमः
१८. ०कुलो
१९. ०ण्डक०

यदा बोम्बो[1] नाराटेन मिश्रश्चेत्तदा शब्दानामधम इति शार्ंगदेवेनोक्तः[2] ।

यदि निस्सारतारूक्षताभ्यां युक्तस्तदा स ध्वनिः सर्वेषामपि ध्वनीनामधम इत्युच्यते ।

भवन्ति बहवो भेदा नानातद्गुणमिश्रणात्

तेषां दिक्प्रदर्शनार्थं केचिद् भेदा उच्यन्ते ।

यथा—

कश्चन[3] मधुरस्निग्धो[4] घनः [१]

अन्यः[5] स्निग्धकोमलो घनः [२]

परस्तु मृदु[6]त्रिस्थानकः [३]

मृदुत्रिस्थानगम्भीरोऽपरः [४]

परः[7] स्निग्धो मृदुघनः [५]

अन्यस्तु मधुरो मृदुत्रिस्थानको घनः [६]

अन्यस्तु मधुरः[8] स्निग्धो घनः[9] [७]

परो मधुरः स्निग्धो[10] गम्भीरघनत्रिस्थानकः [८]

परः स्निग्धः कोमलो गम्भीरघनत्रिस्थानकः [९]

अपरः स्निग्धमधुरकोमल[11] सान्द्रत्रिस्थानशोभितः [१०]

---

१. ०बः
२. शाजुदेवोनोक्तः
३. कजन्०
४. ०धः
५. अन्यस्निग्धकोघरो घनः
६. ०दु त्रि०
७. ०र०
८. ०रा
९. नकः
१०. ०धः
११. ०लस्सान्द्रः

इति देश भेदाः खाहुलानाराटयोः संमिश्रणे[1] ।

ततः खाहुलबोम्बयो[2] [र्भेदा उच्यन्ते]

स्निग्धकोमलनिस्सार एकः [१]

अन्यो मधुरो मृदु[3]रूक्षश्च [२]

अन्यस्तु मृदुस्निग्धं[4] [निः] सारोच्चतरः [३]

उपपन्न[5]कोमलस्निग्धनिस्सारस्थूलः [४]

अन्यः[6] स्निग्धकोमल[7]निस्सारोच्चतरस्थूलः [५]

परो मधुरकोमल[8]रूक्षनिस्सारपीनश्च [६]

[इति खाहुलबोम्बयोः षड् भेदाः]

अथ नाराट–बोम्बभेदा उच्यन्ते ।

घनत्रिस्थानरूक्षक एकः [१]

अन्यो घनगम्भीररूक्षः [२]

अन्यो घनलीन[9]को निस्साररूक्षः [३]

अन्यो लीन[10]घनो[11]च्चतरपी[12]वरः [४]

पर[13]स्त्रिस्थान [घन] गम्भीरलीनरूक्षः [५]

पर[13]स्त्रिस्थानलीननिस्सारपीवरोच्चतरो[14]

रूक्षस्थूलः । [६]

एते च षट् ।

अथ[15] तेषां [सान्]निपातिका[16]: कथम् ?

---

१. चिदाद्योदिताः ॥ भावुक्तो मिश्र नाराटः
२. ०तो बाबुलबो०
३. ०दुः । रूक्षश्चान्य०
४. ०धः सारोच्चपरः
५. ०न को०
६. ०यस्नि०
७. ०लः । नि०
८. ०लः । रूक्ष०
९. ०हीन०
१०. रिघनो०
११. ०विकरः ।
१२. ०रप्रस्था
१३. ०रत्रि०
१४. ०रः ।
१५. ०द्य एतेषां
१६. ०का कथं ।

स्निग्ध[1]स्त्रिस्थाननिस्सारो[2]ऽन्यः [१]
मृदुर्मधुरो घनगम्भीरोच्चतरो रूक्षः परः [२]
स्निग्धकोमलो[3] घनकठिनः पीवरोच्चतरो[4]ऽन्यः [३]
परः[5] स्निग्धकोमलत्रिस्थानलीनपीवरनिस्सार-
पीवरोच्चतरः [४]

परो मधुरो लीन[6]स्त्रिस्थानो रूक्षः पी[7]वरो निस्सा-
रोच्चतरः [५]

अन्यस्तु मधुरस्निग्धकोमल[8]स्त्रिस्थान[घन]
गम्भीरलीनोच्चतरः [६]

परो गम्भीर[9]ः पीवरो मधुरो मृदुगम्भीरनिनद[10]त्रिस्थान
रूक्षको[11] निस्सारोच्चतरः [७]

अन्यस्तु कोमलो मधुरः[12] पीवरो[13][ली]नत्रिस्थान-
रूक्षोच्चतरपीवरतायुतः [८]

[एवं त्रयाणां सांकर्यादष्टौ भेदाः]

[एते भेदा]स्त्रि[14]शन्निश्शंककीर्तिताः। "अन्येषां सूक्ष्मभेदानां, नान्तोऽस्ति गुणसंकरात्। ते ग्रन्थ-विस्तरत्रासादस्माभिर्न समीरिताः ॥"—इति संगीतरत्नाकरेऽ[15]प्युक्तत्वाद्[16] अस्माभिरपि तावदेव शब्दो लक्षितः। अत्र शब्द इत्युक्ते ध्वनिरिति मन्तव्यं[17] नतु पाटाक्षरशब्दः।

॥ इति शब्दभवलक्षणम् ॥

---

१. ०धः त्रि०
२. ०रोन्यः
३. ०लः घ०
४. ०रोन्यः
५. ०रस्नि०
६. निः त्रि
७. परः
८. ०लः त्रि०
९. ०रो परो मधुरो
१०. द त्रि
११. ०कः
१२. ०रो पी०
१३. ०रीन
१४. न रू–
१५. अष्टविंश०
१६. रेप्यु
१७. त्
१८. व्यम्। नत पाला०

॥ अथ शब्दगुणाः ॥

मृष्टो मधुरचेहाल[1]❀[त्रिस्थानकसुखावहाः]
प्रचुरः कोमलो गाढः[2] श्रावकः करुणो[3] घनः ॥२३९॥
स्निग्धः श्लक्ष्णो [रक्ति][4]युक्तश्छविमानिति सूरिभिः ।
गुणै[5]रेभिः पंचदशधैव शब्दो निगद्यते[6] ॥२४०॥

॥ इत्युद्देशः ॥

॥ अथ लक्षणम् ॥

श्रोत्र[7]निर्वापको[8]मृष्टस्त्रिस्थानेष्वप्यनश्वरः ।
मधुरः कीर्तितस्तारः[10] प्रौढो मधुररंजकः ॥२४१॥
नातिस्थूलो नातिकृशः स्निग्धश्चे[11]हालको मतः ।
आकण्ठकुं[12]ठनं स स्यात्पुंसां स्त्रीणां च सर्वदा ॥२४२॥
त्रिषु स्थानेष्वेकरूपश्छ[13]विरक्त्यादिभिर्गुणैः ।
त्रिस्थानो[14] मनसो यस्तु सुखदः स सुखावहः[15] ॥२४३॥
†श्रीशङ्करप्रियेणोक्तः प्रचुरः[16] स्थूलतायुतः ।

❀ सङ्गीतरत्नाकरतः (३।६८) सङ्कलितोऽयं कोष्ठान्तर्गतो भागः ।

† सङ्गीतरत्नाकरे शार्ङ्गदेवेन 'शङ्करप्रिय'—शब्द आत्मनः कृते प्रयुक्तः । सङ्गीतसूर्योदयकारेणापि शङ्करप्रियेणोक्त इत्यादि विलिख्य अक्षरशोऽत्र सङ्गीतरत्नाकरोऽनुकृतः ।

१. ०लाह
२. ०धः
३. कर्बुरो
४. युक्तः त विमानित
५. ग०
६. ०त इत्यु०
७. ०णनिर्वाहको
८. मृदुषु त्रि०
९. ०पि स्वरः
१०. ०रे
११. ०चैलाहरो
१२. ०कुञ्चनं
१३. ०च वि०
१४. ०नः ।
१५. ०ह इष्यते
१६. रस्थू०

कोमलोऽन्वर्थनामैव कोकिलध्वनिवन्मतः ।।२४४।।
[गाढस्तु प्रबलो] दूरश्रवणोच्छ्रावको मतः ।
करुणश्श्रोतृ[2]चित्तस्य करुणारसदीपकः ।।२४५।।
दूरश्रवणयोग्यस्तु घनो[3]ऽन्तस्सारतायुतः ।
[4]अरूक्षो दूरसंग्राह्यो बुधैस्स्निग्धो ध्वनिस्स्मृतः ।।२४६।।
श्लक्षणस्तु तैलधारावद[5]च्छिद्रो धीरसंमतः ।
अनुरक्तेस्तु जनको रक्तियुक्तो निगद्यते ।।२४७।।
❀गातुर्विमलकंठत्वाद्यः प्राज्ञैरुपलक्ष्यते ।
उज्ज्वलोऽयमितिप्रोक्तश्छविमानिति स ध्वनिः ।।२४८।।

।। इति शब्दगुणाः ।।

।। इति शारीरलक्षणम् ।।

[अथ गमकभेदाः]

गमक[6]: स्वरकम्पः स्यात् श्रोतृकर्णरसायनम् ।
तद्भेदान् वच्मि तिरि[7]पः स्फुरितः कम्पितस्तथा ।।२४९।।
[8]लीन आन्दोलितवलि[9]त्रिभिन्नकुरुलाहताः ।
उल्लासितः [10]प्लावितश्च हुंफि[11]तो मुद्रितस्तथा ।।२५०।।
नामि[12]तो मिश्रितः [13]पंचदशेति परिभाषिताः ।
लाघवापूर्व[14]डेमैरुध्वनिमार्गविशेभितः ।।२५१।।

❀ 'धातु'रिति सङ्गीतरत्नाकरे (३।७७) पाठः ।

१. ०णश्चापरो
२. ०त्रजित्तस्य
३. ०नोच्चैस्सा०
४. समक्षो
५. ०त उद्बुद्धो
६. ०कस्व०
७. ०रुटः स्पुरि०
८. ती०
९. ०त्
१०. प्रा०
११. ०पि०
१२. ०भि०
१३. पश्चात् अशीति
१४. ०द०

अनुद्रुता[1]र्धवेगेन गीयते तिरि[2]पो बुधैः ।
[3]त्र्यानुद्रुतवेगेन पूर्वलक्षणसंयुतः ॥२५२॥
स्फुरितः कथितस्त[4]ज्ज्ञैस्तथानुद्रुतवेगतः ।
पूर्वलक्ष्मसमायुक्तः कम्पितस्स निगद्यते ॥२५३॥
द्रुतवेगेन [5]लीनः स्यात् पूर्वलक्षणयोगतः ।
आन्दो[6]लितः पूर्वलक्ष्मसंयुतो लघुवेगवान् ॥२५४॥
चातुर्यवि[7]धिना नानावि[8]र्धवक्रजवो व [लिः] ।
त्रिस्थाने[9]ष्वप्यविश्रान्तघ[10]नोऽसौ[स्यात्त्रि]भिन्नकः ॥२५५॥
[11]वलिलक्षणतो ग्रन्थिकोमलः कुरुलो[12] मतः ।
अग्रिमं[13] स्वरमाताड्य निवृत्तस्त्वाहतो भवेत् ॥२५६॥
उल्लासित[14]ः स्वराणां तु क्रमेणारोहणाद् भवेत् ।
प्रोक्तस्तज्ज्ञैः प्लावितस्तु प्लुतमा[15]नेन कम्पनात् ॥२५७॥
हुम्फि[16]तो हृदयोद्भूतगम्भीरा[17]या तु हुंकृतिः ।
स मुद्रितमुखोद्भूतो ध्वनिर्मु[18]द्रित उच्यते ॥२५८॥
म[19]न्द्रे स्वराणां नमनान्नामितः स निगद्यते ।
चतुर्दशानामेतेषां मिश्रणान्मिश्रको मतः ॥२५९॥
एतेषां गमकानां तु भेदा बहुविधा मताः ।

---

१. ०र्थ०
२. ०रुटो
३. ततोनु०
४. ०तज्ज्ञैः सार्थानु०
५. कीनः
६. ०दोम्बतः
७. ०नि०
८. ०धो युक्तो जवोमः ।
९. ०नजतिविश्रान्ता····
१०. ····घसासो
११. तलिलक्षणया
१२. ०तो
१३. ०मो पर्वरं ताळ्यनि०
१४. ०तस्व०
१५. प्लवनक०
१६. ०म्पि०
१७. ०रयुतसांकृतिः
१८. ०रुद्रितमुच्यते
१९. मन्द्रस्वराणां क्रमणोन्नमनं सन्निगद्यते ।

तत्र केचन स्थायगा:[1] प्रोच्यन्ते[2] लक्ष्मयोगतः ॥२६०॥

॥ इति गमकलक्षणम् ॥

[अथ स्थायप्रकरणम्]

अथ स्थायास्त्वसङ्कीर्णसङ्कीर्णा[3] [इति] भेदतः ।
शुद्धादित्रय[?]सम्बन्धगुणैष्षणवतिः[4] स्मृताः ॥२६१॥
ते तु प्रसङ्ग[शः ख्याता] वागरूपसुयोजिताः[5] ।
तस्मात्सत्स्थायिभावज्ञैर्लक्ष्मसामान्यमुच्यते[6] ॥२६२॥
ये रागन्याससंवादिवादिग्रहसमुद्धृताः ।
नानागमकसंयुक्ताः स्थानत्रयविभूषिताः ॥२६३॥
गोपुच्छादि[म]वद्[7] भिन्नद्रुतादिगतिमण्डिताः ।
गीतांगविहितस्थानैर्मूर्च्छनाश्रयसंयुताः[8] ॥२६४॥
उद्भिन्नोल्लो[9] लकल्लोलो[10] गतिविच्छिन्नवर्णजाः[11] ।
ते स्थाया[12] मत्तमातंगगतिभेदादनेकधा ॥२६५॥
निदर्शनार्थं तेषां तु तान् षण्णवतिसंख्यया ।
उद्देशलक्षणान्यत्र समुच्चार्य तद[13]न्तरे ॥२६६॥
वा[14]गानामपि शेषाद्धि[15] लक्षणं ब्रूमहे क्रमात् ।

---

१. ०यिगे
२. ०यते
३. ०यां च स्वसंकीर्णसङ्कीर्णासंकीर्णभेदतः
४. ०धः गु०
५. विधुगारुणयोजने
६. ०ज्ञः ल०
७. ०दाभिन्नद्रुतैकग०
८. ०नं मू०
९. ०म०
१०. ०ला०
११. ०ली
१२. ०यी
१३. ०तः परम्
१४. भा०
१५. ०दि०

[अथासङ्कीर्णप्रसिद्धा दश स्थायाः]

ते च शब्दस्य ढौलस्य लवं[2]न्या वहने [रपि] ।।२६७।।
वाद्यशब्दस्य यन्त्रस्यच्छाया[याः]स्वरलंघितः ।
❋[प्रेरितस्तीक्ष्ण इत्युक्ता व्यक्तासङ्कीर्णलक्षणाः] ।।२६८।।

।। इत्यसंकीर्णप्रसिद्धा द[3]श [स्थायाः]।।

[अथ गुणजनितभेदाः प्रसिद्धाः संकीर्णस्थायाः]

[4]भंजनस्य । स्थापनायाः । गते[5]ः । नाद[6]स्य । ध्वनेः[7] ।
छ[8]वेः । [रिक्तेः ।] [9]द्रुतस्य । शब्दस्य । भृतस्य । अंशस्य ।
अवधानस्य । [अपस्थानस्य । निकृतेः ।] क[10]रुणायाः ।
विविधत्वस्य । गात्रस्य । [11]उपशमस्य । का[12]ण्डारणा ।
नि[13]र्जवनान्वितः । गाढः[14] । ललितगाढ[15]ः । ललितः । लुलितः ।
समः । कोमलः । प्रसृतः । स्निग्धः । चोक्षोचि[16]तः ।
सुदे[17]शिकः । अपे[18]अितस्य । [19]घोषस्य । स्वरस्य ।[20]
।।इति [त्रयस्त्रिंशत्] प्रसिद्धा[21] गुणभिन्नाः सङ्कीर्णाः।।
।। अ[22]थ विंशत्यसंकीर्णा [अप्रसिद्धा] लिख्यन्ते ।।

❋ सङ्गीतरत्नाकरतः (३।१००) सङ्कलितेयं कोष्ठान्तर्गता पङ्क्तिः ।

१. ता०
२. ०वस्त्यादहने ।
३. ०दयः
४. भूजस्य
५. ०तिः
६. ०दः
७. निः
८. ध्वनेः
९. ....तस्यश०
१०. तदुभयां
११. अ०
१२. कानि धारणः
१३. निजपीनन्वितः
१४. ०धः
१५. ०धः
१६. ०जितः०
१७. ०विशिखः
१८. ०प०
१९. तो०
२०. पसः
२१. ०द्धाः । संभिन्नाः ।
२२. इति विंशतिसं०

[1]वहस्य । अक्षराडम्बरस्य[2] । उल्लासितः । [3]तरंगितः ।
प्रलम्बितः[4] । अवस्खलितः[5] । त्रोटितः । संप्रविष्टकः[6] ।
उत्प्रविष्टः[7] । निस्सारणः । भ्रामितः । दीर्घकम्पितः ।
प्रतिग्राह्योल्लासितः[8] । अलम्बविलम्बकः[9] । त्रो[10]टितप्रती[11]ष्टः ।
प्रसृताकुंचितः[12] । स्थिरः । स्थायु[13]कः । क्षिप्तः । सू[14]क्ष्मान्तः ॥
॥इति विंशत्यं[15] संकीर्णा [अप्रसिद्धाः] ॥
अथ त्रयं[16]स्त्रिशद् गुणभिन्नाः [संकीर्णा अप्रसिद्धा लिख्यन्ते]
प्रकृतिस्थस्य शब्दस्य । कलायाः आक्रमणस्य । घटनायाः ।
[17]सुखस्य । चालेः । जीवस्वरस्य । वेदध्वने:[18] । घनत्वस्य[19] ।
शिथिलः । अवघ[20]टः । प्लुतः । रागेष्टः[21] । अपस्वराभासः ।
बद्धः । [22]कलरवस्य । [23]छान्दसः । सुकराभासः । संहितः ।
लघुः । अन्तरः । वक्रः । दीप्तप्रसन्नः ।
[प्रसन्न]मृदुः[24] । गुरुः । ह्रस्वः[25] । गाढः । दीर्घः ।
[अ]साधारणः । साधारणः । [26]निराधा[रः] । [27]दुष्कराभासः
[28]मिश्रः । [29]......

१. सहस्यः
२. ०य उल्ला०
३. करंबितः
४. झलं०
५. अपसरितः
६. ०विषकः
७. ०विषकः
८. ०गृह्यः । उल्ला०
९. आलम्बिविलम्बविलम्बकः
१०. अत्रोटि०
११. ०तोष्टितः
१२. ०तस्थिरः
१३. ०युक्तः
१४. स्थायियुक्तक्ष्मान्तः
१५. ०तिसं०
१६. ०यत्रिं०
१७. संख्यस्य जाते जीव०
१८. ०निः
१९. ०य रिधिलः
२०. ०घातः
२१. ०ठः
२२. कुरवस्य
२३. छ०
२४. ०दु गुरुः ।
२५. ०व
२६. विराधासाधारणः
२७. पुष्क०
२८. विश्रः
२९. नुनु ।

।।इति त्रयस्त्रिंशद् गुणभिन्ना[अप्रसिद्धाः संकीर्णाः]
इत्येवमुद्दिष्टानां षण्णवतिस्थायादीनां[१]
क्रमेण लक्षणानि निरूप्यन्ते ।

"मुक्तशब्दप्रतिग्राह्याः"[सं० र० ३।११२] इत्यादि
रत्नाकरोक्तप्रकारेणैव विविच्य वाक्य[२]-रूपेण लिख्यन्ते ।

‡'मुक्तशब्दप्रतिग्राह्या[३]' इत्यादिना ।

मुक्तशब्दप्रतिग्राह्यो यः स्थाय[४]श्चक्रवालवद्
आवृ[५]त्त्या वर्त्तते [स] शब्दस्थाय[६] इति कीर्तित[७]ः ।
मुक्ता[८]फलस्य यल्लु[९]ठनात्मकं चलनं त[१०]द् ढाल इत्युच्यते ।
सढा[११]लो येषु स्थायेषु वर्त्त[१२]ते ते [१३]ढालस्थाया इति कथ्यन्ते ।
यदा[१४] नादस्य नमनमतिकोमलं स्यात्तदा[१५] सा क्रिया[१६]
लवनीत्युच्यते तथा लव[१७]न्या युजः स्थाया[१८] लवन्या, इति
परिभाषिताः । अथ यत्तु[१९] कम्पनं स्थायेषु आ[२०]रोहिण्यव-
—रोहिणि
वा भवेत्तदा सा क्रिया वह[२१]नीत्युच्यते । अथ[२२]

---

‡ मुक्तशब्दप्रतिग्राह्याः स्थायाः शब्दस्य कीर्तिताः—इति सङ्गीतरत्नाकरोक्त (३।११२) वाक्यस्य स्मरणमत्र विद्यते ।

१. ०थाय्या०
२. ०य····यरूपे०
३. ०यमित्यादि ।
४. ०य्याच०
५. ०वर्त्या
६. ०या
७. ०ताः
८. ०त
९. ०लुण्ठ०
१०. तण्डालय इत्यु०
११. तालः
१२. ०र्तन्ते
१३. डोल०
१४. ०था नाथस्य नम नमति को मलं
१५. ०था
१६. ०यालं वर्णेत्यु०
१७. ०वस्यायुजि
१८. ०यालवस्या
१९. ०स्कम्पम्पनं तु
२०. यदा आरोहिणी । अवरोहिणी
२१. ०हि०
२२. अथ सवहनी प्रसञ्चारिण्यपि

संचारिण्यपि यदा[1] स्थिरकम्पनं स्यात् तदा[2] सा वहनी
गीतालप्तिसम्बन्धभेदेन द्विविधा मता ।
तथैव विंशत्य[3]संकीर्णलक्षण-पर्यन्तं स्पष्टोऽर्थ इति
❀टीकाकारेणोक्तत्वात् ।
अ[4]तस्त्विह प्रकृतिस्थाया[5]दित्रयस्त्रिंशत्स्थायानां लक्षणं
स्पष्टमुच्यते ।
पूर्वोक्तधृ[6]तिभृत्यादिवर्जिता[7]: शब्दा
येषु स्थायेषु स्वभावादेव प्रकाशन्ते[8] ते
स्थाया[9]: प्रकृतिस्थशब्दस्य स्थाया[10] इति मताः [१] ।
येषु स्थायेषु शब्दस्सूक्ष्मः श्रुतस्ते कलास्थाया इति
कीर्तिताः [२] ।
ये स्थाया भृ[11]शमत्यर्थं प्राणपरिग्राह्या[12]: स्वस[13]स्वपरिग्राह्याः
स्युस[ते] आ[14]क्रमणस्य स्थाया इति कीर्तिताः ।
अथवा समानादिदशप्राणा[15]: संग्राह्यतया[16] स्युः ॥३॥
ये स्थाया[17]: शिल्पिना[18]शोधिता इव नाना-विचित्रता-
वयवयोगेन
संघटितास्ते घटनास्थाया इति कथ्यन्ते [४] ।
ये स्थायाः श्रोतुः सुखदा भवन्ति ते तु सुखस्थायाः स्युः [५] ।

❀ टीकाकारेण सङ्गीतसुधाकरकारेण 'सिंहभूपालेन' इत्यर्थः ।

१. ०था
२. ०दा च क्रियावहनीत्युच्यते । सा वहनीगतालस्ति०
३. ०तिसं०
४. अतन्विहारे
५. ०य्या०
६. ध्वनिरित्यदि ।
७. ०तश०
८. ०ते । ते
९. ०या
१०. ०य्या
११. श्रुतम०
१२. ०ह्यस्व०
१३. ०सत्य
१४. क्रमेण स्वस्थाया
१५. ०णतान सं०
१६. ०याः
१७. ०या
१८. शुद्धिता

यो[1] चालिर्विद्यते सा पुरातनै[2] र्भङ्गीति कीर्तिता[3] ।
तदन्विता[श्चालि]स्थाया इति कीर्तिता[4]: ॥६॥
अत्र जीवस्वरो[5]ऽश इत्यभिमतः । तत्प्राधान्येन ये स्थाया
इत्युदीर्य[6]न्ते [ते] जीवस्वर-स्थाया इति कीर्तिताः ॥७॥
ये स्थाया वेदध्वनिनिभा[7]स्ते वेदध्वनिस्थाया इति मताः ॥८॥
य[8]थार्था अन्तस्सारा [घनत्वस्यस्थायाः तेषु ॥९॥]
स[9]र्वत्र श्लथाः शिथिलस्थाया इत्यर्थः ॥१०॥
यो[10] दुष्करस्थाय[11]:सो[12]ऽवघट इति प्रोक्तः [११]
योऽत्यन्तविलम्बितः स प्लुतस्थाय इत्युच्यते ॥१२॥
रागेष्टस्वरपूर्त्यर्थं यस्स्थाय उच्यते स रागेष्ट इति
कीर्तितः ॥१३॥
यः स्थायो[13]ऽपस्वरवद् भाति त स्थायो[14]ऽपस्वराभासः
स्यात् ॥१४॥
यः स्त[15]ब्धस्थायः स बद्धस्थायः स्यात् ॥१५॥
यस्मिन् मधुरध्वनेः कल[16]त्वं स कलरवस्थायः स्यात्[17] [१६]
छान्दसोऽचतुरप्रियश्च ॥१७॥
दुष्करो[18]ऽपि स्थायः सुकरोपमः [सुकराभास इत्युच्यते १७] ।
घण्टानादवदायात[19]स्य यस्य स्थायस्य तारमन्द्रप्राप्तिरस्ति स

---

१. ये चरि०
२. ०रा तन्न भवतीति
३. ०ताः
४. ०ता
५. ०रः । अंश
६. ०र्यते
७. ०भाः ते
८. ॥ येति । अन्तस्वराः
९. सर्वस्वस्थायाः शि०
१०. ये
११. ०याः
१२. सावघट्ट
१३. ०यी
१४. ०यः अप०
१५. स्वस्थस्थाय सम्बन्धस्थाय
१६. ०त्रं
१७. सो कलरवः छान्दसः । चतुर-प्रियश्च ।
१८. ०रा भासस्था यस्तु सुकरोपमा ।
१९. तस्सन् सुकराभास इत्युच्यते ।

[1]संहित इत्युच्यते ॥१८॥ गु[2]रुविरहितो यस्स्थायः स लघुरित्युच्यते [१९]

य :स्थायस्तु ध्रु[3]वकाभोगयोरन्तरे वर्तते स अ[4]न्तर इति कथ्यते ।२०।

वक्रस्थायस्तु यथार्थकः ॥२१॥ यस्सुख[5]स्थायस्तु तारे दीप्तप्रसन्नः स्यात् ॥२२॥

यस्य स्थायस्य ध्वनिः कोमलः स सु[6]करस्थाय इत्युच्यते ॥२३॥

असौ सुखप्रसन्नो[7] मृदुरिति [8]चोक्तः ॥२४॥

यो गुरुस्था[9]यः [स] स्यादन्वर्थनामक[10]: [२५] । ह्रस्वो नाम स्तोकः [२६]

परनामा[11]नौ [गाढदीर्घौ] द्वौ स्थायौ त्व[12]न्वर्थसंज्ञकौ स्याताम् [२७-२८]

शब्दशारीरानुगुणत:[13] सुकर:[14] सुस्वरो वा यः स्थायः कस्यचिदेव न सर्वेषां [सोऽ]साधारण इत्युच्यते [२९]

[15]'सदृशो यस्तु सर्वे[16]षामसौ साधारणः स्मृत' इत्युक्तः❋ [३०] । यस्स्थायः [17]स्वनिर्वाहहेतवे रागा[व]यव-[व]हन्यादि[18]कं न वांछति स निराधार इत्यच्युते ॥३१॥

अत्र यः सुकरो[19] दुष्करोपमः स [20]दुष्कराभास इत्युच्यते ॥३२॥

अथपूर्वोक्तानां गुणानां मिश्रणान्मिश्र इति मतः ॥३३॥

॥ इति त्रयस्त्रिंशद्[अप्रसिद्ध]संकीर्णलक्षम् ॥

❋ सङ्गीतरत्नाकरे (३/१७४) उक्तः इत्यभिप्रायः ।

१. संहृत
२. गुरुश्चरहितायस्थायः
३. ग्रीवाभो०
४. आ०
५. ०यस्तु तारो
६. स सुररुवस्था०
७. ०नः
८. चोलः
९. ०था यस्यान्वर्थ०
१०. ०कः त्रिह्रस्वनामस्तोक०
११. ०मौ
१२. तु अत्यन्व०
१३. ०कः ॥२७॥
१४. ०रनोतिस्यायो भवति ॥२८॥ पुनशबलाकीरगुणातीतः सुस्वरस्थायो वा भवति। यः स्थायः कस्यचिन्न याति सर्वेषां—
१५. सोक्तस्सदृशो
१६. ०षां असौ
१७. सनि०
१८. दिजवाम्भयति
१९. ०रः
२०. स्वराभास

अनन्ता नैव शक्यन्ते भेदा मिश्रस्य भाषितुम् ।
एतद्दर्शनमात्रार्थमुच्यन्ते तेषु केचन ।।२६९।।

अथैतेषां [मिश्र] स्थायानां स्वरूपदर्शनार्थं स्थाये[1]विभाग-लक्षणमुच्य[2]ते ।

[१] ति[3]रपान्दोलितयुक्त एकः[4] ।
[२] [5]लीनकम्पितयुतो द्वितीयः ।
[३] कम्पिताहतयुक्तस्तृतीयः ।
[४] [6]तिरिपस्फुरितयुक्तश्चतुर्थः ।
[५] [7]लीनस्फुरितयुक्तः पंचम[8]ः ।
[६] स्फुरिताहत-युक्तः षष्ठः ।
[७] ली[9]नकम्पितली[10]नयुक्तः सप्तमः ।
[८] त्रिभिन्नकु[11]रुलाहतोऽष्टमः ।
[[९] [12]प्लावितोल्लासितवलिः ।
[१०] [13]वलिहुम्फितमुद्रितः ।
[११] नामितान्दोलितवलिः ।
[१२] वलिनामितकम्पितः ।
[१३] आन्दोलितप्लावितकसमुल्लासितनामितः ।
[१४] तिरिपान्दोलितवलित्रिभिन्नकुरुलः]
[१५] त्रिभिन्नली[14]नस्फुरितप्ला[15]वितान्दोलितः[16] ।

❀ 'कोष्ठकान्तर्गतो भागः सङ्गीतरत्नाकरतः सङ्कलितोऽस्ति ।

१. ०याभावल०
२. ०यन्ते
३. त्रिरान्दो०
४. कः स्थायः
५. दिन०
६. त्रिरुप०
७. दिन०
८. ०मी
९. किन०
१०. ०कीन०
११. ०रुषायु०
१२. तिरुपस्फुरित युक्तो नवमः
१३. कीनत्रिभिन्नः कुरुशयुक्तो दशमः
१४. ०कीकस्फु०
१५. ह्लादिता०
१६. ०तयुक्तस्त्वेकादश

[१६] वह्नीढालयोः[1]
[१७] ढालवह्न्योः[2]
[१८] शब्दढालयोः[3]
[१९] वह्नीयंत्रयोः[4]
[२०] छायायंत्रयोः
[२१] शब्दयंत्रयोः
[२२] वाह्नीच्छाययोः[5]
[२३] यन्त्रवाद्यशब्दभवः[6]
[२४] तीक्ष्णप्रेरितः
[२५] [7]स्वरलंघितः
[२६] ढालशब्दो[8]त्थयन्त्रो[9]त्थवाद्यशब्दोद्भवः ।
[२७] ढालच्छायायन्त्रवाद्यशब्दभवः
[२८] [10]प्रलम्बितावस्खलितः ।
[२९] त्रोटि[11]तोल्लासितः ।
[३०] संप्रविष्टो[12]त्प्रविष्टः ।
[३१] [सं] प्रविष्टतरंगितः
[३२] प्रतिग्राह्योल्ला[13]सिता[14]क्षिप्तालम्ब-विलम्बकः ।
[३३] त्रोटि[15]तप्रतीष्टोत्प्रविष्टनिः[16]सरणः

---

१. वरुणाशब्दयोगः
२. वद्यवहण्योः
३. ०वाद्ययोः
४. ०णीयं त्र०
५. ०णिस्थाययोः
६. ०च्य०
७. तालल०
८. ता०
९. ०दोदयः ॥ यन्त्रो०
१०. झलम्बितास्स्वलितः
११. ०क्रोल्ल०
१२. ०ष्टकः ॥ उत्पपतिष्टकः ॥
१३. ०ल्ल०
१४. ०ता क्षिप्तः ॥ प्रलम्बविल०
१५. ०हेत्रो प्रतिष्ठो
१६. ०सा०

[३४] दीर्घकम्पित सूक्ष्मा[न्त] भ्रामितस्थायकः[1] ।
[३५] व[हा]क्षरडम्बरजे[2] प्रसृताकुंचितस्थिरः ।
[३६] भ्रामिताक्षिप्तसूक्ष्मान्त[त]रंगितविलम्बितः
—एवं षड्त्रिंशदन्येऽपि विज्ञेयास्त्वनया दिशा ।
॥इति स्थाय[3]विभागलक्षणम्॥

*इति श्रीविप्रवर्यविट्ठलेश्वरात्मज[4]सूक्ष्ममति[5]भरताचार्यराय[वाग्गेय]काराभिनवाचार्यलक्ष्मीनारायणविरचिते संगीत[6]सूर्योदये स्वरगताध्याय[7]स्तृतीयः सम्पूर्णः ।

---

* अथ पुष्पिकायामपि सङ्गीतरत्नाकरकलानिधिटीकाकारस्य चतुरकल्लिनाथस्यानुकरणमवलोक्यते ।

१. ०थाय्यकः
२. ०जः ॥ प्रवृताकुं स्थिरः ॥
३. ०यि०
४. ०टलेश्वरस्य
५. ०मातिलिखिताचार्य०
६ ०गीता०
७. ०यो द्वितीयः

॥ इति सङ्गीतसूर्योदयप्राच्यां तृतीयः स्वराध्यायः ॥

॥ श्रीमते हयग्रीवाय नमः ॥

अथ

॥ चतुर्थो जात्यध्यायः ॥

रागाणां[1] मातरो यास्ता जातयश्शुद्धपूर्वि[2]काः ।
ततः परं तु विकृता[3]ः संकीर्णा[4]श्च ततः परम् ॥१॥
सर्वज्ञलक्ष्मणार्येण प्रोच्य[5]न्ते व्यक्तलक्षणाः ।
जातयः सप्त शुद्धाः स्युः [षड्जादिस्वराभि]र्धा[6]ः ॥२॥
[7]षाँड्जी स्या[दा]र्ष[भी] चैव गान्धारी[8] [मध्यमा तथा] ।
पंचमी [9]धैवती चाऽथ [10]नैषादी, त्वथ लक्षणम् ॥३॥
निरूप्यते क्रमेणैव बालानां व्यक्तता यथा[11] ।
षड्जादीनां तु यो ना[12]म स्वरोंऽशग्रहलक्षणः[13] ॥४॥
तारे[14]—न्यासविहीनस्सन् स्वयं कर्ता य[15]दा भवेत् ।
तदा शुद्धाभिधाः प्रोक्ताः क्रमात् षड्जादिजातयः ॥५॥

प्राची

श्रुतिं व्यञ्जयन्तीं स्वरान् सार्थयन्तीं
ग्रहांशादिभिर्जातिरागं दिशन्तीम् ।
मनोज्ञाभया भावुकान् नन्दयन्तीं
क्वणत्कच्छपीपाणिमाराधयामः ॥

१. ०णामुपरागत्वं
२. ०र्वं०
३. ०तः
४. ०र्णश्च
५. ०यते
६. ०गाः
७. षाट्वि
८. ०रे....
९. दैवते
१०. निषादे
११. ०दा
१२. नाभूत्स्वरोन्यत्प्राह ल०
१३. ०णम्
१४. ०वि०
१५. सदा

विकृतत्वं ब्रवीमीह ग्रहन्यासादिशक्तितः ।
संपू[र्णत्वग्रहांशाप]न्यासादल्पस्वरा यदि ॥६॥
भवन्ति विकृताभेदास्तदैव निय[माद्]विधेः ।
❀
तद्भेदानथ वक्ष्यामः क्रमादेकैकवर्जनात् ॥७॥
त्यक्ते सत्यत्र सम्पूर्णे ह्यपन्यासग्रहांशकः ।
एको,भवेद् ग्रहे त्यक्ते त्वंशापन्यासपूर्णवान् ॥८॥
[द्वितीयोंऽशे परित्यक्ते ग्रहापन्यासपूर्णवान् ।
तृतीयः, स्यादपन्यास-हीनेंऽशग्रहपूर्णवान् ॥९॥]
चतुर्थं, इति चत्वारो भेदाः स्युर्व्यक्तलक्षणाः ।
ततष्षड्भेदजननं सुव्यक्तं व्याहरामहे ॥१०॥
पूर्णग्रहाभ्यां त्यक्ताभ्यां प्रथमः प्रतिपादितः ।
पूर्णांशान्त्यो द्वितीयः स्यात्तृतीयोऽथ निरुच्यते ॥११॥
स्यादपन्यास-पूर्णाभ्यां ग्रहां[शा-]भ्यां चतुर्थकः ।
अपन्या[स]ग्रहाभ्यां तु ञ्चमः परिकीर्तितः ॥१२॥

❀ प्राप्तादर्शपाण्डुपुस्तकेऽत्र (तद्भेदा न भविष्यामः) इति लिखितमस्ति ।

१. माहन्या०
२. न्नग्रहादन्यस्त्र०
३. ० थैव निया....
४. न च
५. ०दैक्यैक सर्ज०
६. व्यक्ते
७. अप०
८. ०वः
९. गतो
१०. ०र्था
११. स्युर्नक्तवीक्षणाः
१२. पूर्वग्राहा०
१३. व्य०
१४. ०यस्यां
१५. ध्वनिरु०
१६. ०सन्ध्यास०
१७. गृहा०
१८. गृहा०

अंशापन्यासकाभ्यां तु षष्ठः स्यादिति षड् विधाः[1] ।
तत्र त्रयाणां त्यागे तु भेदाश्चत्वार एव हि ॥१३॥
त्यक्तैः पूर्णग्रहांशैः स्यादाद्यकः[2] स्याद् द्वितीयकः ।
[3]ग्रहापन्याससंपूर्णै[4]स्तृतीयोऽथ निगद्यते ॥१४॥
[5]अंशापन्याससम्पूर्णैरपन्यासां[6]शकग्रहैः ।
चतुर्थ, इति चत्वारो भेदास्त्यक्ते चतुष्टये ॥१५॥
एको भवेत्तदा पंचदशैव विकृताभिधाः ।
[7]षाड्ज्यामेव भवन्त्यत्र विशेषं वच्मि विस्तरात् ॥१६॥
तेषु पंचदशे[8]स्वष्टौ पूर्ण[9]स्वरहिता मताः ।
तेषां सप्त[10] ग्रहांशापन्यासहीनाः क्रमादिमाः ॥१७॥
पूर्वोक्तपूर्णहीना[11]नां षाडवौ[12]डुवभेदतः ।
द्विधा भूत्वा षो[13]डश स्युः तेष्वष्टौ षो[14]डवात्मिकाः ॥१८॥
[15]ताश्च पूर्णयुतास्सप्त युक्त्या पंच[16]दशैव ते ।
[17]षड्विधौडुवजात्यार्षभ्यादिष्वन्त्यौ[18]डुवाष्टकम् ॥१९॥
सत्येवं [19]किल तावन्त्यस्त्रयोविंशतिका[20]स्तु षट् ।
[21]एताश्चाद्याः पंचदश मिलित्वा विकृता[22]भिधाः ॥२०॥

---

१. ०धः
२. ०तः
३. गृहा०
४. ०र्णैः श्रुतयोथ
५. अन्त्याप०
६. ०साकरग्रहैः
७. षड्जा०
८. ०शेष्व०
९. र्णात्सुर०
१०. ०तग्रहाशांसन्या०
११. ०ता०
१२. ०वे नृत्तभे०
१३. ता दश
१४. बाडबात्मना
१५. ते च
१६. ०विधैव
१७. षद्विधादाप्तधोर्षाख्यादयस्०
१८. ०त्वौषाडवा०
१९. फलतावन्तस्
२०. ता०
२१. एतेवाद्ये
२२. ०श्रुता०

अग्निबाणेन्दुगणिता भवन्तीति मुनेर्मतम् ।
एवं न्यासयुतत्वेनोपन्यासादियोगतः ॥२१॥

जातयो विकृताः प्रोक्तास्तत्संसर्गानथ ब्रुवे ।
विकृतोत्पन्नभेदानां योगात्संसर्गजातयः ॥२२॥

एकादश स्मृतास्तेषां वक्ष्याम्युद्देशलक्षणे ।
ता[२]ः षड्ज[३]कैशिकी षड्जमध्यमा[४] षड्जपूर्विका ॥२३॥

उदी[५]च्यवाथ गान्धारो[६]दीच्यवा[७] रक्तपूर्विका ।
गान्धारी[८] कै[शिकी] चा[९]थ मध्यमो[१०]दीच्यवा [११]तथा ॥२४॥

[१२]कार्मारवी च गान्धार[१३]-पंचम्या[१४]न्ध्री ततः परम् ।
नन्दय[१५]न्तीति विख्याता क्रमात्संकी[१६]र्णता यदि ॥२५॥

[१७]षाड्जी-गान्धारकीयोगात् सम्भूता षड्जकै[१८]शिकी ।
षाड्जी[१९]-मध्यमिकायोगात् संजाता षड्जमध्यमा ॥२६॥

तत्र [२०]षाड्जी च गान्धारी [२१]धैवती तिसृभिः क्रमात् ।
सा षड्जोदीच्यवा जातिर्भवेदिति निरूपिता[२२] ॥२७॥

---

१. ० न धन्या०
२. तौ०
३. ०जे कै०
४. ०माष०
५. ०देच्च वा०
६. ०रो दि०
७. ०वार०
८. ०रकै०
९. तन्०
१०. ०मादिच्छ वा
११. कथा
१२. गान्धारवी
१३. ०रे पं०
१४. ०याद्री
१५. ०यार्थेति
१६. ०कोचता
१७. षड्जगा०
१८. ०वैखरी
१९. ०जमध्यमका०
२०. षड्जश्च
२१. चैव तेति त्रिभिः
२२. ०ताः

गान्धारी [1]धैवती [2]षाड्जी मध्यमेत्या[3]भिरुत्थिता ।
गान्धोरोदी[4]च्यवा सा स्या[5]द्रक्तगान्धारिका पुनः ॥२८॥
गान्धारी चाथ नैषादी मध्यमा पंचमीयुता ।
ततष्षाड्जी[6] च गान्धारी [मध्यमा] पंचमी[7] तथा ॥२९॥
[नैषादी त्वथ कैशिक्यां गान्धारी पंचमी तथा ।
मध्यमाधैवती-युक्ता मध्यमोदीच्यवा मता ॥३०॥
कार्मारव्यां च नैषादी चार्षभी पंचमीयुता ।
गान्धारीपञ्चमीभ्यां तु] जाता गान्धारपञ्चमी ॥३१॥
गान्धार्यार्षभिर्कान्ध्री च भवेन्नाम्ना ततः परम् ।
नन्दयन्त्यां तु गान्धारी पंचमी चार्षभी भवेत् ॥३२॥
इत्येकादश संसर्गजातयः परिकीर्तिताः ।
अथै[10]तासां ग्रामभेदाद्[11] विभागं ब्रूमहेऽधुना ॥३३॥
षड्जो[12]दीच्यवती[13] [14]षाड्जी स्यात्[षड्ज]कैशिकी तथा ।
षडजम[15]ध्यमिका चाथ नैषादी [16]धैवती तथा[17] ॥३४॥
आर्षभीति क्रमात् सप्त षड्जग्राम[18]स्य जातयः ।
गान्धारी[19] मध्यमा चैव पंचमी कैशिकी तथा ॥३५॥

---

१. दै०
२. षात्वी
३. ०त्येभि०
४. पिच्चवा
५. सादुक्त०
६. ०जे
७. ०मीभ्या तु तत्तथा
८. ०काद्या च भवेदाप्नोत्ततः
९. सूदय०
१०. द्यैता सांग्राम–
११. ०त्
१२. ०ज मड्ज दि०
१३. ०ति
१४. षड्जा
१५. मड्जमिता
१६. देवता
१७. ०दा
१८. ०मोकजा०
१९. ०रे

गान्धारोदी[1]च्यवा रक्तगान्धारी[2] नन्दयन्ति[3]का ।
मध्यमोदीच्यवा कार्मा[4]रवी गान्धारपंचमी ।।३६।।

[आन्ध्री चैकादश प्रोक्ता मध्यमग्रामसंभवाः ।
कार्मारव्यथ गान्धारपंचमी षड्जकैशिकी ।।३७।।]

[म]ध्य[5]मोदीच्यवा चेति जातयः[6] पूर्णसंभवाः ।
षाड्जी च नन्दयन्त्यां[7]न्ध्री गान्धारोदी[8]च्यवा ह्यपि।।३८।।

चतस्रो जातयः पूर्णे[9] षाडवे च समुद्भवाः ।
गा[10]न्धारी, रक्त[गान्धारी, कैशिकी षड्ज]मध्यमा ।।३९।।

षड्जोदीच्यव[11]ती धैवत्यार्षभी पंचमी ततः ।
नैषादी[12] मध्यमा चेति दश पूर्णादिषु त्रिषु ।।४०।।

उक्तपूर्णादिभेदेन स्वरूपेण निरूप्यते ।
आ[13]र्षभी षड्जलो[14]पेन षाडवा [15]सपलोपतः ।।४१।।

औडुवा[16] च ततो रक्त-गान्धारी[17] कैशि[18]की तथा ।
गान्धारी[19] च रिलोपेन षाडवा रि[20]पलोपतः ।।४२।।

---

१. ०दिच्चवा
२. ०रे
३. ०ति का
४. ०मारीतिगा०
५. ....धुवोदिच्चवा
६. ०यो वर्ण सं०
७. ०यद्रौ
८. दिच्चवा यदि
९. ०र्णं०
१०. कीरवक्री र०
११. ०वदेवत्या षड्जं तत्पं०
१२. ०दि
१३. षाड्ज०
१४. वतोनेन
१५. ०नफलस्ततः
१६. वाडवान्यततो०
१७. ०रे
१८. ०चिके
१९. ०रे च ततोतेन
२०. दिप०

[1]औडुवाः संभवन्त्येताः पंचमी[2]मध्यमे पुनः ।
गलो[3]पात्षाडवे तत्र निगलो[4]पादथौडुवे ॥४३॥
निषादी [5]धैवतीत्येव [प] लोपेन तु षाडवे ।
औडुवे सप[6]लोपेन, षड्जो[7]दीच्यवती ततः ॥४४॥
[8]रित्यक्ता षाडवा प्रोक्ता, [9]रिपाभ्यामौडुवा मता ।
स्यात् षड्जमध्यमा जातिर्निषादो[10]ना तु षाडवा[11] ॥४५॥
नि[12]रिभ्यामौडु[13]वा ज्ञेया जातिष्वेवंविधो[14]: क्रियो[15]: ।

॥ इति जातिलक्षणम् ॥

॥ अथ स्वरसाधारणप्रयोगः ॥

अतः परं प्रवक्ष्यामि स्वरसाधारणक्रियाम् ॥४६॥
पंचमी पंचमां[16]शा स्या[17]न्मध्यमा समपां[18]शिका ।
षड्जा[19]दिमध्यमा त[20]द्वत् समपांशा[21] यदा भवेत् ॥४७॥
स्वरसाधारणस्यायं प्रयोगः परिकीर्तितः ।
तस्मिन् प्रयोगे तल्ल[22]क्ष्मविधानं न परित्यजेत् ॥४८॥

---

१. वाडवात्
२. ०मे
३. ०तोत्पाडवे
४. ०तो पादि वैडवे
५. दै०
६. ०फ०
७. ०जादिच्च्यवते
८. री०
९. रेफा०
१०. ०दे कतु
११. ०वे
१२. नीरे०
१३. ०ड०
१४. ०धा
१५. ०या
१६. ०मा वा
१७. स्या म०
१८. ०फाखिका
१९. ०जमा०
२०. ०काशत्
२१. ०शाय वा
२२. ०लक्ष्याच्छतधान प०

[१]सोपान्त्यगतिसंस्थानां श्रुतिं संगृह्य तत्र च ।
[२]सोपात्तविधिमाश्रित्य य[३]: षड्जोंऽशो भवेत्तदा[४] ।।४९।।

षड्जसाधारणं तत्स्याद्, यदा[५] मध्यमपंचमौ ।
अंशौ[६] तदा मध्यमस्य साधारणमितीरितम् ।।५०।।

सम[७][पूर्वं] कै[८]शिकं तु स्वरसाधारणाह्वयम् ।
साधारणनिषादोऽथ नियमेन निरूप्यते ।।५१।।

पंचमी[९], मध्यमा, षा[१०]ड्जी [मध्यमा षड्जपूर्विका] ।
याश्चतस्त्रस्त्व[११]ल्प [गन्यो][१२]ऽनंशयोर्निगयोर्द्वयोः ।।५२।।

एको[१३]ऽंशो यत्र तत्तोऽन्यो भवेत्तस्यानुभावकः ।
तस्मान्निषादगान्धारौ [१४]खलु प्रभवतस्तथा ।।५३।।

का[१५]कल्यन्तरता तत्स्याद् विशेषं तस्य वच्म्यहम् ।
[१६]पञ्चम्याद्युक्तजातीनां मध्ये या षड्जमध्यमा[१७] ।।५४।।

विकृतत्वं च संसर्गजातित्वं भजते सदा ।
तस्मा[१८]त्तु शुद्धताभावात् काक[१९]ल्यन्तरवत्यपि ।।५५।।

---

१. निषादस्वरसंस्थाना
२. सोत्पातव्रतमा०
३. याष्०
४. ०था
५. ०था मद्यम०
६. ०शास्तथा
७. तारे····
८. कारण्यस्व०
९. ०मा
१०. षाड्विका इति
११. ०त्यक्त····
१२. ····सात्पर्णनिग०
१३. ०को भो भवद्विता यस्तु
१४. ०पलु
१५. काकश्शंकरता तस्स्या०
१६. उक्तपञ्चमताजातिमध्ये
१७. ०माः
१८. ०त्वाशुद्धजाभा०
१९. ०कश्शङ्करव०

शेषजा[1]तित्रये [चापि] विकृतत्वं[2]प्रभावतः ।
काकल्यन्तररूपेऽस्मिन् प्राप्ते[3] साधारणे सति ॥५६॥
नियमं वक्ति निश्चित्य विट्ठले[4]श्वरनन्दनः ।
षाड्[5]ज्यादिशुद्धावस्थायां प्रयोगो विकृतस्वरैः ॥५७॥
न कार्य[6]ः कुत्रचिज्जा[7]ति[प्रयोगेऽल्पनिगा]न्विते ।
*क[8]म्बलोक्तमतं प्रोह्य कार्यो रा[9]गविचक्षणैः ॥५८॥
ग्रामरागो[10]नुपरागान् रागान् भाषाविभाषकान् ।
[11]ततश्चान्तरभाषाख्यान् रागांगादिचतुष्टयम् ॥५९॥
विचार्यानेन विधिना कुर्यात्[12] साधारणं सुधीः ।

॥इति स्वरसाधारण–प्रयोगः॥

[॥अथैकांशादिसप्तांशान्तजातयः॥]

अष्टादशजातीनां मध्ये मध्ये विनिस्सृतान् ॥६०॥
अंशानेकादिसप्तान्तान् ब्रूमहे लक्ष्म[13] योगतः ।
पंचमांशा नन्दयन्ती[14] मध्यमोदीच्यवा तथा ॥६१॥
गान्धारपंचमीत्येतास्तिस्रश्चैकांशिका मताः ।
अथांशद्वयसम्भूताः कथ्यन्ते जातयोऽधुना ॥६२॥
[15]धैवत्यां तु[16] रिधावंशौ पंचम्यां तु रिपौ स्मृतौ ।
गान्धारोदीच्यवो[17]यां तु समावंशावितीरितौ ॥६३॥

---

* 'एतदल्पनिगास्वाहुः कम्बलाश्वतरादयः'—इति सङ्गीतरत्नाकरोक्त-(१।२२) वचनमेव पाठसंशोधनाधारः ।

१. ०जैतित्रया....
२. ०त्वं
३. ०प्ति०
४. विठले०
५. षड्जा०
६. ०र्यं
७. ०जेरे तद·······
८. शंबलोक्तवतः प्राह्य
९. नाग०
१०. ०गांशोच्चतुंगान्नान्भा०
११. ततोऽन्यंशरभा०
१२. ०तां धार०
१३. ०य०
१४. ०ति
१५. दै०
१६. सुखभावं श्यो
१७. ०ता०

अथ त्र्यंशांसमुद्भूतं[1] जातित्रयमिहोच्यते ।
†निषादर्ष[2]भगान्धारा नै[3]षाद्यामंशका मताः ॥६४॥

आर्षभ्यां निरिधाः सन्त्यंशत्वेन परिकीर्तिताः ।
ततः स्युष्षड्जकै[6]शिक्यां षड्जगान्धारपंचमाः ॥६५॥

ततश्चतुस्स्वरांशास्ताः कथ्यन्ते जातयोऽधुना ।
आन्ध्र्यां रिगावथ निपौ[10] का[11]मारव्यां रिपौ धनी ॥६६॥

ततष्षड्जो[12]दीच्यवायां षड्जमध्यमधै[13]वताः ।
निषादश्चेति चत्वार[14]स्ततः पंचांश[15]जातयः ॥६७॥

प्रोच्यन्ते रक्तगान्धार्यां समगा[16]श्च पनी तथा ।
गान्धार्यां[17]मरिधा अंशा मध्यमायां ध[18]रौ पमौ ॥६८॥

---

† 'तत्र नैषाद्यां निषादषड्जगान्धारास्त्रयोंऽशाः' इति कल्लिनाथवचनमनुसृत्य 'निषादषड्जगान्धारा नैषाद्यामंशका मताः' इत्युल्लेखः 'संगीतसूर्योदयकारेण विहितः ।

१. ०त शान्तित्र०
२. ०षड्जगा०
३. जाताद्या०
४. ०मरिपौ
५. षड्जांश०
६. ०के शि०
७. शोष्टा
८. आद्यां
९. ०गौ रस०
१०. ०जौ
११. धकाराख्यां
१२. ०जदिश्च वायां
१३. ०देव०
१४. ०रः त०
१५. ०शज्जा०
१६. ०ग्राच्च परे
१७. ०र्यां च स्वरा वंशा
१८. सरीगमौ

षड्जेश्च,[1] षाड्ज्यां[2] सगमा, पधाविति[3] निरूपितौ ।
ऐकैव[4] कैशिकी प्रोक्ता रिहीना[5] षट्स्वरांशिका[6] ।।६९।।

स्यात् षड्जमध्यमा[7] सप्तस्वरांशपरिमण्डिता[8] ।

।।इत्येकांशिकादिसप्तांशिकजातयः[9]।।

[अथ ग्रहादित्रयोदशात्मकजातिलक्षणम्]

अथ त्रयोदशविधा जात्यन्तर्भावभूषिताः[10] ।।७०।।

ग्रहादयो निरूप्यन्ते लक्ष्मीनारायणे नये ।
ग्रहांशतारमन्द्राश्च न्यासो[11] विन्यासकस्[12]तथा ।।७१।।

अथ सन्यासविन्यासौ बहुत्वं चा[13]ल्पता तथा ।
ते स्युरन्तरमार्गेण[14] षाडवौ[15]डुवयोगतः ।।७२।।

त्रयोदश इति ख्यातास्तेषां लक्षणमुच्यते ।
रंजकस्वरसन्दर्भो गीतमित्युच्यते बुधैः ।।७३।।

गीतादौ विनियुक्ताद्यस्[16]वरो ग्रह इतीरितः ।
यस्मिन् गीते यः स्वरो[17]ऽशः स[18] याति ग्रहतां तथा ।।७४।।

---

१. ०जेति
२. षड्जसंग०
३. ०वधारित०
४. यस्यैव
५. ०हिना
६. ०शका
७. ०मौ
८. ०सरि०
९. ०ति०
१०. ०यान्तर्भानभू०
११. ०सा०
१२. ०का०
१३. वा०
१४. ०मानेन
१५. ०बाडव०
१६. ०या स्वहे
१७. ०रोंश
१८. ०स्व०

[१]गीतग्रहे[२] यः स्वरोंऽशः स उभ[३]यत्वमिष्यते ।
ग्रहां[४]शयोरेक एव यस्मिन् गीते समुच्यते ॥७५॥
उभ[५]यग्रहणं तत्र कर्तव्यं ना[६]ऽत्र संशयः ।
यासु याव[७]न्त [८]ईहांशा ग्रहा[९]स्तावन्त एव हि ॥७६॥
न[१०]न्वंशग्रहयोरत्र [११]चेदनन्यः स दृश्यते ।
सत्यमंशो भवेद् वादी, ग्रहो वाद्यादिभेदभाक् ॥७७॥

॥इति ग्रहलक्षणम्॥

[अथांशलक्षणम्]

ग्रहादीनां समूहे तु बाहुल्ये[१२] [न]यस्सदा ।
स एवांश इति ख्यातो गीतादा[१३] [व]पि सूरिभिः ॥७८॥

॥इत्यंशलक्षणम्॥

अथावधिं ता[१४]रगतां सविशेषं वदाम्यहम् ।
यस्मिन् ग्रामे यस्स्वरोंऽश[१५]: षड्जो वा मध्यमो[१६]ऽथवा ॥७९॥
तस्मात्स्वराणां चतुरः क्रमादारोहयेत्तदा ।
तारा[१७]वधिरिति प्रोक्ता सुखदैर्हितकोविदैः ॥८०॥
विशेषं ब्रूमहे तत्र मध्यमग्रामवेशने ।
कृत्वां[१८]शं मध्यमध्यस्थं[१९] तानं[२०] तारे च भावयेत् ॥८१॥

---

१. ग्री०
२. यस्य रस्यात्
३. ०दारत्वमेष्यति
४. ०हान्त०
५. ०दय०
६. गातृ०
७. ०नन्त
८. अंशास्सन्
९. ०हस्तानं तवेव हि
१०. निर्वंशग्र०
११. चेरत्वन्ये
१२. ०ल्य....
१३. ०द०
१४. कारगते
१५. ०श०
१६. ०मा धमा
१७. ०नावलिरि०
१८. ०त्यां०
१९. ०था
२०. ०ने ताले

मध्यमस्वरमारभ्य निषादान्तं चतु[1]:स्वरान् ।
क्रमादारोहयेत्तस्य निषादः[2] परमावधिः ॥८२॥
स्थानाभावात् स्वराभावात् प्रयोगो नास्त्यतः परम् ।
षड्जग्रामे तदाकारं[3] षड्जमंशं विधाय तान् ॥८३॥
स्वरान् चतुर आरोहेत् षड्जं त्यक्त्वा स्वरस्थितान् ।
पंचमान्तान् स एवात्र तारावधिरितीरितः ॥८४॥
आधारषड्जं तत्रोक्त्वा योजयेन्मन्द्रतारयोः ।
षड्जग्रामेऽथ निश्शेषौ ता[4]वरवितकरौ[5] तथा ॥८५॥
यदारोहणसंख्यायां व[6]र्ज्यो भवति यस्स्वरः ।
स गण्यस्तेषु सर्वत्र स्वरेषु चतु[7]र्ष्वप्यलम् ॥८६॥

॥ इति तारव्यवस्था ॥

[अथ मन्द्रव्यवस्था]

ततो मन्द्र[8]महं वक्ष्ये त्रिविधं च तथो[9]दितम् ।
ग्रामयोरंशमारभ्य मन्द्र[-स्थानंशकस्वरान्] ॥८७॥
[10]क्रमान्निधपमगरिसान् स्वभावान् मध्यमान्ततः ।
षड्जाग्रामेषु षड्जांशान् मध्यमांशान् व्रजेदथ ॥८८॥
सनी[11] धपौ म[12] गौ रेफोऽवरोहणमिति[13] भवेत् ।

॥ इत्यंशपक्षे मन्द्रव्यवस्था ॥

न्यासपक्षे तु मन्द्राख्यस्थाने गान्धारको यदि ॥८९॥

---

१. ०तु०
२. ०दप०
३. ०रा
४. ०प०
५. ०रा०
६. वर्ज्जो
७. ०तसृष्वलम्
८. ०न्द्रा०
९. ०तो०
१०. क्रमाद्गतीन् निगरिसान्
११. ०नि०
१२. मश्नरेफा वा रो०
१३. ०तो भ०

न्यासत्वं भजते यत्र सहते नावरोहणम् ।
स्वराणां मन्द्रवत्[1] षड्जग्रामन्यासेऽथ षाडवः ।।९०।।
तं त्यक्त्वा चतुरो[2]ऽधःस्थान् गायेद् धपमगान् क्रमात् ।

।। इति न्यासपक्षे[3] मन्द्रव्यवस्था ।।

एवं ग्रामविधानं[4] स्यादपन्यास[5]विधौ यथा ।।९१।।
तथा मन्द्रगतिस्तद्वद्[6] विज्ञेया क्रमवेदिभिः ।

।। इत्यपन्यासपक्षे मन्द्रव्यवस्था एवं ग्रामविभाग[व्यव]स्था ।।

महता लक्ष्मणार्येण न्यास-लक्ष्म निरूप्यते ।।९२।।
न्यास[7] इत्युच्यते तज्ज्ञैः स्वरो [8]गीतिसमापकः ।
सल्लक्ष्म[9] जातिषु[10] न्यास-संख्यां च ब्रूमहेऽधुना ।।९३।।
शुद्धजातिषु ये सप्त न्यासा नामस्वरा मताः ।
षड्जमध्यमिकायां तु तौ स्यातां षड्जमध्यमौ ।।९४।।
[11]उदीच्यवादित्रये मः स्यात्कैशिक्यां निपगाः स्मृताः ।
कार्मा[12]रव्यां पंचमः स्यात्ततो नान्धारपंचमी ।।९५।।
रक्तगान्धारिका षड्जकैशिकी नन्दयन्ति[13]का ।
[14]आन्ध्रीति पंचगन्यासास्ते[15] भवन्त्येकविंशतिः[16] ।।९६।।

।। इति न्यासलक्षणम् ।।

---

१. मन्त्रवत्
२. ०राधस्थामथ····पुमर्थान्
३. ०क्ष०
४. ०नस्याद०
५. ०सा०
६. ०त्०
७. ०सामित्यु०
८. दीविसमापितात्
९. ०मजा०
१०. ०संभ्रष्ठं संख्यायां
११. उच्च वादित्र यो मस्या०
१२. ०रुत्यां
१३. ०ति तौ
१४. आञ्चेति
१५. ०तिभ०
१६. ०ति

[अथापन्यासलक्षणम्]

अपन्यासस्वरस्स[1] स्याद्[2] गीतखण्डसमापकः ।
[स्वरांश्चतुर]आरोहेत् षड्जं त्यक्त्वा पुर[3]ःस्थितान् ।।९७।।
पंचमान्तान् स एवात्र [4]विदारीणां समाप्तिकृत् ।
षट्पंचाशद्विधत्वेन वर्तते सर्वजातिषु ।।९८।।
तद्भेदाश्च [निरूप्यन्ते क्रमात् कार्मा]रवी पुरः ।
[5]नैषादी मध्यमा चान्ध्री[6] चार्षभी[7] चेति पंचसु ।।९९।।
ये[8] येंऽशास्ते ह्यपन्यासा [उदी][9]च्यवात्र[10] ये पुनः ।
सधै[11]वतावपन्यासौ गान्धार्यां षड्जपंचमौ ।।१००।।
[12]रक्तगान्धारिकायां तु मध्यमः परिकीर्तितः ।
सनिपा[13]ः षड्जकैशिक्यां पंचम्यां[14] निरिपाः स्मृताः ।।१०१।।
[15]रिपौ गान्धारपंचम्यां गपौ[16] षाड्ज्यां [निरू]पितौ ।
[17]धैवत्यां [रि] धमा[18]ः प्रोक्ता [19]नन्दयन्त्यां मपौ[20] मतौ ।।१०२।।
ततस्तु [21]सन्ति कैशिक्यां [22]रिहीनाः षट्स्वराः स्मृताः ।
[23]अंशाख्या [ये तथान्ये च] षट्पंचाश[24]दमी युताः ।।१०३।।

---

१. उप०
२. ०त्
३. ०र०
४. स एवात्र
५. नि०
६. ०द्री
७. ०भेत्येति
८. यं यं शास्त्र उप०
९. ····च्चय
१०. पुनः पुनः
११. दैन्यातानवन्यासौ
१२. चरगां चारिकायां
१३. ०धाः
१४. ०मस्यां
१५. रेफौ
१६. ०तौ षड्ज····
१७. दैc
१८. ····गमाप्रोक्तौ
१९. पञ्चमान्त्यां
२०. ०तौ
२१. षड्जकै०
२२. विधिना
२३. अनन्त····
२४. ०सप्तमी युता

अथवा सप्तपंचांशत्[1], [कैशिक्यां सप्तयोग]तैः[2]

।। इत्यपन्यासलक्षणम्[3] ।।

❀[अथ विन्यासलक्षणम्]

[4]विदारीभागमध्यस्थपदप्रान्तसमाप्तिकृत्[5] ।।१०४।।
[स वि]न्यास इति ज्ञेयः कुशलैः[6] स्वरकोविदैः[7] ।

।। इति विन्यासलक्षणं समाप्तम् ।।

[अथ बहुत्वलक्षणम्]

अथोच्यते मया सम्यग् बहुत्वं[8] [द्विविधं हि तत्] ।।१०५।।
संस्पर्शनं स्वराणां यद्[9] बहुत्वं प्रथमं मतम् ।
तदेवालंघनमिति प्रवदन्ति पुरातनाः ।।१०६।।
पुनः पुनः स्वरावृत्तिर्ब[10]हुत्वं स्याद् द्वितीयकम् ।
इदमभ्यासनाम्ना [11]यद् वदन्ति भरतादयः ।।१०७।।
आद्यं बहुत्वं वादि[12]त्वात् संवादित्वाद् द्वितीयकम् ।
वादिसं[13]वादिनोरंशे बहुत्वं कार्यमेव तत् ।।१०८।।

।। इति बहुत्वलक्षम् ।।

[अथाल्पत्वलक्षणम्]

❀ प्राप्तादर्शपुस्तकेऽत्र 'सन्न्यासो' न लक्षितो विद्यते । 'सङ्गीतरत्नाकरे' 'अंशाविवादी गीतस्याद्यविदारीसमाप्तिकृत् संन्यासः' (१।४७) इत्येवं निरूपितः ।

१. ०चलेश····
२. ····ताः
३. इत्युप०
४. रिधारिभा०
५. प्राप्त्यस०
६. नर०
७. ०तन्त्र····
८. ०त्
९. ०व०
१०. ०ब०
११. ०य व०
१२. ०दिस्यात्
१३. ०नंवा०

[बहुत्वविप]रीते[1]त्व [मल्पं]त्वं कथ्यते बुधैः ।
वादिसंवादिनोर्[2]त्र स्वरेष्वंशेषु तद् भवेत् ॥१०९॥

॥ इत्यल्पत्वलक्षणम् ॥

[अथान्तरमार्गलक्षणम्]

न्यासा[3]पन्यासविन्या[4]ससन्न्यास[5]ग्रहाह्वय[6]म् ।
स्थानं विहाय तेषां तु मध्ये मध्ये[7]ऽल्पतायुर्जा[8]म् ॥११०॥
स्वराणां तानवैचित्र्य[10]कारिण्[11]यंशा[11]दिसंगतिः ।
स स्यादा[12]वृत्तिहीनत्वा[13]दीषत्स्पर्शनयोगतः ॥१११॥
यदारोह्य[14]वरोहिभ्यां रक्तियुक्तो हि[15] यो भवेत् ।
स एवान्तरमार्गः स्याद् विकृता[16]स्वेव जातिषु ॥११२॥

॥ इत्यन्तरमार्गलक्षणम् ॥

[अथ षाडवलक्षणम्]

ये स्वराष्षड[17]वन्त्यस्मिन् प्रयोगं षाडवा मताः ।
षट्स्वेरभ्यस्समुत्पन्नं गीतं षाडवै[18]मुच्यते ॥११३॥

॥ इति षाडवलक्षणम् ॥

---

१. ०ता····
२. ०रस्य
३. ०सो०
४. ०यासं न्या०
५. ०सा संग्र०
६. ०यः
७. ०येल्प०
८. ०जाः
९. ०यात्
१०. ०रुण्यं
११. नाति संगतौ
१२. ०दांद्रिरि०
१३. ०त्वं दी०
१४. ०ह्या०
१५. भवेद्यदि
१६. ०स्विव०
१७. ०षाडवं तस्मिन्
१८. ०ब०

[अथौडुवलक्षणम्]

उडवस्तु[1] तारका[2]: स्युस्ताराणा[3]मयनं नभः ।
नभः पृथिव्यादिगणे पंचमं परिकीर्तितम् ॥११४॥
तत्संबन्धिवशात्संख्या[4] सेयं पंचस्वरस्य हि ।
तस्मात्पंचस्वरोद्भूतं गीतमौ[5]डुवितं मतम् ॥११५॥

[षाडवौडुवप्रसङ्गेऽल्पत्वस्य पुनर्निरूपणम्]

अल्पत्वमेव शास्त्रेऽस्मिन्न[6]नभ्यासः प्रकीर्तितः ।
तदाल्पतरतै[8]वात्र लंघनं चेति कथ्यते ॥११६॥
पूर्णत्वादिव्यवस्थायां[9] जातीनां यदि संभवेत् ।
षाडवौ[10]डुवता [त][11]त्र ते त्वनभ्यासलंघने ।
क्रमात् स्यातां पंचमी स्या[12]दन्यथा परितोषितो[13] ॥११७॥

॥ इति[14] जातिलक्षणम् ॥

॥ इति जा[15]त्यध्यायः ॥

॥ श्रीमते रघुनन्दनपरब्रह्मणे नमः ॥

---

१. ऊरवोसौ
२. ०का
३. ०णां अ०
४. ०त्सांयं
५. ०दिवतं
६. ०न् अभ्यास इति की०
७. ०तामेव
८. ०नां
९. ०वोत्रपयो····
१०. ····त्रतेत्व
११. ०त्वधस्थाः
१२. ०ताः
१३. ०त्यादेवल०
१४. जात्याद्यध्यायः

॥ इति सङ्गीतसूर्योदयप्राच्यां चतुर्थो जात्यध्यायः ॥

[अथ पञ्चमः प्रबन्धाध्यायः]

|| श्रीः ||

श्रुत्यादि रागो[1]लपनमुक्त्वा तस्यानुरंजकम् ।
गीतं निरूप्यंते[2] तत्र लक्ष्मणाणर्येण [धीमता] ॥१॥
[रंजकः]स्वरसमूहो[3] गीतमित्यभिधीयते ।
तदेव कैश्चिद् विद्वद्भिर्[4]धातुरित्यभिधीयते ॥२॥
गीर्वाणमुखभाषाणां पदं मातुरितीरितम्[5] ।
धातुमातु[6]समुत्पन्नं गीतमित्युच्यते बुधैः ॥३॥
त[द्]द्विधा स्यात् प्रबन्धं[7]श्च गीतं चेति [8]द्वयं क्रमात् ।
लक्षणं च तथा, धातु[9]मात्वादिबहुलक्षणः[10] ॥४॥
बन्धः[11] प्रबन्धो विज्ञेय[12]स्ततो गीतमुदीर्यते ।
ध्रुवादिधातुरचि[13]तं विदार्याद्यैरलंकृतम् ॥५॥
पदेन विरुदेनाऽथ तालेन च विराजितम् ।
गीतमित्युच्यते तज्ज्ञैः सामान्यं गानका[14]रकम् ॥६॥

[अथ सूडप्रबन्धः]

प्राची

सुधापयोधिमन्थनप्रसूतमाधुरीयुतं
कलिप्रियादिसिद्धगीतकोविदाभिनन्दितम् ।
भवप्रबन्धपेशलं रसोर्मिराशिमञ्जुलं
मुकुन्दवेणुनिस्वनं सभाजयामहेऽनिशम् ॥

१. ०गा०
२. ०प्याथ त०
३. ०हस्तु
४. ०भिः धा०
५. ०तः
६. ०तृ०
७. ०धस्याद्गी०
८. त्रयः
९. ०तुः जात्यादि०
१०. ०णैः
११. ०ध०
१२. ०यः त०
१३. ०जितः
१४. ०मानकम्

एलाकरण[1]ढेंकीभिर्वर्तन्या झोम्बडेन च ।
ले[2]म्भरासैकतालो[3]भिरष्टभिं[4]: [सूड] उच्यते ॥६॥

[आलिप्रबन्धः]

वर्णो वर्णस्व[5]रो गद्यं [6]कैवाडश्चाङ्कचा[7]रिणी ।
क[8]न्दस्तुरगलीला च गजलीला [9]द्विपद्यपि ॥८॥

च[10]क्रं[वालः क्रौंचपदः]स्व[11]रार्थो ध्वनि[12]कुट्टिनी ।
आर्या गाथा[13] द्विप[14]थकः कलहंस[15]श्च तोटकम् ॥९॥

घ[16]टो वृत्तं मातृ[17]का च ततो रागकदम्बकः ।
पंचतालेश्वरस्ता[18]लार्णव इत्येषु कश्चन ॥१०॥

[19]सूडक्रमस्य मध्येऽस्मिन्न[20]सावालिक्रमो भवेत् ।
सूडा[21]लिक्रमसम्बन्धाद्[22] द्वात्रिंशदिति कीर्तिताः ॥११॥

[इत्यालिप्रबन्धः]

---

१. डिकीचंकर्यक्तीन्यामां भधेन च
२. अंभ्ररा०
३. ०ला०
४. ०भि....आच्युते
५. ०सरोगद्य०
६. शेवाकश्चाङ्क
७. ०वारिणः
८. कन्दस्तु०
९. च गव्यटी
१०. कुह·······
११. दूर्ध्वोर्ध्व०
१२. ०निनिकु०
१३. ०धा
१४. ०पदकः
१५. ०सश्र्ृ····धिकः
१६. यदा
१७. ०लि०
१८. ०स्थान नव
१९. सूदक्रमन्य०
२०. स साडा च क्रमो
२१. ०ढा०
२२. ०त्

ततो[1]ऽस्य विप्रकीर्णा[स्ते] प्रसिद्धाः कतिचिद् भुवि ।
श्रीरङ्गः श्रीविलासश्च [पंच]भं[2]गिरतः परम् ॥१२॥

पंचाननो[3] मातिलकौ[4] त्रिपदी च चतुष्पदी ।
षट्पदी वस्तुसंज्ञश्च विजय[5]स्त्रिपथस्तथा ॥१३॥

[चतुर्मुखः सिंहलीलो हंसलीलोऽथ दण्डकः ।
झम्पटः कन्दुकः स्यात् त्रिभङ्गिर्हरिविलासकः ॥१४॥]

*सन्दर्शनः[6] स्वराङ्कः श्रीवर्धनो हर्षवर्धनः ।
वंदनं चंच्चरी चर्या[10] पद्धडी राहडी[11] तथा ॥१५॥

वीरश्री[12] मंङ्गला[13]चारो धवलो[14] मंगल[15]स्तथा[16] ।
[17]ओवी लोली ढोल्लरी च दं[?]ती षट्त्रिंशदित्यमी ॥१६॥

[इति विप्रकीर्णप्रबन्धाः]

एलादि[19]द[20]न्तिपर्यन्त[21] प्रबन्धाश्शुद्धसूडजा[22]: ।
तेषु सन्ति षडङ्गानि धातवो[23] [ऽपि] त्रयं[24]स्तथा ॥१७॥

---

* सङ्गीतरत्नाकरे (४।३१) तु 'सुदर्शनः' इति पाठो वर्त्तते ।

१. ०तोस्य
२. ....भगीरथः
३. ०नो मा०
४. ०का वर्ध०
५. ०श्रीपथस्तुकः
६. ०न०
७. ०देव
८. पदकं
९. चचरी०
१०. ०र्यपद्धतिरा०
११. ०तिस्त०
१२. ०स्त्री०
१३. ०ळाचा०
१४. ०ळा०
१५. ०ळ०
१६. ०वा
१७. कादितो गलगी चैव
१८. दण्डि
१९. वला०
२०. ०त०
२१. ०ता
२२. ०दजा०
२३. ०व....
२४. ....तय

नामानि च मनःप्राणे[1][वाचां]लक्ष्यक्रमाद् बुधैः ।
आदौ❀ताले[2]: स्वरस्तस्मात् पदपाटौ[3] ततः परम् ॥१८॥
तेनको विरुदश्चेति तत्र तेनपदे[4]ऽक्षिणी ।
करौ च[5] पाट[विरुदौ पादौ ताल] स्वरौ मतौ ॥१९॥
[पुरैवाखिलतालानां भेदाः सम्यङ् निरूपिताः]
स्व[6]रा[भिव्यक्ति][7]संयुक्ताः स्वरा[8]: सरिगमाद[9]यः ॥२०॥
सुप्तिङन्तं[10] पदं प्रो[11]क्तं तद्धिते[12]नापि निर्मितम् ।
ब्रह्म ह्यु[13]द्दिश्य तेनेति शब्दस्तेनेति कथ्यते ॥२१॥
ओं[14] तत्सदिति निर्देशस्त[15]त्वमस्यादिवा[16]क्यतः ।
तदिति ब्रह्म [तेनायं] ब्रह्मणा मंगलात्मना ॥२२॥
†लक्षि[17]तस्तेन तेनेति [तेनकः समुदीरितः] ।
ततकारमुखेनैव गीतवाद्यादिषु स्वयम् ॥२३॥
प्रयुज्यते मंगलार्थं तेन [को गीत] वेदिभिः ।
पुरा⋯⋯रेलादिरंजिता⋯⋯यय ? ॥२४॥

❀ संगीतरत्नाकरे प्रकरणेऽस्मिन् "स्वरश्च विरुदं पदम्" एवं रूपेण प्रथमं स्वरोद्देशो विद्यते किन्त्वत्र तालशब्दः प्रथमत्वेनोपनिबद्धः ग्रन्थस्यास्य प्रथमोध्यायोऽपि तालमेवादौ ध्यायति, मन्ये लक्ष्मीनारायणोऽयं तालं मुख्येत्वनांगीकरोति ।

† प्राप्तपाण्डुलिपावत्र 'लक्षितस्तेन तेनेति पाटो वाद्याक्षरोत्करः' इति सङ्गीतरत्नाकरोक्तम् (४।१८) अनुकृत्य 'तेनक'-लक्षणमध्य एव पाटो विनिवेशितोऽतः प्रकाश्यपुस्तकेऽस्मिन् यथाक्रमं तेनकानन्तरं पाटो लक्ष्यते ।

१. ०णा⋯
२. ०ल०
३. ०ठौ
४. ०देक्षणे
५. स्थपरि⋯
६. लका⋯
७. वियुक्ता स्यात्
८. ०रास्तु स०
९. ०दिभिः
१०. ०त०
११. ०पाटस्०
१२. ०तो वापि
१३. उद्दि०
१४. जां
१५. ०तत्समाख्यापि
१६. ०नामतः
१७. ०लित०

तच्छब्दः प्रथमं प्रोक्तस्तेनायं [मंगल]प्रदः ।
[ध्वन्यनुकृतिमूलत्वात्] पा[1]टो वाद्याक्षरो[2]त्करः ।।२५।।
प्रशं[3]सा नाम विरुदः षडङ्गार्था[4]: क्रमादमी ।

[इति प्रबन्धाङ्गानि]

वा[5]तादिवन्नृदेहेषु प्रबन्धेष्वपि धातवः ।।२६।।
[उद्ग्राहः] प्र[6]थमो धातुस्ततो मेलापकध्रुवौ ।
आभोगश्चेति चत्वारँ[7]स्तल्लक्ष्म ब्रूमहेऽधुना ।।२७।।
अनेनोद्ग्राह्यते गीतमित्युद्ग्राहः प्रकीर्तितः ।
उद्ग्राहध्रुवयोर्योगादिति मेलापकः स्मृतः ।।२८।।
सर्वत्रापि [प्रयोगेषु यस्]याभावो न विद्यते ।
तस्मादन्वर्थनामत्वं ध्रुवस्य कथितं बुधैः ।।२९।।
आ[9]भोगः पूर्ण[10]कारः स्यात् प्र[11]बन्धान्ते निगद्यते ।
ध्रुवाभोगान्तरे जातो[12] धातुरन्योऽन्तराह्वयः ।।३०।।
*तस्यान्तरत्व[13][गेयत्वं]ध्रु[14]वान्त्यावृत्तिगं भवेत्[15] ।
†क्वा[16]पि लक्ष्ये वसत्येष तेन धातुश्चतुर्विधः ।।३१।।

---

* 'अनेन गानकाले ध्रुवस्यावृत्तिषु कृतासु ततः परमाभोगजिज्ञासायां चरमावृत्यन्ते गेय इति गम्यते'—इति (सं० र० ४।९) कल्लिनाथवच एवाऽत्र पाठसंशोधनाधारः ।

† 'स तु सालगसूडस्थरूपकेष्वेव दृश्यते' (सं० र० ४।१०) इति तात्पर्यमनुसृत्य पाठोऽयं परिमार्जितः ।

१. पटवा०
२. ०रो स्मरः
३. ०तिज्ञा
४. ०र्थान्
५. अतस्स्वताननामासौ
६. पदो
७. ०रः त०
८. ····वाभा०
९. प्रयोगः
१०. ०र्वकारे
११. सङ्गीतान्ते
१२. ०त
१३. ०वं····
१४. ····स्वतयेत्याह्वयो
१५. ०त्/बुधाः ।
१६. कोविलक्ष्ये वसन्त्येव तेनायं···· र्वसंहतः ।

[प्रबन्धजातयः]

अथोच्यन्ते प्रबन्धानां[1] जातयो[2] गुणनामतः ।
मेदिनी नन्दिनी चैव दीपनी[3] भावनी तथा ॥३२॥
तारावलीति[4] पंचैते प्रबन्धानां तु जातयः ।
अङ्गैः षड्भिर्मेदिनी स्यात् पंचभिर्नन्दिनी मता ॥३३॥
चतुर्भिर्दीपनी[5] प्रोक्ता स्यात्त्रिभिर्भावनी ततः ।
द्वाभ्यां तारावलीत्येवं जातिसंज्ञा निरूपिता ॥३४॥
तत्फलं ब्रूमहे शश्वद्गातृनेतृसुखप्रदम् ।
भूमिप्रदा मेदिनी स्यान्नन्दिनी कामदायिनी ॥३५॥
दीप[6][नी दीप्तिदात्री स्या] द्भावनी बुद्धिदायिनी ।
तारावली तु सुज्ञानप्रदा तेजस्करी मता ॥३६॥

[इति प्रबन्धजातयः]

[एलापदनामानि]

काममन्मथवत्कान्तजितमत्तविकारिणः ।
मान्धाता [सुमतिः शोभिः सुशो]भि[9]र्गीतकोचितौ ।३७।
विचित्रो[10] [वासवमृदुसु]चित्रा इ[11]ति षोडश ।
नामान्येला[12]पदानां स्युः षोडशानामनुक्रमात् ॥३८॥

[इत्येलापदनामानि]

---

१. ०ना
२. ०ये
३. ०पि०
४. ०ला०
५. ०पि०
६. ०पं····
७. ०वन्त्पद्यसत्कान्ता०
८. ०मन्तवि०
९. ०र्गतकोणतः
१०. ०त्रस्य
११. ०दिति
१२. ०ताप०

[एलापदप्राणाः]

[स]मानो मधुर[1]स्सान्द्रः कान्तो दीप्तस्समाहितः ।
अग्राम्यस्सुकुमार[2]श्च प्र[3]सन्नौ [ज] स्विनावि[4]ति ॥३९॥
[मा॰धात्रादि]पदेषु स्यु[5]: प्राणा दश दश[स्वि]मे[6] ।
समानोऽल्पाक्षरध्वानो, मधुरस्वल्पनादया ॥४०॥
अल्पमूर्च्छनया युक्तः सान्द्रस्तु नि[वि]डाँ[7]क्षरः ।
अल्पध्वनिस्तारगतिः [कान्तः] कान्तध्वनिर्मतः ॥४१॥
दीप्तस्तु दीप्तनादः स्यात् स्थायिस्थ[8]स्तु समाहित[9]: ।
अग्राम्यो[10]ऽक्षरनादाना[11]मावृत्या समुदाहृतः ॥४२॥
सुकुमारो व[12]र्णनादमूर्च्छनाकोमलत्वत[13]: ।
प्रसन्नो[14]ऽथ पदस्थानस्वरादीनां प्रसादतः ॥४३॥
ओ[15]जो बहुलतेजस्वी[16]त्येभिस्सर्वैर्गुणैर्वृतः ।
एला[17]: श्रोतुः प्रयोक्तुश्च धर्मकामा[18]र्थसिद्धिदाः ॥४४॥

[इत्येलापदप्राणाः]

उ[19]क्तान्यंगानि सर्वाणि प्रबन्धानामतः परम् ।
संयोज्य लक्षणं सम्यक् प्रोच्यते विष्णुसूनुना ॥४५॥

---

१. ०रसस्०
२. ०स्य
३. ०प्रथमो····
४. ०मि०
५. स्यात्
६. ····तु
७. ····जाक्षरः
८. ०था०
९. ०ताः०
१०. ०म्याक्षर०
११. ०नां आवृत्य
१२. वसन्नाद मू०
१३. ०त्ववत्
१४. नानामवस्थान०
१५. औदो
१६. ०वि तेभि०
१७. ०नां
१८. ०र्मा०
१९. इत्युक्तांगानि

एलानामपि[1] सर्वासां त्रिपादत्वमनन्यथा[2][3] ।
एलायाः प्रथमे पादे गेयं स्यात्पदपञ्चकम्[4] ॥४६॥
आद्यं खण्डद्वयं तत्र सानुप्रासै[5]कधातुकम् ।
तन्नाम कामः प्राणस्तु दीप्तः पद्मालयापि[6] च ॥४७॥
देवता, पदमाद्यं तु, द्वितीयमिति कथ्यते ।
पदं प्रयोगरूपाख्यं[7][तत्प्रोक्तं]त्वपदान्वितम् ॥४८॥
❀त्यक्त्वा सम्बोधनं[8] चैवाभिन्नं स्यात् पूर्वधातुना ।
तन्नाम [मन्म][9]थवत् स्यात् समानः प्राण ईरितः ॥४९॥
पत्रिणो[10]-देवता-युक्तं पदमेतद्[11] द्वितीयकम् ।
तत[श्च] पल्लवाख्यं[तु पद]त्रयमुदीर्यते ॥५०॥
प[12]दे चात्रादिमे मानं विलम्बितमितीरितम् ।
कान्तस्तु पदनाम्ना[13] स्यान् मधुरः प्रा[ण उच्य]ते ॥५१॥
[14]रंजनी देवता तस्य पदं प्रोक्तं तृतीयकम् ।
ततः परं चतुर्थं तु पल्लवाख्यं विलम्बितम् ॥५२॥
मा[15]नं, प्राणस्तु सान्द्रः स्याज्जितनाम ततः पद[16]म् ।
देव[ता सुमुखी]तत्र चतुर्थे[17] स्यात् पदे क्रमात् ॥५३॥

❀ सम्बोधनं त्यक्त्वा अपदान्वितं प्रयोगरूपं द्वितीयं पदं पूर्वधातुना अभिन्नं स्यात्। पूर्वधातुतुल्यमपदमपि सम्बोधनपदयुक्तं भवेदित्यर्थः ।

१. ०तासाम०
२. ०वार०
३. ०धा
४. ०पंकजम्
५. ०स्यै०
६. ०योऽपि
७. ०पाध्यायाते
८. नत्वेनाभि०
९. ''''घवस्तस्य
१०. ०णो
११. ०त्
१२. पदेनात्रादिमे
१३. ०म्नो स्या०
१४. रज०
१५. यानं
१६. ०र०
१७. ०र्थः

पल्लवाख्ये पंचमे तु पदे[1] [मत्ते लयो द्रुतः] ।
[प्राणस्तु] कथितः[2] कान्तः [शची स्यात्] पदं[3]-देवता ।५४।
एवं पादत्रयं गेयं तथापि सविशेषतः ।
कामं[4] ब्रवीमि बालानां बोधार्थं स्फुटलक्षणम् ।।५५।।
द्वितीयपादे[5] प्रथमे पदे[6] खण्डद्वयं तथा ।
प्राणो दीप्तो विकारीति[7]संज्ञाने[8] च वरेण्यका ।।५६।।
देवता स्यादिदं षष्ठपदमुक्तमतः परम् ।
सप्तमं च प्रयोगाढ्यं[9] ससम्बोधनमित्यपि ।।५७।।
पूर्वप्रयोगधातुत्वं समानप्राणपूरितम् ।
पदं तन्नाम मान्धाता वायुवेगाधिदेवता ।।५८।।
ततः[10] पदं पल्लवाख्यं सुमति[11] नामशोभितम् ।
ल[12]यो विलम्बो मधुरः प्राणो धातुर्यथाक्रमम् ।।५९।।
वे[13][दिनी] देवता, गे[14]यमेवं स्यादष्टमं पदम् ।
पुनः पदं तु नवमं पल्लवाख्यं विलम्बितम् ।।६०।।
सान्द्रप्रा[15]णश्च शोभ्या[16]ख्यं मोहिनीत्यधिदैवतम् ।
दशमे द्रुतमानं स्यात् पल्लवाख्ये पदे पुनः ।।६१।।
पूर्वपंचकवद् धातुः सुशो[17]भिनामसंज्ञितम् ।
कान्ताप्राणो जयादेवी पा[18]दोऽयं स्याद् द्वितीयक[19]ः ।।६२।।

---

१. ०रेश····
२. ····पत्रिणानांतो····
३. ०र०
४. श्रा०
५. ०द,
६. पा०
७. तिकारेति
८. ०नामपरेण्डका
९. ०यमसम्बो०
१०. परं
११. ०तीना०
१२. अयो
१३. मे....
१४. शोभिनाम स्यादष्ट०,
१५. ०प्रभासु०
१६. ०भाख्यो
१७. ०भी ना०
१८. प्रायोयं
१९. ०कम्

एकादशे पदे पू[1]र्वपादादिपदवद् भवेत् ।
दीप्तप्राणो, गीतकाख्यं गौरी स्यादधिदेवता ॥६३॥
सोमे[2]श्वरमते धातुचतुष्टयसमन्विते ।
उद्ग्राहोऽयं भवेदेवमेकादश[3]पदात्मकः ॥६४॥
द्वादशे तु पदे पूर्व[4]प्रयोगयुगलं[5] प्रति ।
धातु[6]रन्यो भवेदत्र सम्बोधनपदं तथा ॥६५॥
उ[7]चितसंज्ञं, प्राणः स्यात् समाहि[8]त इतीरितैः[9] ।
ब्राह्मीतिदेवता तज्ज्ञाः प्राहुः परमिदं पद[10]म् ॥६६॥
मेलापको धातुरयमु[11]द्ग्राहान्यतरत्वतः ।

इति मेलापक[12]:

एवं त्रयोदशं ज्ञेयं येन केनापि धातुना ॥६७॥
तस्य मध्य[13]लयो[14]ऽग्राम्यप्राणसंज्ञा विचित्रितम् ।
मातंगी देवता तस्य तद् ध्रुवादिपदं भवेत् ॥६८॥
❀
चतुर्दशपदं तत्र तथा मध्यलयान्वितम् ।
ध्रुवादिपदव[15]द् धातुः प्राणस्तु सुकुमारकः ॥६९॥
तत्संज्ञा[16] वासवा[17]ख्या स्याच्च[18]ण्डिकेत्यधिदेवता ।
पदमेवं द्वितीयं स्यात्तृतीयं स्यान्निरूपितम् ॥७०॥

❀ प्राप्तपाण्डुपुस्तकेऽत्र 'इति ध्रुवान्यप्रथमपदम्'—एवं लिखितं वर्त्तते ।

१. पूर्वा०
२. ०मस्व०
३. ०श तदात्मिका
४. ०र्वा प्र०
५. ०ळं
६. ०रस्या
७. सुचितसंज्ञः
८. ०जात
९. ०ताः
१०. ०रम्
११. मुद्राहस्ताथ भावतः
१२. ०कम्
१३. ०या०
१४. ०यो ग्रा०
१५. ०पद्धातुः
१६. ०ज्ञावा०
१७. ०नाभ्यासात्
१८. संदिशेत्य०

पदं पंचदशाख्यं तु विलम्बितलयान्वितम् ।
ध्रुवस्यादिपदायोगाद् धातुरन्यो भवेदिह ॥७१॥

स्तुत्यनामाङ्कितं कार्यं प्रसन्नप्राणसत्त्वतः ।
अस्य संज्ञा†नाम मृदुर्विजया देवता [मता] ॥७२॥

इदं पदत्रयं तज्ज्ञै[ध्रुव]धातुरुदीरितम् ।

[इति ध्रुवः]

पदं षोडशमाभोगः स्वाभिधानविभूषितः ॥७३॥
[ओजः प्राणः सुचित्राख्यं चामुण्डा चाधिदेवता] ।

[इत्याभोगः]

[†अकारे दैवतं विष्णुरिकारे कुसुमायुधः] ॥७४॥
लक्ष्मीर्लकार एलानामिति वर्णेषु देवताः ।
एलाः श्रोतुः प्रयोक्तुश्च धर्मकामार्थसिद्धिदाः ॥६५॥

इति[एला]सामान्यलक्षणम्

❀एलानां बहवो भेदास्तान् त्यक्त्वा विरलात्मकान् ।
पङ्क्ति संक्षिप्य सुव्यक्तं बहूनामपि दर्शकम् ॥७६॥

नामेत्यव्ययपदम्

† सङ्गीतरत्नाकरतः (४-४२) ।

❀ पाण्डुपुस्तके श्लोकसंख्यानामभावे लिपिकारेण भ्रान्त्या यत्र कुत्राऽपि केचन श्लोकाः किंवा सन्दर्भा उट्टङ्किताः । येन पाठमध्ये महान् दोष आपतितः । यथाऽत्र एलासामान्यलक्षणानन्तरं शुद्धगणैलानां भेदा—

१. ०द्या०
२. ०दु बीज०
३. ०ज्ञैः मु....
४. ०रेतदेव ।
५. वक्रं
६. ०गा०
७. ०धानं
८. ०षा
९. वि०
१०. ०जा

[गणमात्रावर्णदेशविशिष्टैलाचतुष्टयम्] ।
गणानां लक्षणादीनि साङ्गान्यथ वदाम्यहम् ॥७७॥

गण[2]: समूहवाची[3] स्यात् स द्विधा परिकीर्तितः ।
वर्णमात्राद्वि[4]भेदेन तयोर्लक्षणमुच्यते ॥७८॥

[वर्णगणाः]

आदिमध्यावसानेषु यरता यान्ति लाघवम् ।
भजसा गौरवं यान्ति मनौ तु गुरुलाघवौ ॥७९॥

वेदे तु मयरसा[5]श्च त [ज] भा[6] न इतिक्रमा[त्] ।

[इति वर्णगणाः]

[वर्णगणदेवताः]

एतेषां देवता[7]: पृथ्वो जला[8]ग्नो मरुदम्बरे ॥८०॥

—निरूपिताः । ततो 'वर्णमात्राद्विभेदेनेति'—द्विविधगणविवेचनं सङ्कल्प्याऽपि मात्रागणानां लक्षणानन्तरं प्रथमोक्तवर्णगणवर्णनं विहायैव गणैलाः सविस्तरं परिलक्षिताः । तत्र शुद्धगणैलास्तु प्रागेव वर्णिता अतो 'गणैलालक्षणं' तावद् वक्ष्ये भेदसमन्वितम्' इति व्याहृत्य 'शुद्धा च विकृता चैव सङ्कीर्णा इति तत्र च' एवं गणैलात्रैविध्यं निदश्य विकृतानां गणैलानां व्याख्यानं कृतम् । ततो दीर्घान्तरालेन वर्णगणाः स्मृताः । पश्चाच्च मात्रैला विवेचिताः ।
सर्वममु क्रमभङ्गप्रसङ्ग विविच्य क्रमादेवात्र गणलक्षणं, वर्णगणाः, मात्रागणाः, गणैलाभेदाः, शुद्धगणैला, विकृतगणैला, पुन मात्रैलाश्च उपनिबध्यन्ते ।

१. ०हा०
२. गु०
३. ०दा०
४. ०दि०
५. ०स०
६. ०भास इ०
७. ०ता ख्याता
८. ०ग्नि०

सूर्यचन्द्रसुरा[1]धीशाः क्रमात् कुर्युः फलानि[2] ते ।
श्रीवृद्धिनिर्ध[3]नस्थानभ्रंशनिर्धनतारुजः[4] ॥८१॥
कीर्तिमायु[5]श्च वर्णस्य श्लोकगीतादियोगतः ।

[इति वर्णगणदेवताः]

[वर्णवर्गदेवताः]

विधुः कुजो बुधो जीवः[6] कविर्मन्दो[7] [र] विस्तमः ॥८२॥
क्रमादर्क[8]चट[ता]नां पयसा[9]नां च देवताः ।
वर्गाणां तत्फलानि स्यु[10]रायुः कीर्तिरसद्[11]यशः ॥८३॥
सम्प[12]त् सुभगता कीर्ति[र्मान्द्यं] मृत[13]युश्च शून्यता ।
संविचार्य विधातव्यः श्लोकगीतादिषु क्रमात् ॥८४॥
प्रयोगः कथितः पूर्वं विद्वद्भिर्भरतादिभिः ।

इति वर्णवर्गदेवताः

[मात्रागणः]

गुरुत्रयात्मको[14] मध्याभेदस्त्वत्र निगद्यते ॥८५॥
पादे सर्वगुरावाद्या[15]ल्लघून्यस्य गुरोरधः ।
यथोपरि तथा शेषं भूयः कुर्यादमुं विधिम् ॥८६॥
[ऊने दद्याद् गुरुनेव यावत् सर्वलघुर्भवेत् ।
इति प्रस्तारसम्भूता ये भेदास्तु गणोद्भवाः ॥८७॥

---

१. ०रावासां क्र०
२. ०न्विते
३. ०धानास्थानादंश०
४. ०जा
५. ०याश्च पर्ण०
६. ०वो
७. ०लिर्मलदो
८. ०थचटा०
९. ०सां चापि दे०
१०. ०युः आयुः
११. ०विशद्यशः
१२. ००म्प्रत्युच्चगताः कीर्ति ·····
१३. ·····द्यंशशू०
१४. ०कं मध्यनन्द
१५. ०द्यं लघुस्तद्गु०

[इति मात्रागणाः]

[गणैला]

[1]गणैलालक्षणं तावद् वक्ष्ये भेदसमन्वितम् ।।९५।।

तत्र [2]वर्णगणैरेला त्रिविधा परिकीर्तिता ।
शुद्धा च वि[3]कृता चैव संकीर्णा इति तत्र च ।।९६।।

[शुद्धा गणैला]

शुद्धा चतुर्विधा [4]नादावती हंसावती तथा ।
नन्दावती च भद्रा चेत्येतासां लक्षणं ब्रुवे ।।९७।।

*गणादिनियमस्त्वा[5]सां प्रतिपादादिमे सदा ।
कर्तव्यः[6] प्रथमे[7] [8]खण्डद्वय एव प्रवर्त्तते ।।९८।।

[9]भपंचकेन नादेन युता नादावती मता ।
[10]नान्ता तु [11]टक्करागः स्यात्तालो[12] [13]मण्ठः प्रकीर्तितः[14] ।।९९।।

---

* 'गणादिनियमस्त्वासामङ्घ्रिखण्डद्वयाश्रयः' (४।६८)
इति सङ्गीतरत्नाकरोक्तवचनानुसरणं दृश्यतेऽत्र ।

१. गुणैस्तान् ल०
२. तन्न०
३. ०श्रुता
४. गाधा सती
५. ०तासां
६. ०व्य
७. ०मं०
८. ०डे स्वयेत्येक
९. स्व०
१०. कस्यास्तु
११. नागनाटः
१२. ०रे
१३. मन्दाः
१४. ०ताः

[इति नन्दावती]

[भद्रावती]

भद्रावतीति मगणैर्[1]यन्तैः पंचभिराश्रिता[2] ॥१०५॥
कङ्कालताले[3] ककुभरागे[4] चाथर्वसंभवा[5][6] ।
कृष्णवर्णा शूद्रजातिर्भारतीं वृत्तिमाश्रिता ॥१०६॥
वैदर्भीरीतिरुचिरा बीभत्सरससंयुता ।
वाराही–प्रीतये सर्वमोहनाय नियुज्यते ॥१०७॥

[इति भद्रावती]

[इति शुद्धाश्चतस्रो गणैलाः]

[विकृता गणैलाः]

शुद्धा तु त्रिविधा नादावती हंसावती तथा ।
नन्दावतीति प्रत्येकं एकत्रिंशद्विधा मताः ॥१०८॥
[9]विकृता गण–भेदात् स्युर्विकारस्य क्रमं ब्रुवे ।
तत्र नादावतीगाने नान्तं भगणपंचकम् ॥१०९॥
गणैर्गलविपर्यासो[10] विकारः कथ्यते बुधैः ।
न गणे तु विकारः स्यादन्तिमे सर्वदा त्विह ॥११०॥
नादावती सा प्रथमं पंचधा परिकीर्तिता[11] ।
वासवी संगता त्रेता चतुरा बाणसंज्ञिका ॥१११॥
इति पंचविधो[12]स्वाद्या वासवी पंचधा पुनः ।

---

१. ०धैः दैत्यैः
२. ०ताः
३. ०ता च
४. कुचरा रागे
५. पर्पर०
६. ०वाः
७. मात्रजातेः भा०
८. ०ता भीभ०
९. तत्पिता वेणुभेदाः
१०. ०सौ
११. ०ताः
१२. ०धेष्वा०

[अन्तयो रति][1]देहेति संगताया दशोदिताः ॥११९॥
[2]त्रेताभेदा दशविधास्तानपि ब्रूमहे[3]ऽधुना ।

प्रद्वित्रिणां विकारेण भवेदे[4]ला तु मंगला ॥१२०॥
प्रद्वि[5]चानां वि[6]कारेण साधिता रतिमंगला ।

प्रद्विपानां विकारेण कलिका [7]कारिता बुधैः ॥१२१॥
प्रचत्रिणां[8] विकारेण तनुमध्ये[9]ति कथ्यते ।

प्र[10]त्रिपाणां विकारेण वीरश्रीरिति भाषिता ॥१२२॥
प्र[11]चपानां विकारेण जायते जयमंगला ।

[द्वित्रिचानां विकारेण विजया परिभाषिता ॥१२३॥]
द्वित्रिपा[12]णां विकारेण रत्नमाला निरूपिता ।

द्विचपानां विकारेण गुरुमध्येति भाषिता ॥१२४॥
[13]त्रिचपानां विकारेण [14]त्वेला सा स्याद्रतिप्रभा ।

इति त्रेता[15] तु दशधा प्रोक्ताऽथ[16] चतुरा त्विह ॥१२५॥
ल[17]क्ष्ये चतुर्विधा तत्र प्रथमं भगणं विना ।

चतुर्णां च विकारेण [18]त्वेला स्यादुत्सवप्रिया ॥१२६॥

१.····देहावीति मता सं०
२. त्रि०
३. ०हेधु०
४. द्वेला
५. ०जा०
६. ०गारेण साधु जानाति मं०
७. क०
८. ०णा
९. ०ये विक०
१०. ०चपानां
११. प्रत्रि०
१२. ०जानां
१३. प्रतिजानां
१४. राना
१५. ०धा
१६. ०धश्चतुरा त्वहि
१७. लक्ष्यते विविधा
१८. राधास्यान्मधवप्रिया

कथ्यते वातसावित्री[1]त्येवं [2]भेदत्रयं स्मृतम् ।
पूर्वो[3]क्तैकगणेनैव विकृता वासवी द्विधा ॥१३४॥
भगणेषु च त्रिष्वेको जगणः [4]क्रियते यदि ।
सावित्रीति तदा ज्ञेया तथै[5]व [भ]चतुष्टये ॥१३५॥
क्रियते सगणस्त्वेकस्तदा स्यात् [6]पावनी मता ।
एवं पंचविधा[7] भेदा नादावत्याः प्रकीर्तिताः ॥१३६॥
इति नादावतीभेदाष्षट्त्रिंशत्प्रौढसंमताः ।

॥इति नादावतीलक्षणम्॥

हंसावती पंचभी[8]रैः सान्तैरुक्ता भवेत्तदा ॥१३७॥
एकत्रिंशद्भिदा तत्र सङ्गतागतयो[9] रयोः ।
[10]स्थाने ततगणावेशस्तदा स्या[द्] व्योमजा मता ॥१३८॥
रौ[11] विना यगणावे[12]शो भवेत्सा[13] वारुणी तदा ।
[14]रयोर्यदा तयावेशस्तदा स्याद्[15] व्योमवारुणी ॥१३९॥
तस्यां तु वासवी भेदौ द्वौ स्यातां पूर्ववत् क्रमात् ।
व्योमजा वा[16]रुणी चेति र[17]योस्तयगणौ कृतौ ॥१४०॥
इति हंसावतीपंचभेदाश्चैते[18] निरूपिताः ।

[इति हंसावतीलक्षणम्]

नन्दावत्यास्संगताया भेदत्रयमथोच्यते ॥१४१॥

---

१. त्र्यैत्ये०
२. वेक्तै०
३. ०र्वमेक०
४. श्रि०
५. ०दै०
६. प०
७. ०धाश्शेषा
८. ०भिर्यैः
९. पूरितस्तथा
१०. मध्ये कनगणा०
११. तं
१२. ०दे०
१३. ०सावरणे
१४. तर्या‥‥र्यथादेश तथा
१५. म वारुणा
१६. तारुणे
१७. तयोः पूरगणाकृतौ
१८. ०षा

❀

रतिले[1]खा कामले[2]खा बाणले[3]खा ततः परम् ।
चन्द्रले[4]खेति, तत्राद्या रतिले[5]खा निरूप्यते ॥१४७॥

रतिले[6]खा रतिगणैरत्युक्ता-सम्भवैर्भवेत् ।
प्रथमांघ्र्युद्ग्राहरूपमेकादशकलात्मकम् ॥१४८॥

त[थैव] स्याद् द्वितीये[9]ऽघ्रौ तृतीये तु कला दश ।
इत्येवमेला सामान्या गीयते तत[10]बुद्धिना ।१४९॥

प्रोच्यते रतिले[11]खेति, कामले[12]खामथ ब्रुवे ।
कामले[13]खा कामगणैर्गीयते मगणोद्भवैः ॥१५०॥

[14]पादे तत्रादिमे मात्राः[15] कला द्वाविंशतिर्मताः[16] ।
द्वितीये पादभागे च तत्र द्वाविंशतिर्मताः[17] ॥१५१॥

तृतीये विंशतिः ख्याताः कलाः[18] पूर्वमनीषिभिः ।
बाणलेखा बाणगणै[19]र्भवेदत्रादिमे क्रमा[20]त् ॥१५२॥

❀ : संगीतसूर्योदये त्वत्र सर्वत्रैव "लेखा" इतिस्थाने रेखैव पाठौ वर्त्तते तथाऽपि संगीतरत्नाकरादिकदिकमनुगम्य "लेखेति" पाठो विहितः ।।

१. ०रे०
२. ०रे०
३. ०रे०
४. ०रे०
५. ०रेखा
६. ०रेखा
७. ०घ्र्यौ वाक्यरू०
८. ०त्करम्
९. ०ये वा
१०. ०त बु०
११. ०रेखे०
१२. ०रेखा
१३. ०रेखा
१४. वा०
१५. त्रा कला
१६. ०ता
१७. ०ता
१८. ०ला
१९. ०णैः भ०
२०. ०मः

नभस्वत्यां[छ]गण[1]श्च–त्र[2]यं प[3]श्छो भवेत्क्रमात् ।
वसुमत्यां[4] च [द]प[5]चाः पत्रयं स्याच्छ[6]तौ क्रमात् ।।१६१।।

।।इति विंशतिमात्रै[7]लालक्षणम्।।

[वर्णैला]

गणमात्रादिनियमं विहायाक्षरसंख्यया ।
एला यदा निबध्यन्ते वर्णै[8]लास्ताः प्रकीर्तिताः ।।१६२।।
वर्णानां नियमं जातिनामानि ब्रूमहेऽधुना ।
षड्वर्णपू[9]र्वकैकोनत्रिं[10]शद्वर्णावधित्वतः ।।१६३।।
एकैकवर्णाधिकतां प्राप्यैलाः स्युः क्रमादथ[11] ।
मधुक[12]री सुस्वरा चैव(च) करणी[13] सुरसा ततः ।।१६४।।
प्रभंजनी च मदन[14]वती च शशिनी प्र[15]भा‡ ।
❀[मालती ललिताख्या च मता भोगवती ततः ।।१६५।।
ततः कुसुमवत्याख्या कान्तिमत्यपरा भवेत् ।
ततः कुमुदिनी ख्याता कलिका कमला तथा ।।१६६।।
विमला नलिनीसंज्ञा कालिन्दी विपुला ततः ।]
विद्युल्लता विशाला च सरला तरला इति ।।१६७।।

---

‡ प्रभावतीत्यर्थः

❀ सङ्गीतरत्नाकरतः (४।१०८-११०)

१. ०णस्तत्र
२. पंच
३. पंचौ
४. ०यामंच
५. पंच
६. ०चतौ
७. ०त्रे ला०
८. ०णैः ला०
९. ०पूर्णमे०
१०. ०विंश०
११. ०यः
१२. रेषु स्व०
१३ ०णे स्वरसा
१४. ०नः पती
१५. तथा

अनुप्रासो भवेद् वर्णै[1]: पदत्वेनादिमध्ययोः ।
ततः कामगणानां च चत्वारस्तदनन्तरम् ॥१७५॥
भवेद्रतिगणस्त्वेको ब्रह्मणः पूर्ववक्त्रतः[2] ।
जन्म, तद्दैवतं शम्भुर्नादावत्या भवेद्यदि ॥१७६॥
सुलेखे[3]त्युच्यते तज्ज्ञैः प्रथमा[4] परिभाषिता[5] ।
पाद्ययोराद्ययोः कामगणा[6]श्चत्वार एव ते ॥१७७॥
अनुप्रासस्त्वादिपद[7]स्थानयोः स्यात्ततः परम् ।
तृतीये चरणे[8] त्वष्टौ गणाः कामाभिधा मताः ॥१७८॥
अनुप्रासस्त्वादिमध्यावसानेषु भवेदिह ।
ब्रह्मणो दक्षिणास्यं यद् योनिरस्याः प्रकीर्तिता[9] ॥१७९॥
सावित्री च हरिश्शम्भुः क्रमाच्चरणदेवताः ।
अनेन लक्ष्मणा युक्ता, पूर्णा, हंसावती[10]–युता ॥१८०॥
कथ्यते का[11]मलेखेति द्वितीयेति निरूपिता ।
पादे पादे कामगणाश्चत्वारस्तत्र तत्र च ॥१८१॥
आद्यन्तयोरनुप्रासो ब्रह्मणः पश्चिमास्यतः[12] ।
जननं, ब्रह्मविष्णु गौ[13] यत्रो स्यादंघ्रिषु त्रिषु ॥१८२॥
अनेन लक्षणेनोक[14]ता सैव[15] नन्दावती त्विह ।
स्वरलेखे[16]ति विद्वद्भि[17]स्तृतीया कथिता मता ॥१८३॥

---

१. ०मस्०
२. ०वत्क्रुतः
३. सुरभीत्यु०
४. ०मः
५. ०तः
६. ०णश्च०
७. ०द्य०
८. ०णोत्कृष्टौ
९. ०ताः
१०. ०ती यु०
११. ०मेल०
१२. ०दः
१३. सौकर्करादंघ्रि०
१४. ०क्तः
१५. ०वानन्तावती
१६. ०वेशेति
१७. ०भिः तृ०

इति कर्णाटकैलानां संख्यां ब्रूमो यथाक्रमम् ।
नादावत्यादयस्तत्र[1] चतस्रस्स्युस्ततः परम् ॥१९३॥

चतुर्मुखमुखोद्भूताश्चतस्रस्तदनन्तरम् ।
छन्दस्वतीत्वमुन्नीता[2] रतिले[3]खादयस्तथा ॥१९४॥

चतस्रस्स्युश्चतस्रस्स्युर्[4]लेखाभावात्तथैव ताः ।
स्वा[5]भासनत्वाच्च तथा चतस्रो[6] विंशतिः परात् ॥१९५॥

॥ इति कर्णाटैलाविधि[7]र्विंशतिः ॥

[लाटाद्येलाचतुष्टयम्]

प्रान्तप्रासा भ[8]वेल्लाटी रसै[9]श्च बहुभिर्युता ।
※[गमकप्रासनिर्मुक्ता गौडी त्वेकरसा मता ॥१९६॥]

कर्णाटकेस्मि...नदां...? [तथान्ध्र्यां] बहवो रसाः ।
नानाभेदप्रयोगाश्च भावाश्च गमकास्तथा ॥१९७॥

द्राविड्यां रसभावास्तु ह्य[10]नुप्रासो न तद्रसः ।
एलास्वे[11]तासु सर्वासु [12]स्वस्वलक्षणसंयुतः ॥१९८॥

सानुप्रासश्चतुर्थोऽङ्घ्रिश्चतुर्[13] त्रिषु वांघ्रिषु ।
चतस्रो यतयः कार्याश्छन्दस्वत्यस्तदा मता[14]: ॥१९९॥

※ संगीतरत्नाकरतः (४।१२७)

१. नन्द्यावर्तादय०
२. ०स्पतित्व०
३. ०रेखा०
४. ०युः रे०
५. स्वस्वा०
६. ०स्रा
७. धिः वि
८. ०च विल्लाक्षी
९. ०सश्च
१०. अनु०
११. ०श्चेता०
१२. स्वल्पल०
१३. ०ङ्घ्रि च०
१४. ०ता

[1]नियुक्तः पदतालाभ्यां द्वयङ्गा[2] तारावली मता ।
†

॥ इत्येलालक्षणम् ॥

[करणप्रबन्धः]

*करणं नवधा तज्ज्ञैः प्रोच्यते व्यक्तलक्षणम् ॥२०७॥
स्वरादिकरणं[3] पाटपूर्वं व्यत्यासपूर्वकम् ।
प[4]दाद्यं ब[5]न्धपूर्वं च तेनाद्यं विरुदादिकम् ॥२०८॥
चित्रका[6]द्यं मिश्रपूर्वं शेषं लक्ष्माभिदध्महे ।
निबद्[7]धस्स्वरविन्यासै[8]रुद्ग्राहै[9]श्च ध्रुवस्तथा ॥२०९॥
अ[10]नन्तरं पदैर्बद्ध आ[11]भोगस्तु विरच्यते ।
तत्र गातुश्च नेतुश्च नाम कार्य[12], ग्रहः पुनः ॥२१०॥
स्वेच्छास्वरे[13], भवेदंशस्वरे[14] न्यासस्ततः परम् ।
त्रि[15]धातुकं द्रुतो मानं स्वरादिकरणं तदा ॥२११॥

---

१. विद्युक्तः
२. ०ङ्गास्ता०
३. ०णा सातुपूर्वं
४. एधाद्यं
५. बद्ध०
६. ०कथ्यं
७. ०द्धैस्स्वैर०
८. ०सैः उ०
९. ०हः पटर्वात्वदैः
१०. पाटैस्त्यवा यादा····
११. ····भोगपदैरिपविंचते
१२. ०र्यंग्रह
१३. ०रो
१४. ०रैर्न्यासं
१५. एकस्तुको

†अत्र प्रसङ्गं विनैव पाण्डुपुस्तके 'इति देशीलक्षणम्' इत्युल्लेखो वर्त्तते ।

* सङ्गीतरत्नाकरे तु 'अष्टधा करणं तत्र'–(४-१३२) इत्युक्त्वा अष्टविधमेव करणं प्रतिपादितम् । अत्र 'करणं नवधा तज्ज्ञैः' इत्यादिरूपेण करणस्य नवविधत्वे वर्णितेऽपि न तात्पर्यभेदो लक्ष्यते । यतो हि 'सङ्गीतरत्नाकरे' उक्तभेदेषु द्वितीयं पाटकरणं द्विविधं निरूपितम् । प्रथमं क्रमपूर्वं द्वितीयं व्यत्यासपूर्वम् । सङ्गीतसूर्योदयकारेण व्यत्यासपूर्वं करणं स्वतन्त्रभेदरूपेणाङ्गीकृतम् ।

तथा पदैरिहाभोगो यथापूर्वं ग्रहादयः ।
यद्येवं विद्यते तत्स्यात् करणं विरुदादिमम् ॥२१७॥

इति विरुदकरणम् [६]

स्वरैस्तत्र[२] किलोद्ग्राहस्ते[३]नकैर्ध्रुव[४]उच्यते ।
आभोगः स्याद्[य]थापूर्वं तथैव स्युर्ग्रहादयः ॥२१८॥
तत्तेनकरणं प्रोक्तमित्येवं य[६]न्निबध्यते ।

इति तेनकरणम् [७]

स्वरैश्च करपा[७]टैश्च स्यादुद्ग्राहस्ततः परम् ॥२१९॥
पाटै[८]श्च मुरजो[९]द्भूतैः पदैर्बद्धो ध्रु[१०]वो भवेत् ।
तथा पदैरिवाभोगः पूर्ववत्[११]स्युर्ग्रहादयः ॥२२०॥
यद्येवं क्रियते तत्स्यात्करणं[१२]चित्रपूर्वकम् ।

इति चित्र[१३]करणम् [८]

स्वरैश्च मिश्रपाटैश्च तेनै[रु]द्ग्रा[१४]हं उच्यते ॥२२१॥
ध्रुवस्तैरेव कर्तव्यः स्यादाभो[१५]गः पदैरथ ।
ग्रहादयस्तथैव स्युस्तन्मिश्रकरणं मतम् ॥२२२॥

※[इति मिश्रकरणम्–९]

※ चित्रमिश्रयोर्भेदस्तु 'सङ्गीतकलानिधौ' एवमुक्तः—तिलतण्डुलवदवयविसाङ्कर्यं चित्रत्वम् । क्षीरनीरवदवयवसाङ्कर्यं मिश्रत्वम् ।
—(सं० र० ४।१४०)

१. ०बद्धैरवा०
२. ०त्राहिणद्ग्रा०
३. तन्नखै०
४. ०वमु०
५. ०द
६. यन्न भिद्यते
७. ०वा०
८. ०टीरमु०
९. ०जोद्धतैः
१०. द्रुतो
११. स्याद् ध्रुवादयः
१२. तत्र पू०
१३. ०त्रपूर्वक०
१४. ०हमुच्य०
१५. ०गः पदैरधः

मेलापरस्वरसन्दर्भैर[1]तालत्वेन ताविह ।
[2]ढेङ्किकङ्कालतालाभ्यां विकल्पेन निबध्यते ॥२३१॥

विलम्बितलयस्तत्रो[3] [द्]ग्राहमेलापयोर्भवेत् ।
ततो ध्रुवै[4]स्त्रिखण्डः स्यात्तत्र [5]द्वे समधातुनी ॥२३२॥

[6]गाढमुच्चतरैः स्थानैर्गेयं खण्डं तृतीयकम् ।
पदैध्रुवः स्याद्[7] द्विर्गेयः सकृदाभोर्ग उच्यते ॥२३३॥

ध्रुवं गीत्वा ध्रुवस्यान्ते न्यासो यदि तदा बुधैः ।
ढे[8]ङ्कीति कथ्यते सा च चतुर्धा परिकीर्तिता ॥२३४॥
आद्या मुक्तावली वृ[10]न्तबन्धिनी [युग्मिनी तथा] ।
❀
वृत्तमालेति चैतासां ब्रूमहे लक्षणं क्रमात् ॥२३५॥
छन्दोहीनतया धातु[11]बद्धा मुक्तावली मता ।
वृत्तेनैकेन चाबद्धा सा भवेद् वृ[12]त्तबन्धि[13]नी ॥२३६॥
यदि वृत्तद्वयेनोक्ता युग्मिनी सा निगद्यते ।
बहुवृत्तनिब[14]द्धा या वृत्तमालेति कथ्यते ॥२३७॥

❀ इह पाण्डुलिपौ पंक्तित्रयमात्रं रिक्तं स्थानमुत्सृज्य "अत्र ग्रन्थपातः"- इति लिखितं वर्त्तते "युग्मिनो तथा" इति विहाय नाऽत्र विशेषो ग्रन्थपातः प्रतीयते ।

१. ०रेता०
२. ०डंकिकं का०
३. ०त्र
४. ०वं श्रीकण्ठः
५. द्विसमधातुभिः
६. भावमु०
७. ०त् स्वर्गीयस्स०
८. ०गमु०
९. डें०
१०. प्रोक्ता ब०
११. ०तु बन्धा
१२. ०द्रुत०
१३. ०दि०
१४. ०बोधा०

ध्रुवं गीत्वा न्यसेदन्ते तदा सा वर्तं[1]नी मता ।

॥ इति वर्तं[2]नी ॥

[झोम्बडः]

गीत्वो[3][द्]ग्राहस्य पूर्वार्धं द्विवारमवशेषितम् ॥२४५॥
अर्धं सकृद् गेयमस्मिन् [4]मेलापः स्यात्प्रयोगजः ।

क्वांचित्को[5]ऽत्र[6] स मेलापो भवेद् वा न भवेदथ ॥२४६॥
ध्रुवो[7] द्विवारं गेयः स्यादाभोगः सकृदुच्यते ।

कर्तव्योऽथ ध्रुवे[9] न्यासस्तालादिनियमं ब्रुवे ॥२४७॥
निस्सारु[10]कादिदशसु तालेष्वेकेन गीयते ।

निस्सारु[11]को गा[12]रुगिश्च रास[13]को यतिलं[14]ग्नकः ॥२४८॥
कु[15]डुक्कः प्रतिमण[16]ठश्च त्रिपुटो[17]ऽथ द्वितीयकः ।
अं[18]ड्डतालश्चै[19]कतालीत्येते ताला दशोदिताः ॥२४९॥
सामान्यझो[20]म्बडो यः स्यात्स द्विधा परिकीर्तितः ।
अतारजस्तारजश्चेत्येकधा[21] स्यादतारजः[22] ॥२५०॥

---

१. ०र्ति०
२. ०र्ति०
३. ०वा
४. ए०
५. ०व०
६. ०सास्त्रिसमे०
७. ०वा
८. ०या
९. ०वा०
१०. ०मङ्का०
११. ०मको
१२. चारुगश्च
१३. ०सुगो
१४. ०दिल०
१५. कन्धक०
१६. ०मन्ध०
१७. ०टाथ
१८. आर्ध०
१९. ०चे०
२०. ०हेम्बदो
२१. ०दा
२२. ०तः

एवं पंचप्रकारत्वं भूत्वाष्टादश ये भिदः ।
नवति[1]ः स्युः पुनस्ते तु प्रत्येकं [2]स्युस्त्रयोदश ॥२५९॥

विनियोगवशादेवं तद्भेदान् ब्रूमहेऽधुना ।
उपमा रूपकश्ले[3]षालङ्कारे ब्रह्मनामवान् ॥२६०॥

वीर रसे सु[4]भ्रुवां यश्चेष्टाभावैर्निबध्यते ।
त[5]दा तन्नाम विष्णुः स्याद् यदि वीरेण केवलम् ॥२६१॥

चक्रे[6]श्वरोऽथ बीभत्से रसे[7] स्याच्चण्डिकेश्वरः ।
अद्भुते नरसिंह[8]ः स्याद् भैरवः स्याद् भयानके ॥२६२॥

हास्यशृंगारयोर्हं[9]सः स्याद् भयानकवीरयोः ।
सिंहो भवेत्तत्र विप्रलम्भः शृंगारयोजितः ॥२६३॥

सारंग इति विज्ञेयः कृपाशृंगारयोर्यदि ।
निबध्यते शे[10]खराख्यः शृंगारे केवले यदि ॥२६४॥

क्रियते चेत्पुष्पशरः स्याद्रौद्रे निर्मितो यदि ।
तदा प्रच[11]ण्ड इत्युक्तश्शान्ते [12]नन्दीतिनामवान् ॥२६५॥

[पृथक्] त्रयोदशभिरे[13]वं नवतौ[14] गुण्यते यदि ।
भवेत्सहस्रं तदनु त्रिंशदूनं ततश्श[15]तम् ॥२६६॥

तत्तथा गद्यजाः पद्य[16]-सम्भवाश्चोभयात्मकाः ।
सार्धं सहस्रत्रितयं दशभिश्च समन्वितम् ॥२६७॥

१. ०ती
२. स्यात्०
३. ०चेषा०
४. प्रभूनां यैश्चे०
५. यदा
६. ०क्रस्वरो०
७. ०सः
८. ०हस्य भै०
९. ०र्वा
१०. सेकराख्य
११. ०पंच
१२. सन्देशनाम०
१३. ०र्येवं
१४. ०भिर्गं०
१५. ०चयम्
१६. ०द्या सं०

एतत्पदादित्रितयं विनाभोगैर्निगद्यते[1] ।
ध्रुवाभोगौ विहायाथो[2] द्ग्राहैर्बहुभिरन्वितः[3] ॥२७५॥
स विप्रलम्भो विज्ञेयो, लम्भाष्टकमितीरितम् ।

॥इति लम्भ[4]लक्षणम् ॥

॥रासकप्रबन्धः॥

झोम्बडो गमका[5]भावाद्रासतालेन यद्ययम् ॥२७६॥
गीयते चेत्तदा रासः सामान्यो[6]ऽयं निरूपितः ।
विशेषादथ वक्ष्यामो गणवर्णादिभेदतः ॥२७७॥
छ[7]गणेन युतो रासो रासव[8]लय उच्यते ।
प[9]गणेन युतो हंसतिलकः परिकीर्तितः ॥२७८॥
यदा च[10]गणसंब[11]द्धो रतिरङ्गो निगद्यते ।
तगणोत्थो[12]ऽत्र मदना[13]वतारः[14] कथ्यते बुधैः ॥२७९॥
एवं चतुर्विधं जातं, वर्णभेदानथ ब्रुवे ।
[15]षड्वर्णपा[16]दमारभ्य त्रिंशद्व[17]र्णाङ्घ्रिसंभवा[18]: ॥२८०॥

---

१. ०रनद्यते
२. ०धाया०
३. ०द्योग्राह्यैर्वं०
४. ०बाल०
५. ०नाभा०
६. ०यो यं
७. भ०
८. ०वल्लभ
९. र०
१०. च ग०
११. ०बन्धो
१२. ०थात्र
१३. ०मता०
१४. ०रं
१५. एषद्व०
१६. ०मुखा ग्रन्थ०
१७. ०ह्यर्णवद्यंघ्रि०
१८. ०वः

स त्रिधा तालभेदे स्यात्त्रिंशद्वर्णादिलक्षणैः ।
कर्णाटभाषया चायं कार्यो[२] वर्ण इतीरितः ॥२८६॥

॥इति [वर्ण]प्रबन्धः॥

[वर्णस्वरप्रबन्धः]

आदौ स्वरस्ततः पाटस्तदन्ते[३] पदैतेनकौ[४] ।
व्यक्तये यो[५]ऽवयवः स्यात्तेनादौ न्यास उच्यते ॥२८७॥
[६]वर्णस्वरः स सामान्यात् च[७]तुर्धाऽसौ निगद्यते ।
विन्यासः स्यात् स्व[८]रस्यादौ स एको [९]भेद उच्यते ॥२८८॥
एवं पाटादिषु ज्ञेयं चातुर्विध्यं मनीषिभिः ।
अत[१०]ः स्वरादिः पाटादिः प[११]दादिस्तेनकादिकः ॥२८९॥
इति चत्वार एवेति पर[१२]तो बहुधा विधिः ।

॥इति वर्णस्वरः॥

[गद्यप्रबन्धः]

गद्यं छ[१३]न्दस्तालहीनं सुप्तिङन्तकदम्बकम् ॥२९०॥
तत् षड्विधं स्यात्कलिका[१४] चूर्णं च ललितं तथा ।
वृ[१५]त्तगन्धि ततः खण्डं[१६] चित्रं चेति मुनेर्मतम् ॥२९१॥
उत्प[१७]त्तिस्थानमेतेषां सामवेदो[१८] निगद्यते ।
प्रथमं कलिका गेया वीरे रुद्रो[१९]ऽधिदेवता ॥२९२॥

---

१. ०ग०
२. ०र्यं
३. ०तः
४. ०रतेन्न०
५. सावयद्वः
६. स वर्णस्वरसामा०
७. पंचतर्वानि०
८. ०सरस्या०
९. भिध
१०. अन्यः
११. पादविस्तसिका०
१२. ०रि०
१३. चण्डस्ताल०
१४. ०कं
१५. नृत्तं गन्दि
१६. ०डश्चि०
१७. ०कृति
१८. ०दे
१९. ०द्रोधि०

यु[1]तं द्रुत–[विलम्ब]बा[2]भ्यां [3]सितवर्णात्मकं मतम् ।
घनस्वरास्सतालास्स्युर्गीयन्तेऽत्र तु [4]गातृभिः ॥३०२॥
[श्रृंगाररससंयुक्तं चित्रं स्याद् विष्णुदैवतम् ।
वैदर्भीकैशिकीयुक्तं लये मध्यविलम्बितम् ॥३०३॥
❀
आद्यं भेदत्रयं लैः स्याद् बहुलैर्विरलैः समैः ।]
[5]पृथक्शो लगभदेन लै[6]रेवस्याच्चतुर्थकम् ॥३०४॥
गैरे[7]वं पंचमं प्रोक्तं षष्ठं गलगलक्रमात् ।
मिश्रार्धानाद् भवन्त्येवं षट् प्रोक्ताः कलिंकादयः ॥३०५॥
ततः प्रबन्धनामाङ्कपदं स्यात्तालसंयुतम् ।
गीत्वा द्विवारं यत्पश्चात् प्रयोगो गीयते पुनः ॥३०६॥
तालयुक्तपदं[10] गेयं गातृनेतृनिजाख्यया ।
गेयं द्विवारमेतच्च [10]न्यासः स्यात् सप्तमे पदे ॥३०७॥
इति षड्भिः कृता वेणी[12] स्याच्चूर्णं[13] वृ[?]त्तगन्धिभिः ।
भण्य[14]ते चेत्तदा मिश्रमित्याहुर्भरतादयः ॥३०८॥

❀ उत्कलिकादिषड्गद्यभेदानां षड् गतयः संगीत-रत्नाकर निरूपिताः सन्ति—द्रुता विलम्बिता मध्या द्रुतमध्या तथा परा। गतिर्द्रुतविलम्बा स्यात् षष्ठी मध्यविलम्बिता इति गद्यस्य षट् प्रोक्ता गतयः पूर्वसूरिभिः ।
लघुभिर्बहुलैरल्पैः समैराद्यत्रयं क्रमात् ।
पृथग्लगत्वे, मिश्रैस्तु लगैस्तद्वत् परं त्रयम् ॥'
—इत्येवाभिप्राया सङ्गीतसूर्योदयकृद्विवक्षिताः सन्ति ।

१. नुतं
२. भाभ्या
३. चित्रव०
४. वादिभिः
५. गमकं मतभेदेन
६. तैरेव
७. ०नं
८. ०भाना०
९. ०ल०
१०. ०नं
११. सासः
१२. ०णा
१३. ०र्णैः कृतग०
१४. ०व्य०

तद्विदैर्विरुदैरेवोद्ग्राहस्तद्वद् ध्रुवो मतः ।
आभोगः स्यात् प्रबन्धादिनामभिः परिशोभितः ॥३१५॥
सा षड्विधेति गदिता[1] वासवी कलिका[2] तथा ।
[3]वृत्ता वीरवती वेदोत्तरा[4] जातिमतीति च ॥३१६॥
तालेनैकेन विरुदाष्टकै[5]: स्याद् वासवी मता ।
तालद्वयेन[6] विरुदाष्टकै[7]युग्मेन शोभिता ॥३१७॥
कलिका नाम संप्रोक्ता तालत्रयविभूषिता ।
द्वात्रिंशद्विरुदैर्युक्ता सा [8]वृत्तेति निगद्यते ॥३१८॥
तालैश्चतुर्भिर्द्व्यधिकैः पंचाशद् विरुदैर्युता ।
सा स्याद् [9]वीरवती तालैः पंचभिश्चतुरुत्तरैः ॥३१९॥
विरुदानां शतैस्तेन बद्धा वेदोत्तरा तथा ।
❀
ष[10]ठी जातिम[11]तीत्यत्र न तालविरुदात्मिका ॥३२०॥
[12]इत्यूचे षड्विधा[13]मङ्कचारिणी[14] करणाग्रणीः[15] ।

[इत्यङ्कचारिणी]

[कन्दप्रबन्धः]

क[16]न्दः कर्णाटलाटादिपद्यैः प्रत्येकवाचिकैः ॥३२१॥
पाटै[17]श्च विरुदैस्ताल-वर्जितः स्यादतः परम् ।

❀ अस्यां तालविरुदाश्रयो नियमो तास्तीति तात्पर्यम् । यथा—सङ्गीत-रत्नाकरे 'नियमो जातिमत्यां तु न तालविरुदाश्रयः' (४।२०३)

१. विजया
२. ०थिता
३. मृ०
४. ०ता
५. ०ठकैः
६. ०नद्व०
७. ०के यु०
८. मृत्तेति
९. ०त्रार परि
१०. ०ष्टि०
११. ०पतत्यत्र
१२. इति ष०
१३. ०धमुक्ताङ्कचा०
१४. ०णी
१५. ०णी
१६. कार्या
१७. ०दै०

[हयलीलाप्रबन्धः]

तालेन हयलीलेन हयलीला निगद्यते ।
सा[1] द्विधा पद्यजा[2] गद्यसंभवेति तयोर्द्वयोः ॥३३१॥

पद्ये जाता चतुर्धा[3] स्यादार्यालक्षणसंयुता ।
पूर्वार्धं तालयुक्तं स्यात् तथैका[4] हयलीलका ॥३३२॥

यद्युत्तरार्धं[8] तालेन युक्तमन्या निगद्यते ।
यद्यर्धे[5] द्वे तालयुते तृतीया सा निगद्यते ॥३३३॥

पूर्वार्धं[6] सस्वरैरत्र सतालैस्सरिगादिभिः ।
परार्धं[7] विरुदैर्बद्धं चतुर्थीति निरूपिता ॥३३४॥

पद्यजा[8] हयलीलेनच्छन्दसा च चतुर्विधा ।
पूर्वोक्तलक्षणे चैव छन्दोयोगैरभेदतः ॥३३५॥

अष्टधा[9] पद्यजा[तु][10] स्यादेकधा गद्यसम्भवा[11] ।
तासु पूर्वा[12]र्धमुद्ग्राहः परार्धं[13] ध्रुव[14] उच्यते ॥३३६॥

गातृनेतृप्रबन्धानां नाम्नाभोगो निगद्यते ।
आर्या[15] स्पष्टी[16] कृतैवात्र हयलीला तु कथ्यते ॥३३७॥

नजौ भजौ भजौ भश्च लगा[17]वित्येकपादजाः ।

---

१. तदिद्व०
२. गद्य चागद्य सं०
३. ०र्था
४. या०
५. ०र्थे द्विताल०
६. ०र्धमस्मरै०
७. पदैश्च वि
८. ०जाततय वीरेण छ०
९. इष्टदा
१०. त्यादेरेकथा
११. ०वाः
१२. ०र्थ०
१३. ०र्थं०
१४. ०वमु०
१५. ०र्या तु स्प०
१६. ०ट एवात्र
१७. गनावि०

शुद्धा[1], तयार्धया खण्डा द्विपदीति निगद्यते ।
द्वितीय-जगण-स्थाने गः[2] एकः क्रियते यदि ॥३४५॥

सा[3] मात्राद्विपदी प्रोक्ता प्रबन्धसुखदैः[4] बुधैः ।
शुद्धायां प्रतिपादान्ते गुरुरेकोऽधिको यदा ॥३४६॥

सम्पूर्णेति चतुर्धा स्या[च]तुर्धा पुनरप्यसौ ।
तासां क्रमेण नामानि मानवी[5], चन्द्रिका, धृति[6]ः ॥३४७॥

तारेति, तत्र मानव्यां[7] छगणः प्रथमस्तथा ।
वर्णा[8]त्मतगणद्वन्द्वं प्रतिपादे विधीयते ॥३४८॥

चन्द्रिकायां तु पं[10]गणौ वर्णाख्यस्तगणश्[11] च लः ।
गुररन्ते भवेदेवं प्रतिपादेन योजयेत् ॥३४९॥

[छे चत्रये धृतिस्तारा छे यचतुष्टये गुरौ ।]
अत्र पूर्वार्धमुद्ग्राहः परार्धं[12] ध्रुवउच्यते ॥३५०॥

[13]पृथक् पदैरिहाभोगो नामत्रयनिरूपितः[14] ।
स्वरयुक्ता यदि [15]यद्वा तदा †जात्यन्तरं भवेत् ॥३५१॥

॥ इति द्विपदी ॥

[चक्रवालप्रबन्धः]

---

† पदतालबद्धो द्व्यङ्गोऽयं प्रबन्धस्तारावलीजातिमान् यदा मतान्तरेण स्वरेणाऽपि बद्धः स्यात्तदा त्र्यङ्गत्वाद् भावनीजातिमान् भवेदित्यभिप्रायः ।

१. भवेद् यदा तदा खण्डा
२. गदीशः क्रि०
३. न सात्र द्विपदि प्रोक्ताः
४. ०दैः बु०
५. ०निनी
६. द्यु०
७. ०व्यां
८. ज०
९. वर्णखण्डगण०
१०. विगणः
११. ०णस्ततः
१२. ०र्ध ध्रुवमुच्य०
१३. पृथक् पृथक् स्वाभोगो
१४. ०ताः
१५. तदा

[स्वरार्थप्रबन्धः]

सरिगादिस्वरैर्यद्वा षोडशस्वरसंयुतैः ॥३५८॥
वाग्गेयकारवांछार्थ[1]श्चाटुकैर्यत्र बध्यते ।
स्वराख्योऽर्थप्रबन्धोऽसावुद्ग्राहन्यासवान् भवेत् ॥३५९॥
सोऽर्थत्वेन[2] द्विधा [स] स्यात् शुद्धो[3] मिश्र[4] इति क्रमात् ।
केवलस्वरसम्बन्धः शुद्ध इत्यभिधीयते ॥३६०॥
आकारादिस्वरैर्युक्तो मिश्र इत्युच्यते बुधैः ।
यद्वा[5] वर्णान्तरयुक्तः स च मिश्र[6] इतीरितः ॥३६१॥
इत्येवं नियमे[7] नैव स्यातामुद्ग्राहकध्रुवौ ।
आभोगस्तु पदैरन्यै[8]स्तस्य भेदानथ ब्रुवे ॥३६२॥
एकद्वित्रिचतुःपंचषट्सप्तस्वरसंख्यया ।
अर्थवत्वेन सप्त स्युर्भेदाः प्रत्येकमीरिताः ॥३६३॥

॥इति स्वरार्थः॥

[ध्वनिकुट्टनीप्रबन्धः]

उद्ग्राहध्रुवयोर्भिन्नतालौ[9] भिन्नलयान्वितौ[10] ।
स्यातां कङ्कालम[11]ण्ठाभ्यां व्यतिरिक्ता तथा मता ॥३६४॥
यति[12]: समासु मात्रासु स्यादाभोगः पदैर्भवेत् ।
अनेन लक्षणेनोक्ता[13] या सा स्याद् ध्वनिकुट्टनी ॥३६५॥

॥इति ध्वनिकुट्टनीप्रबन्धः॥

---

१. ०धचा०
२. ····हर्थत्वेन
३. ०चुद्धो
४. विश
५. यद्या वर्णान्त इत्युक्त०
६. ०त्र
७. ० मं नै०
८. ०य०
९. ०ला
१०. ०ता
११. ०माद्राद्यां
१२. ०ती
१३. ०त

लक्ष्मी[1]: स्याद् वृद्धि[2]बुद्धी च [ली]ला[3] लज्जा क्षमा[4] तथा।
दीर्घा[5] गौरी ततो राजी ज्योत्स्ना छाया[6] च कान्तिका ॥३७४॥

म[7]ही मतिस्ततः कीर्तिरथ ज्ञे[8]या मनोरमा।
स्याद्रो[9]हिणी विशाला च वसुधा शिवया[10] सह ॥३७५॥

हरिणी चा[11]थ चक्राख्या सरसी[12] कुररी[13] तथा।
हंसी [14]वधूरिति प्रोक्ता, आर्याषड्विंशति[15]: क्रमात् ॥३७६॥

॥ इत्यार्या ॥

[गाथा-प्रबन्धः]

आर्याथै[16] *पंचभिः पादैर्बद्धा[17] चेत् प्राकृतैः[18] पदैः।
गा[19]थेति वदन्त्यपरे षड्भिर्वा त्रिभिरंघ्रिभिः ॥३७७॥

॥ इति गाथा[20] ॥

---

* 'पञ्चभिः पादै' रिति सन्दर्भे सङ्गीतरत्नाकरोऽवलोकनीयः। यथा—

आर्यैव प्राकृते गेया स्यात् पञ्चचरणाथवा।
त्रिपदी षट्पदी गाथेत्यपरे सूरयो जगुः॥ (४।२३१)

पद्येऽस्मिन् 'पञ्चचरणाथवा' इति शब्दस्य स्थले सिंहभूपालः 'पञ्चचगणाथवा' इति पाठं मनुते। यतो हि तस्य सुधाकरटीकायाम्—'अथवा पञ्चचगणवती मात्रया सा कार्या' इत्युल्लेखो वर्त्तते।

१. ०या
२. ०द्धि बु०
३. लावज्ञा०
४. ०मात०
५. गालविका पंच
६. ०यापि च
७. महोवती त०
८. ज्ञे या
९. ०श्रौ०
१०. च शिता
११. वाधवक्रा स्यात्
१२. ०सीकु०
१३. ०रेरधा
१४. मधुरवी प्रो०
१५. ०ती
१६. ०त्र
१७. ०द्धाश्चे०
१८. ०तः
१९. गन्धारवेदीति परे
२०. ०धानि

बद्धश्चेद्[1] [दोहक] संज्ञस्स्याद्[2] बद्धः संस्कृते यदा ।
[3]संज्ञां विभाषया धत्ते [4]दोधकं द्विपथं क्रमात् ।।३८४।।

❀ मुक्तिरुद्ग्राहमूले स्याद् भेदया [?] स्वरहीनया ।
प्रत्येकमे[5]ते नवधा [भेदत्वं] यान्ति ते य[6]था ।।३८५।।

सारसो भ्रमरो हंसः कुरर[7]श्च ततः परम् ।
चन्द्रोलेख[8]ः कुञ्जरश्च [9]तिलको हंसपूर्वकः ।।३८६।।

[10]क्रीडः, शिखाद्विप[11]थंगस्तेषां लक्षणमुच्यते ।
*[त्रयोदशासमे मात्राः समे द्वादश सारसे ।।३८७।।

[12]भ्रमरे विषमे[13] मात्रा लघुवश्या[14]श्चतुर्दश ।
समे द्वादश एवात्र, ततो हंसो[15] निगद्यते ।।३८८।।

विषमे चरणे पंचदश मात्राः समे[16] तथा ।
त्रयोदश इति ज्ञेयास्ततः कुरर[17]संज्ञके ।।३८९।।

विषमे चरणे मात्रा[18]स्त्रयोदश समे पुनः ।
चतुर्द[19]श इति प्रोक्ताश्चन्द्रलेखाह्वये ततः ।।३९०।।

❀ पङ्क्तिरियं प्रसङ्गं विनैवाऽत्र लिखिता प्रतीयते ।

* पाठयोजनाधारः—
'त्रयोदशायुजि समे मात्रा द्वादश सारसे' (सं० र० ४।२३५)

१. ०तो
२. ०ज्ञा स्याद्यातं न च यदाश्रुतः
३. यदा सभाद्वि धत्ते
४. तोदकं द्विपदं क्र०
५. ०मेके च न०
६. कथम्
७. ०वश्च
८. ०रेखाकुण्डश्च
९. रिंकोहंसपू०
१०. क्रोडशीखा०
११. ०द०
१२. हरणे
१३. ०मो षामो
१४. ०यश्च
१५. ०स
१६. ०मेधिताः
१७. ०वसं०
१८. ०त्रा त्र०
१९. ०रन्त

पादान्ते[1] स्वरमुख्यैस्त्वं[2] यदा स[3] कलहंसकः ।
स द्विधा पद्यजो[4] गद्यसंभवश्चेति[5] कथ्यते ॥३९८॥

यदि वर्णगणेनोक्तः स पद्यज इति स्मृतः ।
यदि मात्रागणेनोक्तः[6] स गद्यज इति स्मृतः ॥३९९॥

[7]हंसच्छन्दसिजं[8] भावीत्येवं पादचतुष्टयम् ।
अत्र पूर्वार्धमुद्ग्राहः परार्धं तु ध्रुवो मतः ॥४००॥

आभोगस्तु यथापूर्वं नामभिः पदनिर्मितः ।

॥ इति कलहंसकः ॥

❀

[घटप्रबन्धः]

द्विपद्युक्तच्छन्दसास्मिन् यदर्धं[9] प्रथमं[10] भवेत् ॥४०१॥
उद्ग्राहो[11]ऽस्मिन् [12]पदैरेव परार्धं[13] तु घट[14]स्तदा ।

[इति घटप्रबन्धः]

[अथ वृत्तप्रबन्धः]

[15]वृत्तप्रबन्धस्तत्रास्य स्वराभावं विदुः परे ॥४०२॥

❀ कलहंसस्य निरूपणान्ते प्रसङ्गोपात्तस्तोटकप्रबन्धो नाऽत्र लक्षितः । "संगीतरत्नाकरे तु" 'तोटकच्छन्दसा न्यस्तस्वरोंऽघ्र्यन्ते तु तोटकः' (४।२४४) इत्यादिरूपेणासौ वर्णितः ।

१. ०नीताद्यौ
२. ०यःस्याद्यथा
३. सकलसापकः
४. ०जाग०
५. ०द्यस्सं
६. ०ता स्वग०
७. पंशोच्छ०
८. ०जा
९. य अर्थे
१०. ०मे
११. ०हे०
१२. ०नवैरेव
१३. ०र्थे
१४. पद०
१५. उक्तः

आभोगः संस्कृतैर्गे[1]यो देशतालसमन्वितः ।

॥ इति मातृकालक्षणम् ॥

[अथ रागकदम्बः]

द्विधा रागकदम्बः स्यान्नन्द्यावर्तस्ततः परम् ॥४११॥
स्वस्तिकश्चेति तत्राद्यो नन्द्यावर्त्तो निगद्यते ।
वृ[2]त्तैश्चतुर्भी रागैश्च ताले[3]श्च परिकल्पितः ॥४१२॥
यद्यल्पमात्रस्तालश्चेत्तदाऽऽवृत्तिर्द्वयं भवेत् ।
तालोऽस्ति बहुमात्रे[5]श्चेत् तथैकाऽऽवृत्तिरिष्यते ॥४१३॥
[6]मुक्तिरुद्ग्राहमूले स्याद् गद्यत्वं केचिदूचिरे ।

॥ इति रागकदम्बे नन्द्यावर्त्तभेदः ॥

अष्टभिः स्वस्तिको[7] भिन्न-तालरागयुतैः पदैः ।

॥ इति रागकदम्बे स्वस्तिक[8]भेदः ॥

तथैव षोडशपदैरब्जपत्रं विदुर्बुधाः ।

॥ इति रागकदम्बे[9]ऽब्जपत्रभेदः ॥

द्विषोडशपदैस्ताले[10]रागयुक्तैर्य इष्यते ॥४१५॥
भ्रमरा[11]ख्यस्तु विज्ञेयः—

॥ इति रागकदम्बे भ्रमरभेदः ॥

चतुष्षष्टिपदैस्तथा ।
तालरागयुतैर्बद्धस्सो[12]ऽब्जगर्भो निगद्यते ॥४१६॥

[॥ इति रागकदम्बे][13]ऽब्जगर्भभेदः ॥

---

१. ०ज्ञेयो
२. द्रुतैश्चतुर्भि
३. ०लैः बुधैः प०
४. ०द्वयोर्भ०
५. ०त्रास्ति तथैतावृ०
६. ज्ञति
७. ०दो भिन्नं ता
८. ०काभे०
९. ०बे अब्ज०
१०. ०लारा०
११. ०रस्य
१२. स्सोदर्भोति
१३. अब्जकदम्ब भेदः

[पंचतालेश्वरप्रबन्धः]

पंचताले[1]श्वरो गेयस्तालैश्चाचपुटादिभिः ॥४१८॥
मार्गतालैरथ पदैस्सप्तविंशतिभिस्तथा ।
आदा[2]वतालालापः स्या[द्] द्वि[3]रयुक्तं ततः परम् ॥४१९॥
चंचत्पुटेन तालेन गातव्यं पदपंचकम् ।
तत्र पूर्वोक्तनियमं वक्ति विट्ठलनन्दनः ॥४२०॥
पदमादौ स्वरः पश्चात्ततः पाट[4]क्रमादिति ।
गीत्वा पदानि चत्वारि पंचमे[5] तु पदेऽन्तिमे ॥४२१॥
स्वरस्थाने [तु पाटः स्यात् पाटस्थाने] स्वरो मतः ।
ततः परं त्व[6]न्तराख्यः पाटैः पटहसंभवै[7]ः ॥४२२॥
विलम्बान्यलयेनैव [8]द्विश्चंचत्पुटमानतः ।
गेय[9]ः स्याद् धातु[मातु] भ्यामपुनर्वचनं यथा ॥४२३॥
इत्युक्तपंचकं गेयं द्विवारं गीतवेदिभिः ।
एवं चा[10]चपुटे पंच[पदे] तत्रान्तिमे[11]ऽन्तरे ॥४२४॥
हौडु[12]क्क-सम्भवाः पाटाः प्रयोज्याः पाटवेदिभिः ।
षट्पि[13]तापुत्रकेणैवं गातव्यं पदपंचकम् ॥४२५॥
तत्रान्तराह्वया[14]ः पाटाः शं[15]खवाद्यसमुद्भवाः ।
[संपक्वेष्टाक]ताले तु पदषट्कं विधीयते ॥४२६॥

---

१. ०लस्वरो
२. ०मो०
३. द्वययुक्तस्ततः
४. ०ठ०
५. ०मेति पदं त्विमे
६. त्युत्तराख्यवादी प०
७. ०वः
८. द्वीपंचत्पु०
९. ०या स्युर्धा०
१०. पञ्चघटे
११. ०मेतरे
१२. दुःखसम्भवा पाट प्रयोज्यः
१३. ०पता०
१४. ०यः पाटे
१५. शंखावापनमुद्भवा

अग्निष्टो[1]मादियज्ञानां स्नानस्य[2] स्वर्णदीमुखे ।

॥इति पंचतालेश्वरो नाम महान् प्रबन्धः॥

[तालार्णवः]

तालैश्च बहुभिर्यु[3]क्तस्तालार्णव इतीरितः ॥४३४॥
स[4] द्विविधो गद्यपद्यसंभवश्चेति सूरिभिः ।

॥इति तालार्णवः॥

॥इत्यालि[5]क्रम[प्र]बन्धः॥

[विप्रकीर्णप्रबन्धनिरूपणम्]

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च रा[6]गैस्तालैः षडंगवान् ॥४३५॥
पदान्तत्वेन सम्ब[7]द्धः [श्रीरं][8]गोऽत्र निगद्यते ।
अत्रोद्ग्राहादयस्तज्ज्ञैः कल्पनीया[9]ः स्वरागतः ॥४३६॥

॥इति श्रीरंगः॥

स्वरे स्वरे पदान्तै[10]ः स्याद्रागैस्तालैश्च पंचभिः ।
श्रीविलासस्समुद्ग्राह्यो[11] ध्रुवाभोगौ तु पूर्ववत् ॥४३७॥

॥इति श्रीविलासः॥

पंचभंगि[12]स्तु तालाभ्यां रागाभ्यामन्त्यतेनकः ।
पा[13]टान्तिमः स एवात्र पंचानन इति स्मृतः ॥४३८॥

---

१. ०ठोमा०
२. ०य वर्ण०
३. ०मुक्ता०
४. तद्द्विधा ग०
५. ०शि०
६. गार्ग्यस्तालष०
७. ०बन्धः
८. ०गानि नि०
९. ०यः
१०. ०तस्यान्तरे ता०
११. ह्यमुद्राभोगस्तु
१२. ०गा०
१३. वादन्तिनः

विषमे स्युः पंचदश मात्रा[1]ः कर्णाटभाषया ।
यदा स्वराद्यं[2] पूर्वार्धं परार्धं [3]तेनकान्वितम् ॥४४६॥
पूर्वार्धमपरार्धं च भिन्नार्थं[4]यमकान्वितम् ।
तत्र पूर्वार्धमुद्ग्राहः परार्धं [5]ध्रुव उच्यते ॥४४७॥
आभोगस्तु प्रबन्धादिनामभिः कलितो भवेत् ।

॥ इति चतुष्पदी ॥

[षट्पदीप्रबन्धः]

षड्भिः पदैः षट्पदी स्यात्तत्र पादेषु षट्सु च ॥४४८॥
द्वौ द्वौ का[6]मगणौ कार्यौ तत्र [7]षष्ठ-तृतीययोः ।
अन्ते बा[8]णगणः कार्यो[9] द्वावेतौ त्रिगणौ मतौ ॥४४९॥
न्यासः[10] स्थायि[11]स्वरे कार्यस्त[12]त्रोद्ग्राहस्तु पादतः ।
ध्रुवस्तत्र त्रिपादोत्थो गेयः कर्णाट[13]भाषया ॥४५०॥
स्वराः स्युः प्रतिपादान्ते परान्ते समता यथा ।
ततः परमाभोगस्स्यान्नामत्रयविराजितः[14] ॥४५१॥

[इति षट्पदी]

[वस्तुप्रबन्धः]

वस्तुप्रबन्धे पंच[15] स्युः [16]पादास्तत्रादिमः पुनः ।
तृतीयः पंचमः पंच[17]दशमात्रात्मको मतः ॥४५२॥

---

१. ०त्रावणश्चि भा०
२. ०द्याः
३. वदतेन्नकम्
४. ०र्धं
५. पदमुच्यते
६. नाम०
७. षट्-तृतीयोः
८. वा णग०
९. ०र्यः त्रिनतौ
१०. ०स०
११. ०यीस्वरे
१२. ०र्यःत०
१३. ०ट भा०
१४. ०तम्
१५. ०चा
१६. परास्त०
१७. ०च द०

पदै[1]र्नामभिराभोगो यथापूर्वं नियोजयेत् ।

[इति त्रिपथ[2]ः]

[चतुर्मुखप्रबन्धः]

चत्वार एव पादाः स्युः प्रबन्धे तु चतुर्मुखे ॥४५८॥
स्वराः स्युः स्थायिवर्णेन पाटा[3]स्त्वारोहिवर्णजाः ।
पदं तत्रावरोह्यं[4] स्यात्संचार्य[5]स्तेनको मतः ॥४५९॥
पूर्वांघ्रिद्वयमुद्ग्राहपदं पादद्वयं तथा ।
ध्रुवो भवेत्पु[नर्न्यास उद्ग्रा]हादौ समाचरेत् ॥४६०॥
ततः परं स्यादाभोगः पूर्ववत्परिकल्पितः ।

॥इति चतुर्मुखप्रबन्धः ॥

[सिंहलीलप्रबन्धः]

आदौ स्वरस्ततः पाटो[6] विरुदस्ते[7]नकस्ततः ॥४६१॥
सिंहलीलेन[8] तालेन [9]गीयन्ते चेत्तदा[10]दिमौ ।
स्वरपाटा[11]विहोद्ग्राहौ ध्रुवौ[12] विरुदतेनकौ ॥४६२॥
स्वरे न्यासो[13] भवेदत्रा[14]भोगोऽ[15]थ [स्यात्] पदे[16] स्थितः ।

॥इति सिं[17]हलीलः॥

[हंसलीलः]

पादेन प्रथमोऽङ्घ्रिः स्याद्द्वितीयः पाटसम्भवः ॥४६३॥

---

१. ०दाना०
२. ०दः
३. ०स्यारो०
४. ०ह्यः
५. ०र्या तेन्नको
६. ०टः गुरुदः०
७. ०स्तबकस्ततः
८. ०हां जलेन
९. नी०
१०. ०दा विमौ
११. ०टोदिहोद्ग्रामौ
१२. ०वो बिरुदतेन्नकौ
१३. ०से
१४. ०त्र भो०
१५. ०पह
१६. ०रे
१७. ०हादितः

अत्र क्रीडाह्वयस्तालः प्रयोक्तव्यो मनीषिभिः ।

॥इति झ[1]म्पटः॥

[कन्दुकप्रबन्धः]

गाथा[2]भेदः कन्दु[3]कोऽयं पादै[4]त्रयसमन्वितः ॥४६९॥

पदैः पाटै[5]श्च विरुदैरुद्ग्राहश्चरणद्वयम् ।

[6]तृतीयाङ्घ्रिध्रुवस्तत्राभोगो न्यासश्च पूर्ववत् ॥४७०॥

॥इति क[7]न्दुकः॥

[त्रिभङ्गिप्रबन्धः]

स्वरैः पाटैः[8] पदैर्गीत[9]स्त्रिभंगिरिति कथ्यते ।

स पंचधा भवेत्तत्र क्रमाल्लक्षणमुच्यते ॥४७१॥

एक[10]स्त्रिभंगितालेन, त्रिभंगि[11]च्छन्दसा परे[12]ः ।

त्रिभि[13]स्तालैस्त्रिभी[14] रागैस्तदन्यः परिकीर्तितः ॥४७२॥

त्रिभिश्[15]छन्दोभिरेकस्त्रिदे[16] वस्तुतियुतोऽपरः ।

न्यासोद्ग्राहादि [कं सर्वं] यथायोगं विधीयते ॥४७३॥

॥इति त्रिभंगिः॥

[हरलीलप्रबन्धः]

आदौ हरविलासः स्यात्पदं[17] च बिरुदं[18] ततः ।

पाट[19]स्तदनु [20]तेनः स्यात्तत्रोद्ग्राहः पदात्मकः ॥४७४॥

---

१. झोम्पकः
२. ०धा०
३. ०तुको०
४. ०त्त्रय०
५. ०दैश्च
६. तत्तृतीयांघ्रयस्तत्रा भो०
७. दण्डकः
८. ०दैः
९. ०तं त्रि०
१०. ०कत्रि०
११. ०गिछ०
१२. ०रम्
१३. ०भिः तारैः
१४. ०भिः रागैः सदस्यः
१५. ०स्सन्दोभिरेकस्स्यात्त्रि०
१६. ०वेदस्तु ततः स्वरः
१७. ०रं न बि०
१८. ०दस्ततः
१९. ०द०
२०. तेन्नः

[हर्षवर्धनप्रबन्धः]

हर्षवर्धनसंज्ञः स्यात् स्वरैश्च विरुदैः पदै ॥४८०॥
तेने[1]कन्यासमुख्याः स्युः पूर्ववत्सांप्रदायिकाः ।

॥ इति हर्षवर्धनः ॥

[वदनप्रबन्धः]

वँ[2]दनं त्रिविधं ज्ञेयं मात्रागणविभेदतः ॥४८१॥
अन्तरं [3]चोपवदनं [वदनं] वस्तुपूर्वकम् ।
तत्रान्तरं पदं गेयं छँ[4]पयुग्मेन [5]देन च ॥४८२॥
स्वैर्गणैः स्वरपाटैश्च तत्रोद्ग्राहः पदं मतम् ।
ध्रुवः स्यात् पद[6]पाटाभ्यां न्यासाँ[7]भोगादयस्तथा ॥४८३॥

॥इत्यन्तरवदनम् (वदनम् ?) ॥

तत्रोपवदनं गेयं गणै[8]श्छचदतैर्युतम् ।

[उपवदनम्]

त[द् वस्तुवदनं] प्रो[9]क्तं [छयुग्म][10]दँचतक्रमात् ॥४८४॥

[इति वस्तुवदनम्]

॥इति त्रिविधं वदनम्॥

[चच्चरीप्रबधः]

तालेन चच्चरीनाम्ना तेनेत्थं छन्दसा[11] यदि ।
गीयते चच्चरी [सैषा त्वनु]प्रासांघ्रियुग्मतः ॥४८५॥

---

१. ०न्नक्ये
२. प०
३. योप०
४. चम्प०
५. वेनजा
६. ०र०
७. ०सं भो०
८. ०णैश्चात्र पदैर्युतः
९. तद्वद्वा····
१०. ····द्विजित्क०
११. ०सां

❀।।इति पद्धतिः [पद्धडो]।।

[राहडीप्रबन्धः]

राहडी[1] बहुपादा[2]ढ्यो महाहवश्रुता[3] ततः ।
सा[4] स्याद् वीरसाविष्टा पदैश्च बिरुदैर्युता ।।४९३।।
तथो[5]द्ग्राहध्रुवौ स्यातां [पाद]गौ[6] परिकल्पितौ[7] ।
आभोगस्तु पदैर्गेयो न्यासः[8] स्वेच्छापदात्मकः[9] ।।४९४।।

।।इति राहडी।।

[वीरश्रीप्रबन्धः]

स वीरश्री[10]र्भवत्यत्र पदैश्च बिरुदैर्यदि ।
उद्ग्राहादिविभागेन गीयते चेन्मनीषिभिः ।।४९५।।

।।इति वीरश्रीः[11]।।

[मंगलाचारप्रबन्धः]

गद्येन वाऽथ पद्येन गद्यपद्ये[12] [न वा य[दि ।
पदमुक्त्वा[13] स्वरो गेयो नो चेत्पादद्वयान्तरे ।।४९६।।
शुद्धपंचमभाषाया[14]ः कैशिक्या गे[यता] भवेत् ।
निस्सारुनाम्ना तालेन तथो[15]द्ग्राहे पदस्वरौ ।।४९७।।

❀ संगीतरत्नाकरे "पद्धडी"ति वर्त्तते प्रायः संगीतसूर्योदयकारस्तु पारिभाषिकापभ्रंशशब्दानपि संस्कर्तुं प्रयतते ।

१. लाक्षादिबहु०
२. ०द्याढ्यौ
३. ०तस्ततः
४. सास्या०
५. ०तो०
६. ०गे
७. ०ते
८. ०सा
९. ०स्वरात्मका
१०. ०स्त्री भ०
११. ०स्त्री
१२. ०द्य ...
१३. ०वाप्सरो
१४. ०या कैशिक्या ग....
१५. ०तोद्ग्राह०

विक्रमे धवले त्वष्टौ पादास्तत्र क्रमं ब्रुवे ।
पादे स्युः प्रथमे तुर्ये पंचमे च पृथक् पृथक् ॥५०४॥
चत्रयाद् दगणं कुर्यादथवा विपरीततः ।
द्वितीयांघ्रौ, तृतोयाघ्रौ सप्तमेऽघ्रौ तु दत्रयम् ॥५०५॥
चत्वारो [दगणाः षष्ठा]ष्टमयोस्तु पृथक् पृथक् ।
चत्वारश्चरणाः कार्या, नियमं वच्मि तत्र तु ॥५०६॥
धवलादिपदैरा [शीर्वचो] युक्तैस्सुमंगलैः ।
अत्र पूर्वार्धमुद्ग्राहः परार्धं [ध्रु] वं उच्यते ॥५०७॥
❀{...वं...योता...करो धवलो क्वध ?...।
प्रथमे चरणे तत्र लत्रयं चलगौ मतौ ।...॥५०८॥
तदा तृतीयपादाभ्यां द्विवारं नीयते ततः ।
तृतीय पादे...भानत्रये जलगौ क्रमात् ॥५०९॥
श्रीकान्ते मपदन्यासप्लुतकालां स्वरः ।
एवं तार्किकविख्यातो धवलः परिकीर्तितः ॥५१०॥
केचित् तृतीय-पादे च गणभेदान् वदन्ति च ।}

॥इति धवलः॥

[मंगलप्रबन्धः]

छन्दसा मंगलाख्येन पदैर्मंगलवाचकैः ॥५११॥
विलम्बितेन मानेन तालेन ललितेन च ।
गेयं मंगलकैशिक्यां बोट्ट[टरागेऽथ] वा भवेत् ॥५१२॥

❀ कोष्ठकान्तर्गतो भागः खण्डितप्रायोऽतो न कोऽप्याशयः प्रतीयते ।

१. त्वेव
२. तत्रया धगणं
३. ०धवद्विप०
४. पदत्र०
५. चगस्याः....
६. ....वयुक्तै०
७. वमुच्य०
८. ०ळः
९. ०ळः
१०. ०सं
११. ०ळ०
१२. ०ट....

[अथ दन्तीप्रबन्धः]

अनुप्रासयुतं प्रायः खण्डत्रयविराजितम्[1] ।
प्रान्ते दन्तिपदा[द्व्यं]चेत्तद्दन्तीति निगद्यते ।।५१८।।

[इति दन्ती]

अनुक्ता[2]भो[ग]वस्तूनां [पदैरा] भो [ग-कल्पना]
[ओव्या]द[3]यस्तु चत्वारो भ[4]वन्त्याभोगर्जिता[5]ः ।।५१९।।

[इति षट्त्रिंशद्विप्रकीर्ण[प्र]बन्धाः।।

[सालगसूडप्रबन्धनिरूपणम्]

शुद्ध[6]श्छाया [लगश्चेति द्विधा सूड]क्रमो भवेत् ।
[शुद्धः स यस्तु नियममनति]क्रम्य वर्त्तते ।।५२०।।
[तस्यैव विधिभङ्गेनाथच[छायात्वं प्रयाति य[7]ः ।
स छायालगश[ब्देन] प्रोच्यते भरतादिभिः ।।५२१।।
एलाद्यष्टौ[8] शुद्धिमन्तः प्रबन्धाः स्यु[9]स्ततः परम् ।
ध्रुवा[10]दयस्तु ते[सप्त साल]गा[11] इति सूरिभिः ।।५२२।।
कथ्यन्तेऽथ त्रयोवर्णान्[?]शुद्धानुक्त्वा ततः परम् ।
सा[12]लगस्थानि गीतानि तत्र नामान्यथ ब्रुवे ।।५२३।।
अत्रा[13]द्यस्तु ध्रुवो ज्ञेयो [14]मण्ठोऽथ प्रति[15]मण्ठकः ।
निस्सारुको[16]ऽड्डतालश्च रास[17]कश्चैकतालिका ।।५२४।।

---

१. ०ता ।
२. ०का भो····
३. ····स्वयं तु
४. मेलासाभो०
५. ०ता
६. ०द्धछा०
७. वा
८. ष्टा शुद्धमाला प्र०
९. ०यु त०
१०. ०दि तु तानि
११. ····गाविति
१२. तालस्थाने च गी०
१३. ०न्य०
१४. मतोथ
१५. ०मठ्ठ०
१६. ०को थ ता०
१७. ०का०

कामो[1]दो विजयाख्यश्च कदर्प[2]-जयमंगलौ ।
तिलको ललितश्चेति संज्ञास्तेषां क्रमादिमाः ॥५३३॥

एकादशाक्षरै[3]ः खण्डैरादितालेन गीयते ।
जयन्त[4]ः स्यात्स शृंगारे[5] श्रोतृनेतृसुखप्रदः ॥५३४॥

इति जयन्तः [१]

द्वादशाक्षरजैः पादैः गेयो[6] निस्सारुणा[7] यदा ।
शेखरस्स तु विज्ञेयो विप्र(वीरे)सौभाग्यवृद्धिदः ॥५३५॥

इति शेखरः [२]

त्रयोदशाक्षरैः खण्डैः प्रतिमण्ठेन गीयते ।
हास्ये त्रासे स उत्साहो[9] वंशवृद्धिकरो मतः ॥५३६॥

[इत्युत्साहः-३]

*[चतुर्दशाक्षरैः खण्डैर्मधुरो हयलीलला ।
सर्वभोगप्रदो विज्ञैर्गीयते करुणे रसे ॥५३७॥

[इति मधुरः–४]

पञ्चदशाक्षरैः खण्डैः क्रीडातालेन भूषितः ।
शृंगारे तनुते चासौ निर्मलो निर्मलप्रभाम् ॥५३८॥]

[10]इति निर्मलः [५]

---

* 'संङ्गीतरत्नाकरे' मधुरनिर्मलौ एवं लक्षितौ स्तः—
मधुरो भोगदो गेयः करुणे हयलीलया ।
क्रीडातालेन शृङ्गारे निर्मलस्तनुते प्रभाम् ॥ (४।३२३)

१. ०मदो
२. ०र्पो ज०
३. ०रा०
४. ०तन्या०
५. ०देः
६. ०या
७. ०रणा
८. ०म तेन
९. ०हे
१०. इति निर्मिता

कामो[1]दः कामफलदः श्रोतृणामपि शीघ्रतः ।

[इति कामोदः–११]

द्वाविंशत्यक्षरैः खण्डैर्हास्ये ताले द्वितीयके ॥५४५॥

विजयो[2] नेतृगातृणामायुः श्रीवर्धनो मतः ।

इति विजयः [१२]

त्रयोविंशतिवर्णाढ्ये खण्डे स्यादादिताल्तः ॥५४६॥

हास्यशृंगारयोर्गेयः करुणे च यथा[3]र्थतः ।

स कन्दर्पः सर्व[4]भोगसुखदस्सिद्धिसंमतः ॥५४७॥

इति कन्दर्पः [१३]

चतुर्विंशत्यक्षराढ्यैः क्रीडाताल्तेन खण्डकैः ॥

शृंगारवीरयोर्गेयो जयमंगलसंज्ञकः ॥५४८॥

महारणे जयोत्साहसुखदः स्यान्न संशयः ।

इति जयमंगलः [१४]

एकताल्या पंचविंशत्यक्षरैः खण्डकैर्यदि ॥५४९॥

स्याच्छृंगारे च वीरे च बद्धस्स तिलकः[5] स्मृतः ।

[इति तिलकः–१५]

प्रतिम[6]ण्ठेन खण्डैर्यषड्विंशत्यक्षरात्मकैः ॥५५०॥

शृंगारे ललितो गेयः सर्वकर्मफलप्रदः ।

इति ललितः [१६]

❀

जयन्ताद्यैर्मन्त्रसि[7]द्धिं सर्वकर्मफलप्रदा[8]म् ॥५५१॥

❀ संगीतरत्नाकरे "कर्म" इतिस्थाने "क्रतु" इति पाठो वर्त्तते ।

१. ०मार्थः
२. ०या
३. ०था रसः
४. ०र्पभो०
५. ०क स्मृ०
६. ०मत्वेन
७. ०सिद्धः
८. ०दः

इति वल्लभः [४]

कलोपस्तु[1] विरामान्ते[2] नोच्यते नगणेन सः ।
[3]गूढहास्यरसे नाटकादौ नाट्यविशारदैः ॥५५९॥

इति कलापः [५]

झम्पातालेन कमलो गेयस्स्याददद्भुते रसे ।

इति कमलः [६]

[प्रतिमण्ठः]

तत्र साधारणं लक्ष्म म[4]ण्ठवत् प्रतिम[5]ण्ठके ॥५६०॥
उद्ग्राहादि[6] ततः किंचिद्विशेषमधुनोच्यते ।
प्रतिम[7]ण्ठेन तालेन प्रतिम[8]ण्ठ इतीरितः ॥५६१॥
स चतुर्धा[9] भवेदे[10]वममरस्तार एव च ।
विचारः कुन्द[11] इत्येवं तेषां लक्षणमुच्यते ॥५६२॥
अम[12]रस्तु रसे वीरे गुरुणैकेन गीयते ।

इत्यमरः [१]

तारो[13] विरामान्तबिन्दुद्वयान्ते[14] लघुयुग्मके ॥५६३॥
गातव्यः प्रतिबद्धोऽथ वीररौद्ररसाश्रयः ।

[15]इति तारः [२]

विरामा[16]न्तलत्रयेण विचारः करुणे[17] भवेत् ॥५६४॥

---

१. ०लातान वि०
२. ०ते नो०
३. गूढा हा०
४. ०न्द०
५. ०मट्ठ०
६. ०दित०
७. ०मट्ठेन
८. ०मट्ठ
९. ०र्था
१०. ०दग्रं नमरस्तार
११. ०ण्ड
१२. ०मा०
१३. ०लो
१४. ०न्तलं०
१५. इति प्रतिमट्टतालः
१६. ०न्तेन तेनागौ वि०
१७. ०णो

इति वांछितः [५]

विशालैः सुरते गेयो लध्वोर्मध्यद्रुतद्वयात् [1][2] ।।५७०।।

इति विशालैः [3] [६]

।। इति षड्विधो निस्सारुकः ।।

[अड्डतालप्रबन्धः]

अडतालेनाड्डतालो [4] गीयते स तु [5] षड्विधः ।

निश्शंकशंकशीलाश्च [6] चारश्च मकरन्दकः ।।५७१।।

विजयो [7] ऽथ समाख्यातास्तेषां लक्षणमुच्यते ।

क्रमाल्लगाभ्यां बिन्दुभ्यां निश्शंको विस्मये [8] भवेत्।।५७२।।

इति निश्शंकः [१]

शंकैः [9] स्याल्लो द्रुताभ्यां च गेयश्शृंगार-वीरयोः ।

इति शंकैः [10] [२]

झम्पातालेन शी [11] लोऽसौ रसे शान्ते [12] नियुज्यते ।।५७३।।

इति शील: [३]

*द्रुतद्वयां [13] ल्लगाभ्यां स्याच्चारो वीररसेऽद्भुते ।

इति चारः [४]

दद्वयों [14] द् गुरुणैकेन शृंगारे मकरन्दकः ।।५७४।।

---

* पाठसंशोधनाधारः—'द्रुतद्वन्द्वाल्लगाभ्यां स्याच्चारो वीरेऽद्भुते रसे' —(सं० र० ४।३५१)

१. ०लसु०
२. लघोर्म०
३. ०लतालः
४. अट्ट
५. चतुर्विधः
६. ०लीलोथ
७. ०येति
८. ०यो
९. ०खस्यालद्रु०
१०. ०खः
११. ली०
१२. ०तिर्नि०
१३. ०यालद्वयेन चा०
१०. ०याकरु०

[एत्येकतालीप्रबन्धः]

[एकताल्याख्यतालेनाऽथैकताली निरूप्यते ।
त्रिविधा सा रमा तद्वच्चन्द्रिका विपुलाभिधा ॥५७९॥]

लक्षणं[1] ब्रूमहे यत्रोद्ग्राहो[2] *द्वियतिसंभवः ।
ततः पदे[3]नान्तरः स्याद्रमा[4] सौभाग्यदा द्वयोः‡ ॥५८०॥

इति रमा[5] [१]

नीत्वोद्ग्राहं द्विखण्डत्वादालापेना[6]न्तरो भवेत् ।
बहुभिर्यतिभिर्बद्धा[7] घनानुप्रासभूषिता ॥५८१॥

सा चन्द्रिकेति कथिता द्रुतगत्या विराजिता ।
मनोऽनुतापशमनी सर्वसौभाग्यदायिनी ॥५८२॥

इति चन्द्रिका [२]

आला[8]पानन्तरोद्ग्राहो यत्रा[9]सौ विपु[10]ला मता ।

इति विपु[11]ला [३]

॥इत्येकतालीप्रबन्धः॥

॥इति सालगसूडप्रबन्धाः॥

---

* 'यस्यां यतिद्वयोक्त उद्ग्राहः सकृद् गीयते, ततोऽनन्तरमक्षररचितोऽन्तरः, सा रमा' (सं० र० ४।३५७ सुधाकरटीका)।

‡ गातृश्रोत्रोरित्यर्थः। यथा—सङ्गीतरत्नाकरे 'गातृश्रोत्रोः श्रिये भवेत्'-(४।३५८)।

१. यस्यालापोक्षणं ब्रू०
२. ०हे द्वितीयसं०
३. ०द्ये तत्तरं स्या०
४. ०मासौभाग्यदो
५. ०यः
६. ०नाम्बरं
७. ०ध०
८. ०पस्तरनूद्०
९. यस्यासौ
१०. प्रला
११. ०प्रलापः

द्विधान्तिमं रूपकं [क]ल्पोत्तरश्चानुसारकः[1] ।
पूर्वरूपकसंयुक्तस्थायस्थानान्तरे यदि ॥५८९॥
यदा[2] मात्वन्तरत्वेन तदा[3] कल्पोत्तरो मतः ।

॥इति *कल्पोत्तरः॥

किंचिल्लक्षणहीनः स्यादत्रपूर्वोक्तरूपके ॥५९०॥
रागेण वाथ तालेनानुसारो मातुं[4]भेदतः ।

॥इत्यनुसारकः[5]॥

॥इति पंचविधरूपकम्॥

[अथ तौरुष्कदेशीय-प्रबन्धाः]

अथ तौरुष्कदेशोत्थप्रबन्धान् कतिचिद् ब्रुवे ॥५९१॥
खराशनः पार्श्वजश्च मूलत्राणोऽथ लाटकः ।
अवशीयो[6] घनश्चेति जातयष्षडथोत्थिताः[7] ॥५९२॥
तस्मात्तद्देशजान्याहुर्गीतान्यत्र[8] पुरातनाः ।
मदाविष्टरसानीति[9] लक्षणानि पृथक् पृथक् ॥५९३॥
गजलुः [10]कौलुः [हस]क[11]ः प्रतितालश्च मंजरी ।
झंकरी, दे[12]शजानीति [13]क्रमाल्लक्षणमुच्यते ॥५९४॥
खरव[14]द् यः समश्ना[15]ति स जनस्स्यात्[16] खराशनः ।
तद्देश[17]जंगीतनामा गजलुः परिकीर्तित[18]ः ॥५९५॥

---

* 'सङ्गीतरत्नाकरे' खल्लोतारनाम्ना वर्णितोऽयं रूपक-भेदः (४।३७२) ।

1. ०रं चानुसारतः
2. याद्विधात्व०
3. ०था
4. ०तृ०
5. ०तः
6. ०य०
7. ०षण्णथो०
8. ०तास्वत्र
9. ०नि०
10. ०कालु····
11. कूपदिता०
12. तेषु जे जेति
13. तेषां क्र०
14. ०पद्यस्स
15. ०चादि
16. ०द् वरा०
17. ०जं गी०
18. ०ता

न्यासस्तदा[1] वृत्तिरत्र भारती त्वायुधः करः ।
नर्तयेत्पात्रमिथुनं मध्यमानेन धीमता ॥६०३॥

आभोगनर्तने पुष्पस्तबका[2]युधगौ करौ ।

इति गौलुः [कौलुः ?]

[हसकम्]

※[3]मूलत्राणसमुद्भूतभाषाधातुर्ह[4]सस्त्विति ॥६०४॥
स्नेहो[5] रागो[6] भवेदत्र माधुर्य[7]-ललितत्वतः ।
[8]तस्या[द्] हं[9]सस्त्वितिपदं मो[10]तृकेति[?] नियुज्यते॥६०५॥
तस्मादर्थद्वयं[11] स्नेहमाधुर्ये[12] हसलक्षणे ।
अन्तः[13]स्नेहार्थगीतान्ते[14]हंसस्त्विति निगद्यते ॥६०६॥
चञ्चत्पुटे[15]नैककले[16]नाथवाष्टलघुत्वतः ।
पदमाद्यं[17] तु तत्खण्डं पल्लवाख्यं पुनः पुनः ॥६०७॥
एवं पा[18]दत्रयं गीत्वा चतुर्थी मो[19]तृका मता ।
पूर्ववत् पल्लवे न्यासः[20] सात्त्वतीवृ[21]त्तिसंभवः ॥६०८॥

※ वर्तमानमुल्तान देशः ।

१. ०दावृ०
२. ०गायु०
३. मूत्राणन०
४. ०सहात्विति
५. ०हरा०
६. ०गे
७. ०र्यं ल०
८. तस्या····
९. सहत्वि०
१०. माक्षिकीति
११. ०यस्ने०
१२. ०र्यसहल०
१३. ०तस्ने०
१४. सहत्विति
१५. ०टीनै०
१६. ०लोनाथे वाष्ट०
१७. ०दातु०
१८. ०त्त्रयं
१९. ०मुद्रिकामतात्
२०. ०स०
२१. ०श्रौति०

नायके[1]-नायिका-दुःखे त्वेवं पादत्रयं मतम् ।
विलम्बिते[2]लयस्तत्र करुणे मदविभ्रमे ।।६०९।।

।।इति हसकम्।।

[प्रतितालः]

लाटदेशोत्थगीतं तु प्र[3]तिताले बुधा विदुः ।
द्वयो[4][?]रन्योन्यवचनं युधा[5] वादरुतं न वा ।।६१०।।
[प्रति] तालमिति प्रायः प्रवदन्ति यथा जनाः ।
तथा वि(पि)प्रतितालेन गीतसम्बन्धितालकः ।।६११।।
तस्यैव प्रतितालेन प्रथमं पल्लवं मतम् ।
नातिदीर्घं नातिह्रस्वं [छन्दो योज्यं तु?] पल्लवे ।।६१२।।
मध्ये न्यासस्ततो मन्द्र-न्यासः स्यात्पल्लवे पुनः ।
भारतीवृत्तिमाश्रित्य पादद्वयसमन्वितम् ।।६१३।।
नर्तनं तु [मतं ?] नाम वाद्यं चक्रायुधं भवेत् ।
आवं[6]जे चाऽथ[धा धिं] धों, पाटवर्णानुवादिभिः ।।६१४।।
व्यतिरिक्तविलम्बाभ्यां लयाभ्यां नर्तनं भवेत् ।

।।इति प्रतितालः।।

।।मंजरी।।

अँ[7]वशीदेशजं गीतं मंजरीति निगद्यते ।।६१५।।
तदेव संस्कृते प्रोक्तं[8] मंजरीति पुरातनैः ।।
त्रिधा[तु] देशजा सा[9]र्था द्व्यर्थानर्थ-समन्विता ।।६१६।।
बहुभेदं तथा प्रोक्तं मंजरीशब्दसंज्ञया ।
[10]तत्र देशोद्भवं गेयं प्रथमं भाषया पदम् ।।६१७।।

---

१. ०काना०
२. ०कल०
३. पडिताला
४. ययो०
५. ०धावादरता नवी
६. ०हजें चाय····
७. अथ सिद्धेशजं
८. ०क्त०
९. सर्वा अर्थानर्थंस०
१०. तत्रादेशोथवा गेयो

नायको[1] वा नायिका[2] वा धात्र्याख्या[3] मातृका यदि ।
गर्जत्यारोदकं येन स गर्जेरुरिति[4] स्मृतः ॥५९६॥

एकमात्रादिषण्मात्रापर्यन्तं[5] तालवर्त्मनि ।
तालावर्त्तद्वयेनैव[6] पल्लवाख्यमुखं भवेत् ॥५९७॥

तत्तद्गुणकलायुक्तं पदं[7] नामार्थसम्भवम् ॥५९७॥
चतुरावृत्तिलालेन ह्याभोगो[8] युग्मनामकः ॥५९८॥

पुनः पल्लवितेनाद्यं वृत्तिरारभटी भवेत् ।
आयुधो दन्त एव स्याच्चार्युतप्रेरणसंभवः[9] ॥५९९

युग्मपात्राभिनये[10] भूमैकस्यायुधपाणिता[11] ।
द्रुतेनैवं[12] गतिर्दूतिर्नायिका[13] तु तदन्ययोः[?] ॥६००॥

॥इति गर्जरुलक्षणम्॥

[कौलुः]

*पार्श्वदेशोत्थयवनोद्भवः[14] कौलुरुच्यते[15] ।
येन वा या वाय या यो वा[वा वेति]महाहवे[?] ॥६०१॥

न विभेषीति वचनं गीतं कौलुरिति[16] स्मृतम् ।
पूर्ववत्पल्वाभोगौ[17][18] पदं चेद्द्विगुणं भवेत् ॥६०२॥

---

* वर्त्तमानफारसदेशः ।

१. ०कं
२. ०कां
३. दात्र्या०
४. ०र्जे मरिति०
५. ०ते
६. ०वतद्व०
७. ०थं
८. आभो०
९. ०वाः
१०. ०त्रानाभि०
११. भूनैक०
१२. ०न गतिनाद०
१३. ०ना०
१४. ०नैरभवः
१५. काल०
१६. कालु०
१७. पूरवत्०
१८. ०गो

[प्रबन्धपर्यायस्य रूपकस्योत्तमादिकोटयः] ।
व्यक्तादि[1]गुणसंयुक्तं दु[2]ष्टाद्यगुणवर्जितम् ।।५८३।।

उत्तमं रूपकं ज्ञेयं वक्ष्यमाणविभेदतः ।
भि[3]न्नं भिन्नं[4] भवेदेवं[5] रागेण स्थायिना[6] ततः ।।५८४।।

अर्थालंकारभेदेन मातुना च नवं नवम् ।

[इत्युत्तमरूपकम्]

तालभेदेन ललितं[7] लयभेदेन वा नवम् ।।५८५।।
छन्दोभेदेन रचना-[नव]त्वं दृश्यते ततः ।

गीयते चेत्तदा विज्ञैः परिवृ[8]त्तं तदुच्यते ।।५८६।।

इति परिवृत्तं[मध्यमरूपकम्]

*प[10]टान्तरं तु पूर्वस्मिन् रूपके रसयोगतः ।
भूषितं रागतालाभ्यां स्थाय[11]मातुविचित्रकम् ।।५८७।।

इति प[12]टान्तरं[मध्यमरूपकम्]

भंजिनी[13] प्रोच्यते पूर्वधातुना[14]न्येन केनचित् ।
भिन्न[15]धातुतया चेति कथितं रूपकत्रयम् ।।५८८।।

इति भञ्जिनी (मध्यमरूपकम्)

---

* 'सङ्गीतरत्नाकरे'पदान्तरमिति पाठो वर्त्तते (४।३६६) ।

१. ०धि०
२. द्रुषाप्यगुण०
३. ०न्ना
४. ०न्ना
५. ०न
६. ०नी
७. ०ता····
८. ०व०
९. ०बृ०
१०. ०ट्टा०
११. ०यिधातु०
१२. पट्टा०
१३. ०नः
४१. ०वाक्येन
५१. ०मातृतया

इति मकरन्दकः [५]

दोर्भ्यां शरेण विजयो वीरे[२] गेयो विचक्षणैः ।

इति विजयः [६]

[इत्यड्डतालप्रबन्धः]

॥ रासकप्रबन्धः ॥

गीयते रासको[३] रासतालेन स चतुर्विधः ॥५७५॥
विनोदो वरदो[४] नन्दो[५]ऽथ च कम्बुज इत्यमी ।
क्रमाल्लक्षणमेतेषां वक्ति लक्ष्यविचक्षणः ॥५७६॥
यदालापो[६] ध्रुवस्यान्ते विनोदः कौतुके मतः ।

इति विनोदः [१]

ध्रुवमध्ये यदालापो[७] वरदो[८] विबुधस्तवे ॥५७७॥

इति वरदः[९] [२]

यद्युद्ग्राहस्यादि[१०] खण्डस्थाने त्वालापसंगतिः ।
गीयते तत्र[११] नन्दोऽसौ प्रबन्धो[१२]ऽभ्युदयप्रदः ॥५७८॥

इति नन्दः [३]

*

[इति रासकप्रबन्धः]

---

* पाण्डुपुस्तकेऽस्मिन् नन्दानन्तरं कम्बुजो न लक्षितः। तल्लक्षणं तु संगीतरत्नाकरे 'आलापादेर्ध्रुवपदात् कम्बुजः करुणे भवेत् (४।३५५) ।

१. ०भा०
२. रो
३. र०
४. वि०
५. ०दोथ चकं बुध इ०
६. ०थालवा द्रव०
७. ०था०
८. ग०
९. वि०
१०. ०दख०
११. यत्र
१२. ०धाभ्यु०

इति विचारः [३]

ने[1]न मध्यविरामेण कुन्द[2]स्स्याददद्भुते रसे ।
चत्वारोऽपि बुधैर्गेया[3] रसे शृंगारसंज्ञके ।।५६५।।

।।इति कुन्दः[4] [४]

।।इति चतुर्विधप्रतिमण्ठ[5]लक्षणम् ।।

[निस्सारुकप्रबन्धः]

निस्सारुतालबद्धो[6] यः स निस्सारुरितीरितः[7] ।
साधारणत्वमित्युक्तं तद्भेदानधुना ब्रुवे ।।५६६।।
वैकुन्दानन्दकान्ताराः[8] समरो[9] वांछितस्तथा ।
विशालश्चेति षड्भेदास्तल्लक्षणमिहोच्यते ।।५६७।।
द्रुतद्वन्द्वा[ल]लद्वयेन वैकुन्दो मंगले मतः[10] ।

इति वैकुन्दः [१]

विरामान्तद्रुतद्वन्द्वादानन्दः[11] सुखदायकः ।।५६८।।

इत्यानन्दः [२]

कान्तारस्तु [12]लघोर्गान्त्यो विप्रलम्भे नियोजयेत् ।

इति कान्तारः [३]

समरो[13] हि द्विरावृत्ताद् विरामान्तलघो[14]र्भवेत् ।।५६९।।

इति समरः [४]

[15]लत्रयाद् द्रुतयुग्मेन वांछितो वांछितार्थदः ।५७०।।

---

१. वे०
२. कुण्ड०
३. ०यो
४. कुण्डः
५. ०मट्ठ०
६. ०रतालशब्दो यः
७. ०र इतो०
८. ०रः
९. ०दो
१०. ०तम्
११. ०द
१२. रयाचान्त्या
१३. ०रो द्विरवृता स्या०
१४. ०घु०
१५. लश्र०

अविलम्बितमाप्नोती[1]त्यवोचन्नारदादयः ।

॥इति जयन्तादिषोडशध्रुवलक्षणम्॥

[मण्ठः]

अथैकखण्डमुद्ग्राहः संयतिद्वयसंयुतः ॥५५२॥
‡एकेन यदि वा पा[2]दः खण्डमेकं ध्रुवस्य तु ।
द्विर्गेयः स्यात्ततः खण्डमन्तरत्वेन गीयते ॥५५३॥
ततः पुनर्ध्रुवो गेयस्तस्मिन्न्यासकृतो भवेत् ।
अन्तराभावपक्षे तु नीत्वाभोगं त्यजेद् ध्रुवे ॥५५४॥
[3]मण्ठतालेन बद्धोऽयं [4]मण्ठ इत्यभिधीयते ।
सामान्यो[5]ऽयं भवेदस्य भेदाद्युक्तं भवेदतः ॥५५५॥
जयप्रियो मंगल[6]श्च सुन्दरो वल्लभस्तथा ।
कला[7]पः कमलश्चेति [8]मण्ठभेदाष्षडीरिताः ॥५५६॥
जगणा[9]न्वितेन मण्ठेन गेयो [वीरे] जयप्रियः ।

[इति जयप्रियः [१]]

शृंगारे मंगलो गेयो भगणेन ततः परम् ॥५५७॥

इति मंगलः [२]

शृंगारे [10]सगणे गेयः सुन्दरः परिभाषितः ।

इति सुन्दरः [३]

रगणेन सुबद्धः स्याद् वल्लभः करुणे रसे ॥५५८॥

---

‡ उद्ग्राहखण्डं यतिद्वयसंयुक्तमेकयतिकं वा कर्तव्यम् ।
—इति (सं० र० ४।३३२–सङ्गीतसुधाकरः) ।

१. ०ति व्यावो०
२. नादः
३. मट्ठ०
४. मल
५. ०येंयं
६. ०लश्री
७. ०प०
८. मठ०
९. ०णो नेतून मठे न
१०. रगणे

षोडशाक्षरखण्डस्तु लघुशेखरतालवान् ।
कुन्तलोऽभीष्टफलदो गेयः स्याददद्भुते रसे ॥५३९॥
इति कुन्तलः [६]

झम्पया कोमलो[1] गेयः[2] खण्डैः[3] सप्तदशाक्षरैः ।
विप्रलम्भे[4] महावृद्धिप्रद इत्युच्यते बुधैः ॥५४०॥
इति कोमलः[5] [७]

अष्टादशाक्षरैः खण्डै[6]र्गेयो निस्सारु[7]तालर्तः[8] ।
स चार[9] इति विज्ञेयो[10] हर्षो[11]त्कर्षप्रदो मतः ॥५४१॥
इति चारः [८]

[12]नन्दनः स्यात्स एकोनविंशत्यक्षरसंयुतैः ।
खण्डैः शृंगारवीराभ्यामेकतालेन सिद्धिदः ॥५४२॥
इति नन्दनः [९]

विंशत्यक्षरखण्डैर्यः प्रतिम[13]ण्ठेन गीयते ।
हास्ये वीरे च शृंगारे श्रोतृगातृसुखप्रदः ॥५४३॥

इष्टार्थफलदश्चन्द्रशेखरः परिकीर्तितः ।
इति चन्द्रशेखरः [१०]
एकविंशत्यक्षराख्ये खण्डे स्यात्प्रतिम[14]ण्ठके ॥५४४॥

---

१. केरलो
२. ०यो
३. ०डस०
४. ०लाभे
५. केरलः
६. ०डैः गेया
७. ०र०
८. ०कः
९. भार
१०. ०या
११. ०र्षोवर्षं०
१२. आनन्दः
१३. ०मद्धेन
१४. ०मर्रकः

छन्दसैश्च[1] पंचकाढ्यं तस्योदाहरणं ब्रुवे ।
ते पंच चगणा एव भवन्त्यं[2]घ्रिचतुष्टये ॥५१३॥
गुरुद्वयान्तमेतेन पदयोगं समुद्धरेत् ।
उदाहरणमित्युक्तमुद्ग्राहादि तं[3]था नयेत् ॥५१४॥

॥इति मंगलम्॥

[ओवी-प्रबन्धः]

देशभाषापदावि[4]ष्टखण्डत्रयविभूषिता ।
[5]ओवी[प]दा[6]न्त–रचिता त्रिरावृत्तांघ्रिसंयुता ॥५१५॥
छन्दोभिर्बहुभिर्बद्धा [7]ओव्यो[हि]बहवो मताः ।

[इत्योवीप्रबन्धः]

[अथ लोली]

❀ [लोल्यैवं कथिता विज्ञैर्लोलीपदप्रयोगतः] ॥५१६॥

॥इति लोली[8]॥

पदान्ते [ढोल्लरी]यु[9]क्तो दोहडस्तु य[10]दा भवेत् ।
लाटादिभाषा[11]ललिता ढो[12]ल्लरी सा [13]तदा भवेत् ॥५१७॥

॥इति ढो[14]ल्लरी॥

❀ 'ओवीलक्षणे ओवीपदस्थाने लोलीपदं प्रयुज्यते चेत् तदा लोली ।'—इति (सं० र० ४।३०७) सुधाकरटीकामनुसृत्याऽत्र लोली लक्षिता ।

१. ०खः पं०
२. ०ति च चतु०
३. सदा
४. ०दिष्ठख०
५. ····जौ दि ···
६. ····च्छान्तरजिता
७. चेवा
८. ०लि
९. पा····दो····हा
१०. ०तदा
११. ०षा ल०
१२. दो०
१३. यदा
१४. दो०

चतुर्भिश्चरणैर्बद्धा पाटैश्च[1] बहुभिर्यदि ।
क्रीडातालेन घत्तादिच्छन्दसा[2] यदि गीयते ॥४८६॥
तत्तच्छन्दोनामवती[3] भवेदिति निरूपिता ।
वसन्तकाले हिन्दोलरागे[4][5] प्राकृतच्छन्दसा ॥४८७॥

॥ इति चच्चरी ॥

[चर्याप्रबन्धः]

पद्धडीप्रभृतिच्छन्दोवत्यनुप्रासंयुता[6] ।
सा[7] चर्याध्यात्मविषया स्याद् द्वितीयादितालतः ॥४८८॥
अत्रोद्ग्राह[ध्रुवौ] तुल्या[8] वुद्ग्राहस्यालपता तथा[9] ।
वृद्धिः[10] पदैरिहाभोगो[11]न्या[सो ग्रह]मुखे ततः ॥४८९॥
वर्णावृत्तिरिहास्याः[12] [स्यात् पादानां] छन्दसा[13] कृता ।

[इति चर्याप्रबन्धः]

[पद्धडीप्रबन्धः]

सा[पद्धडी तु] विज्ञेया तल्लक्षणमिहोच्यते ॥४९०॥
[14]गान्ताः षोडशमात्रास्तु प्रतिपादं[15] कृता भवेत् ।
तत्रादौ बिरुदं नीत्वा स्वराश्च बिरुदं पुनः ॥४९१॥
[16]पा[टान् न्यसेत्] क्रमेणैवं तत्रोद्ग्राहध्रुवौ समौ ।
आभोगः[17] [पूर्व]वत्[प्रोक्तो न्यास उद्ग्राहके] [18]भवेत् ॥४९२॥

---

१. पाटवान्
२. उत्रादिछन्दसां
३. ततश्छन्दो०
४. मान्दो०
५. ०गे स्यात् प्राकृतछ०
६. पटद्रव्यद्रुतिच्छ०
७. ना०
८. ०वे
९. ०त्या उद्०
१०. ०द्धिप्रदैवाभो०
११. ०गोन्या....नो....
१२. ०याते....
१३. ०सां
१४. जौ भजौ नमौ वचः
१५. ०दौ
१६. वा....
१७. ०गवद....
१८. मूभवेत्

ध्रुवोऽत्र पाटतेनाभ्यां[1] न्यासः पदमुखे ततः ।
आ [भोगस्तु] यथापूर्वं[2] पदैर्नामत्रयात्मकः[3] ॥४७५॥

॥इति हरलीलः[4]॥

[सुदर्शनप्रबन्धः]

[5]सुदर्शनो भवेदत्र पदैस्सबिरुदैस्ततः ।
तेनकैश्च तथो[6]द्ग्राहध्रुवाभोगादि[7]लक्षणम् ॥४७६॥

॥इति सुदर्शनः॥

[स्वराङ्कः]

गेयं स्वराङ्के प्रथमं[8]मुद्ग्राहत्वेन यत्पदम् ।
तत्स्यादेके[9]नतालेन स्वरा गेयास्ततः, परम् ॥४७७॥

तालद्वयेन मेलापरूप[सिद्धिस्]ततः परम् ।
तालत्रयेण बिरुदं ध्रुवत्वेन निरूप्यते ॥४७८॥

न्यासाभोगौ[10] यथापूर्वं गेयोऽयं मो[11]लव [श्रिया] ।

॥ इति स्वरांकः ॥

[श्रीवर्धनप्रबन्धः]

[12]श्रीवर्धने तु बिरुदपाटावु[13]द्ग्राहरूपगौ ॥४७९॥
[14]पदस्वरौ ध्रुवत्वेन कार्यो[15] शेषं तु पूर्ववत् ।

॥ इति श्रीवर्धनः ॥

---

१. ०दते०
२. ····वथा०
३. ०कम्
४. ०ला
५. सन्दर्श०
६. ०तो०
७. ०वि०
८. ०मं उद्०
९. ०तेन तानेन
१०. ०गो
११. वराल····
१२. त्रिव०
१३. ०मिद्ग्रा
१४. ०परस्परौ
१५. ०र्या

ता[वुद्ग्राह]ध्रु[1]वौ स्यातां पदे न्यासो निगद्यते ।
पदैः[2] पूर्ववदा[3]भोगो हंसलीलो[4] निगद्यते ।।४६४।।

[इति हंसलीलः[5]]

[दण्डकप्रबन्धः]

छन्दसा[6] दण्डकाख्येन[7] पदमादौ[8] भवेत्तदा ।
स्वरा गेयाः[9] स्वरे [पदे ?] मुक्तिस्तावु[10]द्ग्राहध्रुवौ मतौ ।।४६५।।

यस्मिन् स दण्डको ज्ञेयः स्यादाभोगः पदैस्ततः ।
नौ सप्तरे[11]गणाश्चाथ दण्डको[12] लक्षितः क्रमात् ।।४६६।।

।।इति दण्डकः।।

[अथ झम्पटप्रबन्धः]

झ[13]म्पटेऽघ्रित्रयं तच्च स्वनाम[14]च्छन्दसा पदैः ।
विनिर्मितः स्यादुद्ग्राहो भवेत्पादद्वयात्मकः ।।४६७।।
तृतीयो[15]ऽघ्रिर्ध्रुवाख्ये[16]यो मुक्ति[17]रुद्ग्राहके मता ।
आभोग[18]: पूर्ववद्[19]ध्येयो [स] भोगादागतो[20][?]मतः[21] ।।४६८।।

---

१. ····ध्रु०
२. पा०
३. ०पदा०
४. ०ला
५. ०ला
६. ०सां
७. ०शाक्येन
८. ०पादौ
९. ०या
१०. ०मु०
११. ०तकारौ स्याधं
१२. कश्चापि क्र०
१३. झोम्पर्के०
१४. ०मछ०
१५. ०योंघ्रिध्रु०
१६. ०यो यो
१७. ०तैरु····द्राहको मतः
१८. ०गात्०
१९. ०द्वेवा
२०. ०तं
२१. ०तम्

[1]द्वितीयश्चतुरीयश्च मात्रा[2]द्वादशसंयुतः ।
क्रमेण पादयोरन्ते स्वरपाटौ[3] ततः परम् ॥४५३॥
पादत्र[4]यान्ते गातव्यौ[5] क्रमेण स्वरते[6]नकौ ।
पूर्वोक्तदोध[7]कस्तस्मात्ते[8]नके मुक्तिरिष्यते ॥४५४॥
अत्रोद्ग्राहस्ते[9]नकान्तो दो[10]धकस्तु [11]ध्रुवो भवेत् ।
आभोगः कल्पनीयः स्यात्ते[12]नके न्यास इष्यते ॥४५५॥

॥ इति [13]वस्तुप्रबन्धः ॥

❀

[त्रिपथप्रबन्धः]

[14]पादत्रयं स्यात्त्रिपथे[15] पाटै[16]श्च विरुदैः [17]स्वरैः ।
उद्ग्राहत्वेन योज्यं[18] तद् विरुदान्त्यपदद्वम् ॥४५६॥
अत्र [19]पादे तृतीये[20] तु ध्रुवः [21]पंचपदात्मकः ।
पाटे न्यासो भवेदत्र ध्रुव[22]के वा मतान्तरे ॥४५७॥

❀ वस्तुत्रिपथयोर्मध्यगतस्य विजयप्रबन्धस्य निरूपणं नाऽत्र विद्यते संगीतरत्नाकरे तु तल्लक्षणं यथा—"यत्र तेनैः स्वरैः पाटैः पदैर्विजयतालतः । गीयते विजयस्तेनैर्न्यासिः स विजयो मतः" (४।२७७) ।

१. तत्र द्वितीयस्तु०
२. ०त्रा द्वादश सं०
३. ०दौ
४. ०द्व०
५. ०यं
६. ०तेन्नका
७. ०हका
८. ०तन्न०
९. ०तेन्न०
१०. द्रोहक०
११. द्रुतो
१२. ०तेन्नके
१३. विज्ञेयः
१४. प०
१५. ०दैः
१६. ०दैः
१७. पदैः
१८. ०यन्तं वि०
१९. ०पदं
२०. ०यं
२१. पादप०
२२. ०वाका

अनयोर्योजनीयं स्यादुद्ग्राहादित्रयं तथा ।

॥इति पंचभंगिपंचाननौ॥

विरुदान्ते त्रिभिस्तालै[1]स्त्रिभी[2] रागैर्य उच्यते ॥४३९॥

सोमातिलकनामा स्याद[3]थोद्ग्राहादिकं तथा ।

॥इत्युमातिलकप्रबन्धः॥

प्रत्येकं चरणावाद्यौ[4] द्विद्विकामगणात्म[5]कौ ॥४४०॥

ततस्तृतीयः पादस्तु चतुर्भिर्मा[6]न्मथैर्गणैः ।

पूरितश्चेच्चतुर्थोऽत्र त्रिकामगणलक्षितः ॥४४१॥

कि[7]न्त्वत्र षष्ठदशमौ स्यातां रतिगणौ तदा ।

त्रिपदी तालहीनत्वादुद्ग्राहश्चरणद्वयम् ॥४४२॥

ध्रु[8]वः पादद्वयं तस्यास्स्वरो गेयस्ततः पदैः[9] ।

आभोग[10]ः स्यात् प्रबन्धोऽयं गेयः कर्णाटभाषया ॥४४३॥

अस्य गानक्रमं ब्रूमो गीत्वा पादद्वयं तथा ।

तृतीयं किंचिदुच्चार्य पुनस्सर्वतृतीयकम् ॥४४४॥

ततः परमन्त्यम[11]ङ्घ्रिं गीत्वादौ न्यासमाचरेत् ।

॥इति त्रिपदी॥

[चतुष्पदीप्रबन्धः]

चतुष्पद्यां समे[चाऽथ] मात्रा[12]ः षोऽश कीर्तिता[13]ः ॥४४५॥

---

१. ०लैः त्रि०
२. ०भिः रा०
३. ०त्ततोद्ग्रा०
४. ०दौ
५. ०त्मिका
६. ०म०
७. किं तत्र
८. ०व०
९. ०रम्
१०. ०गस्याप्र०
११. ०रुंघ्रिं
१२. ०त्रा
१३. ०ता

तत्रान्तरे कांस्यतालोद्भवाः पाटाः प्रकीर्तिताः ।
उद्घट्टे[1] च विधीयन्ते षट्पदानि तदन्तरे ।।४२७।।

मुरजोद्भवपाटाः स्युः पूर्ववे[2]दन्ययोजना[3] ।
ततः परमा[4]भोगस्तु तालेनान्तेन गीयते ।।४२८।।

द्रुताख्येन लयेनैव स्वाभिधानत्रयान्वितः ।
तत्परं[5] तेनै[6]को गेयः श्रीरायुर्भाग्यदायकः ।।४२९।।

वाक्यमेकं ततो गेयमाशीर्वादपदात्मकम् ।
स्यात्तालत्रयमुद्ग्राहो ध्रुवस्तालं त्रयात्मकम् ।।४३०।।

अथवा प्रतिताले च स्यादुद्ग्राहः पदद्वयम् ।
शेषै[7]त्रयं ध्रुवं कुर्यादित्याहुः कोहलादय ।।४३१।।

अनेन लक्षणेनोक्तः प्रबन्धा द्विर्विधो मतः ।
वीरावतार–शृंगारतिलकौ[8] तद्रसाश्रयात् ।।४३२।।

पंचताले[10]श्वरे गीते प्रीताः स्युः सर्वदेवताः ।
तस्[11]माद् गातुश्च नेतुश्च श्रोतॄणाञ्च फलं भवेत् ।।४३३।।

---

१. ०ग्राहे
२. ०वन्मनयो०
३. ०नः
४. ०म०
५. ०दं
६. ०न रागे यः
७. ०षं त्र०
८. ०तीयो
९. ०कास्त०
१०. ०ले स्व०
११. ०स्या

अष्टाविंशतिसंयुक्तं शतमाम्रेडितम्मतम् ।
द्विधातुपदमाद्यन्तु पदमन्त्यं त्रिधातुकम् ॥४१७॥
अंगानि द्वात्रिंशत्कान्तान्याहुरत्र मनीषिणः ।

॥ इति रागकदम्बे, आम्रेडितभेदः ॥

❀॥ इति रागकदम्बानां लक्षणम् ॥

---

१. दशमा
२. ०धा तरपदान्यत्र
३. द्वाकिषट्कान्ता०

❀ कल्लिनाथमनुसृत्य रागकदम्बप्रबन्धस्य व्याख्यानम्—चतुर्वृत्तश्चतुस्तालो रागराजिविराजितो नन्द्यावर्त्तः । तस्माद् द्विगुणः स्वस्तिकोऽष्टवृत्तोऽष्टतालोऽष्टराग इत्यर्थः । कैश्चिद् उक्तलक्षणः स्वस्तिक एवाब्जपत्र इत्युच्यते । अब्जपत्राद् द्विगुणोऽब्जगर्भः षोडशवृत्तः षोडशतालः षोडशराग इत्यर्थः । अब्जगर्भाद् भ्रमरो द्विगुणो द्वात्रिंशद्वृत्तो द्वात्रिंत्तालो द्वात्रिंशद्राग इत्यर्थः । भ्रमरादाम्रेडितो द्विगुणश्चतुष्षष्टिवृत्तश्चतुष्षष्टितालश्चतुष्षष्टिराग इत्यर्थः ।

सिंहभूपालानुसारेण—'चत्वारि वृत्तानि यस्मिन्नसौ चतुर्वृत्तः, चतुर्भिस्तालैर्युक्तः, अनेकै रागैरुपनिबध्यमानो नन्द्यावर्त्तः स्यात् । पूर्वस्माद् [नन्द्यावर्त्ताद्] द्विगुणोऽष्टवृत्तोऽष्टतालश्च स्वस्तिकः । मतान्तरेणान्यद्भेदद्वयमाह-अब्जपत्रेति । केषाञ्चिन्मतेन पूर्व-पूर्व-द्वैगुण्येन भेदद्वयं भवति । षोडशवृत्तः षोडशतालोऽब्जपत्रः । अब्जपत्रोऽब्जगर्भेऽन्तर्गतः । द्वात्रिंशद्वृत्तो द्वात्रिंशत्तालो भ्रमराम्रेडित इति ।'—एवं सिंहभूपालमतेन भ्रमराम्रेडित एक एव भेदः ।

सङ्गीतसूर्योदयकारस्तु— नन्द्यावर्त्तस्वस्तिकाब्जपत्रभ्रमराब्जगर्भाम्रेडितानां रागकदम्बप्रबन्धभेदानामुत्तरोत्तरं द्वैगुण्यं मनुते । यथा—चतुर्वृत्तश्चतुस्तालश्चतूरागो नन्द्यावर्त्तः । नन्द्यावर्त्ताद् द्विगुणः स्वस्तिकः । स्वस्तिकाद् द्विगुणोऽब्जपत्रः । अब्जपत्राद् द्विगुणो भ्रमरः । भ्रमराद्द्विगुणोऽब्जगर्भः । अब्जगर्भाद् द्विगुण आम्रेडितः । अन्ते आम्रेडितलक्षण-प्रसङ्गे मतभेदमपि निर्दिशति ।

[1]वृत्तच्छन्दसि गातव्यमित्याहू[2] रुद्रबान्धवाः [?] ।
उद्ग्राहध्रुवयोश्छन्दः[3] स्यादाभोगेन संमतम् ॥४०३॥

[इति वृत्तप्रबन्धः]

[अथ मातृकाप्रबन्धः]

अकारादिक्षकारान्तवर्णाः पंचाशदीरिताः ।
तेषु प्रत्येकमेकैकवर्णपूर्वपदैः क्रमात् ॥४०४॥
गीयते चेत्तदा मन्त्रं[4] मातृ[5]केति निगद्यते ।
सा त्रिधा कथ्यते दिव्या मानुषी दिव्यमानुषी[6] ॥४०५॥
देवगि[7]रा मार्गतालैर्दिव्या निगद्यते [तथा] ।
देशितालैः प्राकृतेन वचसा मानुषी मता ॥४०६॥
मणिप्रवालपद्याथ पृथग्वापि तयोः क्रमात् ।
रचिता चेत्तदा मिश्रा, पुनस्सा मातृका द्विधा ॥४०७॥
निबद्धा चानिबद्धा चेत्यत्र पद्यसमुद्भवा ।
निबद्धा या तु[9] गद्योक्ता [10]साऽनिबद्धा प्रकीर्तिता ॥४०८॥
[11]पदानि पंच मार्गैः[8] स्युरथ [12]पंच हि देशजैः ।
द्विकलैस्तु तथा पंच शेषमेकं चतुष्कलम् ॥४०९॥
उद्ग्राह[13]त्वेन योज्यानि पदान्येतानि षोडश ।
पंचत्रिंशत्पदानि स्यु[14]र्ध्रुवत्वेन ततः परम् ॥४१०॥

---

१. उक्तश्छ०
२. ०हुः रुद्रतान्धयः
३. ०द०
४. ०न्द्रं
५. ०कृतेति
६. ०षी ॥ इति ॥
७. ०गीता०
८. ०श्रं
९. दिग०
१०. सा नि०
११. पञ्चानि
१२. पञ्चयुताक्षकैः
१३. ०ह्यत्वे०
१४. स्युः ध्रु०

विषमांघ्र्योः[1] पंचदश समे[2] द्वादश तास्ततः[3] ।
कुंजरे विषमे पादे मात्रा योज्यास्त्रयोदश ॥३९१॥

समे तु चरणे तस्य मात्रास्स्युस्तिथिसंज्ञकाः[4] ।
तिलके विषमे पंचदशमात्रास्समे पुनः ॥३९२॥

चतुर्दश भवन्त्यस्मिन्, हंसक्रोडो[5] निगद्यते ।
त्रयोदश[6] तु विषमे समे पादे च षोडश ॥३९३॥

एवं पूर्वोक्तदोहानां केचिदाहुः क्रमांशकम् ।
अर्धान्ते वाथ पादान्ते पंचभिर्लघुभिश्शिखा[7] ॥३९४॥

क्रियते चेत्तर्या[8] तज्ज्ञैः शिखाद्विपथ[9] इष्यते ।
शिखापथे[10] तु दोहानां मात्रासाम्यं परित्यजेत् ॥३९५॥

तेषामंघ्रिविपर्यासात्[11] सकृद्[12] द्विर्गानभेदतः ।
भेदा भवन्ति[13] बहवस्ते[14] लक्ष्ये नात्र-लक्षिताः[15] ॥३९६॥

॥इति द्विपथः[16]॥

[कलहंसप्रबन्धः]

स्वरात्[17] पूर्वं विनिक्षिप्य हंसाख्यैश्छन्दसा[18] पदम् ।
गीत्वा[19] झम्पाख्यतालेन तत्समेनाथवा मतम् ॥३९७॥

---

१. ०घ्र्या
२. समो
३. ला०
४. ०स्थिरसं०
५. ०डा
६. ०शेषु
७. ०खाः
८. ०था
९. ०खापदमितीष्यते
१०. ०दे तु देहा०
११. ०र्या सा
१२. ०द्भिर्गा०
१३. ०ब०
१४. ०तल्ल०
१५. ०ता
१६. ०विधः
१७. ०न्
१८. ०यं छन्दसां
१९. नी०

[द्विपथ-प्रबन्धः]

छन्दसा[1] द्विपथाख्येन निबद्धो[2] द्विपथो[3] मतः ।
भ[4]गणस्य त्रयं गौ[5] चच्छन्दः स्यात्प्रतिवाचकम् ॥३७८॥

तालहीनो[6]ऽथवा तालयुक्तो हि स्वरहीनतः ।
स चतुर्धा[7] भवेदत्र तल्लक्ष्म ब्रूमहे क्रमात् ॥३७९॥

यत्र स्वरैरेवोद्ग्राहध्रुवौ[8] स्तै[9]: प्राकृतैः पदैः ।
आभोगः स्यादसावेको भेदः प्रथमसंभवः ॥३८०॥

[10]अन्यः प्रयोगैरेवोक्तः [11]पदैराभोग इष्यते ।
स्वरैश्च [12]गमकालापैस्तृतीयस्य[13] क्रमेण तु ॥३८१॥

उद्ग्राहध्रुवकौ स्यातामाभोगः पूर्ववद्[14] भवेत् ।
चतुर्थस्तु पदैरेव प्राकृतैः[15] पदसंयुतैः ॥३८२॥

उद्ग्रा[16]हश्च ध्रुवः स्यातां तथा[17]भोगो भवेदिति ।
चतुर्विधोऽयं द्विपथैः[18] प्राकृतैश्च पदैर्यदि ॥३८३॥

---

१. ०सार्थे हटाख्ये०
२. ०द्धा
३. ०दो
४. भामरासत्रयं
५. लश्च छ०
६. ०नोध०
७. ०र्था
८. ०ह ध्रु०
९. ०तत्
१०. ०स्य
११. सदैवाभो०
१२. यम०
१३. ०या०
१४. ०त्
१५. ०तः परिसं०
१६. ०हींच
१७. ०दा०
१८. ०दः

[आर्याप्रबन्धः]

आर्याप्रबन्धे त्वर्धान्ते[1] पदान्ते वा[2] स्वरान् क्षिपेत् ।
नीत्वा द्विवारं[3] मात्रार्धं द्वितीयं गीयते सकृत् ॥३६६॥
तत्र पूर्वार्धमुद्ग्राहो द्वितीयार्धं ध्रुवो भवेत् ।
त्रिनामवा[4]नाभोगः स्यादुद्ग्राहन्यास इष्यते ॥३६७॥
[5]सामान्यलक्षणमिदं विशेषं ब्रूमहे ततः ।
अत्रार्यायां मुखेऽर्धे तु गणास्सप्त प्रकीर्तिताः ॥३६८॥
तल्लक्ष्ये तु[6] सप्तगणा गोपे[7]ता इति लक्षणात् ।
गुरुरन्ते[8] भवेदत्र, चतुर्मा[9]त्रात्मका [10]गणाः ॥३६९॥
'षष्ठोऽयं नलघू वेति' षष्ठोऽत्र जगणो भवेत् ।
न लघू वेति वा[11] पक्षे जस्याभा[12]वं नियोजयेत् ॥३७०॥
द्वितीयार्धे तु षष्ठो ल इत्युक्तत्वाल्लघुर्भवेत् ।
तथा कृत्वा तदा[13] सर्व–गुरुभिर्यदि लक्षिता ॥३७१॥
सार्या ल[14]क्ष्मीनामवती त[15]तो वृद्धयादयो भिदः ।
पंचविंशतिरेकैकगुरुभंगानुयोगतः ॥३७२॥
आ[16]र्यान्तिगुरुभंगोऽत्र न कर्तव्यो[17] मनीषिभिः ।
सांस्कृतैश्च पदैरेव गेया वाग्गेयकारकैः ॥३७३॥

---

१. ०र्था०
२. गास्वराः
३. ०रे मात्रार्थं
४. ०वा ना भो०
५. सा पद्यल०
६. तत्व सगणां
७. ०पि०
८. ०त भवेद्यत्र
९. ०रा०
१०. गु०
११. पापक्षां
१२. ०भोव
१३. ०था पर्वे
१४. लक्षी सा मनती
१५. तमो श्रुत्यावयोभिधा
१६. ०र्यात्र गु०
१७. ०व्या

*पदे वाक्यभ[1]वे यत्र मुक्तं तद्ध्यक्षरादिकम् ।
पदमग्रे प्रयुक्तं चेच्चक्रवालस्स कथ्यते ॥३५२॥
उद्ग्राहध्रु[2]वयोर्नित्यं स्याद् वर्णा[3]वृत्तिकल्पना ।
आभोगे[4] नियमो नास्ति यदि स्यान्मङ्गलं मतम् ॥३५३॥
॥इति चक्रवाल[5]प्रबन्धः॥

[क्रौंचपदप्रबन्धः]

पदमादौ[6] विरच्याथ[7] स्वराणां रचनं ततः ।
न्यासं कुर्यात् [8]स्वरस्थाने प्रतितालेन गीयते ॥३५४॥
[9]स्वनामच्छन्दसा चा[10]थ गद्यरूपेण वा भवेत् ।
अत्रोद्ग्राहध्रुवौ स्यातामन्यतः स्थानसंश्रितौ[11] ॥३५५॥
आद्यः[12] स्वरैः स्यादुद्ग्राहः पदैरेव [13]ध्रुवो भवेत् ।
त्रिनाम[14] वानाभोगः स्यादयं क्रौंचपदो मतः ॥३५६॥
छन्दः क्रौंचपदाख्यं तद्गणरूपेण कथ्यते ।
भमसा[15] भो नकारौ[16]श्च च[17]त्वारस्तदनन्तरम् ॥३५७॥
ग[18]कारश्च भवेदत्र प्रबन्धपदबन्धने ।
॥इति क्रौञ्चपदः॥

---

* सङ्गीतरत्नाकरे चक्रवाल लक्षणं यथा—
पूर्वपूर्वाक्षरव्राते योन्त्यो वर्णचयः स चेत् ।
उत्तरोत्तरसंघादौ चक्रवालस्तदोच्यते ॥
(४।२१६-२२०)

१. ०वा यत्र मुक्तसिध्यक्ष०
२. ०मृद्धये प्रायः स्या०
३. ०र्णान्मृत्ति०
४. ०गो
५. ०गद्यः
६. ०दा०
७. ०दि०
८. ०पर०
९. स्वरास्तु छ०
१०. ०वाह
११. ०ताः
१२. ०द्यैः
१३. द्वयोर्भ०
१४. ०म वासभो०
१५. ०साभो
१६. ०रश्च
१७. पंचस्युः त०
१८. न०

आर्याख्यया भवेद् गीत्या[1] गेयो वीररसात्मकः ॥३२२॥
करपाटे भवेन्न्यासस्तत्रार्यायां तु मात्रिका[2]ः ।
प्रथमेऽर्धेऽत्र[3] त्रिंशत् [4]स्युः सप्तविंशतिरुत्तरे ॥३२३॥
ताल[5]बद्धेति विज्ञेया, यथा भेदानथ ब्रुवे ।
अत्रार्यायां तु गुरवस्त्रिंशदित्यधिगम्यते ॥३२४॥
अत्रान्त्यगुरुमारभ्य प्रथमैकै[6]कशः क्रमात् ।
[7]विधेश्च भंगादेकोनत्रिंशद्भेदा भवन्त्यमी ॥३२५॥
भंगशब्दस्य वक्ष्यामो लक्षणं च गुरुर्यथा ।
†मात्राद्वन्द्वं समायाति तदासौ भंग उच्यते ॥३२६॥
इदानीमुक्तभेदानां नामानि ब्रूमहेऽधुना ।
पवनो रविसंज्ञश्च धनदो हव्यवाहनः ॥३२७॥
सुरनाथः समुद्रश्च वरुणो [8]शशिशैलकौ[9] ।
मधुमाधवनामानौ ततो[10]ऽथ मकरध्वजः ॥३२८॥
जयन्तो मधुपश्चाथ [11]शुकसारसकेकिनः ।
हरिश्च हरिणो हस्ती[12] [13]कादम्बः कूर्मको नयः ॥३२९॥
विनयो विक्रमोत्साहौ धर्मो[14]ऽर्थः काम इत्यमी ।
एकोनत्रिंशदाख्याता[15]ः कन्दभेदाः पुरातनैः ॥३३०॥

॥इति कन्दलक्षणम्॥

---

† 'लघुपर्यायत्वेन मात्राशब्दोऽत्र प्रयुक्तः ।

१. ०ता
२. ०का
३. त्रिगतिः
४. स्यादष्टावि०
५. ०लबन्धे०
६. ०केनराः
७. विधैश्च
८. मिधशै०
९. ०का
१०. ०तोथ
११. युक्ता सा०
१२. ०ति
१३. क०
१४. ०र्मोर्थः
१५. ०तः

यत् षट्कं लगभेदानां[1] विपर्यासविधानतः ।
प्रत्येकं षड्विधं भूत्वा[2] षट्त्रिं[3]शदिति कीर्तिताः ॥३०९॥

॥इति गद्यप्रबन्धः॥

[कैवाडप्रबन्धः]

अत्रोद्ग्राहध्रुवौ[4] पाटै[5]ः स्यातां करसमुद्भवैः ।
ततः प्रबन्धनामाद्यै[6]राभोगः परिकल्प्यते ॥३१०॥

उद्ग्राहादौ भवेन्न्यास[7]ः स द्विधा परिकीर्तित[8]ः ।
सार्थको[9]ऽनरर्थकश्चेति प्रत्येकं तौ द्विधा मतौ ॥३११॥

शुद्धमिश्रा[10]श्रयत्वेन तथासौ स्याच्चतुर्विधः ।
आभोगादौ पदालापो भवेदिति परे विदुः ॥३१२॥

अपभ्रंशे च [11]कैवाडो नामास्य [12]कर-पादकः ।

॥ इति [13]कैवाडप्रबन्धः॥

[अंकचारिणीप्रबन्धः]

अथांकचारिणीलक्ष्[14]म सुव्यक्तं ब्रूमहेऽधुना ॥३१३॥
वीररौद्राश्रितत्वेन विरुदैर्या[15] निबध्यते ।

येन केनापि तालेन कथ्यते सांकचारिणी ॥३१४॥

---

१. इति गद्यम्
२. ०बा
३. ०विंश०
४. ०वैः
५. ०दैः
६. ०द्यैः आ०
७. ०सस्तद्द्वि०
८. ०ताः
९. ०रो नर्तकश्चेति
१०. ०श्र०
११. कौ०
१२. प०
१३. दैवावादः
१४. ०क्षासु०
१५. ०र्यानि ब०

रक्तवर्णा च गौडीया रीतिमारभटीं श्रिता[1] ।
द्रुतमानेन तिख्याता वदनोंकारभूषिता ॥२९३॥

शेषत्वेन ततो गेयास्स[2]तालास्सरिगादयः ।
ततो निरूप्यते चूर्णं विलम्बितलयाश्रयम् ॥२९४॥

पीतं शान्त[3]रसाविष्टं वैदर्भीरीतिलालितम् ।
सात्त्वतीवृत्तिमाश्रित्य गातव्यं ब्रह्मदैवतम् ॥२९५॥

शेषत्वेन स्वरा गेयास्सतालाः पूर्ववत् पुनः ।
अतः परं तु ललितं कैशिकीवृत्तिमाश्रितम् ॥२९६॥

सितं मदनदैवत्यं श्रृंगाररसपोषितम् ।
पंचालीरीतिमाश्रित्य गेयं मध्यलयेन तत् ॥२९७॥

[येन] के[4]नाऽपि तालेन स्वरा गेयाः पुनस्तथा ।
[5]वृत्तगन्धि रसे[6] शान्ते पीतं स्या[7][न्मुनि]दैवतम् ॥२९८॥

पांचालीरीतिसंभूतं भारतीवृत्तिशोभितम् ।
द्रुतमध्यलयत्वेनच्छन्दोभेदविधानतः ॥२९९॥

पद्यभागसमायुक्तं गेयं वाग्गेयकारकैः[8] ।
ततस्स्वरा यथापूर्वं गेयां[9]स्तालेन केनचित् ॥३००॥

खण्डं हास्यरसावि[10]ष्टं स्याल्ल[11]म्बोदरदैवतम् ।
वैदर्भीरीतिरचि[12]तं सात्त्वतीवृत्तिमाश्रितम् ॥३०१॥

---

१. ०ताः
२. ०साता०
३. ०ङ्कर०
४. एतेनापि
५. नृ०
६. ०शेषान्ते
७. ०यानु····
८. ०कम्
९. ०यस्ता०
१०. ०दिष्टं
११. ०लयोद०
१२. ०जि०

[१]पंचविंशतिभेदाः स्युरेकैकाक्षरवृद्धिजाः[२] ।
अष्ट[३]मात्रांघ्रिमारभ्य षष्टिपर्यन्तगामिनः ॥२८१॥

मात्रा[४]भेदास्त्रिपंचाशद्भवन्त्येकैकमृद्धिजाः[५] ।
सर्वे[६] रासास्समायुक्ता[७] द्व्यशीतिः कथिता[८]ः क्रमात् ॥२८२॥

॥इति रासकलक्षणम्॥

[एकताली–प्रबन्धः]

गीत्वा द्विवारमुद्ग्राहं ध्रुवाभोगौ सकृत्ततः ।
पूर्वध्रुवं पुनर्गीत्वा तद[९]न्ते न्यासमाचरेत् ॥२८३॥

एकतालेन बद्धो[१०]ऽसावेकताली[११]ति कथ्यते ।
केचिदु[१२]द्ग्राहकस्थाने [१३]ह्यूचुराला[१४]पकं बुधाः ॥२८४॥

॥इत्येकताली[१५]लक्षणम्॥

[इति सूडप्रबन्धनिरूपणम्]

[आलिप्रबन्धनिरूपणम्]

॥वर्णप्रबन्धः॥

उद्ग्राहध्रुवकौ यत्र विरु[१६]देन विनिर्मितौ[१७] ।
वर्णतालो[१८]ऽत्र तालः[१९] स्यादाभोगः पदनिर्मितः ॥२८५॥

---

१. पदं विं०
२. ०जा
३. ०ठगा०
४. ०त्रभे०
५. ०जा
६. ०सर्वै
७. ०ताद्विंशतिः
८. ०ता
९. ०दन्ये
१०. ०द्धोसा०
११. ०ले०
१२. ०दुद्वाह०
१३. ह्यू०
१४. ०तो०
१५. ०ल०
१६. ०रि०
१७. ०ताः
१८. ०लोत्र
१९. ०लो स्या०

विविच्य कृतवानेवं प्रौढो वि[ट्]ठलनन्दनः ।

॥इति झोम्बडलक्षणम्॥

[लम्भः]

एकखण्डो द्विखण्डश्चो[1]द्ग्राहो द्वि[र्वा]सकृद् यदि ॥२६८॥
गीयते च तदा लम्भः खण्डभेदाद्द्विधा मतः[2] ।
तद्ध्रुवस्योर्ध्वभागो यः सोद्ग्राहस्समधातुकः ॥२६९॥
ध्रु[3]वं द्विवारमुच्चार्य चा[4]भोगं तु सकृत्पुनः ।
गीत्वा ध्रु[5]वं सकृत्तस्मिन् न्यासस्तद्भेदतां ब्रुवे ॥२७०॥
यदो[6]द्ग्राहस्तालहीनस्स[7] स्यादालापलम्भकः ।
यद्युद्ग्राहो ध्रुवस्थाने बध्यते स प्रलम्भकः[8] ॥२७१॥
यदा झोम्बडवद् भागसंयुतो भागलम्भकः[9] ।
[10]भिन्नोद्ग्राहसमायुक्तो ध्रुवाख्यो *लम्[11]भ उच्यते॥२७२॥
त्रिचतुःपंचवारं वा गी[12]यते चेत्पदाह्वयः ।
[13]लम्भो भवेदथो[14]द्ग्राहो ध्रुवे[15]ण यदि भे[16]दितः ॥२७३॥
अनुलम्[17]भः स एव स्यादथ मूलप्रमाणतः ।
भेदान्तरौ ध्रुवोद्ग्राहौ[18] स्यातां[19] यत्रोपलम्भकः ॥२७४॥

---

* 'लम्भो' लम्भपदमित्यर्थः ।

१. ०चेद्ग्राहें
२. ०ताः
३. द्वयं
४. यो भोगस्सु स०
५. द्रुम०
६. थो०
७. ०तस्या०
८. ०म्बि०
९. ०ब०
१०. धीमो ग्रा०
११. ०ब
१२. नी०
१३. अम्भो
१४. ०धो०
१५. ०वे वा
१६. भे तथा
१७. ०म्बि०
१८. ०हे
१९. ०लायन्त्रोप०

तारजेश्च चतुर्धा स्यात्तद्भेदान् ब्रूमहेऽधुना ।
उ[2]द्ग्राहस्तु [3]तारस्थाने तारे मेलापकस्तथा ॥२५१॥

तारे ध्रुवश्चाभोगश्चेत्येवं भेदचतुष्टयम् ।
एते पु[4]नस्त्रिधातुत्वे तदा तारे[5] त्रिधा मताः ॥२५२॥

अतारजोऽत्र द्वेधा स्यादुक्तद्वैविध्यमाश्रितः ।
एते नव प्रयोगैकतयोक्तास्तु[6] पुनर्नव ॥२५३॥

प्रयोगत्रितयत्वेन मिलित्वाष्टादशोदिताः ।
एते पूर्णगणव्याप्तं पंचधा स्युः पृथक् पृथक् ॥२५४॥

चतुर्ग[7]णादष्टगणपर्यन्तं ते भवन्ति च ।
प्रा[9]योगिकः क्र[10]माख्यश्च ततः क्रमविलासकः ॥२५५॥

चित्रो[11] विचित्रली[12]लश्चेत्येषां रूपाणि [13]वच्म्यहम् ।
गणैश्चतुर्भि[14]र्लब्धो यः [15]प्रायोगिक इति स्मृतः ॥२५६॥

पंचभिश्च गणैर्बद्धः क्रम इत्युच्यते बुधैः ।
[16]षड्भिर्गणैर्निबद्धो यः सोक्तः क्रमविलासकः ॥२५७॥

गणैस्सप्तभिराब[17]द्धः स चित्रः परिकीर्तितः ।
गणाष्टकनिबद्धश्चेच्चित्रलीलो[18] निगद्यते ॥२५८॥

---

१. ०जि०
२. तद्ग्रा०
३. कर०
४. मनसि धा०
५. ०ले
६. ०स्ति
७. ०र्गुणा०
८. ०गुणा वयन्ते
९. प्र०
१०. ०समा०
११. ०त्राव०
१२. ०विश्वश्चेत्तेषां
१३. चोच्यते
१४. ०र्थोलब्धो
१५. प्रयो०
१६. बद्धैर्ग०
१७. ०विद्धः सावित्रः
१८. ०तो

प्रत्येकं वृत्तबन्धिन्यादयस्तिस्रस्तथा त्रिधा ।
वर्णि[2][का गणिका] चैव मात्रि[3]केति भवन्ति[4] ताः ॥२३८॥
या वर्णै[5]रेव सम्बद्धा वर्णिका सा निगद्यते ।
यदि वर्णगणैर्बद्धा गणिकेति मता सताम् ॥२३९॥
मात्रागणैर्निबद्धा[6] चेन्मात्रि[7]केति प्रकीर्तिता ।
इत्येवं दश सञ्जाताः प्रत्येकं तास्त्रिधा पुनः ॥२४०॥
समालंकारविषमालंकाराभ्यां ततः परम् ।
चित्रालंकरणेनापि त्रिंशत्स्युस्त्रिगुणत्वतः ॥२४१॥

॥इति त्रिंशड्ढेङ्क्यः॥

[वर्तनी]

लक्षणं करण[10]स्यैव व[11]र्तन्याः किन्तु तद् ब्रुवे ।
ध्रु[12]वोद्ग्राहौ[13] स्वरैस्साध्यौ[14]वाभोगः पदनिर्मितः ॥२४२॥
कङ्काले[15] प्रतिताले वा कु[16]डुक्के प्रतिमण्ठके ।
एतेष्वेके[17]न तालेन विलंबितलयाश्रयात् ॥२४३॥
गेयो वाग्गेयकारेण गानक्रम[18]स्त्वथोच्यते ।
गीत्वा द्विवारमुद्ग्राहं ध्रुवाभोगौ सकृत्पुनः ॥२४४॥

---

१. ०भेदि०
२. ०र्ण····
३. ०तृ०
४. ०वान्ति
५. ०भेदा व०
६. ०धाश्चे०
७. ०तृके०
८. ०सु त्रि०
९. ०शदंकः
१०. ०णं चैव
११. एतस्यां
१२. ततो०
१३. ०हः ध्रुवैस्साः०
१४. ०यैः आभोगपद०
१५. ०ल०
१६. कुण्डुरे
१७. ०कैकता०
१८. ०मं यथो०

करणानी[1]त्येव तानि प्रत्येकं त्रिविधं मतम् ।
मङ्गलारम्भ आनन्दवर्धनं[2] कीर्तिपूर्विका ॥२२४॥

लहरीति, क्रमा[3]द् गानक्रिया चेदेव तद् ब्रुवे ।
गीत्वा द्विवारमुद्ग्राहं ध्रुवा[4]भोगौ सकृत्ततः ॥२२४॥

एकवारं क्रमात् सर्वं गीयते चेत्तदा बुधैः ।
मंगलारम्भ इत्युक्तो [5]भेदः प्रथमसंभवः ॥२२५॥

गीत्वा द्विवारमुद्ग्राहं ध्रुवं सकृदतः परम् ।
ध्रुवं च पश्चिमार्धं[6] च तत्पदं प्रतिलोमतः ॥२२६॥

आभोगश्च ध्रुवस्तस्मादुद्ग्राहो यदि गीयते ।
सकृदेव त[7]दानन्दवर्धना[8]ख्यं द्वितीयकं[9]म् ॥२२७॥

आनन्दवर्धनोद्ग्राहद्वितीयार्धं[10] ध्रुवादिमे ।
अर्धस्थाने गीयते चेत्सा कीर्तिलहरी मता ॥२२८॥

तृतीयो भेद इत्युक्तः क्रमेणानेन तेन वा ।
प्रत्येकं त्रिविधत्वेन स[11]प्तविंशतिधा ययुः ॥२२९॥

इति भेदैस्सम[12] सप्तविंशति[13] करणं मतम् ।

[इति करणम्]

[14]ढेंकी प्रबन्धः

द्विर्गीत्वोद्ग्राहपूर्वार्धं तृतीयार्धं सकृत् पदैः ॥२३०॥

---

१. ०नीन्येव
२. ०नः कीतिपूर्वकः
३. ०दान०
४. ०वोभोगो
५. भेदप्र०
६. ०र्थं
७. रतो नन्द०
८. ०नार्थं
९. ०कः
१०. ०र्थं
११. ०त वा शतधा ययुः
१२. ०मा
१३. ०तीक०
१४. इति प्रबन्धलक्षणम्

*इति स्वरकरणम् [१]

उद्ग्राहः स्यात् स्वरैस्तद्वद् हस्तपाटैर्ध्रुवो भवेत् ।
आभोगः स्यात्पदैस्तत्र पूर्ववत् स्युर्ग्रहादयः ॥२१२॥

इति पाटकरणम् [२]

यत्रोद्ग्राहो हस्तपाटैः[१] स्वरैरेव ध्रुवो यदि ।
आभोगस्तत्र[३] वै कार्यो यथापूर्वं ग्रहादयः ॥२१३॥
इत्युक्ते सति †शास्त्रेऽस्मिन् व्यत्यासकरणं मतम् ।

[इति व्यत्यासकरणम्–३]

स्यादुद्ग्राहः स्वरैस्तत्र ध्रुवः स्यान्मुरजाक्षरैः[४] ॥२१४॥
पदेनाभोगरचना पूर्ववत् स्युर्ग्रहादयः ।
इत्येवं बध्यते येन तद्[५] बन्धकरणं मतम् ॥२१५॥

इति बन्धकरणम्[६] [४]

पदोद्ग्राहः[७] स्वरैरेव पदैरत्र ध्रुवो मतः ।

[इति पदकरणम्–५]

*[उद्ग्राहस्तु स्वरैर्यत्र विरुदैश्च ध्रुवो मतः ॥२१६॥

---

* 'स्वकरणे' रासाख्यतालोऽभिमतो 'रासस्तालो द्रुतोलयः' (सं० र ४।१३५) —इति वचनात् ।

†अस्मिन् 'सङ्गीतसूर्योदयशास्त्रे' स्वतन्त्ररूपेण व्यत्यासकरणं मतं न तु सङ्गीतरत्नाकरादाविति भावः ।

* 'यत् स्वरैर्विरुदैर्बद्धं करणं विरुदादि तत्' (सं० र० ४।१३८ इत्यनुसृत्य पाठयोजना विहिता ।

१. ०व्यस्तपादैः ध्रु०
२. ०दै०
३. ०व
४. ०कैः
५. तत्सद्ध क०
६. लद्ध०
७. अ०
८. ०हस्व०

रागादि[2]नियमस्तत्र [3]वर्णैलावन्नियोजयेत् ।
इत्येवं षट्प्रकारस्याश्रयणे द्विगुणं भवेत् ।।२००।।
†
अनया क्रियया क्रा[4]न्तं दे[5]शैलानां शतद्वयम् ।

[इति देशैला]

सर्वसंख्यामि[6]हैलानां यथोक्तां ब्रूमहेऽधुना ।।२०१।।
नादावत्यादयस्तत्र चतस्रो, वि[7]कृताः पुनः ।
उक्तास्त्रिनवतिस्[8]तस्याः प्रोक्ताः पंचदश त्व[9]थ ।।२०२।।
मा[10]त्रैला विंशतिस्तत्र वे[11]णैलाद्वादशद्वयम् ।
[12]देशैलायां तु कर्णाटी[13]मुखाः पंच पृथक् पृथक् ।।२०३।।
[14]छन्दस्वतीत्वमासाद्य तद्द्वैगुण्यमुपाययुः ।
चत्वारिंशद्भिदास्तेन शतद्वयमुदीरितम् । २०४।।
उक्तैलायां तु संख्येयं[15] षट्पंचाशद्युतं मतम् ।।
शतत्रयमिदं लोकव्यवहारक्षमं[16] भवेत् ।।२०५।।
अयमेलाप्रब[17]न्धस्तु धातुभिस्त्रिभिरंचितः ।
मतान्तरे [18]चतुर्धातुर्मेलापकवशादयम् ।।२०६।।

---

† सङ्गीतरत्नाकरे तु अस्मिन्नेव स्थले—"द्वावङ्घ्री प्रासहीनौ स्तस्तृतीयः प्राससंयुतः । (४।१२९-१३०) ध्रुवाभोगौ च तेषु स्युश्चतस्रो यतयः पृथक् वर्णैलावत् परं यस्यां स वस्त्वेला निरूपिता एवं वस्त्वेला वर्णिता ।"

१. ना०
२. ०विति यम०
३. वर्णरागं वियो०
४. का०
५. त्रिश्वैलानाञ्च तद्वयम्
६. ०म०
७. विस्तृताः
८. ०स्तायाः
९. स्वधा
१०. मतैला
११. दैनलाद्या दश०
१२. दशै०
१३. ०टी मु०
१४. त्सन्दस्पतिं संप्राप्य
१५. ०यष०
१६. यं
१७. ०भाधन्यधातु०
१८. चतुर्भेदा वंशादि नियमादियम्

प्रथमे चरणद्वन्द्वे षट्[1]कामगणास्तदा ।
एको बाणगे[2]णः कार्यस्तृतीयेंऽघ्रौ तु ते गणाः ॥१८४॥

अष्टौ स्युरंघ्रित्रितयेऽप्यादिमध्यावसानभाक् ।
अनुप्रासो भवेदत्र विरिंचेरुत्तरा[3]स्यतः ॥१८५॥

जन्मयुक्त्युक्तलक्ष्माङ्क[4]पूर्वा भद्रावती यदा ।
भवेत्तदा भद्र[5]लेखेत्युच्यते लक्ष्मकोविदैः ॥१८६॥

चतुर्थी कथिता तस्मात् पंचमी तु निगद्यते ।
एलान्वितासु चतसृष्वेकैकं चरण[6]त्रये ॥१८७॥

पंच का[7]मगणाः कार्या रतिरेकस्ततः परम् ।
एकः कामो यदि भवेच्छन्दे[8]स्वत्य इतीरिताः ॥१८८॥

ताश्छन्दे[9]स्वत्य एवात्र न्यूनमात्रागणत्वतः ।
एलाभासा[10] इति प्रोक्ता गणमात्राधि[11]केन च ॥१८९॥

एलाभासा भवन्त्येव षट्प्रायं पंचमी[12] मता ।
पादान्ते पादयोरन्ते पादानामन्तिमस्थले ॥१९०॥

पदं तृतीयांघ्रिसमं पुनः पूर्त्यै नियोजयेत् ।
[13]शिखापदमित्युक्तं [च] कार्या[14] मेलापकादयः ॥१९१॥

अन्ते मेलापकाभावात् कर्तव्यं षडितीरिताः ।
कर्णाटकेषु कर्तव्यं[15] मुद्ग्राहादिचतुष्टयम् ॥१९२॥

---

१. ०षण्णव०
२. ०गु०
३. ०रा ततः
४. ०ङ्कापूर्वाथ द्रा०
५. ०द्र लभौत्यु०
६. ०णं त्र०
७. ०वर्गे०
८. ०दोवत्य
९. ०दोवत्य
१०. ०स इ०
११. ०दि०
१२. ०मा
१३. रवदा०
१४. ०र्यमे०
१५. यं टिद्ग्रा०

कान्तिमत्यादयस्तत्र द्वादशा[1]न्यैर्निरूपिताः ।
तथाष्टादशवर्णाद्या[2]स्तत्संख्यामात्रिका युताः ॥१६८॥
भवन्ति [3]चेत्तदा वर्ण–मात्रैला इति कीर्तिताः ।

॥इति वर्णैलालक्षणम्॥

[देशैला]

[4]देशैला पंचधा प्रोक्ता भेदान्तरविराजिता ॥१६९॥
कर्णाटलाटगौडा[5]न्ध्रद्राविडानां च भाषया ।
पृथक् पृथग्[6] भवन्त्येतास्तत्र कर्णाटकेषु षट् ॥१७०॥
ब्रूमहे तास्तावदत्र पूर्वा नादावतीमुखाः ।
एला एलादिकं लक्ष्म प्राप्य या[7]न्त्यभिधान्तरम् ॥१७१॥
ताः [8]किल मण्ठतालादितालैर्गेयास्ततः परम् ।
विशेषः कथ्यते तासां शेषत्वेन पृथक् पृथक् ॥१७२॥

[कर्णाटैला]

[कर्णा][9]टैलादिमध्यान्तवर्त्यनुप्रासभूषिता ।
तत्राद्यपादौ द्वौ स्यातामाद्यानुप्राससंज्ञितौ[10] ॥१७३॥
तयोराद्यं[11] भवेत् पूर्वमुक्तं कामग[12]णद्वयम् ।
ततो रतिगणस्त्वे[13]कस्तथांत्रौ च तृतीयके[14] ॥१७४॥

---

१. ०शान्ते नि०
२. ०द्या त०
३. चेत्वथान्या मात्रे ला
४. द०
५. ०डादि द्रा०
६. ०क्
७. याप्य०
८. कलं
९. ····दैलादिमत्यां तु कृष्णानुप्रास-भूषिता ।
१०. ०ता
११. ०द्या
१२. ०गुण०
१३. त्वेकश्चतुर्णोथ
१४. ०कम्

त्रयस्त्रिंशत्कलास्तद्वद्[1] द्वितीये च तथा भवेत् ।
तृतीये चरणे ज्ञेयास्[2]त्रिंशन्मात्रा[3]: कला बुधैः ॥१५३॥

चन्द्रले[4]खा तु मिश्रा स्याद्रतिकामशरैर्गणैः ।
चतुश्चत्वारिंशद[5]द्वयोश्चत्वारिंशत्तृतीयके ॥१५४॥

❀इति कात्यायनीशास्त्रान्मात्रैला परिकीर्तिता ।
अथार्जुनमते प्रोक्तं भेदान्तरमथोच्यते ॥१५५॥

रतिले[6]खादयो यत्र स्वयं रतिगणोदितम् ।
विहाय नियमं स्वस्वमात्रायुक्ता भवन्ति चेत् ॥१५६॥

नन्दिनी चित्रिणी चित्रा विचित्रेत्यभिधानतः ।
चतस्रस्स्युस्तदा तत्र रतिकामा[8]ख्ययोर्यदि ॥१५७॥

आद्ये तृतीय-पादे तु विपर्यस्ताविती[7]रितौ ।
ततो नन्दिमतादैला[9]श्चतस्रः परिकीर्तिताः ॥१५८॥

आद्ये[10]न्दुमती ज्योतिष्मती पश्चान्नभस्वती ।
ततो वसुमती चेति तासां लक्षणमुच्यते ॥१५९॥

इन्दुमत्यां[11] भवेदत्र [12]तान्तं [13]छगणपंचकम् ।
ज्योतिष्मत्यां भवेदस्यां[14] चान्तं पगणपंचकम् ॥१६०॥

❀ साम्प्रतं कात्यायनीशास्त्रस्यावगमो नास्ति ।

१. ०त्
२. ०या त्रिं०
३. ०त्रा क०
४. ०रे०
५. ०त्रिचतुश्च०
६. ०रे०
७. जै०
८. ० का०
९. ०ला च०
१०. ०द्यौ दुर्मध्यमा ज्यो०
११. ०या
१२. तातं
१३. भ०
१४. ०या जातं

वह्निजा, वारुणी[1] वह्निवारुणीति क्रमाद् गणाः ।
तगणौ[2] यगणौ चाथ [3]रयौ च परिकीर्तितौ ॥१४२॥

पूर्ववद् वासवी-भेदौ[4] वह्निजा वारुणीति च ।
क्रमा[दा]दौ [5]रयगणौ, प्रत्येकं पंचभे[6]दिताः ॥१४३॥

इति ना[7]दावती, [8]हंसावती, नन्दावती त्रि[9]धा ।
भवन्त्यष्टोत्तरशतं विविच्य [10]गणलक्षणम् ॥१४४॥

*सा[11]मान्यतो [12]भवेदङ्घ्रौ [13]गणादिनियमावधिः ।
[14]स च खण्डद्वये कार्यः[15] [16]पदे नाऽन्यत्र कुत्रचित् ॥१४५॥

[इति गणैलालक्षणम्]

[मात्रैला]

अलंक[17]रोति मात्रैलालक्ष्म[18] वाग्गेयकारकः[19] ।
मात्र[20]लाऽत्र चतुर्धा[21] स्याच्छन्दोमात्रयुतत्वतः ॥१४६॥

---

* अस्यैव अध्यायस्य सप्तसप्ततितमस्य श्लोकस्य तात्पर्यमत्राऽपि स्मर्यते ।

१. ०णा
२. णो यगणश्चाथ
३. तरमौ
४. ०दा
५. त्रयगणा
६. ०मो०
७. गा
८. सांसा०
९. भि०
१०. स्वरल०
११. सौमान्येता
१२. भवेदङ्गी
१३. तत्राङ्गादिगणाधिका
१४. ताश्च
१५. ०र्या
१६. पक्षे
१७. ०का०
१८. ०मवा०
१९. ०का
२०. ०त्रेलात्र
२१. ०र्था

द्वितीये[1] न विना तद्वच्चतुर्णां तु, विकारतः ।
एला भवेन्महानन्दा तृतीयेन विना तथा ॥१२७॥

अन्येषां तु विकारेण सैषा[2]थ लहरी भवेत् ।
चतुर्थेन विनान्येषां विकाराच्च[3] जया भवेत् ॥१२८॥

अ[4]न्त्यं त्यक्त्वा विकारेण चतुर्णां कुसुमावती ।
इत्युक्ता[5]श्चतुराभेदास्त्वेकधा[6] बाणसंज्ञिका ॥१२९॥

पंचानां च विकारेण सा भवेत् पार्वतीप्रिया ।
ए[7]कत्रिंशदिमे भेदा नादावत्यास्ततः परम् ॥१३०॥

एवं हंसावतीनन्दावर्त्यो[8]ः प्रत्येकमीरिताः ।
शेषाः पंच वसन्त्यत्र भेदास्तान् ब्रू[9]महेऽधुना ॥१३१॥

गणद्वयविकाराद्[10]या संगता त्रिविधा मता ।
❀[भद्वयस्थानतामाप्ता सावित्री जद्वयान्विता ॥१३२॥

भद्वये विकृते चैवं सगणाभ्यां पावनी स्मृता ।]
भ[11]चतुष्टयमध्ये तु भवेतां भौ[12] जसौ, ततः ॥१३३॥

❀ पाठप्रस्तावनाधारः—"भगणद्वयस्य स्थाने सवितृर्गणे सवितृदेवताके जगणे क्षिप्ते; भगणविकारत्वेन जगणद्वये न्यस्त इत्यर्थः; तदा सावित्री नाम सङ्गताभेदः। तथा पवनस्य गणे सगणे पूर्ववत् क्षिप्ते सति पावनी नाम सङ्गताभेदः" ।— (सं० र० ४/९० कलानिधिः)

१. ०या न वि०
२. ०षामल०
३. ०द्योजना
४. प्रत्यं
५. ०क्त्वा च०
६. ०दा
७. इत्येकत्रिंशमध्ये तु
८. ०पत्योः
९. ब्रूमसाधुना
१०. ०द्यास्सं०
११. शेषचित्रय०
१२. द्वो जनौ

र[1]मा मनोरमा चैवोन्नता शान्तिश्च नागरा ॥११२॥
❀

[गणानां प्रथमादीनां विकारात् पञ्चमावधि] ।
त[2]त्राद्यस्य विका[3]रेण र[4]मा त्वेला भवेदथ ॥११३॥
[5]द्वितीयस्य विकारेण भवेदे[6]ला मनोरमा ।
[7]तृतीयस्योन्नता प्रोक्ता तु[8]र्यस्य शान्तिरुच्यते ॥११४॥
[9]नागरा पञ्चमस्योक्ता वासवीति निरूपिता ।
दशभेदाः सङ्गतायाः, प्र[10] द्वितीयविकारतः ॥११५॥
रमणीया भवेद्[11] द्वित्रिविकाराद् विषमा मता ।
सम[12]ा विकारात्प्रचयोर्लक्ष्मीः[13] स्यात्[14] प्रपयोरथ ॥११६॥
प्रथमादिविकारस्था भेदाश्चत्वार एव ते ।
द्वितीयस्य तृतीयस्य विकारात् कौमुदी मता ॥११७॥
द्विचतुर्थविकारेण [15]ह्येला क[16]ामोत्सवा मता ।
द्विप[17]योश्च न[18]न्दिनी स्याद् गौरी[19] स्यात् त्रि[20]चयोस्तथा[21]
॥११६॥
विकारेण भवेत् सौम्या[22] ततश्च तपयोस्तदा ।

❀ प्राप्तपाण्डुपुस्तकेऽत्र 'त्रिसंख्या ⋯ स्वादिवर्ण ⋯ ग्रहणेद्यते' एवमुल्लेखो वर्त्तते ।

१. रमा
२. तत्रार्यस्य
३. ०कार्येण
४. रम्ये मेला
५. गणद्वयवि०
६. ०द्वेला
७. त्रिभिर्गणैरुन्नता सा
८. चतुर्भिश्शा०
९. अद्यैव नागरा प्रोक्ता
१०. प्रवितीर्य विकारता
११. ०त्वं च विका०
१२. ०मादिका०
१३. ०म०
१४. ०दावयोरधः
१५. ०एका
१६. लामो०
१७. ०त०
१८. बिकारेण
१९. ०रे
२०. ०त्रित०
२१. ०दा
२२. ०य

ऋग्[1]वेदजा सिता विप्रा[2] कैशिकीं वृत्तमागता ।
[3]पांचाली रीतिर्वाग्देव्या[4]ः प्रीत्यै शृंगारवर्धि[5]नी ॥१००॥

[इति नादावती]

[हंसावती]

हंसावती स्याद्[6]रगणैः सान्तैः[7] पंचभिरेव[8] च ।
द्वितीयताले हिन्दोल[9]-रागे स्यात्क्ष[10]त्रवर्णजा ॥१०१॥
यजुर्भवाङ्क्षे[11]नापन्नारभटीं वृत्तिमाश्रिता ।
ला[12]टीरीतिं समाश्रित्य रसे रौद्रे प्रवर्त्तते ॥१०२॥
च णि[13]डका-[14]प्रीतये गेया मन्मथज्वरशान्तिदा ।

[इति हंसावती]

[नन्दावती]

नन्दावती च[15] तगणैर्जान्तै[16]र्मालव[17]कैशिके ।१०३॥
प्रतितालेन सामोक्ता वैश्या पी[18]ताऽथ सा[19]त्त्वतीम् ।
वृत्तिं समाश्रिता गौडी[20] रीतिर्विचित्रसात्त्विका ॥१०४॥
इन्द्राणीदेवताप्रीत्यै[21] गेया युद्धमुखे बुधैः ।

---

१. घादाजासिता
२. ०प्र०
३. पापाटकीति वा०
४. ०या प्रीत्या
५. ०वर्तिनी
६. स्यात्तु गणैः
७. ०न्ते
८. ०विधास्त्रिवा
९. ०लं०
१०. ०क्षेत्रवर्णजाम्
११. ०ङ्क्षोना०
१२. मादिरी०
१३. ०न्द्रि०
१४. ०द्वितये
१५. जतिग०
१६. जातिर्मा०
१७. ०विकैशिकी
१८. पित्राथ
१९. ०त्वितम्
२०. ०ड०
२१. ०ता

भवन्ति ते वर्णगणा[1] भान्ता[2] मयरसतजाः[3] ।
लपूर्वास्तत्र[4] चत्वारो[5] रत्याख्यादिति शेषिताः ॥८८॥

तदा[6] कामगणाः प्रोक्ता मात्रानामसमन्विताः[7][8] ।
रतिबाणगणान्[9] ब्रूमः संज्ञासंख्यांकनामकान्[10] ॥८९॥

[11]छपचास्तु तदौ तत्र षडाद्येकैर्हीनतः ।
ते षट्[12] पंचचतुस्त्रिद्विमात्राभिः परिकीर्तिताः ॥९०॥

अथाभिदध्महे[13] छन्दो मात्रागणविभेदतः ।
अत्युक्तायास्तु चत्वारो भेदा रतिगणाह्वयाः[14] ॥९१॥

गौ[15] लगौ च[16] गलौ लावित्येवं रूपचतुष्टयम् ।
स्यातां तत्र लपूर्वादौ तत्रादावधिको[17] लघुः ॥९२॥

भवेद्यदि तदा ते च क्रमाद्रतिगणा मताः ।
प्रतिष्ठायां तु चरणे प्रथमे गचतुष्टये ॥९३॥

प्रस्तुते [च] लचतुर्णां[18] भेदाष्षोडश कीर्तिताः ।
तेषु द्वितीयादिसमा लघुपूर्वा भवन्ति ते ॥९४॥

तदा बाणाख्यया मात्रा[19]-गणाः स्युर्गीतलक्षणे ।

---

१. ०गु०
२. णान्ता
३. ०सादयः
४. ०स्त्रिषु
५. ०रः त्रिस्स्युरादिति
६. ता०
७. ०म स०
८. ०ता
९. रिजमाण०
१०. ०कम्
११. चपचाश्रतवा तत्र
१२. ०ट् पञ्च
१३. ०हेत्सन्दो
१४. ०या
१५. गालगा
१६. चगता ला०
१७. ०रो
१८. ०षां
१९. ०त्रा गु०

[गणमात्रावर्णदेशविशिष्टैलाचतुष्टयम्] ।
गणानां लक्षणादीनि साङ्गान्यथ वदा[1]म्यहम् ।।७७।।

ग[2]ण: समूहवा[3]चो स्यात् स द्विधा परिकीर्तितः ।
वर्णमात्राद्वि[4]भेदेन तयोर्लक्षणमुच्यते ।।७८।।

[वर्णगणाः]

आदिमध्यावसानेषु यरता यान्ति लाघवम् ।
भजसा गौरवं यान्ति मनौ तु गुरुलाघवौ ।।७९।।

वेदे तु मयरसा[5]श्च त [ज] भा[6] न इतिक्रमा[त्] ।

[इति वर्णगणाः]

[वर्णगणदेवताः]

एतेषां देवता[7]: पृथ्वो जला[8]ग्नो मरुदम्बरे ।।८०।।

—निरूपिताः । ततो 'वर्णमात्राद्विभेदेनेति'—द्विविधगणविवेचनं सङ्कल्प्याऽपि मात्रागणानां लक्षणानन्तरं प्रथमोक्तवर्णगणवर्णनं विहायैव गणैलाः सविस्तरं परिलक्षिताः । तत्र शुद्धगणैलास्तु प्रागेव वर्णिता अतो 'गणैलालक्षणं' तावद् वक्ष्ये भेदसमन्वितम्' इति व्याहृत्य 'शुद्धा च विकृता चैव सङ्कीर्णा इति तत्र च' एवं गणैलात्रैविध्यं निदर्श्य विकृतानां गणैलानां व्याख्यानं कृतम् । ततो दीर्घान्तरालेन वर्णगणाः स्मृताः । पश्चाच्च मात्रैला विवेचिताः ।

सर्वममु क्रमभङ्गप्रसङ्गं विविच्य क्रमादेवात्र गणलक्षणं, वर्णगणाः, मात्रागणाः, गणैलाभेदाः, शुद्धगणैला, विकृतगणैला, पुन मात्रैलाश्च उपनिबध्यन्ते ।

१. ०हा०
२. गु०
३. ०दा०
४. ०दि०
५. ०स०
६. ०भास इ०
७. ०ता ख्याता
८. ०ग्नि०

एकादशे पदे पू[1]र्वपादादिपदवद् भवेत् ।
दीप्तप्राणो, गीतकाख्यं गौरी स्याददधिदेवता ॥६३॥
सोमे[2]श्वरमते धातुचतुष्टयसमन्विते ।
उद्ग्राहोऽयं भवेदेवमेकादश[3]पदात्मकः ॥६४॥
द्वादशे तु पदे पूर्वं[4] प्रयोगयुगलं[5] प्रति ।
धातुर[6]न्यो भवेदत्र सम्बोधनपदं तथा ॥६५॥
उ[7]चितसंज्ञं, प्राणः स्यात् समाहि[8]त इतीरितः[9] ।
ब्राह्मीतिदेवता तज्ज्ञाः प्राहुः परमिदं पद[10]म् ॥६६॥
मेलापको धातुरयमु[11]द्ग्राहान्यतरत्वतः ।

इति मेलापक[12]:

एवं त्रयोदशं ज्ञेयं येन केनापि धातुना ॥६७॥
तस्य मध्य[13]लयो[14]ऽग्राम्यप्राणसंज्ञा विचित्रितम् ।
मातंगी देवता तस्य तद् ध्रुवादिपदं भवेत् ॥६८॥
❀

चतुर्दशपदं तत्र तथा मध्यलयान्वितम् ।
ध्रुवादिपदव[15]द् धातुः प्राणस्तु सुकुमारकः ॥६९॥
तत्संज्ञा[16] वासवा[17]ख्या स्याच्च[18]ण्डिकेत्यधिदेवता ।
पदमेवं द्वितीयं स्यात्तृतीयं स्यान्निरूपितम् ॥७०॥

❀ प्राप्तपाण्डुपुस्तकेऽत्र 'इति ध्रुवान्यप्रथमपदम्'—एवं लिखितं वर्त्तते ।

१. पूर्वा०
२. ०मस्व०
३. ०श तदात्मिका
४. ०र्वा प्र०
५. ०ळं
६. ०रस्या
७. सुचितसंज्ञः
८. ०जात
९. ०ताः
१०. ०रम्
११. मुद्राहस्ताथ भावतः
१२. ०कम्
१३. ०या०
१४. ०यो ग्रा०
१५. ०पद्धातुः
१६. ०ज्ञावा०
१७. ०नाभ्यासात्
१८. संदिशेत्य०

एलानामपि[1] सर्वासां त्रिपा[2]दत्वमनन्यथा[3] ।
एलायाः प्रथमे पादे गेयं स्यात्पदपं[4]चकम् ॥४६॥
आद्यं खण्डद्वयं तत्र सानुप्रासै[5]कधातुकम् ।
तन्नाम कामः प्राणस्तु दीप्तः पद्मालया[6]पि च ॥४७॥
देवता, पदमाद्यं तु, द्वितीयमिति कथ्यते ।
पदं प्रयोगरूपा[7]ख्यं[तत्प्रोक्तं]त्वपदान्वितम् ॥४८॥
*त्यक्त्वा सम्बोधनं[8] चैवाभिन्नं स्यात् पूर्वधातुना ।
तन्नाम [मन्म][9]थवत् स्यात् समानः प्राण ईरितः ॥४९॥
पत्रिणो[10]-देवता-युक्तं पदमेतद्[11] द्वितीयकम् ।
तत[श्च] पल्लवाख्यं[तु पद]त्रयमुदीर्यते ॥५०॥
प[12]दे चात्रादिमे मानं विलम्बितमितीरितम् ।
कान्तस्तु पदनाम्ना[13] स्यान् मधुरः प्रा[ण उच्य]ते ॥५१॥
[14]रंजनी देवता तस्य पदं प्रोक्तं तृतीयकम् ।
ततः परं चतुर्थं तु पल्लवाख्यं विलम्बितम् ॥५२॥
मा[15]नं, प्राणस्तु सान्द्रः स्याज्जितनाम ततः पदं[16]म् ।
देव[ता सुमुखी]तत्र चतुर्थे[17] स्यात् पदे क्रमात् ॥५३॥

---

* सम्बोधनं त्यक्त्वा अपदान्वितं प्रयोगरूपं द्वितीयं पदं पूर्वधातुना अभिन्नं स्यात्। पूर्वधातुतुल्यमपदमपि सम्बोधनपदयुक्तं भवेदित्यर्थः ।

१. ०तासाम०
२. ०वार०
३. ०धा
४. ०पंकजम्
५. ०स्यै०
६. ०योऽपि
७. ०पाध्यायाते
८. नत्वेनाभि०
९. ····घवस्तस्य
१०. ०णो
११. ०त्
१२. पदेनात्रादिमे
१३. ०म्नो स्या०
१४. रज०
१५. यानं
१६. ०र०
१७. ०र्थः

एलाकरण[1]ढेंकीभिर्वर्तन्या झोम्बडेन च ।
[2]लम्भरासैकतालो[3]भिरष्टभिः[4] [सूड] उच्यते ॥६॥

[आलिप्रबन्धः]

वर्णो वर्णस्वैरो[5] गद्यं [6]कैवाडश्चाङ्क[7]चारिणी ।
[8]कन्दस्तुरगलीला च गजलीला [9]द्विपद्यपि ॥८॥

चक्र[10][वालः क्रौंचपदः]स्व[11]रार्था ध्वनि[12]कुट्टिनी ।
आर्या गाथा[13] द्विपथ[14]कः कलहंस[15]श्च तोटकम् ॥९॥

घं[16]टो वृत्तं मातृ[17]का च ततो रागकदम्बकः ।
पंचतालेश्वरस्तो[18]लार्णव इत्येषु कश्चन ॥१०॥

[19]सूडक्रमस्य मध्येऽस्मिन्न[20]सावालिक्रमो भवेत् ।
सूडा[21]लिक्रमसम्बन्धाद्[22] द्वात्रिंशदिति कीर्तिताः ॥११॥

[इत्यालिप्रबन्धः]

---

१. डिकीचंकर्यक्तीन्यामां भधेन च
२. अंभ्ररा०
३. ०ला०
४. ०भि....आच्युते
५. ०सरोगद्य०
६. शेवाकश्चाङ्क
७. ०वारिणः
८. कन्दस्तु०
९. च गव्यटी
१०. कुह……
११. दूध्वोंध्वं०
१२. ०निनिकु०
१३. ०धा
१४. ०पदकः
१५. ०सश्रृ····धिकः
१६. यदा
१७. ०लि०
१८. ०स्थान नव
१९. सूदक्रमन्य०
२०. स साडा च क्रमो
२१. ०ढा०
२२. ०त्

[प्रबन्धजातयः]

अथोच्यन्ते प्रबन्धानां[१] जातयो[२] गुणनामतः ।
मेदिनी नन्दिनी चैव दीपनी[३] भावनी तथा ॥३२॥
तारा[४]वलीति पंचैते प्रबन्धानां तु जातयः ।
अङ्कैः षड्भिर्मेदिनी स्यात् पंचभिर्नन्दिनी मता ॥३३॥
चतुर्भिर्दीपनी[५] प्रोक्ता स्यात्त्रिभिर्भावनी ततः ।
द्वाभ्यां तारावलीत्येवं जातिसंज्ञा निरूपिता ॥३४॥
तत्फलं ब्रूमहे शश्वद्गातृनेतृसुखप्रदम् ।
भूमिप्रदा मेदिनी स्यान्नन्दिनी कामदायिनी ॥३५॥
दीप[६][नी दीप्तिदात्री स्या]द्भावनी बुद्धिदायिनी ।
तारावली तु सुज्ञानप्रदा तेजस्करी मता ॥३६॥

[इति प्रबन्धजातयः]

[एलापदनामानि]

काममन्[७]मथवत्कान्तजितमत्[८]तविकारिणः ।
मान्धाता [सुमतिः शोभिः सुशो]भि[९]र्गीतकोचितौ ।३७।
विचित्रो[१०] [वासवमृदुसु]चित्रा इ[११]ति षोडश ।
नामान्येला[१२]पदानां स्युः षोडशानामनुक्रमात् ॥३८॥

[इत्येलापदनामानि]

---

१. ०ना
२. ०ये
३. ०पि०
४. ०ला०
५. ०पि०
६. ०पं····
७. ०वन्त्पद्यसत्कान्ता०
८. ०मन्तर्वि०
९. ०र्गतकोणतः
१०. ०त्रस्य
११. ०दिति
१२. ०ताप०

नामानि च मनःप्राण[1][वाचां]लक्ष्यक्रमाद् बुधैः ।
आदौ※ताले[2]ः स्वरस्तस्मात् पदपाटौ[3] ततः परम् ।।१८।।
तेनको विरुदश्चेति तत्र तेनपदे[4]ऽक्षिणी ।
करौ च[5] पाट[विरुदौ पादौ ताल] स्वरौ मतौ ।।१९।।
[पुरैवाखिलतालानां भेदाः सम्यङ् निरूपिताः]
स्व[6]रा[भिव्यक्ति][7]संयुक्ताः स्वरा[8]ः सरिगमाद[9]यः ।।२०।।
सुप्तिङन्तं[10] पदं प्रो[11]क्तं तद्धिते[12]नापि निर्मितम् ।
ब्रह्म ह्यु[13]द्दिश्य तेनेति शब्दस्तेनेति कथ्यते ।।२१।।
ओं[14] तत्सदिति निर्देशस्त[15]त्त्वमस्यादिवा[16]क्यतः ।
तदिति ब्रह्म [तेनायं] ब्रह्मणा मंगलात्मना ।।२२।।
†लक्षि[17]तस्तेन तेनेति [तेनकः समुदीरितः] ।
ततकारमुखेनैव गीतवाद्यादिषु स्वयम् ।।२३।।
प्रयुज्यते मंगलार्थं तेन [को गीत] वेदिभिः ।
पुरा······रेलादिरंजिता······य्यय ? ।।२४।।

※ संगीतरत्नाकरे प्रकरणेऽस्मिन् "स्वरश्च विरुदं पदम्" एवं रूपेण प्रथमं स्वरोद्देशो विद्यते किन्त्वत्र तालशब्दः प्रथमत्वेनोपनिबद्धः ग्रन्थस्यास्य प्रथमोध्यायोऽपि तालमेवादौ ध्यायति, मन्ये लक्ष्मीनारायणोऽयं तालं मुख्येत्वनांगीकरोति ।

† प्राप्तपाण्डुलिपावत्र 'लक्षितस्तेन तेनेति पाटो वाद्याक्षरोत्करः' इति सङ्गीतरत्नाकरोक्तम् (४।१८) अनुकृत्य 'तेनक'-लक्षणमध्य एव पाटो विनिवेशितोऽतः प्रकाश्यपुस्तकेऽस्मिन् यथाक्रमं तेनकानन्तरं पाटो लक्ष्यते ।

१. ०णा····
२. ०ल०
३. ०ठौ
४. ०देक्षणे
५. स्थपरि····
६. लका····
७. वियुक्ता स्यात्
८. ०रास्तु स०
९. ०दिभिः
१०. ०त०
११. ०पाटस्०
१२. ०तो वापि
१३. उद्दि०
१४. जां
१५. ०तत्समाख्यापि
१६. ०नामतः
१७. ०लित०

द्वादशावर्त्तललितं मन्द्राद्य[1](न्य ?)न्यासतां चरेत् ।
आभोगस्य [2]तथैव स्यादावर्तविषये गणे ॥६१८॥
न पल्लव धुर्ध्रूति[?]मुख[3]रीजनवादितैः ।
जारक्यादि भोभिः स्यात् सन्तर्बहुभिरुत्तरैः [?] ॥६१९॥
पात्रैस्त[त्त]द्देशजालंकारभूषणभूषितैः ।
छत्रचापग[4]दाकुम्भक्षुद्रचामरशृंगकैः ॥६२०॥
कुर्याल्लघुत्रययुतं[?] भवत्यानन्दवर्धनी ।

॥इति दे[5]शमंजरीलक्षणम्॥

स्त्रीपुंसयोरुत्तमयोस्संजातः कलहो यदि ॥६२१॥
दूत्यादिभिर्विना शान्तिं[6] यदा याति तदा जनाः ।
विनोदयन्ति[त]नृत्यन्ति विना[7] शाखां पृथक् पृथक् ॥६२२॥
इति क्रिया निबद्धा या सानर्थामंजरी स्मृता ।
अनर्थकैर्वृथोत्पन्ना वर्णैर्देशविलासजैः ॥६२३॥
प्रथमं पल्लवत्वेन तैरेव पदरूपवत् ।
पूर्वोक्ततालत्रय[8]गौ ध्रुवाभोगौ ततः परम् ॥६२४॥
परिरम्भादिसंरम्भस्ने[9]हवर्णस्वरूपतः ।
तत्रापि पल्लवे[10] न्यासः कैशिकीवृत्तिसम्भवः ॥६२५॥
पृथग्भे[11]दं पृथ[12]ग्बन्धं पृथक् [13]पदं यथाक्रमम् ।
प्रमाणक(ग ?)न्तुकं [14]पुण्यशुभवाणीकलाव[15]ती ॥६२६॥

---

१. मन्दाद्यान्या सताचरेत्
२. तदैव
३. ०खारिजनवाजितैः
४. ०गवाकूभ०
५. दश०
६. ०न्तिः यदा यान्ति
७. ०नाशाख्यां
८. ०यगा श्रुतभोगं
९. ०वे०
१०. ०वो
११. ०वे०
१२. ०गन्धं०
१३. प्रध
१४. पुष्प०
१५. ०हृति

सुविलासादियुक्तेषु[1] लयत्रयविभूषिता[2] ।
नर्तनत्रयसंयुक्ता[3] सानर्था मंजरी भवेत् ।।६२७।।

इत्य[न]र्थमंजरी

या[4] नायकमविश्वस्य दूतीनामपदेशिकम्[?] ।
दूतीकृत्या[5] सदा दुःखातुरा या पुरतस्सखीम्[6] ।।६२८।।
सखेलं वक्ति[7] रसिका किमियं[8] सालभंजिका ।
यथा[9] भित्तौ तथा त्वं च दृश्यसे[10] च पुनः पुनः ।।६२९।।
हास्यवाक्यकथायुक्ता सानर्थार्थिगमंजरी ।
प्रथमं[11] पल्लवं गीत्वा हास्यवर्णाक्षरै[12]रथ ।।६३०।।
किंचित्पदं ततो हास्यं पदहास्यं पुनः पदम् ।
एवं निरर्थसार्थाभ्यां गीत्वा वर्णत्रयेण ताम् ।।६३१।।
मुदे सा स्यात्पदेनैव न्यासः पल्लवजो[13] मतः ।
नर्त्तने पात्रयुग्मं स्याच्चक्रवाक्यसखी [?] तथा ।।६३२।।
जलबुद्बुदमन्येषां[?] कैशिक्यां मध्यमे लये ।

[इत्यर्थानर्थमञ्जरी]

।।इति त्रिधा मंजरी।।

माया[?]—यौ[14] वनगं भावं यो[15] गमयेद् गर्वसम्भ[16]वम् ।।६३३।।

---

१. सवेलासादि०
२. ०तम्
३. ०क्तं सा नृत्या
४. यानायकीम०
५. ०य
६. ०खी
७. वाप्यरसता
८. दं०
९. एराभितौ
१०. ०ते
११. ०मा
१२. ०रध०
१३. ०दो
१४. यद्धसनं
१५. योगमयन्०
१६. ०वः

तस्माद् यौवनगस्सोऽयमपभ्रंशे तु जोनगः ।
[1]कस्यचिज्जोनगाख्यस्य कवित्वं झाङ्करी मता ।।६३४।।

आत्मात्मानं न जानाति, यो जनोऽयं क्रमादिति ।
प्रोच्यते [2]यवनैः स्वस्थैर्लक्षणं-वक्ष्यतेऽधुना ।।६३५।।

सा झांकरी स्याद् दशधा घोटजालान्ध्रसिंहलाः ।
वरांगागारुभिः[?] सैन्धश्च पराणीशोति[?]गौ[3]र्जरा ।।६३६।।

समुद्र[4]मन्थनं चेति [?] भावं झाङ्करिकं ब्रुवे ।
महाश्चर्यपदी चैका सार्थानर्थसपल्लवम् ।।६३७।।

ततः परं दशावर्त्तमन्तरालेन गीयते ।
यथा पू····सवृद्धिमुद्रि····षष्टजा[?] ।।६३८।।

सात्त्वतीं वृत्तिमाश्रित्य मृषावादविरोधिनी ।
सर्जने चक्रवाद्यं स्यात्क्षुद्रचामरस[ङ्गता]···।।६३९।।

···[5]त्रयाविष्टभावे त्रिलयसंयुतम् ।
प्रभा[6]वस्तिमितान्याहुः पात्राणि धरणीपतिः[?] ।।६४०।।

उद्दिष्टदशभेदानां झांकरीलक्ष्म वर्णयेत् ।
तत्र भाषोदितगुणैर्विशेषो दृश्यते पृथक् ।।६४१।।

।।इति दशविधा झाङ्करी।।

---

१. कश्चिद्गोयवनाख्यस्य कपिशं
२. यतनैः
३. ०गैर्जरा
४. ०मथनञ्चेति भावझाङ्करिणं
५. श्री०
६. ०वतिमि

इति श्रीविप्रकुलवर्य-भ[1]ट्टार[क]-वि[ट्]ठेश्वर-नन्दन-सूक्ष्माभिनव-चरकार्य-तोड[2]रमल्लाभिनव-भ[3]रताचार्यश्रीलक्ष्मीनारायण-विरचिते सङ्गीतसूर्योदये प्रबन्धाध्यायः पञ्चमः समाप्तः ।

।।श्रीमते रामानुजाय नमः।।

।।श्रीरामायनमः।।

।।सम्पूर्णः सङ्गीतसूर्योदयः।।

---

१. ०भण्डारि०

२. ०न्द्रम०

३. ०चरकार्य०

बुधजलजविलासिनीं प्रतीक्ष्यां गुणनिधिविट्ठलसूनुसृष्टिमेताम् ।
शिवपदनतकामताप्रसादो नवलरुचिं समपादयत् समोदम् ।।१।।

सङ्गीतसूर्योदयशोधनेऽस्मिन् दोषाकुले कोऽपि गुणः क्वचिच्चेत् ।
तेनैव तुष्यन्तु मनीषिवर्या न सज्जना दोषदृशो भवन्ति ।।२।।

इन्दिराविश्वविद्यालये विश्रुते नादविद्यात्मके चारुखैरागढे ।
प्राप्य कान्तिं नवामेष सूर्योदयो लक्ष्मणाचार्यकीर्तिं चिरं द्योतयेत् ।।३।।

।। इति सङ्गीतसूर्योदयप्राच्यां पञ्चमः प्रबन्धाध्यायः ।।

परिशिष्ट क्रमाङ्कः-१

अनुद्रुतसंयोगमेरुचित्रणम्

(सङ्गीतसूर्योदये १/२१९-२६२) वर्णितसरण्या सम्पादकनिर्मितम् ।

	१ U	२ O	३ I	४ S	५ S̀	६ UO	७ UI	८ US	९ US̀	१० OI	११ OS	१२ OS̀	१३ IS	१४ IS̀	१५ SS̀	१६ UOI	१७ UOS	१८ UOS̀	१९ UIS	२० UIS̀	२१ UIS̀	२२ OIS	२३ OIS̀	२४ OSS̀	२५ ISS̀	२६ UOIS	२७ UOIS̀	२८ UOSS̀	२९ UISS̀	३० OISS̀	३१ UOIS̀
१	१	०	०	०	०																										
२	१	१	०	०	०																										
३	१	०	०	०	०	२																									
४	१	१	१	०	०	३																									
५	१	०	०	०	०	७	२																								
६	१	१	०	०	०	११	३	०	०	२																					
७	१	०	०	०	०	२०	४	०	०	०	०	०	०	०	०	६															
८	१	१	१	१	०	३२	५	०	०	३	०	०	०	०	०	१२															
९	१	०	०	०	०	५४	९	२	०	०	०	०	०	०	०	३२															
१०	१	१	०	०	०	८७	१३	३	०	७	२	०	०	०	०	६०															
११	१	०	०	०	०	१४३	१८	४	०	०	०	०	०	०	०	१३४	६														
१२	१	१	१	०	१	२३१	२४	५	०	११	३	०	२	०	०	२५१	१२														
१३	१	०	०	०	०	३७६	३५	६	२	०	०	०	०	०	०	५००	३२	०	६												
१४	१	१	०	०	०	६०८	४९	७	३	२०	४	२	०	०	०	९२२	६०	०	१२	०	०	६									
१५	१	०	०	०	०	९८६	६८	८	४	०	०	०	०	०	०	१७५४	१२२	६	२०	०	०	०	०	०	०	२४					
१६	१	१	१	१	०	१५९५	९३	९	५	३२	५	३	३	२	०	३२०७	२२१	१२	३०	०	०	१२	०	०	०	६०					
१७	१	०	०	०	०	२५८३	१३०	१३	६	०	०	०	०	०	०	५९३७	४१०	३२	५४	६	०	०	०	०	०	१८०					
१८	१	१	०	०	०	४१७९	१८०	१७	७	५४	९	४	०	०	०	१०७६७	७२७	६०	८६	१२	०	३२	६	०	०	३९०					
१९	१	०	०	०	०	६७६४	२४९	२२	८	०	०	०	०	०	०	१९६२८	१३०८	१२२	१३२	२०	०	०	०	०	०	९३६	२४				
२०	१	१	१	०	०	१०९४४	३४३	२८	९	८७	१३	५	७	३	२	३५३७७	२२९५	२२१	१९५	३०	०	६०	१२	०	०	१९४४	६०				
२१	१	०	०	०	०	१७७७१०	४७५	३५	१०	०	०	०	०	०	०	६३८६१	४०४६	४१०	३१०	५४	६	०	०	०	०	४१६२	१८०				
२२	१	१	०	०	०	२८६५५	६५६	४३	११	१४३	१८	६	०	०	०	११४५२७	७०३७	७२७	४७४	८६	१२	१३४	३२	६	०	८३४०	३९०				
२३	१	०	०	०	०	४६३६७	९०६	५२	१२	०	०	०	०	०	०	२०५३९८	१२२४४	१२९६	७१६	१३२	२०	०	०	०	०	१६९६८	९३६	२४			
२४	१	१	१	१	१	७५०२३	१२५०	६२	१३	२३१	२४	७	११	४	०	३६६९०२	२११४०	२२६५	१०६२	१९५	३०	२५१	६०	१२	६	३३२८८	१९४४	६०			
२५	१	०	०	०	०	१२१३९२	१७२७	७७	१७	०	०	०	०	०	०	६५५००८	३६४५३	३९५६	१६०२	२९८	४२	०	०	०	०	६५५४८	४१६२	१८०	२४		
२६	१	१	०	०	०	१९६४१६	२३८४	९५	२१	३७६	३५	११	०	०	०	११६६३४२	६२५६१	६८४२	२३८५	४४४	५६	५००	१२२	२०	०	१२६४३२	८३४०	३९०	६०	२४	
२७	१	०	०	०	०	३१७८१०	३२९१	११८	२६	०	०	०	०	०	०	२०७५२१८	१०७११९८	११८१८	३५३४	६५६	७२	०	०	०	०	२४३८५८	१६९०८	८७६	१२०	०	१२०

परिशिष्ट-क्रमाङ्कः–३

❀ एलापदविवरणचक्रम् ❀

॥ सङ्गीतसूर्योदये (५।४५-७५) वर्णितवीथ्या सम्पादकनिर्मितम् ॥

क्र०सं०	धातवः	चरणाः	पदनामानि	प्राणाः	देवताः	विनियोज्यरूपाणि	लयाः	विशेषः
१	उद्ग्राहः	प्रथमः	कामः	दीप्तः	पद्मालया	समधातुकं द्विखण्डान्वितम्		
२	,,	,,	मन्मथवत्	समानः	पत्रिणी	प्रयोगरूपाख्यं सम्बोधनपदान्वितम्		
३	,,	,,	कान्तः	मधुरः	रञ्जिनी	पल्लवाख्यम्	विलम्बितः	
४	,,	,,	जितः	सान्द्रः	सुमुखी	पल्लवाख्यम्	विलम्बितः	
५	,,	,,	मत्तः	कान्तः	शची	पल्लवाख्यम्	द्रुतः	
६	,,	द्वितीयः	विकारी	दीप्तः	वरेण्या	समाधातुकं द्विखण्डान्वितम्		
७	,,	,,	मान्धाता	समानः	वायुवेगा	प्रयोगरूपाख्यं सम्बोधनपदान्वितम्		
८	,,	,,	सुमतिः	मधुरः	वेदिनी	पल्लवाख्यम्	विलम्बितः	
९	,,	,,	शोभिः	सान्द्रः	मोहिनी	पल्लवाख्यम्	विलम्बितः	
१०	,,	,,	सुशोभिः	कान्तः	जया	पल्लवाख्यम्	द्रुतः	
११	,,	तृतीयः	गीतकः	दीप्तः	गौरी	समधातुकं द्विखण्डान्वितम्		
१२	मेलापक उद्ग्राहो वा	,, ,,	उचितः	समाहितः	ब्राह्मी	प्रयोगरूपाख्यं सम्बोधपदान्वितम्		
१३	ध्रुवः	,,	विचित्रः	अग्राम्यः	मातङ्गी	समधातुकम्	मध्यः	त्रयोदशपदतःपञ्चदश-
१४	,, ,,		वासवः	सुकुमारः	चण्डिका	समधातुकम्	मध्यः	पदपर्यन्तं यथेच्छं क्वापि स्तुत्य-
१५	,,		मृदुः	प्रसन्नः	विजया	भिन्नधातुकम्	विलम्बितः	नामाङ्कनं कुर्यात्
१६	आभोगः		सुचित्रः	ओजस्वी	चामुण्डा			षोडशे पदे वाग्गेयकार नामाङ्कनं कुर्यात्

[illegible]	[illegible]	[illegible]
	०	२४
	०	०
	०	६०
४	०	०
	०	१८०
०	२४	०
०	०	४५०
२०	६०	०
८०	६०	१११६
८०	१२०	०
२०	१८०	२५४४
३६	३३०	०
३०	४२०	५७५२
४४	८१६	०
८२	१०५०	१२५५२
१६	१८०४	०
६	४७	४८

परिशिष्ट - क्रमाङ्कः-२

विरामसंयोगमेरुः

सङ्गीतसूर्योदये (१/३५०-४२७ वर्णितसरण्या सम्पादक निर्मितः।

०।															
२	०।	०ऽ	०ऽ	ऽ।											
०	०	०	०	२											
३	२	०	०	०	ऽ।	ऽऽ	ऽऽ	।।	।ऽ	।ऽ	।ऽ	।ऽ	ऽऽ	०ऽ।	
०	०	०	०	०	२	०	०	०	०	०	०	०	०	६	
७	३	२	०	३	०	०	०	२	०	०	०	०	०	०	०ऽ।
०	०	०	०	३	०	२	०	०	०	०	०	०	०	१२	६
११	४	३	०	०	३	०	०	०	२	०	०	०	०	१२	०
०	०	०	०	४	०	०	०	०	०	०	०	०	०	३२	१२
२०	८	४	२	६	०	३	०	३	०	०	२	०	०	३०	१२
०	०	०	०	४	७	०	२	०	०	०	०	०	०	८०	२०
३२	१२	५	३	५	०	०	०	३	३	२	०	०	०	९०	३०
०	०	०	०	१०	०	४	०	०	०	०	०	०	०	१८२	६२
५४	१७	९	४	१०	११	०	३	४	०	०	०	२	०	२२५	६०
०	०	०	०	११	०	३	०	०	०	०	०	०	०	४२१	१३२
८७	२७	१३	५	१५	०	५	०	६	७	३	३	०	२	५४३	१६५
०	०	०	०	२०	२०	०	४	०	०	०	०	०	०	८४२	२५६
१४३	४०	१८	६	२२	०	६	०	९	०	०	३	०	०	१२६७	३६३
०	०	०	०	२७	०	६	०	०	०	०	०	०	०	२०९९	५७९
२३१	५८	२४	७	३५	३२	०	५	१०	११	४	०	३	०	२८८७	७४२
०	०	०	०	४३	०	१०	०	०	०	०	०	०	०	४६२८	१२००
३७६	८७	३५	११	४९	०	७	०	१६	०	०	४	०	०	६४८७	१६३१
०	०	०	०	६३	५४	४	९	०	०	०	०	०	०	१०१५३	२४०६
६०८	१२८	४९	१५	७९	०	१५	०	२०	२०	८	६	०	३	१४८००	३२९३
०	०	०	०	९२	०	८	०	०	०	०	०	०	०	२२१७२	५०२२
९८६	१८७	६८	२०	११२	८७	१०	१३	२७	०	०	४	७	०	३१७३४	६८९०
०	०	०	०	१४४	०	२१	०	०	०	०	०	०	०	४८२४०	१०२०८
१५९५	२७६	९३	२६	१७१	०	९	०	३६	३२	१२	५	०	३	६९८९८	१४२८३
०	०	०	०	२०४	१४३	२०	१८	०	०	०	०	०	०	१०४७०८	२०४०६
२५८३	४०५	१३०	३३	२५७	०	२८	०	४९	१०	०	१०	०	०	१५१६३८	२८९२४
०	०	०	०	३१६	०	१५	०	०	०	०	०	०	०	२२६७५४	४१६२२
८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३

०ऽऽ	०ऽऽ	०ऽ।							
०	०	६	०।ऽ	०।ऽ	०।ऽ	०।ऽ	०ऽऽ	ऽ।ऽ	
६	०	०	०	०	०	०	०	६	
०	०	१२	६	०	०	०	०	०	०।ऽ
१२	०	०	०	०	०	०	०	०	६
१२	०	३२	१२	०	६	०	०	१२	०
२०	६	०	०	०	०	०	०	१२	०
३०	०	७२	३२	६	१२	०	०	०	१२
५०	१२	०	०	०	०	०	०	३२	१२
६०	१२	१५२	६०	१२	२०	६	०	३०	०
११४	२०	०	०	०	०	०	०	२०	२०
१३५	३०	३११	१३४	३२	४२	१२	६	६०	३०
२२६	५०	०	०	०	०	०	०	९०	३[illegible]
३०३	६०	६२५	२५१	६०	८४	२०	१२	६०	३[illegible]
४५४	१०२	०	०	०	०	०	०	१५२	६[illegible]
६२२	१३५	१२२५	५००	१२२	१८६	४२	२०	१९५	[illegible]
९२७	१९६	०	०	०	०	०	०	२००	[illegible]
१२५६	२७३	२३७८	९२२	२२१	२५७	७२	३०	३२६	[illegible]
१८५२	४०६	०	०	०	०	०	०	४८०	[illegible]
२५३२	५३२	४५६६	१६४८	४२२	४५३	११६	५८	४९०	[illegible]
३६५६	७९२	०	०	०	०	०	०	७९५	[illegible]
५०८६	१०७६	८७००	३२०७	७५७	७८०	२०९	८६	१०५०	[illegible]
७१९६	१५१४	०	०	०	०	०	०	१२६०	[illegible]
९९४८	२०८७	१६४०५	५९३७	१३८६	१३२४	३४८	१४४	१०७७	[illegible]
१५०८७	२९८९	०	०	०	०	०	०	२४५३	[illegible]
२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३

ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽ।ऽ	ऽऽऽ	।।ऽ	।।ऽ	।ऽऽ	।ऽऽ	०ऽ।।						
०	०	०	०	०	०	०	०	२४						
०	०	०	०	०	०	०	०	०	०ऽ।ऽ					
०	६	०	०	०	०	०	०	६०	२४					
०	०	०	०	६	०	०	०	६०	०	००।ऽ	००।ऽ			
६	०	०	०	०	०	०	०	१८०	६०	०	२४	०ऽ।ऽ	००ऽऽ	०।।ऽ
०	१२	०	०	०	०	०	०	१८०	६०	०	०	०	०	२४
०	०	६	०	०	०	०	०	५७०	१८०	२४	६०	०	०	०
१२	०	०	०	१२	६	०	०	६००	१८०	०	६०	०	०	६०
१२	३२	०	६	०	०	०	०	१४७६	५१०	६०	१२०	२४	०	०
०	०	१२	०	१२	०	६	०	१८६०	६००	६०	१८०	०	०	१८०
२०	१२	०	०	०	०	०	०	३९०४	१३५६	१८०	३९०	६०	२४	०
३०	६०	०	१२	३२	१२	०	६	५०८२	१६८०	१८०	४२०	६०	०	८५०
२०	०	३२	०	०	०	०	०	१०१०८	३४८४	५१०	९९६	१२०	६०	०
३०	३०	०	०	३३	१२	१२	०	१३६५०	४६३२	६००	१२३०	१८०	६०	१११६
६०	१२२	०	२०	०	०	०	०	२५२९४	८६९८	१२९६	२२२४	३९०	१२०	०
६०	०	६०	०	८०	२०	०	०	३५७४४	११९००	१६८०	३१६२	४२०	१८०	२५४४
८४	९०	०	१२	०	०	०	०	६२८४८	२१४६२	३३०४	५३६६	९३६	३३०	०
१०५	२२१	०	३०	९०	३०	३२	१२	९०५८०	३०२९८	४४५२	७३५०	१२३०	४२०	५७५२
१४०	२०	१३४	०	०	०	०	०	१५४५१	५२०२०	८१५८	१२५९४	२०४४	८१६	०
१९१	१९५	०	३०	१८२	६२	०	१२	२२५१६२	७४८२०	११३४०	१७८२४	२८८२	१०५०	१२५५२
२४०	४१०	०	५४	०	०	०	०	३७५५५२	१२८८४८	१८७१२	२८२२२	५०१६	१८०४	०
३४	३५	३६	३७	३८	३९	४०	४१	४२	४३	४४	४५	४६	४७	४८

०।।ऽ	०।ऽऽ	०।ऽऽ	ऽ।।ऽ											
०	०	०	२४											
०	०	०	०	ऽ।।ऽ	ऽ।ऽऽ	ऽ।ऽऽ	।।ऽऽ	०ऽ।।ऽ						
०	०	०	०	०	०	०	०	१२०						
२४	०	०	६०	०	०	०	०	०						
०	०	०	६०	२४	०	०	०	३६०						
६०	२४	०	०	०	०	०	०	३६०	०ऽ।।ऽ					
०	०	०	१८०	०	२४	०	०	१२००	१२०					
१८०	६०	२४	१८०	६०	०	०	०	१२६०	०	०ऽ।ऽऽ				
०	०	०	१८०	६०	०	२४	०	४१४०	३६०	१२०				
४५०	१८०	६०	३९०	०	६०	०	२४	४६२०	३६०	०	०ऽ।ऽऽ			
०	०	०	६००	१८०	६०	०	०	१२१०४	१२००	३६०	१२०	०।।ऽऽ		
१०५६	३९०	१२०	६००	१८०	०	६०	०	१५५४०	१२६०	३६०	०	१२०	ऽ।।ऽऽ	
०	०	०	१२६६	१२०	१२०	०	०	३५२२०	४१४०	१२००	३६०	०	१२०	
२३६४	९३६	२६०	१४७०	३९०	१८०	०	६०	४७४६०	४६२०	१२६०	३६०	३६०	०	०ऽ[illegible]
०	०	०	२१४०	६००	१८०	१८०	०	९९०५६४	११२८८	३७८०	८४०	०	०	[illegible]
४९	५०	५१	५२	५३	५४	५५	५६	५७	५८	५९	६०	६१	६२	६३

परिशिष्ट - क्रमाङ्कः-२

	o	6	।	ſ	S	$	o6	o।	oſ	oS	o$	6।	6ſ	6S	6$	।ſ	।S	।$	।S	।$	S$	o6।	o6ſ	o6S	o6$	o।ſ	o।S	o।$	oſS	oſ$	oSS	6।ſ	6।S	6।$	6ſS	6ſ$
१	१	०	०	०	०	०																														
२	०	१	०	०	०	०																														
३	१	०	१	०	०	०																														
४	०	०	०	०	०	०																														
५	१	१	०	१	०	०	२																													
६	०	०	०	०	०	०	०	२																												
७	१	०	१	०	१	०	३	०	०	०	०	२																								
८	०	१	०	०	०	०	३	३	२	०	०	०																								
९	१	०	०	०	०	०	४	०	०	०	०	०	२	०	०	०	०	०	०	०	०	६														
१०	०	०	०	०	०	०	६	७	३	२	०	३	०	०	०	२	०	०	०	०	०	०														
११	१	१	१	१	०	१	९	०	०	०	०	३	०	२	०	०	०	०	०	०	०	१२	६													
१२	०	०	०	०	०	०	१०	११	४	३	०	०	३	०	०	०	२	०	०	०	०	१२	०	०	०	६										
१३	१	०	०	०	०	०	१६	०	०	०	०	४	०	०	०	०	०	०	०	०	०	३२	१२	६	०	०	०	०	०	०	०	६				
१४	०	१	०	०	०	०	२०	२०	८	४	२	६	०	३	०	३	०	०	२	०	०	३०	१२	०	०	१२	६	०	०	०	०	०				
१५	१	०	१	०	१	०	२७	०	०	०	०	४	७	०	२	०	०	०	०	०	०	८०	२०	१२	०	०	०	०	०	०	०	०	६	०	०	०
१६	०	०	०	०	०	०	३६	३२	१२	५	३	५	०	०	०	३	३	२	०	०	०	९०	३०	१२	०	३२	१२	०	६	०	०	१२	०	०	०	०
१७	१	१	०	१	०	०	४९	०	०	०	०	१०	०	४	०	०	०	०	०	०	०	१८२	६२	२०	६	०	०	०	०	०	०	१२	०	०	६	०
१८	०	०	०	०	०	०	६३	५४	१७	९	४	१०	११	०	३	४	०	०	०	२	०	२२५	६०	३०	०	७२	३२	६	१२	०	०	०	१२	०	०	०
१९	१	०	१	०	०	०	८६	०	०	०	०	११	०	३	०	०	०	०	०	०	०	४२१	१३२	५०	१२	०	०	०	०	०	०	३२	१२	६	०	०
२०	०	१	०	०	०	०	११३	८७	२७	१३	५	१५	०	५	०	६	७	३	३	०	२	५४३	१६५	६०	१२	१५२	६०	१२	२०	६	०	३०	०	०	१२	०
२१	१	०	०	०	०	०	१५०	०	०	०	०	२०	२०	०	४	०	०	०	०	०	०	९४२	२५६	११४	२०	०	०	०	०	०	०	२०	२०	०	०	६
२२	०	०	०	०	०	०	१९९	१४३	४०	१८	६	२२	०	६	०	९	०	०	३	०	०	१२६७	३६३	१३५	३०	३११	१३४	३२	४२	१२	६	६०	३०	१२	०	०
२३	१	१	१	१	१	१	२६५	०	०	०	०	२७	०	६	०	०	०	०	०	०	०	२०९९	५७९	२२६	५०	०	०	०	०	०	०	९०	३२	१२	३२	०
२४	०	०	०	०	०	०	३४९	२३१	५८	२४	७	३५	३२	०	५	१०	११	४	०	३	०	२२८७	७४२	३०३	६०	६२५	२५१	६०	८४	२०	१२	६०	३०	०	०	१२
२५	१	०	०	०	०	०	४६५	०	०	०	०	४३	०	१०	०	०	०	०	०	०	०	४६२८	१२००	४५४	१०२	०	०	०	०	०	०	१५२	६०	२०	१२	०
२६	०	१	०	०	०	०	६१५	३७६	८७	३५	११	४९	०	७	०	१६	०	०	४	०	०	६४८७	१६३१	६२२	१३५	१२२५	५००	१२२	१४६	४२	२०	१६५	९०	३०	६०	०
२७	१	०	१	०	०	०	८१५	०	०	०	०	६३	५४	४	९	०	०	०	०	०	०	१०१५३	२४०६	९२७	१९६	०	०	०	०	०	०	२००	१०२	२०	०	३२
२८	०	०	०	०	०	०	१०७०	६०८	१२८	४९	१५	७९	०	१५	०	२०	२०	८	६	०	३	१४४००	३३९३	१२५६	२७३	२३७८	९२२	२२१	२५७	७२	३०	३२६	१०५	३०	३०	०
२९	१	१	०	१	०	०	१४३२	०	०	०	०	९२	०	८	०	०	०	०	०	०	०	२२१७२	५०२२	१८५२	४०६	०	०	०	०	०	०	४८७	२००	६०	१२२	०
३०	०	०	०	०	०	०	१९९५	९८६	१८७	६८	२०	११२	८७	१०	१३	२७	०	०	४	७	०	३१७३४	६८९०	२५३२	५३२	४५६६	१७४४	४२२	४५३	११६	५४	४९०	१५१	६०	०	६०
३१	१	०	१	०	१	०	२५१३	०	०	०	०	१४४	०	२१	०	०	०	०	०	०	०	४८२४०	१०२०८	३६५६	७९२	०	०	०	०	०	०	७९५	२८०	२४	९०	०
३२	०	१	०	०	०	०	३३२८	१५९५	२७६	९३	२६	१७१	०	९	०	३६	३२	१२	५	०	३	६९४९८	१४२८३	५०८६	१०७६	८७००	३२०७	७५७	७८०	२०९	८६	१०५०	३८५	१०५	२२१	०
३३	१	०	०	०	०	०	४४०९	०	०	०	०	२०४	१४३	२०	१८	०	०	०	०	०	०	१०८७०८	२०५०६	७१९६	१५१४	०	०	०	०	०	०	१२६०	५६२	१४०	२०	१३४
३४	०	०	०	०	०	०	५८४१	२५८३	४०५	१३०	३३	२५७	०	२८	०	४९	०	०	१०	०	०	१५१६३८	२८९२४	९९४८	२०९७	१६४०५	५९३७	१३८६	१३२४	३४८	१४४	१०७७	६९०	१९१	१९५	०
३५	१	१	१	१	०	१	७७३९	०	०	०	०	३१६	०	१५	०	०	०	०	०	०	०	२२६७५८	४१६२२	१५०८७	२९४९	०	०	०	०	०	०	२४५३	८९३	२४०	४१०	०
	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६	१७	१८	१९	२०	२१	२२	२३	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	३२	३३	३४	३५	३६